मेरे परमस्नेही प्रभुवर

श्रील प्रभुपाद की सेना के
अतुलनीय बलशाली सेनापति

मेरे परमस्नेही प्रभुवर
श्रील प्रभुपाद की सेना के अतुलनीय बलशाली सेनापति

प्रथम संस्करण (११०० प्रतियाँ)
श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर श्रील प्रभुपाद की तिरोभाव तिथि
श्रीगौराब्द ५३२, २६ दिसम्बर, २०१८

सङ्कलन एवं सम्पादनः श्रीमाधवप्रिय दास, श्रीप्रेमदास
टाइप एवं प्रूफ-संशोधनः श्रीकृष्ण दास, श्रीनवकिशोर दास
आभारः श्रीभक्तिवेदान्त सिद्धान्ती महाराज, श्रीसुन्दरगोपाल दास, श्रीसञ्जय दास

© 2018 VISUDDHA CAITANYA-VANI PUBLICATIONS. SOME RIGHTS RESERVED.
EXCEPT WHERE OTHERWISE NOTED, ONLY THE TEXT (NOT THE DESIGN, PHOTOS, ART, ETC.) OF THIS BOOK IS LICENSED UNDER THE CREATIVE COMMONS ATTRIBUTION-NO DERIVATIVE WORKS 3.0 UNPROVED LICENSE.
To view a copy of this license, visit http://creativecommons.org/licenses/by-nd/3.0/
For permissions beyond the scope of this license, write to: sraju.sgd@gmail.com

मेरे परमस्नेही प्रभुवर

श्रील प्रभुपाद की सेना के
अतुलनीय बलशाली सेनापति

संक्षिप्त संस्करण

श्रीमद्भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराज
के मुखनिःसृत हरिकथा से सङ्कलित

विशुद्ध चैतन्यवाणी प्रकाशन

प्रस्तावना



श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने स्वरचित कीर्त्तन 'वैष्णव के?' में वर्णन किया है कि भजन मार्ग की तीन प्रमुख बाधाएँ हैं – कनक, कामिनी एवं प्रतिष्ठा। यद्यपि कनक एवं कामिनी की स्पृहा का त्याग करना भी निश्चित रूप से दुष्कर है किन्तु माया देवी का अन्तिम प्रहार, प्रतिष्ठाशा, इनसे भी कहीं अधिक भयावह है। प्रतिष्ठा की कामना इस प्रकार हृदय के अन्तर में सूक्ष्म रूप से विराजमान रहती है कि अन्यों के लिये तो क्या स्वयं के लिये भी उसे पहचान पाना सम्भवपर नहीं होता।

प्रतिष्ठाशा धृष्टा श्वपचरमणी मे हृदि नटेत्
कथं साधुप्रेमा स्पृशति शुचिरेतन्ननु मनः।
सदा त्वं सेवस्व प्रभुदयितसामन्तमतुलं
यथा तां निष्काश्य त्वरितमिह तं वेशयति सः॥

श्रीमनः शिक्षा (७)

इस श्लोक में, श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी ने वर्णन किया है कि जब तक हृदय में प्रतिष्ठा की आशा निवास कर रही है तब तक श्रीश्रीराधा–कृष्ण के प्रति अप्राकृत निर्मल प्रेम रूपी सूर्य कदापि उदित नहीं होगा। तो क्या निष्कपट साधकों को निराश हो जाना चाहिये? "नहीं!" श्रील दास गोस्वामी नें हमें आश्वस्त किया है– "एक उपाय है!"

वह वर्णन करते हैं, "सदा त्वं सेवस्व प्रभुदयितसामन्तमतुलं – सदैव हमारे प्रभु के अतुलनीय बलशाली सेनापतियों की सेवा करो।" यहाँ पर ये शब्द प्रभु श्रीकृष्ण अथवा महाप्रभु श्रीचैतन्य देव की सेना में विद्यमान उनके अत्यन्त प्रिय तथा अतुलनीय बलशाली सेनापतियों जैसे कि श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी एवं अन्यों के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुए हैं। इस पर भी, जब भी मैं इस श्लोक का पठन, स्मरण अथवा

उच्चारण करता हूँ तो मेरे हृदय में इसके अनेक अर्थ स्फुरित होते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार से हैं—

१. 'प्रभु-दयित' से तात्पर्य श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर से है, जिन्होंने अपने नित्य स्वरूप का परिचय 'श्रीवार्षभानवी-दयित दास' के रूप में दिया है एवं 'सामन्तमतुलं' से तात्पर्य उनके अतुलनीय बलशाली सेनापति मेरे परमाराध्य गुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज से है।

२. 'प्रभु' शब्द का तात्पर्य श्रील प्रभुपाद के शिष्यगण 'मेरे परमस्नेही प्रभुवर' से है, 'दयित' से तात्पर्य श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर (श्रीवार्षभानवी-दयित दास) एवं 'सामन्तमतुलं' से तात्पर्य उनके अतुलनीय बलशाली सेनापतियों से है।

३. 'प्रभु' शब्द का तात्पर्य श्रील प्रभुपाद से है एवं 'दयित-सामन्तमतुलं' से तात्पर्य उनके 'अत्यन्त प्रिय एवं अतुलनीय बलशाली सेनापति' श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज से है।

४. 'प्रभु' शब्द का तात्पर्य श्रीगुरु से है एवं 'दयित' शब्द का तात्पर्य श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज से है जो कि सामन्तमतुलं अर्थात् एक अतुलनीय बलशाली सेनापति हैं।

५. 'प्रभु' शब्द का तात्पर्य श्रीचैतन्य महाप्रभु से है एवं 'दयित-सामन्तमतुलं' से तात्पर्य उनके अतुलनीय बलशाली सेनापति श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद से है अथवा श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज से है जो मेरे सौभाग्य के क्षितिज पर एक उज्ज्वल सूर्य के रूप में प्रकटित हुए।

यद्यपि सम्भवतः उपरोक्त समस्त अर्थ संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार उचित नहीं हैं, मेरा भक्तों से विनम्र निवेदन है कि वे इन व्याख्याओं द्वारा इङ्गित भावों के सार को ग्रहण करें। इस पुस्तक का शीर्षक उक्त कथित द्वितीय अर्थ से प्रेरित है।

जब श्रीमन्महाप्रभु अपने पार्षदों सहित श्रील प्रभुपाद के समक्ष आविर्भूत हुए एवं उन्हें प्रचार सेवाकार्य में प्रवृत्त होने का निर्देश दिया, तब महाप्रभु ने उन्हें वचन दिया, "मैं आवश्यक धन एवं जन की व्यवस्था करूँगा।" इस प्रकार हम यह समझ सकते हैं कि जिन महापुरुषों ने श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय ग्रहण किया वे सभी श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रेरित भगवद्-पार्षद ही थे। अतएव वे सभी श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रेरित श्रील प्रभुपाद के अत्यन्त प्रिय अतुलनीय सेनापतियों में ही सम्मिलित हैं एवं उनकी निरन्तर सेवा करने से प्रतिष्ठाशा रूपी क्लेश का हृदय से उन्मूलन होना सम्भवपर होगा।

सेना के अध्यक्ष का यह कर्त्तव्य होता है कि वह अपने शत्रु का दलनकर अपनी सेना को विजय पथ पर अग्रसर करते हुए अपने राजा के साम्राज्य की रक्षा एवं विस्तार करे। श्रीमन्महाप्रभु की सेना के सर्वोच्च सेनापति श्रीनित्यानन्द प्रभु अपने प्रभु के आदेश का पालन करने के लिये इतने अधिक उत्सुक थे कि परम-निःस्वार्थ

भाव से एवं अपने प्राणों को भी सङ्कट में डालकर उन्होंने अपने प्रभु के संदेश को अत्यधिक पतित जीवों तक भी पहुँचाया।

जिस प्रकार एक सेनापति अपने राजा के प्रत्येक आदेश का पालन करता है, उसी प्रकार श्रीरूप गोस्वामी एवं श्रीसनातन गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु के आदेश से श्रीश्रीराधाकृष्ण की लीला-स्थलियों को प्रकाशित किया जो समय के प्रभाव से विलुप्त हो गई थीं। उन्होंने स्वयं अनेक जीवों को भक्तिपथ पर चलने हेतु उनका मार्गदर्शन किया एवं अनेक भक्ति-ग्रन्थों की रचना की जिनमें उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु की शिक्षाओं को स्थापित कर अन्यान्य मतवादियों अथवा विपक्षियों के अपसिद्धान्तों यथा अपधर्म, उपधर्म एवं छलधर्म का खण्डन किया।

सेना के सेनापति अपने देश की सुरक्षा हेतु सब प्रकार की कठिनाइयों को शान्तिपूर्वक सहन करते हैं। किसी भी प्रकार की प्रतिकूल अवस्था के उपस्थित होने पर भी अपने कर्त्तव्य का सदा निर्वाह करते हैं। इसी प्रकार श्रीमन्महाप्रभु के सेनापति भी विद्वेषी विपक्षियों के आक्रमण से भक्ति-राज्य की सुरक्षा हेतु सब प्रकार की असुविधाओं को स्वीकार करते हैं।

अब यह प्रश्न उठता है कि जब हमारे प्रभु के अत्यन्त प्रिय एवं अतुलनीय सेनापति इस जगत् से अपनी लीला का सम्वरण कर भगवान् की नित्य लीला में प्रवेश कर जाते हैं, तब हम उनकी निरन्तर सेवा किस प्रकार कर सकते हैं? इसका उत्तर है कि ऐसे समय में उनके द्वारा आचरित-प्रचारित शिक्षाओं के निरन्तर श्रवण, कीर्त्तन एवं स्मरण में स्वयं को नियुक्त करना ही उनके श्रीचरणों की सेवा है।

वैष्णवेर गुण-गान, करिले जीवेर त्राण,
शुनियाछि साधु-गुरु-मुखे।

श्रीगोपाल-गोविन्द माहन्त
श्रील प्रभुपाद-वन्दना (१८)

[वैष्णवों का गुण-गान करने से जीवों का उद्धार होता है, ऐसा मैंने साधु एवं श्रीगुरु के मुख से श्रवण किया है।]

वैष्णवों का स्मरण ही हमारी निधि एवं उनका विस्मरण ही विपत्ति है। इसी विचार को ध्यान में रखते हुए, जब वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबाजी महाराज को यह ज्ञात हुआ कि मेरे परमाराध्य परमगुरुदेव श्रील प्रभुपाद ज्योतिषशास्त्र में अत्यन्त पारङ्गत हैं तब उन्होंने कृपापूर्वक श्रील प्रभुपाद को श्रीनवद्वीप-पञ्जिका प्रकाशित करने का निर्देश दिया। उन्होंने श्रील प्रभुपाद से कहा कि पञ्जिका में वे वैष्णवों की आविर्भाव-तिरोभाव तिथियों का उल्लेख करें जिससे कि इन पवित्र तिथियों के उपस्थित होने पर समस्त भक्तसमाज उन वैष्णवों के विषय में श्रवण, उनकी महिमा-कीर्त्तन एवं स्मरण कर सके। वास्तव में, वैष्णवों की आविर्भाव-तिरोभाव तिथि में उनका स्मरण न करना एक अपराध है।

मेरे मठवास के अत्यन्त प्रारम्भिक वर्षों से ही मैंने देखा कि वैष्णवों की आविर्भाव-तिरोभाव तिथि उपस्थित होने पर मेरे परमाराध्य गुरु महाराज ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी

महाराज, ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज एवं श्रील प्रभुपाद के चरणाश्रित अनेक अन्य भक्त उस दिन नियमित रूप से किये जा रहे ग्रन्थ के पाठ को विराम देकर उस विशिष्ट तिथि का महिमा-कीर्त्तन ही करते थे। मैं भी अनेक वर्षों से उसी आदर्श को शिरोधार्य करते हुए प्रतिदिन नियमित रूप से प्रातःकाल वैष्णव पञ्चाङ्ग देखकर यथासम्भव उपस्थित मङ्गलमय तिथि का पालन करता हूँ।



यद्यपि इस ग्रन्थ में वर्णित प्रत्येक वैष्णव-आचार्य द्वारा श्रीविष्णु एवं वैष्णवों की सेवा करने की पद्धति में परस्पर कुछ भिन्नता दिखलाई दे सकती है किन्तु निष्कपट साधक इन भिन्नताओं को विसङ्गति अथवा व्यतिक्रम न समझकर उनके व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के रूप में दर्शन करेंगे। यदि कोई व्यक्ति उचित योग्यता अर्जित किये बिना ही विभिन्न-आचार्यों के आचरण की परस्पर तुलना करता है तो इससे यही प्रमाणित होता है कि उसे वैष्णवों के अप्राकृत चरित्र के विषय में प्रथम सोपान का ही ज्ञान नहीं हुआ। इस प्रकार आलोचना करने वाला निःसन्देह अपने ही अमङ्गल को आमन्त्रित करता है-

जे पापिष्ठ एक वैष्णवेर पक्ष हय।
अन्य वैष्णवेरे निन्दे सेइ जाय क्षय॥
श्रीचैतन्यभागवत (मध्य-खण्ड १३.१६१)

[जो पापी व्यक्ति एक वैष्णव का पक्ष लेकर अन्य वैष्णव की निन्दा करता है वह निश्चित रूप से विनाश को प्राप्त होता है।]

अतएव अपनी बद्ध अवस्था को ध्यान में रखते हुए साधक को अपनी बुद्धि से अतीत तत्त्वों की आलोचना से बचना चाहिये अन्यथा वे स्वयं ही अपना पारमार्थिक अमङ्गल कर बैठेंगे। जो व्यक्ति वैष्णवों के बाह्य स्वरूप से परे देखने की योग्यता रखते हैं तथा उनके मुख्य एवं गौण लक्षणों में पार्थक्य करने में समर्थ होते हैं, वे कदापि भ्रमित नहीं होते।

जिस प्रकार से एक रसोइया परस्पर विरोधी वस्तुओं जैसे कि गुड़ एवं मिर्च के सम्मिश्रण से एक अत्यन्त स्वादिष्ट व्यञ्जन बना सकता है एवं जिस प्रकार यह तथ्य कि करताल, मृदङ्ग एवं कांसे की ध्वनियाँ वस्तुतः पृथक हैं उस समय गौण प्रतीत होता है जब कीर्त्तन के समय वे तीनों ध्वनियाँ एक ही मधुर ताल में मिश्रित हो जाती हैं, इसी प्रकार विभिन्न आचार्यों की व्यक्तिगत सेवा-पद्धति में विविधता होने पर भी उनकी सामूहिक प्रचार-चेष्टाओं का परिणाम अन्ततः सुमधुर एवं सुसङ्गत ही है। इसके विपरीत एक अनुभवहीन व्यक्ति जब रन्धन अथवा कीर्त्तन का प्रयास करेगा तब उसके इस प्रयास का फल हास्यप्रद ही होगा। वह कभी भी एक अनुभवी रसोइये अथवा कीर्त्तनीया की प्रस्तुति की समानता नहीं कर सकता क्योंकि वे लोग परस्पर भिन्नताओं को भी उचित रूप में व्यवहार कर सुखद परिणाम

में परिणत करने में निपुण हैं।

इस विषय में एक अन्य विचार भी है – एक बुद्धिमान विवेकशील व्यक्ति यह समझता है कि किसी भी मात्रा में गौण संघटकों की उपस्थिति मुख्य संघटकों के अभाव की पूर्त्ति नहीं कर सकती। दूसरी ओर गौण संघटकों के अनुपस्थित होने पर भी मात्र मुख्य संघटकों के प्रयोग से ही प्रशंसनीय कार्य किया जा सकता है। उदाहरण–स्वरूप हृदय में यदि विशुद्ध भाव ही उपस्थित नहीं है तब अति सुमधुर सुर एवं ताल में गायन करने पर भी गायक की प्रस्तुति सर्वथा दोषयुक्त है। इसके विपरीत यदि एक रसोइया व्यञ्जन में सही मात्रा में नमक का व्यवहार करता है तब अन्य मसालों की कमी अथवा अधिकता भी उसके प्रशंसकों को अप्रसन्न नहीं करेगी।

इसी प्रकार, इस पुस्तक में वर्णित वैष्णव–आचार्यों के श्रीहरि–गुरु–वैष्णवों के प्रति एकान्त समर्पण के आदर्श को ही उनके प्रचार के मुख्य संघटक के रूप में ग्रहण करना चाहिये तथा अन्य सभी गौण लक्षणों को एकीकरण एवं सुसङ्गति प्रदान करने वाले इस एक मुख्य लक्षण के अनुयायी के रूप में ही देखना चाहिये।

अमेरिका में अपने निवास के प्रारम्भिक दिनों में श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज के किसी शिष्य को एक पुस्तकालय में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर रचित 'Sri Caitanya: His Life and Percepts' की एक प्रतिलिपि प्राप्त हुई। इससे ज्ञात होता है कि ठाकुर भक्तिविनोद की शिक्षाएँ उनके भारत से एक पग बाहर रखे बिना ही पाश्चात्य देशों में पहुँच गयीं। इसी प्रकार यद्यपि श्रील प्रभुपाद एवं उनके अधिकांश शिष्य शारीरिक रूप से कभी भारत से बाहर नहीं गये किन्तु यह उनके एकत्रित निष्ठापूर्ण प्रयासों का ही परिणाम है कि प्रचुर प्रचार के फलस्वरूप श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रील प्रभुपाद की विचारधारा सम्पूर्ण विश्व में मान्यता प्राप्त कर रही है।

एक बालक दूरदर्शन के किसी कार्यक्रम का आनन्द लेते हुए मात्र उसके अभिनेताओं को ही देख पाता है तथा कार्यक्रम के निर्देशक, लेखक, निर्माता, चलचित्रकार, रूपकार एवं कैमरे के पीछे के अन्य कलाकारों के श्रमसाध्य योगदान से सर्वथा अपरिचित होता है। कार्यक्रम के अन्त में दिये जाने वाले उनके नामों की शृंखला को पढ़ना भी उसे समय का अपव्यय ही प्रतीत होता है। वास्तव में उसका यह व्यवहार उसकी अज्ञानता का ही परिचायक है।

इसी प्रकार एक प्रारम्भिक साधक किसी विषय वस्तु के सार को ग्रहण करने में असमर्थ होता है तथा इसी कारण तथ्यों का सामञ्जस्य करने में भी असफल रहता है। यदि कोई व्यक्ति श्रील प्रभुपाद के कितने ही शिष्यों द्वारा पर्दे के पीछे से किए गए अथक प्रयासों एवं अभूतपूर्व योगदान को अनदेखा करता है तथा केवलमात्र उनका ही आदर करता है जो मञ्च पर उपस्थित हैं तब यह स्पष्ट है कि अभी तक उसने वैष्णवों को यथायोग्य सम्मान प्रदान करने

की सूक्ष्म विधि को अङ्गीकार नहीं किया है।

हमें यह देखकर अत्यन्त हर्ष होता है कि धीरे-धीरे वैष्णव-समाज में बहुत से गूढ़ विषयों को दृढ़ता से समझ पाने वाले भक्त उभर रहे हैं तथा निःसङ्कोच सभी को यथायोग्य सम्मान प्रदान कर रहे हैं।



अनेक वर्षों से मैं अपनी कथा-वार्त्ताओं में प्रायः श्रील प्रभुपाद के उन समस्त शिष्यों की महिमा-गुणगान करता हूँ जिनकी सेवा एवं सङ्ग का परम सौभाग्य मुझे अपने गुरु महाराज की अपार करुणा के फलस्वरूप प्राप्त हुआ। यद्यपि मुझे श्रील प्रभुपाद के अन्य अनेक शिष्यों का सङ्ग करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ परन्तु उन सबका इस संक्षिप्त पुस्तक में वर्णन नहीं किया गया है क्योंकि मेरी वृद्धावस्था के कारण मैं उनके साथ व्यतीत अनेक वृत्तान्तों को स्मरण नहीं कर पा रहा हूँ। उनकी कृपा से आवश्यकता होने पर कभी-कभी मेरे स्मृति पटल पर कुछ वृत्तान्त प्रकटित हो जाते हैं। मुझे आशा है कि श्रील प्रभुपाद के अतुलनीय सेनापतियों की इन स्मृतियों को एकत्रित कर अगले संस्करण में प्रकाशित कर पाऊँगा। परन्तु इसका सम्भवपर होना इन दिव्य महापुरुषों की मधुर, स्वतन्त्र इच्छा पर ही निर्भर करता है।

आज तक किसी ने भी श्रील प्रभुपाद के शिष्यों, जिन्हें मैं जगत् का उद्धारकर्ता समझता हूँ, के साथ मेरे उपाख्यानों को प्रकाशित करने का प्रयास नहीं किया, तथा न ही कभी मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरे अनुभव, विचार एवं व्याख्यान प्रकाशित करने योग्य हैं। किन्तु अब लगभग ९१ वर्ष की आयु में जब मेरी स्थिति ऐसी है कि भगवत् इच्छा से मुझे कभी भी यह संसार छोड़ना पड़ सकता है, अनेक भक्तों का यह सुदृढ़ मत है कि मेरे द्वारा इन वैष्णवों की गुणावली कीर्त्तन करने से समस्त जगत् का मङ्गल साधित होगा।

इस कारण से उन्होंने मेरे व्याख्यानों को संग्रह कर लिपिबद्ध करना आरम्भ किया। जब भी उन्हें ऐसा प्रतीत होता कि वह किसी घटना का सार ग्रहण करने में असमर्थ हैं तो वे मुझसे परामर्श करते एवं मैं अत्यन्त उत्साहपूर्वक उसका समाधान करता। उसके पश्चात् वे उस ड्राफ्ट को सुनियोजित कर उसके विषय को व्यवस्थित करते। संयोग से इस प्रक्रिया के द्वारा मैं अधिक गहन रूप से स्मरण करने के लिए प्रेरित हुआ तथा उसके फलस्वरूप मेरे अन्तःकरण की बहुत समय से धूमिल हो गई अनेक वैष्णव-स्मृतियाँ भी प्रकटित हो गईं।

यह प्रकाशन भाव-अनुवाद की शैली में प्रस्तुत किया गया है जो कि स्पष्ट रूप से मेरे द्वारा कथित शब्दों के भाव एवं उद्दिष्ट अर्थों को व्यक्त करता है। इस प्रकाशन में वर्णित उपाख्यान परस्पर स्वतन्त्र हैं जिनका किसी भी क्रम से पाठ किया जा सकता है। पाठक बिना किसी हानि के किसी भी प्रसङ्ग से प्रारम्भ कर विराम दे सकते हैं।

मैं इस प्रकाशन में योगदान देने वाले भक्तों का उनके अथक प्रयास एवं उनकी

श्रील प्रभुपाद के शिष्यों की महिमा को संरक्षित करने की अकृत्रिम अभिलाषा के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ। इस ग्रन्थ के प्रकाशक ने सम्पूर्ण रूप से व्यक्तिगत मनोकल्पना से रहित होकर गुरुवर्गों की वाणी एवं आचरण को यथारूप प्रस्तुत किया है जैसा कि मैंने स्वयं श्रवण एवं अनुभव किया है।

दुर्भाग्यवशतः वैष्णवों को उनकी वरिष्ठता के अनुसार प्रस्तुत करना सम्भव नहीं हो पाया। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जिन्होंने श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके पार्षदों की लीलाओं का वर्णन किया है उन्होंने श्रीचैतन्यचरितामृत (आदि-लीला १०.५) में कहा है, "केह करिवारे नारे ज्येष्ठ-लघु-क्रम अर्थात् कनिष्ठ-वरिष्ठ के क्रमानुसार वर्णन सम्भवपर नहीं हो पाया है।" श्रीदेवकीनन्दन दास ने अपनी वैष्णव वन्दना में व्यक्त किया है, "क्रम-भङ्ग दोष ना लइबा - कृपया मेरा क्रम भङ्ग का दोष मत लीजिये।" उपरोक्त वैष्णवों की भाँति मैं भी ऐसा करने में असमर्थ होने के कारण क्षमाप्रार्थी हूँ।

मैं अब वृद्ध हो गया हूँ तथा मेरी स्मृति-शक्ति की क्षीण होती क्षमता अनेक अवरोध उत्पन्न करती है। मैं कुछ भी करने में असमर्थ हूँ तथा एकमात्र अनुताप के भाव से इन वचनों को स्मरण करता हूँ, "निज कर्म-दोषे, ए देह हइल भजनेर प्रतिबन्ध - मेरे अपने ही कर्म-दोष के कारण यह देह भजन करने में बाधा बन गई है।"

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने हमें सावधान करते हुए कहा है कि जो वैष्णवों की महिमा का गुणगान नहीं करते वे अकृतज्ञता के दोषी हैं। इसलिये मैं आज चिन्तामुक्त अनुभव कर रहा हूँ कि यह प्रकाशन मेरी वैष्णवों के प्रति सतत कृतज्ञता का साक्षी है जिनसे मैंने सब कुछ ग्रहण किया है।

श्रील प्रभुपाद के शिष्यों ने श्रीगुरु के प्रति दृढ़-निष्ठा एवं निरन्तर सेवा के जिस सिद्धान्त को स्थापित किया है वही वास्तविक रूप में हमारे लिए आदर्शस्थानीय एवं प्राणस्वरूप है। इस प्रकार की दृढ़ता हमारे हृदय में प्रकट हो, इस प्रार्थना के साथ ही मैं अपनी प्रस्तावना को विराम देता हूँ।

"वैष्णवेर नाम लबा, आर किछु ना करिबा - मैं वैष्णवों के नाम कीर्त्तन के अतिरिक्त कुछ नहीं करूँगा।"

दासानुदास

Bhakti Vijnan Bharati

श्रीभक्तिविज्ञान भारती

श्रीमद्भक्तिदयित
माधव गोस्वामी महाराज
की तिरोभाव तिथि
२ फरवरी, २०१७

विषय सूची

प्रस्तावना
v

श्रीमद्भक्तिसर्वस्व
गिरि गोस्वामी महाराज
१

श्रीमद्भक्तिहृदय
वन गोस्वामी महाराज
२३

श्रीमद्भक्तिप्रकाश
अरण्य गोस्वामी महाराज
३७

श्रीमद्भक्तिरक्षक
श्रीधर गोस्वामी महाराज
५३

श्रीमद्भक्तिगौरव
वैखानस गोस्वामी महाराज
७७

श्रीमद्भक्तिविचार
यायावर गोस्वामी महाराज
९५

श्रीमद्भक्तिसारङ्ग
गोस्वामी महाराज
११३

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान
केशव गोस्वामी महाराज
१३१

श्रीमद्भक्तिप्रमोद
पुरी गोस्वामी महाराज
१५७

श्रीमद्भक्तिवेदान्त
स्वामी महाराज
१९७

श्रीमद्
कृष्णदास बाबाजी महाराज
२२१

श्रीमद्भक्तिकुमुद
सन्त गोस्वामी महाराज
२३५

श्रीमद्भक्तिकमल
मधुसूदन गोस्वामी महाराज
२६१

श्रीमद्भक्तिसौरभ
भक्तिसार गोस्वामी महाराज
२७३

श्रीमद्भक्तिश्रीरूप
सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज
२८१

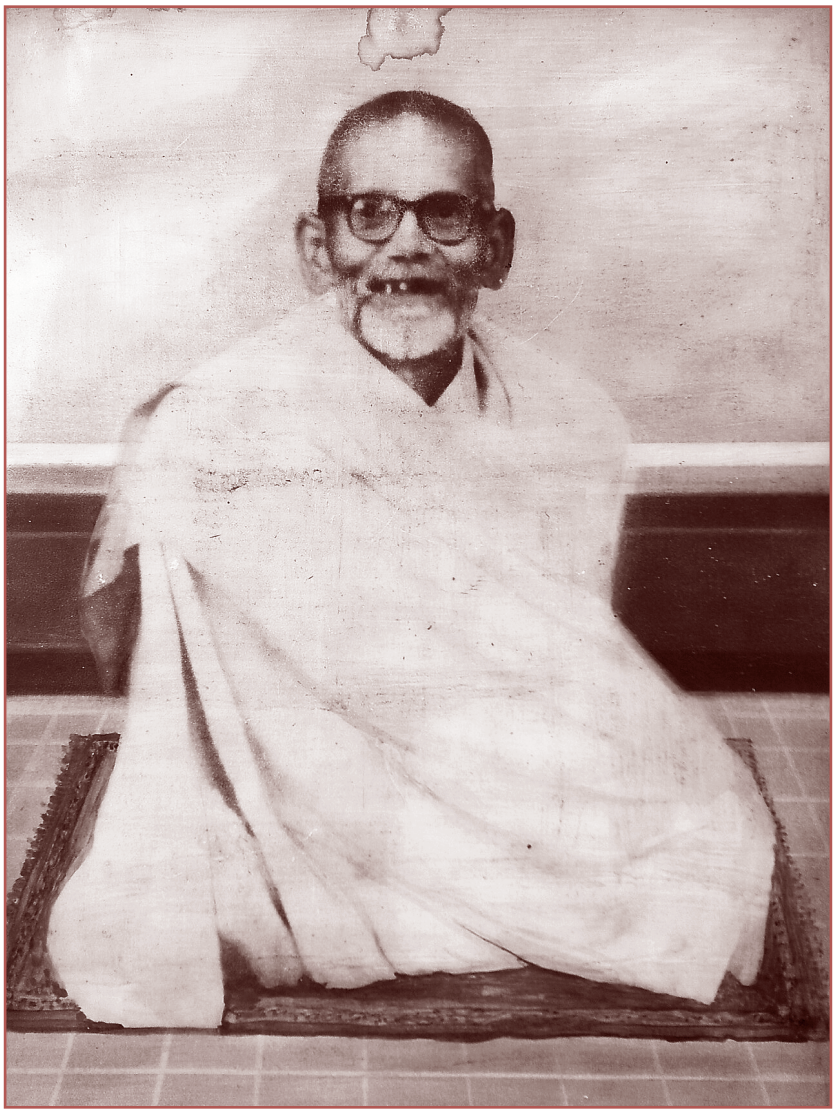
श्रीमद्भक्त्यालोक
परमहंस महाराज
२९५

श्रीपाद
कृष्ण केशव ब्रह्मचारी
३०१

श्रीजगद्-बन्धु
भक्तिरञ्जन
३२१

श्रीमदनमोहन
दासाधिकारी
३२५

श्रीमद्भक्तिविज्ञान
भारती गोस्वामी महाराज
का संक्षिप्त
जीवन चरित्र
३३५



श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि गोस्वामी महाराज



निर्भीकता रूपी गुण

एक समय श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि गोस्वामी महाराज बर्मा में ताँगे पर चढ़कर गवर्नर हाउस में पहुँच गए। यह देखकर गवर्नर अपने द्वारपालों पर बहुत अधिक क्रोधित हुआ तथा उसने उनसे कहा, "यहाँ पर बड़े-बड़े पदाधिकारियों में भी ताँगे पर चढ़कर अन्दर आने का साहस नहीं होता, तब फिर यह साधु कैसे ताँगे पर चढ़कर अन्दर आ गया और तुम लोगों ने उसे ताँगे सहित अन्दर आने क्यों दिया?"

श्रील गिरि गोस्वामी महाराज बहुत स्पष्ट अंग्रेजी बोलते थे तथा वे गवर्नर द्वारा कही गयी बात को भी पूर्ण रूप से समझ रहे थे। उन्हें श्रील प्रभुपाद के आदेश से अंग्रेजी भाषा में प्रवचन करने का अभ्यास होने के कारण गवर्नर से बात करने में कोई सङ्कोच नहीं हुआ। उन्होंने गवर्नर से अंग्रेजी में कहा, "मेरी प्रार्थना है कि आप इन लोगों पर क्रोधित न हों। इन्होंने मेरे द्वारा गवर्नर जनरल का पत्र दिखाने पर ही मुझे भीतर आने दिया है।" ऐसा कहकर श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने अपने नाम पर गवर्नर जनरल के द्वारा लिखित पत्र गवर्नर को सौंपा।

गवर्नर ने अत्यधिक आश्चर्यचकित होकर श्रील गिरि गोस्वामी महाराज से कहा, "आप कौन हैं? आप कहाँ से आये हैं? आपको गवर्नर जनरल ने पत्र क्यों लिखा? मेरे पास भी उनके पत्र आते हैं किन्तु आज तक मुझे कभी उनके द्वारा स्वयं किए गये हस्ताक्षर वाला पत्र तक भी नहीं मिला, उस पर सदैव केवल लिखा हुआ आता है 'From Governor General' अर्थात् 'गवर्नर जनरल की ओर से' किन्तु आपको उन्होंने एक नहीं, दो नहीं, तीन पत्र लिखे हैं और

वे भी सम्पूर्णतः अपने हाथ से।" ऐसा कहते हुए गवर्नर उन्हें अत्यधिक आदर के साथ अपने कक्ष में ले गया।

श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने उन्हें कहा, "मैं सर्वप्रथम जब कोलकाता में गवर्नर जनरल के निकट गया तब मैं अपने गुरु महाराज के मिशन के लिए किसी विशेष स्थान पर सरकार की ओर से भूमि दिए जाने का तथा प्रचार कार्य में सहायता प्रदान करने का प्रस्ताव लेकर गया था। मैंने उन्हें अपने मिशन तथा उसके द्वारा सम्पूर्ण जगत् को होने वाले लाभ के विषय में बताया।

"तब गवर्नर जनरल ने मुझसे कहा, 'मैं किसी एक जाति अथवा धर्म-विशेष के समर्थन में न तो कुछ लिखकर दे सकता हूँ और न ही कुछ कर सकता हूँ।'

"तब मैंने उनसे अत्यधिक निर्भीकतापूर्वक कहा था, 'यदि मैं यह प्रमाणित कर दूँ कि आपने किसी एक जाति अथवा धर्म-विशेष के लिए पूर्व में इस प्रकार की सहायता की है तो क्या आप मेरे लिये भी प्रस्तावित कार्य कर देंगे?'

"मेरी बात सुनकर उन्होंने अपना मुख झुका लिया, कुछ कहा नहीं। मेरे द्वारा निर्भीकतापूर्वक उनके समक्ष ऐसा बोलने से वे क्षुब्ध नहीं, बल्कि मेरे प्रति प्रसन्न ही हुए तथा मेरी प्रशंसा करते हुए कहा, 'मैं आपकी भाँति स्पष्ट बात करने वालों को बहुत पसन्द करता हूँ।'

"बाद में हमारे बीच बहुत समय तक वार्त्तालाप हुआ तथा हम दोनों में मित्रता हो गयी। इसी कारण जब मैंने उनके जन्मदिन तथा अन्य विशेष कारणों से कुछेक पत्र लिखे तो उन्होंने साथ-ही-साथ उसका अपने हाथों से उत्तर प्रदान किया। अब मैं आपके निकट भी अपने गुरुदेव के मिशन के प्रचार हेतु ही कुछ सहायता माँगने आया हूँ।"

इस प्रकार उन दोनों में वार्त्तालाप हुआ तथा श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने उनसे श्रील प्रभुपाद की सेवा करायी। वे कहते थे, "श्रील प्रभुपाद ने जब सर्वप्रथम गवर्नर जनरल के द्वारा मेरे नाम पर लिखे गये पत्र को पढ़ा तो वे बहुत प्रसन्न हुए तथा उन्होंने कहा, 'इसी प्रकार स्थान-स्थान पर संन्यासियों-ब्रह्मचारियों के द्वारा अपने-अपने कृतित्व का परिचय प्रदान करने पर मेरे आनन्द की सीमा नहीं रहती।"

उचित वस्तु का उचित समय पर आदर

एक समय श्रील गिरि गोस्वामी महाराज जब बर्मा में प्रचार-सेवा कार्य के उद्देश्य से गये, तब वहाँ पर किसी बङ्गाली समिति के प्रधान ने उनसे कहा, "महाराज, आप दुर्गा-पूजा के समय पर यहाँ आए हैं, इन दिनों सभी दुर्गा-पूजा करने में व्यस्त रहेंगे, उसी में आविष्ट रहेंगे। ऐसे में आपके मुख से श्रीचैतन्य महाप्रभु अथवा श्रीकृष्ण की कथाओं को कौन श्रवण करेगा?"

श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने कहा, "देखो, एक होता है टेलीग्राफ, दूसरा होता है एक्सप्रेस टेलीग्राफ तथा तीसरा होता है स्टेट टेलीग्राफ। जब किसी कार्यालय में स्टेट टेलीग्राफ आता है, तब उन्हें साधारण टेलीग्राफ अथवा एक्सप्रेस टेलीग्राफ में कही



"दो वस्तुओं के परस्पर तुलनात्मक गुरुत्व को समझकर यदि हम उचित वस्तु का उचित समय पर आदर नहीं करते तो इससे स्वयं की ही वञ्चना होगी।"



गयी बात को पूर्णतया नगण्य समझकर सम्पूर्ण रूप से स्टेट टेलीग्राफ में कही गयी बात को ही गुरुत्व देकर उसके पालन में ही अपनी समस्त ऊर्जा को नियुक्त करना होता है।

"ठीक उसी प्रकार जब परम ईश्वर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनसे अभिन्न कलियुग पावनावतारी श्रीचैतन्य महाप्रभु की कथा, उनकी शिक्षा, उनके आदर्श को श्रवण करने का सुवर्ण सुयोग उपस्थित हुआ है, तब उनकी बहिरङ्गा शक्ति दुर्गा देवी की पूजा आदि को छोड़कर उनकी कथा में आविष्ट होने पर ही अधिक लाभ होगा अन्यथा बड़े लाभ से वञ्चित तथा उचित वस्तु का उचित समय पर आदर नहीं करने से स्वयं ही वञ्चित होना पड़ेगा, किसी अन्य की इसमें क्या हानि होगी?"

अर्थ द्वारा गुरुभ्राताओं की सेवा करना

श्रील गिरि गोस्वामी महाराज के कानों में जब भी किसी ब्रह्मचारी अथवा संन्यासी की किसी असुविधा की बात पड़ती थी, वे तभी, साथ-ही साथ, उनकी सहायता अथवा सेवा के उद्देश्य से उनके निकट धन इत्यादि भिजवाते थे। उदाहरण-स्वरूप जब श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज (श्रीविनोद विहारी ब्रह्मचारी), श्रील कृष्णदास बाबाजी महाराज आदि को उन पर मिथ्या अभियोगों के कारण कारागार में रहना पड़ा था, तब गुरु महाराज के मुख से – 'उन्हें छुड़ाने के लिये मैं अर्थ संग्रह कर रहा हूँ' – श्रवण कर श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने उसी समय अपने पास रखे पचास रुपये में से केवल पाँच रुपये रखकर बाकी पैंतालीस रुपये गुरु महाराज के हाथ में दे दिए।

जब श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज (श्रीविनोद विहारी ब्रह्मचारी) कोलकाता, बोसपाड़ा लेन स्थित किराए के घर में एकादशी के दिन अपने गुरुभ्राता श्रीनारायण मुखोपाध्याय के आने पर कानी कौड़ी के भी अभाव के कारण अपने हृदय में अपने गुरुभ्राता की सेवा के लिये व्यग्र हो रहे थे तभी उन्हें चिड़िया के माध्यम से चालीस पैसे की प्राप्ति हुई थी तथा उसी के द्वारा उन्होंने अपने गुरुभ्राता की सेवा की थी। उसी दिन उन्हें श्रील गिरि गोस्वामी महाराज के द्वारा एक सौ रुपये का मनी-आर्डर प्राप्त हुआ था। कारण, जब श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने सुना कि श्रीविनोद विहारी ब्रह्मचारी श्रीचैतन्य मठ से चले गये हैं तथा अपने साथ वहाँ से कुछ भी लेकर नहीं गये तभी उन्होंने उनके तत्कालीन वासस्थान का पता लगाकर उनकी सेवा के उद्देश्य से मनी-आर्डर भेजा।

श्रील भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज जिस समय विदेश में प्रचार करने के उद्देश्य से गये थे, उस समय वे मठ से कुछ भी अर्थ अपने साथ लेकर नहीं गये थे। जब श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने सुना कि श्रील भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज विदेश में ही भिक्षा करके सब कार्य कर रहे हैं तब उन्होंने श्रील भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज के पास भी मनी-आर्डर से पैसे भेजे थे।

उन्हें प्रचार में जो कुछ भी मिलता, वे उसे सदैव अपने गुरुभ्राताओं की सेवा हेतु दे देते, अपने पास निकट भविष्य में यात्रा अथवा अन्य किसी प्रयोजन हेतु किञ्चित रखकर सब सेवा में लगा देते थे, वे ऐसे निष्किञ्चन थे। वे कहते थे, "श्रील भक्ति विनोद ठाकुर ने हमें उपदेश दिया है-

यदि थाके बहु धन, निजे ह'बे अकिञ्चन,
वैष्णवेर कर उपकार।
जीवे दया अनुक्षण, राधा-कृष्ण-अराधन,
कर सदा ह'ये सदाचार॥

कल्याण-कल्पतरु (१.१२.४)

[यदि आपके पास बहुत धन है तो इससे अनासक्त होकर इसे वैष्णवों की सेवा में लगाओ। सदैव जीवों के प्रति दया रखते हुए, सदाचार का पालन करते हुए निरन्तर श्रीश्रीराधाकृष्ण की आराधना करो।]

अप्रकट लीला प्रकाश करने से पूर्व की अभिलाषा

कानपुर निवासी श्रीगिरिधारी लाल भार्गव ने श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि गोस्वामी महाराज को वृन्दावन धाम में स्थित श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ की भूमि दान करने के पश्चात् उसके निकट ही स्थित एक अन्य भूमिखण्ड गुरु महाराज को दान करने की इच्छा प्रकट की थी। जब श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि गोस्वामी महाराज को यह बात पता चली तब उन्होंने गुरु महाराज से कहा, "यदि आप यह स्थान लेकर स्वयं रहेंगे, तब तो ठीक है, किन्तु यदि आप यहाँ पर मठ बनाएँगे तब तो मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं रहेगा अर्थात् यहाँ मेरी उपस्थिति का कोई प्रयोजन नहीं रहेगा।"

गुरु महाराज ने उनसे कहा, "जब गिरिराज गोवर्धन को धारण करने वाले गिरिधारी श्रीकृष्ण स्वयं मुझे इस अन्य गिरिधारी (लाल भार्गव) के माध्यम से भूमि देना चाहते हैं तो मुझे अवश्य ही उनकी इच्छा की पूर्त्ति करनी चाहिये। मैं अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता के चरण कमलों में ही रहूँगा।"

श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने कहा, "आपकी महिमा के समक्ष मेरी महिमा बहुत कम है। आपके असाधारण प्रभाव के कारण, बहुत लोग आपका ही अनुसरण करते हैं। तब फिर मेरे मिशन का क्या होगा?"

उनकी चिन्ता को समझते हुए गुरु महाराज ने पुनः विचार किया तथा समाधान करते हुए कहा, "यदि ऐसी बात है तो मैं यह भूमि स्वीकार नहीं करूँगा। वैष्णव की सेवा करना ही मेरी प्राथमिकता है, मैं उन्हें किसी प्रकार से उद्वेग देने का कारण नहीं बनूँगा। मैं आपके स्थान से कुछ दूरी पर वृन्दावन में किसी अन्य स्थान पर

मठ बना लूँगा। आप लेशमात्र भी चिन्तित मत होना।"

श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज ने इस घटना के बहुत समय के पश्चात् जब गुरु महाराज को अपना श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ समर्पित करने की बात कही, तब गुरु महाराज ने उनसे कहा, "महाराज, हमने तो यहाँ श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ की स्थापना की ही है, मैं एक ही स्थान पर दूसरी शाखा नहीं चाहता। यदि हमारा अन्य कोई गुरुभ्राता श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ की सेवा के दायित्व को चाहता हो तो आप उसे दे दीजिए।"

श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने तब गुरु महाराज के हाथों को अपने हाथों में लेकर कहा, "आपके इस मठ को स्वीकार करने पर ही मैं शान्तिपूर्वक देह त्याग कर पाऊँगा।" ऐसा कहते हुए वे क्रन्दन करने लगे। उनकी भावनाओं को देखते हुए गुरु महाराज ने श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ की सेवा के दायित्व को स्वीकार कर लिया।

जब श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने छत से गिरकर अस्वस्थ होने की लीला प्रकट की, तब गुरु महाराज ने अपने आश्रित श्रीनिताई प्रभु को उनकी सेवा में नियुक्त किया। श्रीनिताई प्रभु की सेवा परिपाटी को देखकर गुरु महाराज उसके प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट हुए थे।

श्रील प्रभुपाद के आशीर्वाद की पुष्टि करना

जब गुरु महाराज ने श्रीधाम वृन्दावन में स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के श्रीविग्रहों की प्रतिष्ठा की थी, तब उन्होंने तीन दिवस के विराट उत्सव का आयोजन किया था। उसी उत्सव के उपलक्ष्य में श्रील प्रभुपाद के अनेकानेक आश्रितजनों में श्रील गिरि गोस्वामी महाराज भी उपस्थित हुए थे तथा उन्होंने अपने भाषण में कहा था, "श्रील प्रभुपाद ने मुझे तथा श्रीपाद परमानन्द प्रभु को इसी स्थान को गौड़ीय मठ के लिये संग्रह करने हेतु भेजा था किन्तु उस समय हम इसे संग्रह करने में असमर्थ रहे थे। आज उसी स्थान को श्रील माधव महाराज द्वारा संगृहीत तथा मठ के रूप में परिणत हुआ देखकर मुझे दृढ़ विश्वास है कि श्रील प्रभुपाद इसके द्वारा अत्यधिक प्रसन्न होकर श्रीपाद माधव महाराज के प्रति कृपा–वृष्टि कर रहे होंगे। श्रीपाद माधव महाराज के द्वारा इस स्थान को संग्रह करने में सफल होना उनके प्रति श्रील प्रभुपाद की कृपा का ही निदर्शन है।"

नियम पालन करने का महत्व

एक समय श्रील गिरि गोस्वामी महाराज हमारे कृष्णनगर स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में आये तथा उन्होंने मुझसे कहा, "ओह! मैं तो माधव महाराज से यहाँ दो–चार दिन रहने हेतु आज्ञासूचक पत्र लिए बिना ही आ गया हूँ तथा मैं उन्हें कुछ दिन रहने के विषय में सूचित करना भी भूल गया, अब क्या करूँ?"

मैंने उनसे कहा, "महाराज! क्या आपके जैसे विशिष्ट व्यक्ति को भी पत्र लेकर आने की आवश्यकता है। यहाँ सभी व्यक्तिगत रूप से आपसे परिचित हैं। गुरु महाराज

"हम जब स्वयं सावधानीपूर्वक नियमों का पालन करते हुए जीवन यापन करते हैं तो इससे सभी का मङ्गल साधित होता है।"

इस प्रकार की औपचारिकताओं के लिए आपको नहीं कहेंगे।"

मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा, "देखो, ऐसा होने पर भी नियमानुसार चलने से अच्छा रहता है। यदि कोई श्रेष्ठ व्यक्ति अपने अधिकारानुसार किसी नियम को पालन नहीं करता तो इसमें उसकी स्वयं की तो कोई हानि नहीं होती किन्तु उनके अधिकार, उनके हृद्गत भावों को समझ पाने में असमर्थ व्यक्ति उनका अनुकरण करके अपना अमङ्गल करता है। अतएव सावधानीपूर्वक नियमानुसार जीवन यापन करने में सबका मङ्गल निहित होता है।"

गुरुभ्राताओं के उच्छिष्ट को ग्रहण करना

एक समय गुरु महाराज ने अपने अनेक गुरुभ्राताओं को कोलकाता रासबिहारी एवेन्यू में किराए के स्थान पर स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में एक विराट उत्सव हेतु निमन्त्रित किया। उत्सव में योगदान देने वाले भक्तों को तीन भिन्न-भिन्न निर्दिष्ट स्थानों पर तथा गुरु महाराज के गुरुभ्राताओं को गुरु महाराज के कक्ष में ही प्रसाद परिवेशन किया गया। श्रील गिरि गोस्वामी महाराज सबसे ज्येष्ठ होने के कारण पंक्ति में सबसे आगे बैठे थे तथा हमने सर्वप्रथम उन्हें ही विभिन्न प्रकार का प्रसाद परिवेशन किया।

प्रसाद ग्रहण करने के उपरान्त गुरु महाराज के गुरुभ्रातागण एक-एक करके 'निताई गौर हरि बोल' कहते हुए उठने लगे तथा कक्ष में एकमात्र श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ही रह गये। जैसे ही मैं प्रसाद की पत्तलों को एकत्रित कर कूड़ेदान में डालने के लिए प्रस्तुत हुआ तो मैंने देखा कि श्रील गिरि गोस्वामी महाराज अपने प्रत्येक गुरुभ्राता की पत्तल से उनका उच्छिष्ट-प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं। मैंने अतिशीघ्र गुरु महाराज को सूचित किया जो कि कक्ष के बाहर ही खड़े थे। तब गुरु महाराज ने कक्ष में प्रवेश किया एवं श्रील गिरि गोस्वामी महाराज का अनुसरण करते हुए गुरु महाराज भी अपने गुरुभ्राताओं का उच्छिष्ट प्रसाद पाने लगे।

मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही। मैं विचार करने लगा, "यद्यपि श्रील गिरि गोस्वामी महाराज यहाँ पर उपस्थित श्रील प्रभुपाद के समस्त शिष्यों में सबसे ज्येष्ठ हैं तथापि उनके स्वभाव में वैष्णव जगत् क मुख्य स्तम्भरूपी गुण 'तृणादपि सुनीचता अर्थात् स्वयं को तृण से भी नीच समझना' सम्पूर्णरूप से प्रकाशित है।"

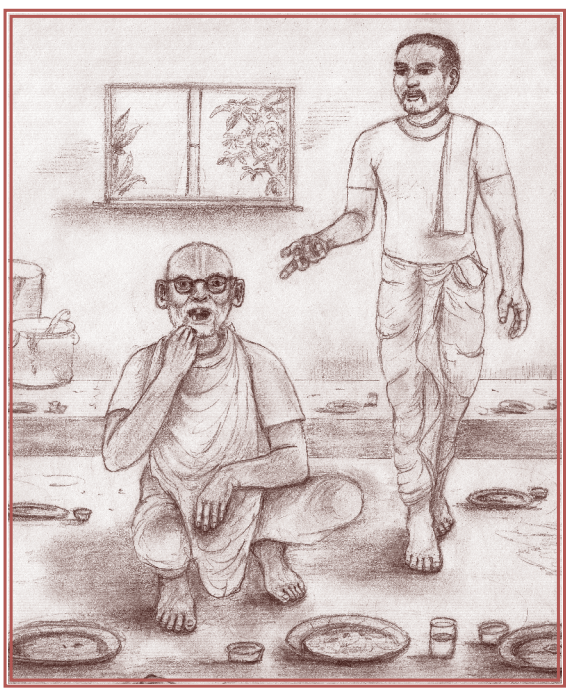
बाद में उपयुक्त समय देख कर मैंने

श्रील गिरि गोस्वामी महाराज से उनके अत्यन्त विस्मित कर देने वाले इस कार्य के विषय में जिज्ञासा की, "मैं अन्ध-विश्वास से बचने हेतु किसी वस्तु के वास्तविक महत्त्व को समझने पर ही उसको पालन करने का अभ्यस्त हूँ। इस कारण आपको वैष्णवों का उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करते हुए देख मेरे मन में यह प्रश्न आया कि वैष्णवों का उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करने से पूर्व क्या यह विचार करना चाहिये कि वह किस स्तर का वैष्णव है?"

श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने कहा, "मैं इस विषय में कुछ नहीं कह सकता किन्तु एक बात निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि वैष्णवों का उच्छिष्ट ग्रहण करने से व्यक्ति उनके भावों को प्राप्त करेगा। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी के सम्बन्धी, श्रीकालिदास बिना वैष्णवों के स्तर का विचार किए सदैव श्रद्धापूर्वक उनका उच्छिष्ट ग्रहण करते थे तथा इसके फलस्वरूप ही उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणामृत को प्राप्त करने की योग्यता अर्जित कर ली। श्रीचैतन्यचरितामृत (अन्त्य-लीला १६.६०) में वर्णित है-

भक्तपदधूलि आर भक्तपद-जल।
भक्तभुक्त-शेष, -एइ तिन साधनेर बल॥

[भक्तों के चरणों की धूलि, भक्तों के चरणों का जल एवं भक्तों का उच्छिष्ट प्रसाद, - ये तीनों साधन के बल हैं।]



"इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतम् में श्रीनारद ऋषि ने पारमार्थिक जीवन में उनकी निष्ठा स्थापन का श्रेय ऋषियों के उच्छिष्ट को दिया है तथा वहाँ भी वैष्णवों के स्तर से सम्बन्धित कोई विचार उल्लिखित नहीं है। जिन्हें श्रीगुरुदेव ने स्वीकार कर वैष्णव प्रमाणित कर दिया है तब मैं उन्हें कोई अन्य प्रमाण-पत्र देने का प्रयास क्यों करूँ? मेरे विचार से वे सभी मेरे पूज्य हैं क्योंकि वे मुझसे अधिक दृढ़ श्रद्धावान् तथा मुझसे अधिक सेवा करते हैं। इसलिए मेरे गुरुदेव के प्रियजनों का उच्छिष्ट ग्रहण करना मात्र ही बहुत सौभाग्य का विषय है। श्रीचैतन्यचरितामृत (मध्य-लीला १०.१४२) में लिखा है, 'गुरुर किङ्कर हय मान्य से आमार अर्थात् श्रीगुरु के सेवक सदैव मेरे पूज्य हैं।'

श्रीगौर–आशीर्वाद

श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की विचारधारा को सुष्ठु रूप से अग्रसर करने की अभिलाषा से गुरु महाराज ने विभिन्न स्थानों पर जाकर प्रचार–प्रसार, मठ–मन्दिरों की स्थापना, पत्रिकाओं का प्रकाशन, दीक्षा–संन्यास, गेरुएँ वस्त्र आदि प्रदान करने रूपी समस्त पद्धतियों का ही प्रचलन किया।

श्रील प्रभुपाद जिस प्रकार श्रीगौर पूर्णिमा के समय श्रीमन्महाप्रभु की सेवा करने वालों को गौर–आशीर्वाद प्रदान करते थे, उसी प्रकार गुरु महाराज भी श्रीचैतन्यवाणी प्रचारिणी सभा[१] की ओर से विशेष सेवा करने वाले ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ आदि सभी को श्रीगौर–आशीर्वाद प्रदान करते थे।

गौर–आशीर्वाद प्रदान करने में गुरु महाराज का एक विशेष वैशिष्ट्य यह था कि वे गौर–आशीर्वाद–पत्र पर हस्ताक्षर स्वयं नहीं करके पहले अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्रीभक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज तथा उनके अप्रकट–लीला को प्रकाशित करने के उपरान्त श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि गोस्वामी महाराज को श्रीचैतन्यवाणी प्रचारिणी सभा का सभापति बनाकर उन्हें प्रचुर मर्यादा प्रदान करते हुए उनके हस्ताक्षर किए हुए गौर–आशीर्वाद–पत्र को उनके हस्तकमलों से प्रदान कराते थे। उदाहरण स्वरूप उन्होंने मुझे

[१]श्रीचैतन्य महाप्रभु की वाणी का प्रचार करने हेतु श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज द्वारा आयोजित वार्षिक धर्म–सभा



"वास्तव में हमें जो
कुछ भी प्राप्त हुआ है
वह एकमात्र भगवान्
की सेवा हेतु ही है।"



मेरी ब्रह्मचारी अवस्था में जो गौर–आशीर्वाद प्रदान किया उसमें श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि गोस्वामी महाराज के हस्ताक्षर हैं।

गृहस्थ भक्तों के लिए विशेष निर्देश

श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि गोस्वामी महाराज प्रायः गृहस्थ भक्तों से कहते थे, "यद्यपि शास्त्रों में वर्णित है कि गृहस्थ व्यक्ति को अपनी मासिक आय का कुछ भाग भगवान् तथा भक्तों की सेवा के उद्देश्य से देना चाहिये तथापि यदि किसी कारणवश वैसा सम्भवपर न हो तो अन्ततः बारह मास में से अपनी एक मास की आय को तो उन भगवान् की सेवा के उद्देश्य से अर्पित करना ही चाहिये जिनकी सेवा के लिये ही वास्तव में हमें सब कुछ मिला है, जिनके लिए सब कुछ है। यदि हम ऐसा नहीं करते तो दोष लगता है।"

श्रील गिरि गोस्वामी महाराज की बात सुनकर बर्मा तथा भारतवर्ष के अनेक गृहस्थ भक्त अन्ततः एक वर्ष में एक मास की अपनी आय को भगवान् तथा भक्तों की सेवा हेतु प्रदान करते थे।

वास्तविक वरिष्ठता का विचार

एक समय श्रील गिरि गोस्वामी महाराज के हमारे कृष्णनगर मठ में आने पर जब मैंने उन्हें प्रातः काल पाठ करने के लिये प्रार्थना की तब उन्होंने मुझसे कहा, "मैंने आज तक आपको पाठ करते हुए नहीं सुना, आप ही पाठ करें तथा मैं ऊपर से अर्थात् अपने कक्ष में बैठे-बैठे ही उसे सुनता रहूँगा।"

मैंने उनसे कहा, "महाराज, आप मेरे गुरुवर्ग हैं, मुझसे अत्यधिक ज्येष्ठ हैं, मेरे द्वारा किए गये पाठ को आप क्यों श्रवण करेंगे?"

उन्होंने कहा, "भजन राज्य में वास्तव में ज्येष्ठ तथा कनिष्ठ का कोई विचार नहीं है। श्रीचैतन्यचरितामृत में श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने लिखा है 'जेइ भजे, सेइ बड़' अर्थात् जो कृष्ण की सेवा करता है वही ज्येष्ठ है। अधिक दिन तक मठ में वास करने से नहीं, बल्कि मठ की विचार-धारा, उसके आदर्श को जो जितनी अधिक मात्रा में गुरुत्व देकर पालन करता है, वह उतनी मात्रा में श्रेष्ठ होता है।

"और एक बात, वैष्णव होने के साथ-ही-साथ व्यक्ति तदीय वस्तु के अन्तर्भुक्त होने के कारण पूज्य बन जाता है। अतएव आप ही पाठ कीजिए।"

मैंने श्रील महाराज के वचनों को उनका आदेश मानकर पाठ किया तथा बाद में जब मैं उन्हें प्रणाम करने के उद्देश्य से गया तब उन्होंने कहा, "मैंने पाठ सुना, सुनकर बहुत अच्छा लगा, आपने बहुत अच्छे विषय को चुनकर युक्तिपूर्ण कथा का परिवेशन किया। वास्तव में कथा तभी कथा होती है जब वक्ता अन्यों को सुनाने, उन्हें उपदेश करने का दम्भ नहीं करके स्वयं के मङ्गल के उद्देश्य से, स्वयं को पुनः पुनः गुरुवर्गों से श्रवण किए हुए विषय को स्मरण कराने के उद्देश्य से पाठ करता है। इस प्रकार वह प्लेटफॉर्म स्पीकर नहीं बनकर जीवन में उसी आदर्श का स्वयं पालन अथवा आचरण करते हुए प्रचार करता है। यह 'आचरण करते हुए प्रचार करना' ही महाप्रभु के आश्रितजनों का मुख्य वैशिष्ट्य है।"

धैर्य सम्बन्धित शिक्षा

श्रील गिरि गोस्वामी महाराज सभी कार्यों को बहुत धीरे-धीरे करते थे। उन्हें स्नान करने, वस्त्र धारण करने अथवा अन्य किसी भी कार्य को करने में बहुत अधिक समय लगता था। इसलिए किसी-किसी स्थान पर रसोई बनाने वाला व्यक्ति रन्धन कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व ही उनके पास जाकर कहता, "महाराज, रन्धन कार्य प्रायः समाप्त होने को है, आपको कितनी देरी लगेगी। अच्छा हो कि आप शीघ्र गर्म-गर्म प्रसाद ग्रहण कर लें।"

उनकी बात सुनकर श्रील गिरि गोस्वामी महाराज उत्तर देते, "अच्छा, बस मैं शीघ्र ही आता हूँ।" दूसरी ओर रन्धन कार्य करने वाले रसोइये के द्वारा रन्धन पूर्ण कर लेने पर भी श्रील गिरि गोस्वामी महाराज नहीं पहुँच पाते थे तथा बुलाने पर कहते, "अभी-अभी तो बोला था कि आ रहा हूँ, तब फिर दोबारा से क्यों बुलाने आए



श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ, वृन्दावन स्थित
श्रील महाराज के समाधि मन्दिर पर संस्थापित उनका श्रीविग्रह

"भजन राज्य में
ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ
का कोई विचार
नहीं है।"

हो, मैं अभी आ ही रहा हूँ।" इस प्रकार उन्हें सब कार्यों को करने में ही देरी हो जाती थी।

एक समय मुझे उनके साथ कृष्णनगर में जाकर उनकी स्वरूपगञ्ज स्थित भूमि को बेचने हेतु रजिस्ट्रेशन कराना था। किन्तु प्रातः काल उन्होंने स्नान-हेतु गर्म जल माँगा, मैंने गर्म जल की व्यवस्था कर दी। बाद में गर्म जल ठण्डा हो गया किन्तु किसी अन्य कार्य में व्यस्त रहने के कारण वह स्नान करने नहीं गए। मैंने दोबारा उनका जल गर्म कर दिया। उनके स्नान हेतु जाने से पूर्व मैंने जिज्ञासा की, "महाराज, आप प्रातः कलेवा में दूध-चिड़वा लेंगे अथवा दही-चिड़वा।"

उन्होंने कहा, "दूध मेरे लिये उपयुक्त नहीं, किन्तु हाँ, दही-चिड़वा ले सकता हूँ।"

मैंने कहा, "बहुत अच्छा महाराज, आपके स्नान-आह्निक इत्यादि करने तक मैं उसकी व्यवस्था कर दूँगा।"

मैंने दही-चिड़वे की व्यवस्था कर दी, किन्तु श्रील गिरि गोस्वामी महाराज को आह्निक करते-करते इतनी देरी हो गयी कि इससे हमारा कृष्णनगर में होने वाला कार्य विपद में पड़ गया। जब मैंने उनसे कहा, "महाराज, समय बहुत होता जा रहा है, आप इसे ग्रहण कर लीजिए।"

तब उन्होंने मुझसे कहा, "अब इसे रहने दो, एक साथ दोपहर में प्रसाद ही ग्रहण करूँगा।" तथा वह अन्य प्रातः कालीन कार्यों में व्यस्त हो गए।

दोपहर के प्रसाद के समय तक भी वह अपने कार्यों में व्यस्त थे, फिर दोपहर का प्रसाद पाते-पाते भी उन्हें बहुत देरी हुई तथा जब हम रजिस्ट्रेशन कराने के लिये पहुँचे तो कार्यालय के क्लर्क ने कहा, "आज हम और नये फॉर्म स्वीकार नहीं करेंगे। कारण, पहले ही बहुत देरी हो गयी है। अतएव आप लोग कल आना।"

मैंने श्रील गिरि गोस्वामी महाराज की महिमा बोलकर रजिस्ट्रार को जिस किसी प्रकार से उसी दिन हमारा फॉर्म स्वीकार करने के लिए मनाया और फिर हमारा कार्य हो गया।

सन्ध्या के समय कार्य के समाप्त होने पर मठ की ओर आते समय श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने मुझसे कहा, "तुम मेरे द्वारा सब कार्यों में देरी करने पर भी क्षुब्ध तो हुए ही नहीं, बल्कि मेरी महिमा बोलकर अत्यधिक दक्षतापूर्वक रजिस्ट्रेशन का कार्य भी करवा दिया। मैंने तुम्हारे गुरुदेव श्रीमाधव महाराज में भी ऐसा ही गुण देखा है कि वे वैष्णवों की व्यवहारिक क्रियाओं की ओर कोई ध्यान नहीं देकर उनसे उनकी वैष्णवता के अनुरूप ही व्यवहार करते हैं।

"किसी के सभी कार्यों को शीघ्रतापूर्वक कर लेने या फिर देरी से करने से अथवा समयनिष्ठ होने या फिर नहीं होने से अथवा साफ-सुथरा परिच्छन्न रहने या फिर मैला-कुचैला रहने से, कम अथवा अधिक भोजन ग्रहण करने आदि से ही उनकी वैष्णवता की पहचान नहीं होती अथवा उनकी ये क्रियाएँ उनकी वैष्णवता को मापने का मापदण्ड नहीं होती बल्कि उनकी चित्तवृत्ति, उनकी भावनाएँ तथा उनका आदर्श ही वास्तव में उनकी वैष्णवता को देखने का

मापदण्ड होता है। तुम्हारी ही तरह मेरे गुरुभ्रातागण भी मुझ पर रुष्ट नहीं होते तथा वे मेरी क्रियाओं को देखकर मुझ पर मधुर अपनेपन को प्रदर्शित करने वाला आमोद-प्रमोद करते हैं और मैं जब चाहने पर भी किसी भी कार्य को शीघ्रतापूर्वक नहीं कर सकता तो इसमें मैं क्या करूँ, इसमें मेरा क्या दोष?"

इतनी सरलतापूर्वक श्रील महाराज मुझे सब बातें बोल रहे थे, मानो वे एक बालक हों।

सामान्य किन्तु महत्वपूर्ण निर्देश

श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि गोस्वामी महाराज ने मुझे एक समय अपने निकट बैठाकर उपदेश दिया, "कभी भी कोई ऐसी खाद्य-सामग्री अकेले किसी के समक्ष मत खाना, जिसे देखकर अन्यों को लोभ हो, कभी कोई ऐसा वस्त्र धारण मत करना, जिसे देखकर अन्यों को वैसे वस्त्र धारण करने की रुचि हो। अपने कक्ष में वस्तुओं को इस प्रकार सजा-सजाकर नहीं रखना, जिस प्रकार गृहस्थ लोग रखते हैं, किन्तु कक्ष को साफ-सुथरा रखो।" उन्होंने केवल मुझे ऐसा उपदेश किया हो, ऐसी बात नहीं, वे स्वयं भी सदैव उपरोक्त सब बातों का पालन करते थे। उनका जीवन अत्यधिक वैराग्यमय था।

मङ्गलाचरण

श्रील गिरि गोस्वामी महाराज देखने में अत्यधिक दुबले-पतले थे तथापि उनका स्वर इतना प्रबल था कि उन्हें किसी भी सभा में, चाहे वहाँ बड़ी संख्या में श्रोता एकत्रित हों, भाषण देने के लिये कदापि माइक की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। वे हरिकथा के आरम्भ में मङ्गलाचरण करते हुए सर्वप्रथम इस निम्नलिखित श्लोक का अवश्य ही उच्चारण करते थे तथा उनके आरम्भ करने मात्र से सभी अत्यधिक आश्चर्यपूर्वक उस दिव्य ध्वनि को श्रवण करते थे-

'आजानुलम्बित भुजौ कनकावदातौ
संकीर्त्तनैक पितरौ कमलायताक्षौ।
विश्वम्भरौ द्विजवरौ युगधर्मपालौ
वन्दे जगत्प्रियकरौ करुणावतारौ॥'

श्रीचैतन्यभागवत (आदि-खण्ड १.१)

[मैं उन करुणावतार श्रीगौराङ्गदेव एवं श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु की वन्दना करता हूँ जिनकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी हैं, जिनके शरीर की कान्ति स्वर्ण की भाँति मनोरम है, जो सङ्कीर्त्तन के सृष्टिकर्त्ता अथवा प्रवर्त्तक हैं, जिनके नेत्र कमल की भाँति विशाल हैं, जो विश्व के पोषणकर्त्ता हैं, जो श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में आविर्भूत हुए हैं, जो युगधर्म के पालनकर्त्ता हैं, तथा जगत् के लोगों का परम कल्याण करने वाले हैं।]

वैष्णवों के चरणों में शरणागति

एक समय श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने ऐसी अस्वस्थ लीला का अभिनय किया कि उनके नेत्रों का ऑपरेशन करना पड़ा तथा उन्हें रक्त भी चढ़ाना पड़ा। श्रील गिरि गोस्वामी महाराज को कोलकाता प्रेसिडेंसी

गवर्नमेन्ट अस्पताल में भर्ती कराया गया था। यद्यपि ब्रिटिश समय में उस अस्पताल में केवल उच्च पदस्थ अधिकारियों को ही चिकित्सा के लिए भर्ती किया जाता था अन्य किसी को नहीं, परन्तु देश स्वतन्त्र होने के पश्चात् वह सभी की चिकित्सा के लिए खोल दिया गया। श्रील गिरि गोस्वामी महाराज को उसी अस्पताल के सबसे उत्तम विभाग 'Woodburn Ward' में भर्ती कराया गया था।

गुरु महाराज ने जब अपने आश्रितजनों को जानकारी दी, "श्रील गिरि महाराज के लिये रक्त की आवश्यकता है, आप लोगों में कौन-कौन उन्हें रक्त दे सकता है?" तब सभी भक्तों में उनके लिये रक्त देने की मानो होड़ सी लग गयी। जिन कुछेक भक्तों की रक्त परीक्षा हुई उनमें मैं भी था। मेरा ब्लड-ग्रुप 'O' निकला। डॉक्टर ने कहा, "यह रक्त चल सकता है किन्तु उनके वाला ही ब्लड-ग्रुप मिलने से अच्छा होगा।" बाद में पता चला कि मेरे सतीर्थ श्रीभक्तिविजय वामन महाराज तथा श्रीमदन प्रभु का ब्लड-ग्रुप श्रील गिरि गोस्वामी महाराज के ब्लड-ग्रुप से मिलता है तथा डॉक्टर ने श्रीभक्तिविजय वामन महाराज का रक्त लेकर श्रील गिरि गोस्वामी महाराज को चढ़ाया।

जब श्रील गिरि गोस्वामी महाराज अपने ऑपरेशन के पश्चात् अस्पताल से मठ में लौट आए तब उन्होंने कहा, "मैं जैसा महाविद्यालय में पढ़ाई करते समय देखता था अब वैसे ही देख पा रहा हूँ। वैष्णव ही मेरे रक्षाकर्त्ता तथा वही मेरे पालन करने वाले हैं। शास्त्रों में षड़ङ्ग शरणागति की जो बात कही गयी है जब तक वह वैष्णवों के प्रति नहीं होगी तब तक वह भगवान् के प्रति कदापि नहीं हो सकती। मेरा पुनः पुनः वैष्णवों से यही कहना है

"मेरा पुनः पुनः वैष्णवों से यही कहना है- मुझ दास पर आपका सम्पूर्ण अधिकार है, आप चाहें तो मुझे मार डालिए अथवा मेरा पोषण कीजिए, जैसी आपकी इच्छा हो वैसा ही कीजिए।"

'मारबि राखबि जो इच्छा तोमार। नित्यदास-प्रति तुया अधिकार' अर्थात् इस दास पर आपका सम्पूर्ण अधिकार है, आप चाहे तो इस दास को मार डालिए या जीवित रखिए, जैसी आपकी इच्छा हो वैसा ही कीजिए।"

गुरुभ्राताओं के स्नेह के पात्र

श्रील गिरि गोस्वामी महाराज तथा श्रील भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज के मध्य विशेष प्रीति का एक आंशिक कारण यह भी था कि श्रील प्रभुपाद ने उन दोनों को एक ही दिन संन्यास प्रदान किया था। जब श्रील गिरि गोस्वामी महाराज ने अप्रकट लीला प्रकाशित की, तब श्रील भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज आगरा के किसी नर्सिंग होम में भर्ती थे, उन्हें कैथेटर लगा हुआ था, किन्तु जैसे ही उन्होंने सुना, "श्रील गिरि महाराज अप्रकट हो गए हैं", वह साथ-ही-साथ डॉक्टर के अत्यधिक निषेध करने पर भी अस्पताल से छुट्टी लेकर तथा कैथेटर को हाथ में ही पकड़ कर वृन्दावन आ गये तथा श्रील गिरि गोस्वामी महाराज की समाधि के समस्त सेवा-कार्य को अपने दिशा-निर्देश में कराया।

श्रील गिरि गोस्वामी महाराज के प्रति गुरु महाराज, श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिसौरभ भक्तिसार गोस्वामी महाराज, श्रील भक्त्यालोक परमहंस महाराज आदि की अत्यधिक प्रीति, निष्ठा आदि को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनमें कैसे वैष्णवोचित गुण होंगे, जिस कारण अत्यधिक निष्ठावान् भक्तगण भी उनके प्रति निष्ठा, श्रद्धा-भक्ति रखते थे।

श्रीमद्भक्ति सर्वस्व गिरि महाराज का नित्य लीला में प्रवेश

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित

सांसारिक वार्त्ता के प्रति उदासीन

पूज्यपाद गिरि महाराज पूर्वबङ्गाल (वर्त्तमान बाङ्गलादेश) के ढाका शहर में १८९९ ई॰ में एक विशिष्ट सम्भ्रान्त परिवार में आविर्भूत हुए थे। वे बाल्यकाल से ही विरक्त स्वभाव के थे। उनकी खाने-पहनने के विषय में उदासीनता, खेलकूद आदि में अरुचि, गम्भीर स्वभाव, साधु-सज्जन महापुरुषों के साथ मेलजोल, धर्म के प्रति अनुराग इत्यादि को लक्ष्य कर माता-पिता यह सोच कर कि उनके ऊपर किसी देवता की दृष्टि पड़ गई है अथवा वे किसी ग्रह के प्रभाव से ग्रस्त हो गए हैं, उनकी कुशलता के सम्बन्ध में अत्यन्त आशङ्कित होते थे तथा श्रीभगवद् चरणों में अत्यन्त कातर होकर सन्तान के मङ्गल की प्रार्थना करते थे।

श्रील प्रभुपाद से भेंट

१९२१ ई॰ में, कार्तिक मास में नियमसेवा के समय परमाराध्यतम श्रील प्रभुपाद ने ढाका के प्रसिद्ध, धनी एवं जमींदार स्वर्गीय श्रीसनातनदास महाशय के भवन में कई दिनों तक श्रीमद्भागवतम् का पाठ एवं व्याख्या की थी। अनेक शिक्षित एवं सम्भ्रान्त व्यक्ति उस समय श्रील प्रभुपाद की अभूतपूर्व

व्याख्याओं को श्रवण कर विशेष आकृष्ट हुए थे। उनके शिष्य (अधुना नित्यलीलाप्रविष्ट) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रदीप तीर्थ महाराज ने भी वहाँ पर कई दिनों तक श्रीमद्भागवतम् का पाठ किया था। उस समय श्रीमद् गिरि महाराज वहाँ आकर पाठ एवं हरिकथा श्रवण करते थे। उस समय वे 'इन्दु बाबु' के नाम से परिचित थे। कुछ समय पश्चात् परमाराध्यतम श्रील प्रभुपाद के चरणों का आश्रय ग्रहण करने पर पहले 'श्रीगौरेन्दु ब्रह्मचारी' तथा परवर्ती काल में त्रिदण्डसंन्यास स्वीकार कर 'त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज' के नाम से सुपरिचित हुए।

निर्भीक वक्ता

संन्यास प्राप्ति के उपरान्त श्रीपाद गिरि महाराज ने परमाराध्यतम श्रील प्रभुपाद के आदेश से भारत के विभिन्न स्थानों पर अथक परिश्रम के साथ प्रचार कार्य कर प्रभुपाद का मनोऽभीष्ट पूर्ण किया।

श्रील महाराज एक निर्भीक वक्ता थे। उनकी मेघ के समान गम्भीर ओजस्विनी भाषा में प्रदत्त वक्तृता को श्रवण करने से समस्त श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। उनकी वक्तृता में माइक्रोफोन की आवश्यकता नहीं होती थी।

श्रील प्रभुपाद के असीम आनन्द का स्रोत

सत्य के प्रति श्रील महाराज की ऐसी दृढ़निष्ठा थी कि अंग्रेजी शासनकाल में भी वे गवर्नर, वायसराय इत्यादि के समक्ष निर्भीक सत्यकथा बोलने से किञ्चित् मात्र भी पश्चात्पद नहीं हुए। उन्होंने ही सर्वप्रथम परमाराध्यतम श्रील प्रभुपाद के श्रीमुखनिःसृत वास्तव सत्य वाणी का भारत के वायसराय (गवर्नर जनरल) लॉर्ड वैलिङ्गटन के समक्ष परिवेशन किया था। वायसराय बहादुर श्रील महाराज के वचन श्रवण कर सन्तुष्ट हुए एवं उन्हें एक पत्र प्रदान किया, जिसको देखकर परमाराध्यतम श्रील प्रभुपाद अत्यन्त आनन्दित हुए थे। १९२६ ई०, कार्तिक मास में श्रील प्रभुपाद ने अपने भारत-भ्रमण वृत्तान्त के सम्बन्ध में अपने शिष्यों को जो पत्र लिखे थे, वे 'पत्रावली, प्रथम खण्ड' में प्रकाशित हुए हैं, उनमें एक स्थान पर यह उल्लेख है-

> "भक्तिसर्वस्व गिरि ने जो अंग्रेजी Certificate प्राप्त किया है, उसे पढ़ कर मैं परमानन्दित हुआ। इसी प्रकार प्रत्येक स्थान पर संन्यासी-ब्रह्मचारियों के द्वारा अपने-अपने कृतित्व का परिचय प्रदान करने से मेरा आनन्द और भी वर्धित होगा।"

गवर्नर, वायसराय एवं अन्यान्य विशिष्ट राजपुरुषगण द्वारा लिखित अनेक पत्र मैंने श्रील महाराज के पास देखे हैं। उन पत्रों में उन्होंने श्रील महाराज के प्रचार कार्यों की भरसक प्रशंसा की है तथा श्रीमन्महाप्रभु के समस्त जीवों में प्रेमधर्म के प्रचार-प्रसार के विषय में यथेष्ट उत्साह का प्रदर्शन किया है।

अंग्रेजी भाषा लेखन एवं वक्तृता में सुप्रवीण

परमाराध्यतम श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रवर्त्तित श्रीधाम मायापुर स्थित मूलमठ श्रीचैतन्य मठ एवं तत्शाखा गौड़ीय मठों में प्रभुपाद के श्रीचरणाश्रित अनेक उच्चशिक्षित अंग्रेजी भाषा में प्रवीण वक्ता विद्यमान होने पर भी श्रील महाराज के अंग्रेजी में लिखने एवं बोलने की पद्धति की श्रीनिशिकान्त सन्याल महोदय (श्रीपाद नारायण दास भक्तिसुधाकर प्रभु, जो कि कटक के रॉवेनशॉ कॉलेज में इतिहास के एक प्रवीण प्राध्यापक थे) तथा अन्य विशेषज्ञगण भी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे।

उनका आदर्श चरित्र

श्रील महाराज में अपने श्रोतागणों के चित्त को आकर्षण करने की एक अद्भुत क्षमता थी। परमाराध्यतम श्रील प्रभुपाद एवं उनके अनुगत सभी गुणग्राही वैष्णवगण उनकी वक्तृता को प्रचुर पसन्द करते थे।

उनका शुद्ध पवित्र निर्मल चरित्र, शिशु के समान सरलता, जो प्राप्त हो उसमें ही सन्तोष, अपूर्व गुरुसेवा-निष्ठा, सर्वत्र भगवत्-कथा कीर्त्तन एवं उसके फलस्वरूप पाषण्डियों के दलन में अदम्य उत्साह एवं अनुराग रूपी सद्गुण निश्चय ही आदर्श-स्वरूप हैं।

उनका व्यापक सेवा-सौष्ठव

परमाराध्यतम श्रील प्रभुपाद की मनोऽभीष्ट सेवा निष्पादन में उन्होंने काय-मन-वाक्य से निष्कपट भाव से भरसक प्रयत्न किए हैं। प्रभुपाद द्वारा प्रतिष्ठित समस्त मठमन्दिरों में एवं भारत के विभिन्न स्थानों पर उनके मनोऽभीष्ट के प्रचार के उद्देश्य से श्रीधाम मायापुर, कोलकाता, ढाका, पटना, प्रयाग, कुरुक्षेत्र आदि स्थानों पर सत्शिक्षा प्रदर्शनी का उन्मोचन कर श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित सत्शिक्षा के विस्तार का कार्य, भक्तिग्रन्थों एवं सामयिक पत्रिका आदि का प्रचार, श्रीगौड़मण्डल, श्रीक्षेत्रमण्डल एवं श्रीब्रजमण्डल के समस्त सेवा-कार्यों में श्रीपाद गिरि महाराज की सेवा-प्रचेष्टा निश्चित रूप से उल्लेखनीय है।

श्रील प्रभुपाद के मिशन के प्रेरक-शक्ति स्वरूप

श्रील प्रभुपाद के प्रकट काल में ब्रह्मदेश (बर्मा) में रङ्गून गौड़ीय मठ की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में श्रीमद् गिरि महाराज ही प्रधान उद्यमकर्त्ता थे तथा परवर्ती काल में उनके अथक परिश्रम एवं प्रयत्नों से ही वहाँ पर श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रतिष्ठित लखनऊ स्थित श्रीगौड़ीय मठ के कार्यालय को स्थायी मठ में परिवर्त्तित करने के लिए श्रील महाराज ने ही १९३८ ई॰ में वहाँ पर एक विशाल दो तल वाला घर किराए पर लेकर श्रीविग्रहों का संग्रह किया था।

हरिद्वार स्थित श्रीसारस्वत गौड़ीय मठ की भूमि-संग्रह एवं वहाँ पर सेवक-निवास के निर्माण-कार्य में प्रधान कार्यकर्ता श्रील महाराज ही थे। नैमिषारण्य में श्रीपरमहंस मठ के सेवा-कार्य में भी उन्होंने प्राण देकर परिश्रम किया था।

उनका विशेष योगदान

उत्तरप्रदेश के तत्कालीन सिंचाई विभाग के सुपरिटेण्डेन्ट इन्जीनियर रायबहादुर श्रीमदनगोपाल सरदाना महोदय ने उनकी मुखनिःसृत हरिकथा को श्रवण कर आकृष्ट हो कर ही श्रील प्रभुपाद के चरणों का आश्रय ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त जिला एवं सेशन जज लखनऊ निवासी रायबहादुर श्री जे॰ एन॰ राय सहित उत्तरप्रदेश के अनेक विशिष्ट व्यक्तियों को उन्होंने श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग की वाणी श्रवण कराकर उनके द्वारा श्रीमठ की प्रचुर सेवा करवाई थी।

उनका चरम उत्साह एवं सत्यनिष्ठा

परमाराध्यतम श्रील प्रभुपाद के अप्रकट लीला प्रकाश करने के उपरान्त उनके द्वारा प्रतिष्ठित मठमन्दिर आदि की सेवा-परिचालना के लिए १० जनवरी, १९३७ को बागबाजार स्थित श्रीगौड़ीय मठ में श्रील प्रभुपाद के विशिष्ट शिष्यगणों ने सम्मिलित होकर जिस गवर्निङ्ग बॉडी का गठन किया था, परवर्ती काल में श्रील गिरि महाराज ने उस बॉडी के अन्यतम सदस्य के रूप में साहसिकता एवं सत्यनिष्ठापूर्वक श्रीमठ की प्रचुर सेवा की।

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ से उनका सम्बन्ध

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के अध्यक्ष पूज्यपाद माधव महाराज के साथ श्रील महाराज का अकृत्रिम सौहार्द था। श्रील महाराज श्रील माधव महाराज के द्वारा संस्थापित श्रीधाम मायापुर में ईशोद्यानस्थ श्रीगौड़ीय संस्कृत विद्यापीठ की कार्यकारी समिति के एक प्रधान सदस्य थे। उनको श्रीगौर जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में प्रतिवर्ष श्रीधाम मायापुर में श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में आयोजित श्रीचैतन्य-वाणी-प्रचारिणी सभा के सभापति के पद पर भी मनोनीत किया जाता था।

उनकी अन्तिम प्रार्थना

श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज मठवासियों तथा वैष्णवगणों के श्रीमुख से श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ एवं महामन्त्र कीर्त्तन श्रवण करते हुए श्रीव्रजरज को प्राप्त हुए। अप्रकट लीला प्रकाश के अन्तिम मुहूर्त्त तक भी श्रील महाराज की चेतना लुप्त नहीं हुई थी। उन्होंने उस दिन प्रातःकाल के समय अत्यन्त कातरतापूर्वक "हे प्रभुपाद! मेरी रक्षा कीजिए, मुझ पर कृपा कीजिए। हमारे समस्त अपराधों को क्षमा कर अपने श्रीचरणों में स्थान प्रदान कीजिए" इत्यादि कहते-कहते श्रीगुरुपादपद्म का स्मरण करते हुए अत्यन्त व्याकुल होकर क्रन्दन किया था।

श्रील माधव महाराज की उनके प्रति चिन्ता

श्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराज के निकट उनके अस्वस्थ लीला का प्रथम संवाद पहुँचते ही उन्होंने श्रीधाम वृन्दावन स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के सेवकवृन्द को तार के द्वारा एवं पत्र आदि के माध्यम से श्रील महाराज की सेवा-परिचर्या एवं चिकित्सा की सुष्ठु व्यवस्था करने के लिए विशेष रूप से निर्देश दिया। भक्त निताई

दास ने दिवा-रात्रि उनके निकट उपस्थित रहकर प्रसन्न-मुख से समस्त सेवाएँ की। श्रील महाराज ने उनकी निष्कपट सेवा से सन्तुष्ट होकर उनको प्रचुर आशीर्वाद प्रदान किया था।

उनकी अनुपस्थिति का प्रभाव

श्रील महाराज के समान एक शुद्ध भक्त वैष्णव के सङ्ग का अभाव सभी के हृदय को अत्यन्त वेदना में निमज्जित कर देता है। श्रील महाराज इस जगत् में अधिक समय तक उपस्थित नहीं रहेंगे- सम्भवतः यह अपनी दिव्य अनुभूति के बल से वह पहले ही जान गए थे, इसी कारण उन्होंने अपने संन्यासी शिष्यों के उपस्थित रहते हुए भी अपने द्वारा प्रतिष्ठित श्रीधाम वृन्दावन में कालियदह मोहल्ले में अवस्थित श्रीविनोद वाणी गौड़ीय मठ का समस्त सेवाभार अपने हृदय की प्रेरणा के अनुरूप श्रीपाद माधव महाराज को अर्पण कर दिया था।

सर्वोपरि दुःख

श्रीमन्महाप्रभु ने निज पार्षद-प्रवर श्रीराय रामानन्द प्रभु से यह प्रश्न किया था- "समस्त दुःखों में कौन-सा दुःख सर्वोपरि है?" श्रीराय रामानन्द ने उसके उत्तर में कहा था- "कृष्णभक्त के विरह से बड़ा कोई दुःख नहीं है।" चौरासी लाख योनियों में मनुष्य योनि अत्यन्त दुर्लभ है, यह मनुष्य जन्म क्षणभङ्गुर होने पर भी भगवद्भजन के लिए विशेष अनुकूल है। स्वर्ग के देवतागण भी वैकुण्ठ के प्राङ्गण-स्वरूप इस भारतभूमि पर परमार्थ प्रदानकर्ता इस सुदुर्लभ मनुष्य जन्म की प्राप्ति की प्रचुर प्रशंसा करते हैं। परन्तु "तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्।" देहधारी जीवगणों के मध्य क्षणभङ्गुर मनुष्य-देह की प्राप्ति दुर्लभ होने पर भी श्रीभगवान् के प्रिय भक्तों का दर्शन प्राप्त करना उससे भी अधिक दुर्लभ है। अतएव सद्गुरु के चरणाश्रित श्रीहरि-गुरु-वैष्णव सेवा में अत्यधिक आविष्टतापूर्वक रत भजन परायण शुद्ध भक्त के सङ्ग से च्युत होने के समान अन्य महादुःख क्या हो सकता है?

"काहार निकट गेले पाप दूरे जाए।
एमन दयाल प्रभु केबा कोथा पाय॥"

[ऐसे करुणा के विग्रह वैष्णवजन कहाँ मिलेंगे जिनके समीप जाने मात्र से ही जीव के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं?]

उनका एकमात्र लक्ष्य

जिनकी मुख-निःसृत वाणी को श्रवण कर सैकड़ों जीव भवबन्धन से मुक्त होकर निःश्रेयस-पथ पर अग्रसर हुए, जिनके शुद्धभक्तियुक्त पावन चरित्र, कृष्ण एवं कृष्ण-भक्तों के प्रति अकृत्रिम अनुराग, स्निग्ध-सौम्य विग्रह का दर्शन, श्रवण एवं स्मरण करने से हृदय पवित्र हो जाता था, काय-मन-प्राण में भगवद्भजन की लालसा जागृत हो उठती थी, श्रीश्रीगुरुपादपद्म ने जिनको अत्यन्त करुणापूर्वक 'भक्ति-सर्वस्व' नाम प्रदान किया था एवं जिन्होंने अपने प्रकट काल के अन्तिम मुहूर्त्त तक उस नाम की

सार्थकता का निर्वाह करते हुए परमपवित्र निष्कलङ्क भजनादर्श-युक्त जीवन यापन किया, ऐसे ही 'कृष्णप्रिय-दर्शन' अर्थात् श्रीकृष्ण के प्रियतम, श्रीगुरुपादपद्म के प्रियतम, उनका मनोऽभीष्ट पूर्ण करने वाले भक्तप्रवर के अदर्शन से उत्पन्न वेदना आज निश्चित रूप से हमारे हृदय के अंतःस्थल को स्पर्श कर रही है।

अत्यन्त हर्ष एवं गौरव का विषय

इस महादुःख के बीच हमारे परम सुख एवं गौरव का विषय यह है कि आज उन्होंने साक्षात् श्रीवृन्दावन धाम में, सम्बन्ध के साक्षात् अधिठात्री देवता, श्रीसनातन एवं उनसे अभिन्न, श्रीवार्षभानवी-दयित-दास के नाम से आत्मपरिचय प्रदान करने वाले, श्रीराधाजी की नयनमणि, श्रीगुरुपादपद्म के प्राणकोटि सर्वस्व श्रीराधामदनमोहन[२] के श्रीचरणों के सान्निध्य में चिरकाल के लिए आश्रय प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार का सौभाग्य कदापि साधारण सुकृति का परिचायक नहीं है।

"जत देख वैष्णवेर व्यवहार-दुःख।
निश्चय जानिह सेई परानन्द सुख।"

श्रीचैतन्यभागवत (मध्य-खण्ड ९.२४०)

[अर्थात् वैष्णव के जीवन में दिखाई देने वाले व्यवहारिक दुःखों को भी निश्चित रूप से परानन्द सुख के रूप में ही जानना चाहिये।]

इस महाजन-वाक्य में कथित महान् आदर्श श्रील महाराज के अस्वस्थ-अभिनय आदि के प्रसङ्ग में लक्ष्य करने का विषय है।

श्रीगुरु-सेवा ही उनके प्राण-स्वरूप

पूज्यपाद महाराज भिक्षा में प्राप्त अर्थ आदि में से एक अंश भी निज-इन्द्रिय-तर्पण में नियुक्त न कर सर्वस्व मठ-मन्दिर आदि में श्रीहरि-गुरु-वैष्णव की सेवा में समर्पण करते हुए उनके 'भक्ति-सर्वस्व' नाम की सार्थकता स्थापित कर गए हैं। इस प्रकार कृष्ण एवं कृष्ण-भक्तों की सेवा ही जिनके प्राण हैं, परमभागवत बान्धव को खो देने के पश्चात् कौन ऐसा पाषाण हृदय होगा जो द्रवीभूत नहीं हो जाएगा? परमाराध्यतम श्रील प्रभुपाद के मनोऽभीष्ट की सेवा ही जिनके प्राण-स्वरूप थे, उन्हीं परमकरुणामय श्रील प्रभुपाद ने अपने प्रियतम निजजन को श्रीवार्षभानवी-दयित श्रीमदनमोहन के श्रीचरणों का नित्यदासानुदासत्व प्रदान कर उनके श्रीचरणों की नित्यसेवा का अधिकार प्रदान किया है। श्रीश्रीमदनमोहन ने उनके सेवक गोस्वामी के हृदय में एवं उसके साथ श्रीवृन्दावन के सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी महोदय के हृदय में भी अनुकूल प्रेरणा प्रदान पूर्वक उनके निजजन को उनके चरणों के सान्निध्य में चिर वासस्थान प्रदान कर नित्य सेवा-अधिकार प्रदान किया है। भक्तवत्सल भगवान् का ऐसा भक्तवात्सल्य धन्य है।

[२]श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ वृन्दावन में श्रीश्रीराधा मदनमोहन मन्दिर से लगभग २०० मीटर दूर, दक्षिण दिशा में उसी मार्ग पर स्थित है।

एक सर्वव्यापी सत्य

श्रीनन्द महाराज पुत्र के जन्म के उपरान्त मथुरा मण्डल के अधिपति कंस को सन्तुष्ट रखने के उद्देश्य से वार्षिक कर प्रदान करने के लिए मथुरा गए थे। उस समय कर आदि प्रदान करने के पश्चात् परम प्रिय बान्धव श्रीवसुदेव के साथ भेंट करने पर श्रीवसुदेव ने कथावार्त्ता के समय निज बन्धुवर श्रीनन्द महाराज से यह कहा था–

"नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम्।
ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा॥"

श्रीमद्भागवतम् (१०.५.२५)

[जैसे नदी के प्रबल प्रवाह में बहते हुए तिनके, काष्ठ आदि सदा एक साथ नहीं रह सकते, वैसे ही इस संसार प्रवाह में विचित्र प्रारब्धकर्म-युक्त सगे सम्बन्धियों का प्रियजनों के साथ सब समय एक स्थान पर रहना सम्भव नहीं है।]

उसी प्रकार हमारे लिए भी अब उनके साथ रह पाना सम्भवपर नहीं है।

"कृपा करि' कृष्ण मोरे दियाछिला सङ्ग।
स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा,– कैला सङ्ग भङ्ग॥"

चै॰च॰ (अन्त्य-लीला ११.९४)

[भगवान् श्रीकृष्ण ने कृपापूर्वक मुझे उनका सङ्ग प्रदान किया था। श्रीकृष्ण ने निज स्वतन्त्र इच्छा से अब वह सङ्ग भङ्ग करा दिया है।]

हृदय-विदारक अवस्था

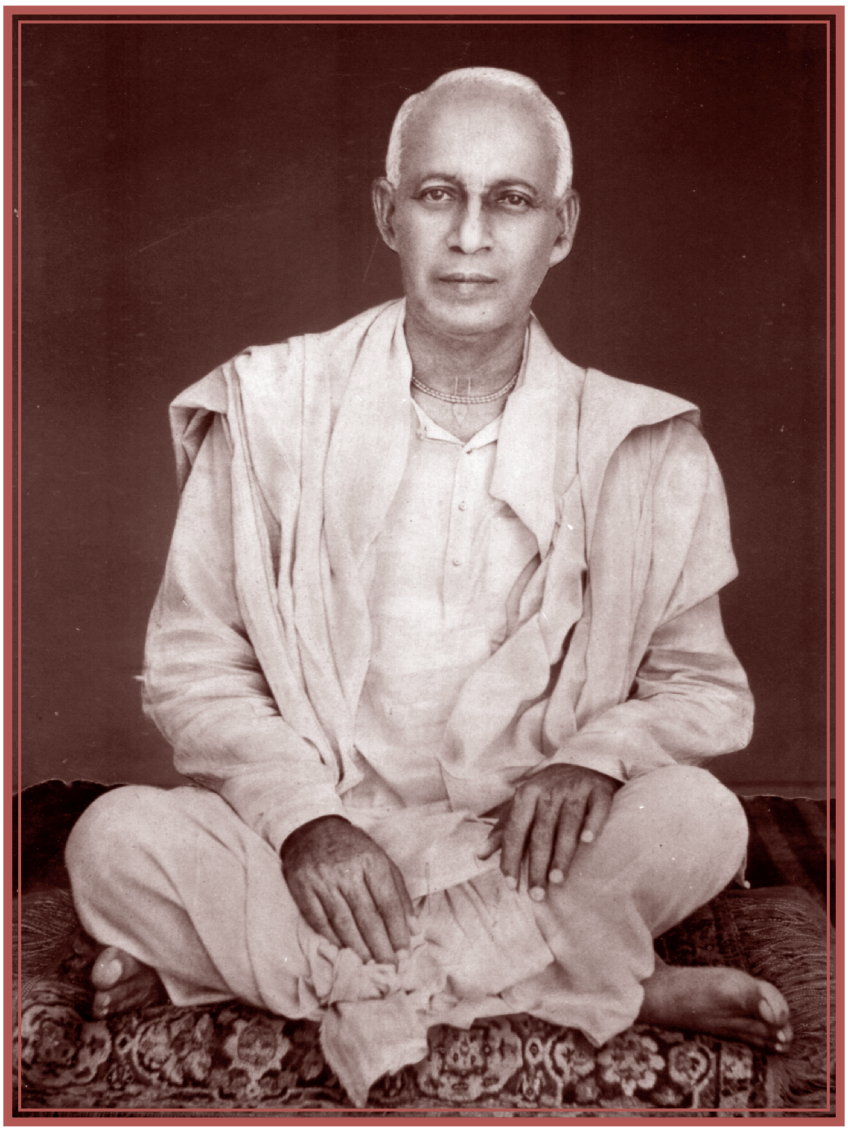
दैन्यता की प्रतिमूर्त्ति श्रील महाराज की सरलतापूर्ण मन्द हास्य से युक्त मुखछवि स्मृति पटल पर उपस्थित होकर आज हृदय को अत्यन्त शोकविह्वल कर रही है। उनके मठ जीवन के आरम्भ से अन्त तक की समस्त स्मृतियाँ पहले प्रसन्नतावश हृदय को द्रवीभूत कराकर अन्ततः दुःख के सागर में निमज्जित कर रही हैं। अप्रकट लीला प्रकाश करने के कुछ दिन पूर्व ही उन्होंने अपने किसी एक प्रिय बान्धव (श्रीमद्भक्ति प्रमोद पुरी महाराज) को स्वप्न में स्वस्थ शरीर से दर्शन देकर हृदय में कितनी ही आशाओं का सञ्चार कराया था, किन्तु हाय! समस्त आशाएँ ही नष्ट हो गईं! इस जन्म में पुनः उनका दर्शन प्राप्त नहीं होगा, यह अत्यन्त ही हृदयविदारक है।

हमारा अविच्छेद्य सम्बन्ध

श्रीगुरुपादपद्म जिस प्रकार हमारे जन्म-जन्मान्तर के, नित्य जीवन के ही प्रभु हैं, उनके प्रति समर्पितात्मा, उनके निजजन भी उसी प्रकार हमारे लिए जन्म-जन्मान्तर के बान्धव हैं, उनके साथ हमारा नित्यजीवन का नित्य, अविच्छेद्य सम्बन्ध सुनिश्चित है। गुरु-अवज्ञा रूप महत्-अपराध के फल से चित्त वज्र के समान कठोर हो जाता है तथा इस सम्बन्ध-ज्ञान से विच्युत होकर जीव माया का दास हो जाता है तथा संसार की वासना की श्रृंखला में आबद्ध हो जाता है।

उनके श्रीचरणों में कातर प्रार्थना

पूज्यपाद गिरि महाराज श्रीव्रजधाम में मूल विषय-विग्रह श्रीगिरिराज गोवर्धन के चरणों में उनके आश्रय-विग्रह-शिरोमणि श्रीगुरुपादपद्म के आनुगत्य में चिरकाल के लिए आश्रय प्राप्तकर हमें भी उसी व्रज के पथ का पथिक होने की योग्यता प्रदान करें, यही आज उनके चरणों में सकरुण निवेदन करता हूँ। "वैष्णवेर कृपा जाहे हय सर्वसिद्धि – वैष्णवों की कृपा से ही सर्वार्थ सिद्धि सम्भवपर होती है"।



श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज



गौड़ीय मठ के भक्तों से भेंट

श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज (उस समय श्रीनरेन्द्र बन्दोपाध्याय) अपनी स्नातकोत्तर शिक्षा के समय असाधारण प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे तथा वे शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के अत्यन्त प्रिय थे। उनकी अभिनय एवं नाट्यकला में स्वाभाविक अभिरुचि थी तथा अंग्रेजी माध्यम से विद्या अर्जित करने के कारण वे अंग्रेजी भाषा में अत्यधिक निपुण थे।

श्रीनरेन्द्र अपने पिता के दसवें एवं सबसे कनिष्ठ पुत्र थे तथा उनके अत्यधिक प्रिय भी थे। जब उनकी स्नातकोत्तर शिक्षा समाप्त हुई, उस समय उनके पिता अत्यधिक अस्वस्थ हो गये एवं इस कारण से उनके परिवार के कुछ सदस्य अपने गाँव से स्थानान्तरित हो गाण्दारिया पल्ली, ढाका में किराये के घर में रहने लगे, जहाँ पर उनके पिता को चिकित्सा हेतु अस्पताल में भर्ती किया गया। उनके स्थानान्तरण होने के कुछ समय पश्चात् श्रीनरेन्द्र समस्त सामाजिक क्रियाओं से सम्पूर्ण रूप में विरक्त हो गये। अकस्मात् वह अपने परिवार एवं मित्रों के स्नेह के प्रति उदासीन हो गये तथा उन्होंने सद्गुरु पदाश्रय ग्रहण करने एवं कृष्ण-भजन कर अपने जीवन को सार्थक करने की अनिवार्यता को पुष्ट किया।

जो निष्कपट भाव से भगवान् को प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिये भगवान् सब प्रकार की व्यवस्था बना देते हैं। इसलिये इस समय के आस-पास अपनी शक्तिशाली भक्त्योन्मुखी सुकृति[१] के फलस्वरूप श्रीनरेन्द्र किसी प्रकार से ढाका स्थित श्रीमध्व गौड़ीय

[१]भक्ति के पथ पर अग्रसर करने वाली पारमार्थिक सम्पदा-विशेष

मठ के भक्तों के सम्पर्क में आये। वहाँ श्रीनरेन्द्र ने श्रील प्रभुपाद के अतिमर्त्य-चरित्र की महिमा श्रवण की एवं उन्होंने पिताजी की औषधि को लाने का बहाना कर श्रील प्रभुपाद के चरणकमलों के दर्शन हेतु कोलकाता जाने का निश्चय किया।

कोलकाता स्थित श्रीगौड़ीय मठ में श्रीनरेन्द्र बन्दोपाध्याय का श्रील प्रभुपाद से प्रथम साक्षात्कार हुआ। श्रील प्रभुपाद से प्राप्त अनन्त स्नेह तथा उनकी वीर्यवती हरि-कथा ने उन्हें एक नवीन जीवन हेतु प्रेरित किया। उन्होंने ढाका न लौटने का निर्णय किया एवं अपने पिता के लिये औषधि पहुँचाने की व्यवस्था कर स्वयं कोलकाता मठ में ही वास करने लगे।

कुछ और दिन तक श्रील प्रभुपाद की हरि-कथा श्रवण कर श्रीनरेन्द्र बन्धोपाध्याय ने श्रील प्रभुपाद से हरिनाम एवं दीक्षा-मन्त्र प्रदान करने हेतु प्रार्थना की। शास्त्रों में, अनुष्ठानिकी-दीक्षा द्वारा गुरु एवं शिष्य में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व एक-दूसरे की परीक्षा का विधान है। इसलिये हरिनाम एवं दीक्षा-मन्त्र प्रदान करने से पूर्व श्रील प्रभुपाद ने श्रीनरेन्द्र की परीक्षा करने के लिये उन्हें उनके द्वारा आत्मसात विषय में एक प्रबन्ध लिखने के लिये कहा।

श्रीनरेन्द्र ने अत्यन्त ध्यानपूर्वक 'आत्मीय के? अर्थात् स्वजन कौन है?' नामक प्रबन्ध लिखा। यद्यपि साधारण रूप से आत्मीय शब्द स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर के लिये प्रयुक्त होता है तथापि श्रीनरेन्द्र ने इसकी आत्मा के सम्बन्ध में व्याख्या की। श्रीनरेन्द्र बन्दोपाध्याय का अल्प समय में ही इतने गम्भीर विषय में अत्यन्त गहन प्रवेश, उनके पूर्व अथवा इस जन्म में साधु सङ्ग को लक्षित करता है अन्यथा ऐसा होना सम्भवपर नहीं है।

श्रील प्रभुपाद श्रीनरेन्द्र बन्धोपाध्याय द्वारा रचित प्रबन्ध से अत्यन्त प्रसन्न हुए एवं इसे साप्ताहिक गौड़ीय पत्रिका (वर्ष २, संख्या ४८, २६ जुलाई, १९२४) में प्रकाशित किया। इस प्रकार श्रीनरेन्द्र बन्धोपाध्याय परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। शीघ्र ही श्रील प्रभुपाद से पाञ्चरात्रिक-दीक्षा प्राप्त कर वह श्रीनन्दसूनु (नन्दन) ब्रह्मचारी के नाम से विख्यात हुए।

श्रीगुरुपादपद्म से दीक्षा-मन्त्र प्राप्त कर श्रीनन्दसूनु ब्रह्मचारी ने निरन्तर 'विश्रम्भेण गुरोः सेवा अर्थात् निःसङ्कोच भाव से गुरु की अन्तरङ्ग सेवा करना'- इस विचार का पालन करने के लिए प्रत्येक क्षण प्रयास किया। श्रीनन्दसूनु ब्रह्मचारी को सदैव श्रीहरि, गुरु, वैष्णव की सेवा में चेष्टारत ही देखा गया। वह इससे कभी भी च्युत नहीं होते थे तथा एक मुहूर्त्त के लिये भी इन्द्रियतर्पण में लिप्त नहीं होते थे।

श्रील प्रभुपाद के आनुगत्य में प्रचार

२९ जनवरी, १९२५ को श्रीविष्णुप्रिया देवी की आविर्भाव तिथि पर श्रील प्रभुपाद के आनुगत्य में श्रीगौड़मण्डल-यात्रा प्रारम्भ की गई। श्रील प्रभुपाद की आज्ञानुसार श्रीनन्दसूनु ब्रह्मचारी ने कई स्थानों पर हरि-कथा का परिवेशन तथा श्रीगुरु, वैष्णवों के लिये अन्य असंख्य सेवाओं का निष्पादन किया तथा अपने गुरुपादपद्म की प्रचुर प्रीति एवं स्नेह के पात्र बने। उसी वर्ष ४ सितम्बर,

१९२५ को श्रील प्रभुपाद से संन्यास ग्रहण कर त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज के नाम से सुविख्यात हुए।

सत्-शिक्षा प्रदर्शनी के द्वारा शुद्ध भक्ति का प्रचार करना, श्रील प्रभुपाद की हार्दिक अभिलाषाओं में से एक था। श्रीधाम मायापुर, कोलकाता, ढाका, पटना, काशी, प्रयाग तथा कुरुक्षेत्र आदि स्थानों में प्रदर्शनी की रूपरेखा बनाने एवं अलंकृत करने में श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज का विशेष योगदान था। उनका श्रीधाम मायापुर में प्रदर्शित राधाकुण्ड के तट पर सखियों के कुञ्ज एवं श्रीगोवर्धन की चित्रावली की रूपरेखा बनाने में विशिष्ट योगदान था।

श्रीगुरु के इङ्गित से श्रील रूप गोस्वामी के हृदय के भावों को प्रकाशित करना

प्रत्येक वर्ष सूर्य ग्रहण के समय में सहस्त्रों यात्री ब्रह्म सरोवर में स्नान करने हेतु कुरुक्षेत्र की यात्रा करते हैं किन्तु अधिकांश यात्री इस धार्मिक क्रिया के गूढ़ अर्थ से अवगत नहीं हैं। एक समय सूर्यग्रहण से कुछ दिन पूर्व श्रील प्रभुपाद ने श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज को पत्र के माध्यम से निर्देश दिया, "श्रीमती राधिका शीघ्र ही कृष्ण से मिलन हेतु कुरुक्षेत्र जायेंगी, इसलिये हमारे लिये भी वहाँ कुछ सेवा-कार्य है।"

यद्यपि यह सम्वाद संक्षिप्त एवं संकेतात्मक था किन्तु श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज समझ गये कि उनके गुरुपादपद्म उनके माध्यम से श्रीमन्महाप्रभु की कृपा द्वारा श्रील रूप गोस्वामी के हृदय में सञ्चरित गोपनीय लीलाओं को सम्पूर्ण जगत् में प्रकाशित कराना चाहते हैं। इस उद्देश्य की पूर्त्ति हेतु श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज ने कुरुक्षेत्र में एक मास तक चलने वाले स्थानीय उत्सव में अतिदक्षतापूर्वक चित्रावलियों (dioramas) से युक्त प्रदर्शनी के माध्यम से निम्नलिखित लीलाओं का प्रदर्शन किया –

१. सूर्य ग्रहण से पूर्व नन्दबाबा का समस्त ज्येष्ठ व्रजवासियों से वार्त्तालाप।व्रजवासियों का कुरुक्षेत्र प्रस्थान हेतु प्रस्तुत होना।
२. यात्रा के समय घने, अन्धेरे वनों के बीच में श्रीराधा के श्रीअङ्ग की स्वाभाविक दिव्य कान्ति से वन में प्रकाश एवं हिंसक पशुओं के आक्रमण से समस्त व्रजवासियों की रक्षा।कुरुक्षेत्र में व्रजवासियों का द्वारकावासियों से मिलन।
३. नन्दबाबा एवं माता यशोदा का श्रीकृष्ण से अश्रुपूरित पुनर्मिलन तथा श्रीकृष्ण का यशोदा मैया की गोद में इतना प्रगाढ़ आलिङ्गन मानो वह यशोदा में विलीन होने का प्रयास कर रहे हों।
४. सूर्य ग्रहण के दिन सभी के द्वारा ब्रह्म-सरोवर में स्नान।
५. द्वारका-महिषियों का नारद मुनि को श्रीकृष्ण के भार सम बहुमूल्य स्वर्ण को सूर्यग्रहण के समय दान करने का प्रस्ताव तथा नारद मुनि का कृष्ण-भार सम दान देने में असमर्थ होने पर श्रीकृष्ण को अपने साथ ले जाने की शर्त।
६. द्वारका महिषियों का गर्वपूर्वक नारद मुनि के प्रस्ताव को स्वीकार करना

तथा परिणामस्वरूप महिषियों की नारद मुनि को पर्याप्त स्वर्ण देने में असमर्थता।

७. नारद के कृष्ण को ले जाने के विचार से महिषियों द्वारा क्रन्दन।

८. रोहिणी मैया का श्रीराधा के आनुगत्य में समस्त गोपियों को बुलाने का परामर्श।

९. श्रीराधा द्वारा महिषियों के समस्त स्वर्ण के स्थान पर 'श्रीकृष्ण' नाम अङ्कित एक तुलसी दल रखना।कृष्ण-नाम-अङ्कित तुलसी पत्र का कृष्ण से अधिक भार, इस प्रकार कृष्ण-नाम का कृष्ण से अभिन्नत्व स्थापित करना (तुलसी दल के भार के कारण ही तराजू का पलड़ा उस ओर झुक गया)।

१०. अस्वस्थ होने का बहाना कर एकान्त स्थान में गोपियों से कृष्ण का मिलन तथा वार्त्तालाप।

११. श्रीराधा का श्रीकृष्ण से अभियोग (शिकायत) करना एवं श्रीकृष्ण द्वारा उन्हें शान्त करने का प्रयास।

१२. गोपियों द्वारा माधुर्य के समक्ष ऐश्वर्य की हेयता प्रमाणित करना।

१३. श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण द्वारा विलाप करना।

१४. गोपियों द्वारा कृष्ण को वृन्दावन ले जाने हेतु उनका रथ खींचना।

१५. श्रीमन्महाप्रभु का रथ के समक्ष नृत्य करते हुए श्रीराधारानी के भावों में विभावित होकर अत्यन्त आनन्द में विभोर होकर एक जड़-काव्य के श्लोक का गान करना-

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवा-रोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते॥

चै॰च॰ (मध्य-लीला १३.१२१)

[जिसने कौमार-अवस्था में रेवा नदी के तट पर मेरे चित्त को हरण किया था, वही अब मेरे पति बने हैं, वह मधुमास की रात्रि भी उपस्थित है, विकसित मालती पुष्पों की सुगन्ध भी है, कदम्ब कानन से वायु भी मधु के रूप में बह रही है, सुरत व्यापार लीला के कार्य में मैं वही नायिका भी उपस्थित हूँ, तथापि मेरा चित्त इस अवस्था में सन्तुष्ट न होकर रेवा के तट पर विद्यमान वेतसी (बेंत) के वृक्ष के तल के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा है।]

श्रीमन्महाप्रभु के पद्य गान के वास्तविक भाव एवं अभीष्ट-अर्थ के अनुरूप ही श्रील रूप गोस्वामी के द्वारा मानसिक श्लोक रचना -

प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित-
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम्।
तथापि अन्तःखेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति॥

चै॰च॰ (मध्य-लीला १.७६)

[हे सहचरि, (जिन्होंने मेरे साथ वृन्दावन में विहार किया था) मेरे वही अतिप्रिय कृष्ण आज कुरुक्षेत्र में मिलित हुए हैं।

यद्यपि मैं भी वही राधा हूँ, और हम दोनों के मिलन का सुख भी वही है, तथापि इन श्रीकृष्ण के द्वारा वन में क्रीड़ा करते हुए मुरली के पञ्चम स्वर के श्रवण से आनन्द से आप्लावित कालिन्दी के पुलिन पर स्थित वन के लिये ही मेरा चित्त स्पृहा कर रहा है अर्थात् वहाँ जाने के लिये उत्कण्ठित हो रहा है।]

१. बाद में श्रील रूप गोस्वामी द्वारा इस श्लोक को ताल पत्र पर लिखकर अपनी भजन-कुटीर की छप्परदार छत के भीतर रखना।
२. श्रीमन्महाप्रभु का उस श्लोक को प्राप्त करने एवं पढ़ने पर हर्षोन्माद तथा श्रीरूप गोस्वामी द्वारा उनके हृदयगत भावों को जानने एवं प्रयाग में श्रीरूप गोस्वामी पर कृपा करने की बात को स्वीकार करना।

प्रत्येक चित्रावली के समक्ष श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज ने संक्षिप्त विवरण लिखा हुआ था तथा एक-एक भक्त को लीला की विस्तृत व्याख्या हेतु नियुक्त किया था। श्रील प्रभुपाद इस व्यवस्था को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। सूर्य ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र यात्रा के वास्तविक उद्देश्य को जानकर प्रदर्शनी में उपस्थित यात्री निरन्तर कृतज्ञता प्रकट कर रहे थे।

श्रौत-वाणी के वास्तविक अनुगामी, परोक्ष-वाद का आस्वादन करने वाले श्रीगुरु के उद्देश्य को समझना शिष्य के लिये अत्यन्त दुष्कर कार्य है। एकमात्र अन्तरङ्ग शिष्य ही श्रीगुरु के शब्दों के वास्तविक तात्पर्य को जान सकते हैं। अन्तरङ्ग वह है जिसने श्रीगुरुदेव के प्रति इस प्रकार के दृढ़ विश्वास को प्रमाणित कर दिया है कि वह उस पर पूर्ण निर्भर रह सकते हैं तथा श्रीगुरु ने जिसे बिना किसी सङ्कोच के अपने अन्तर-हृदय में गमन करने का अधिकार प्रदान कर दिया है।

श्रील वन गोस्वामी महाराज श्रील प्रभुपाद के अन्तरङ्ग पार्षद थे, इसी कारण वह अपने गुरुपादपद्म के गूढ़ निर्देशों को समझ गये तथा उनकी हार्दिक अभिलाषा को पूर्ण करते हुए उनकी सेवा कर सके।

उनकी स्वाभाविक प्रतिभा

श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज भगवद् कृपा से स्वाभाविक रूप से ही एक उत्तम वक्ता थे तथा श्रील प्रभुपाद की कृपा से उनकी यह प्रतिभा अत्यधिक समृद्ध हो गयी। वह बङ्गला, हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा में बिना रुके घण्टों तक वक्तृता कर सकते थे। श्रील प्रभुपाद ने उन्हें 'वाग्मि-प्रवर अर्थात् श्रेष्ठतम वक्ता' की उपाधि से विभूषित किया। विभिन्न भाषाओं में निपुणता एवं गूढ़ हरि-कथा के माध्यम से उन्होंने बहुत से व्यक्तियों को श्रील प्रभुपाद से सम्पर्कयुक्त किया। हरि-कथा का परिवेशन करते समय उनके नेत्र ग्रामोफोन की भाँति निरन्तर घूमते रहते थे। वे प्रायः कई घण्टों तक हरि-कथा बोलते थे परन्तु उन्हें जीवन के अन्तिम काल तक भी अपने कण्ठ सम्बन्धी कभी कोई असुविधा अथवा समस्या अनुभव नहीं हुई।

श्रील प्रभुपाद के कृपापूर्ण आशीर्वाद एवं आदेश को शिरोधार्य करते हुए श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज ने निरन्तर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग की शुद्ध-भक्ति रूपी दिव्यवाणी को सम्पूर्ण भारत में- बङ्गाल की खाड़ी से हिन्द महासागर तक तथा वहाँ से हिमालय तक- अदम्य उत्साह एवं निर्भीकता के साथ प्रचारित किया। श्रील प्रभुपाद की असीम कृपा से श्रील महाराज ने मद्रास, काशी, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र तथा श्रीमन्महाप्रभु एवं राय रामानन्द की मिलन स्थली कबूर इत्यादि भारत के विभिन्न स्थानों में गौड़ीय मठ की स्थापना में योगदान देकर श्रीचैतन्य देव की शिक्षाओं का प्रचार करने रूपी बहुमूल्य सेवा की।

योग्य प्रचारक को भेजना

श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं का सम्बन्ध समस्त जीवों के स्वाभाविक धर्म अर्थात् जैव धर्म से है, भले ही कोई जीव किसी भी राष्ट्र में क्यों न वास कर रहा हो। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की इच्छा का पालन करते हुए श्रील प्रभुपाद श्रीमन्महाप्रभु की शिक्षाओं के प्रचार को भारत तक ही सीमित नहीं रखना चाहते थे। इसी उद्देश्य हेतु उन्होंने विदेश से नोबेल पुरस्कार प्राप्त कर भारत लौटेने वाले श्रीरविन्द्रनाथ टैगौर से भेंट कर उनसे पूछा, "आपके विचार से श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं का प्रचार करने के लिये प्रचारक को सबसे पहले किस देश में भेजना चाहिये?"

श्रीरविन्द्रनाथ टैगोर ने कहा, "किसी में भी नहीं, इससे पूर्व विदेश में वैदिक धर्म के प्रचार के लिये गये कई अनैतिक व्यक्तियों ने साधुओं की छवि को कलङ्कित कर दिया है, परिणामस्वरूप विदेशियों की भारतीय साधुओं में कोई श्रद्धा नहीं है।"

श्रील प्रभुपाद ने जब श्रीरविन्द्रनाथ टैगोर के समक्ष श्रीमन्महाप्रभु की शिक्षाओं का वर्णन किया तथा 'भगवान् प्राकृत साधनों से प्राप्य हैं'- ऐसा विश्वास करने वाले प्रचलित अपसम्प्रदाय को 'प्राकृत-सहजिया' कहकर उन पर विशेष रूप से कटाक्ष किया। सब कुछ ध्यानपूर्वक श्रवण करने के पश्चात् श्रीरविन्द्रनाथ टैगौर ने प्रश्न किया, "प्राकृत-सहजिया का यथार्थ तात्पर्य क्या है? मैंने न तो यह शब्द पहले कभी सुना, न ही किसी शब्दकोष में देखा।"

श्रील प्रभुपाद ने कहा, "सहजिया अत्यन्त पवित्र शब्द है। इसका तात्पर्य श्रीकृष्ण के वास्तविक शुद्ध भक्तों से है जिनका हृदय कृष्ण के प्रति स्वाभाविक, नित्य-निरन्तर, अहैतुकी (बिना किसी कामना के) प्रेम एवं स्नेह से युक्त है तथा जिनका प्रेम श्रीकृष्ण को भगवान् के रूप में महिमा गान करने वाले शास्त्र वचनों की अपेक्षा नहीं करता। व्रज के नित्यसिद्ध परिकर जैसे कि श्रीनन्द, श्रीमती यशोदा, श्रीमती राधारानी एवं अन्य व्रजवासी ऐसे सहजिया भक्तों के ज्वलन्त उदाहरण हैं। आजकल कई अयोग्य, बद्ध-जीव इन अप्राकृत भक्तों के भावों को कपटतापूर्वक अनुकरण करने का प्रयास करते हैं इसलिये ऐसे कपटी जीवों के लिये मैं 'प्राकृत-सहजिया' शब्द का प्रयोग करता हूँ, कारण, आजकल शब्दों की वेश्यावृत्ति अर्थात् निहित स्वार्थों की पूर्त्ति हेतु शब्दों

के वास्तविक अर्थ को अत्यधिक अनुचित ढङ्ग से प्रस्तुत करना साधारण सी बात हो गयी है। इस समय अधिकांश लोगों में शब्दों के वास्तविक तात्पर्य को समझने की योग्यता का अभाव है इस कारण प्रायः शब्दावलियों में आने वाली विकृति बिना रुकावट के स्वीकृत हो जाती है।"

श्रील प्रभुपाद से गौड़ीय विचारधारा को श्रवण कर मन्त्रमुग्ध एवं प्रभावित हुए श्रीरविन्द्रनाथ टैगौर ने कहा, "यदि आप स्वयं पाश्चात्य देश में जायेंगे तो प्रचार-कार्य में महान सफलता अवश्यम्भावी है। निश्चित रूप से सभी आपका सम्मानपूर्वक अभिवादन करेंगे।"

श्रील प्रभुपाद ने कहा, "यदि मैं किसी का विदेश भेजने हेतु चयन करूँगा तो वह मेरे समान ही योग्य होगा।"

श्रील प्रभुपाद को अपने योग्य शिष्यों की कार्य-निष्पादन कुशलता पर इतना गर्व था कि उन्होंने उन्हें पाश्चात्य देशों में भेजने का निर्णय लिया। श्रील वन गोस्वामी महाराज एवं मेरे गुरु महाराज (उस समय श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी) के व्यक्तिगत आचरण एवं श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा वर्णित श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं को प्रचारित करने की योग्यता को स्वयं के समकक्ष देखकर श्रील प्रभुपाद ने उन्हें ही विदेश भेजने का निश्चय किया। तथापि गुरु महाराज के निपुण प्रचारक एवं प्रभुपाद के मठों के लिये भिक्षा-संग्रह करने की योग्यता के कारण उन्हें विदेश जाने से रोक दिया गया तथा प्रभुपाद के कुछ आश्रितजनों ने विचार किया कि वह अपने तेजवान, तरुण सौन्दर्य के कारण विदेशी युवतियों के आकर्षण का पात्र बन सकते हैं, कारण, उन्हें भारतीय साधु के ब्रह्मचर्य की मर्यादा की समझ नहीं है एवं वह उसका सम्मान भी नहीं करना जानते। अतएव, गुरु महाराज के स्थान पर श्रीमद्भक्तिप्रदीप तीर्थ गोस्वामी महाराज को भेजा गया।

श्रीमन्महाप्रभु की सेवा हेतु वैराग्य का भी त्याग

एक समय श्रील प्रभुपाद ने अपने स्वाभाविक वैराग्य के कारण मठ जीवन में कभी भी जूते का व्यवहार नहीं करने वाले श्रील वन गोस्वामी महाराज के लिये श्रीकुञ्जविहारी विद्याभूषण प्रभु को एक जोड़ी कीमती जूते खरीदने के लिये कहा। तब श्रीकुञ्जविहारी प्रभु ने उस समय की एक बहुत बड़ी धनराशि ३२ रुपये के जूते कोलकाता से खरीदे। मायापुर में आकर उन्होंने वह जूते श्रील प्रभुपाद को दिखाये। श्रील प्रभुपाद ने श्रीकुञ्जविहारी विद्याभूषण प्रभु से कहा, 'वन महाराज को कहो कि वे इन जूतों को पहनकर मेरे निकट आयें। श्रीकुञ्जविहारी विद्याभूषण प्रभु ने उन जूतों को श्रील वन गोस्वामी महाराज को देते हुए कहा कि श्रील प्रभुपाद ने आपको ये जूते पहन कर उनके समक्ष उपस्थित होने का आदेश दिया है। जब श्रील वन गोस्वामी महाराज ने श्रील प्रभुपाद के आदेश का पालन किया तथा जूते पहन कर उनके समक्ष उपस्थित हुए तो श्रील प्रभुपाद ने कहा, "श्रीमन्महाप्रभु की सेवा के लिये आपने त्याग का भी त्याग कर दिया, इस कारण

आज आपका वैराग्य सिद्ध हुआ है अर्थात् आप युक्त वैराग्य में प्रतिष्ठित हुए हैं।"

इङ्गलैण्ड एवं जर्मनी में प्रचार

श्रील प्रभुपाद के श्रीरविन्द्रनाथ टैगोर से पूर्व वर्णित वार्त्तालाप के समय श्रीरविन्द्रनाथ टैगोर ने परामर्श देते हुए कहा, "यदि आप अपने प्रचारकों को पाश्चात्य देश में भेजना चाहते हैं तो उन्हें जर्मनी भेजने से अच्छा होगा न कि इङ्गलैण्ड। इसका कारण यह है कि जर्मनीवासी हमारे वैदिक भारतीय दर्शनशास्त्रों में रुचि रखते हैं, किन्तु इङ्गलैण्ड के लोग स्वयं को भारतवासियों से श्रेष्ठ समझते हैं। वे हमें अपनी प्रजा मानते हैं तथा हमारे प्रति सब विषयों में हीन भावना रखते हैं। वे न तो आपके प्रचारकों की सुनेंगे तथा न ही उनकी शिक्षाओं की प्रशंसा करेंगे।"

जब श्रील प्रभुपाद ने यह वृत्तान्त श्रील वन गोस्वामी महाराज को सुनाया तो श्रील वन गोस्वामी महाराज ने कहा, "हमें सबसे पहले वहाँ जाना चाहिये जहाँ प्रचार करना अधिक कठिन है। वहाँ पर सफलता प्राप्त करने के उपरान्त ही हम अन्य उन स्थानों पर जायेंगे जहाँ सफलता निश्चित ही है। मैं श्रीमन्महाप्रभु की सेवा की सम्पत्ति को मात्र पर्यटन में व्यर्थ नहीं करना चाहता।"

उनके विचारों की प्रशंसा करते हुए श्रील प्रभुपाद ने उन्हें सबसे पहले इङ्गलैण्ड तथा उसके पश्चात् जर्मनी में भेजा। श्रील वन गोस्वामी महाराज ने इङ्गलैण्ड में ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, एक्सेटर विश्वविद्यालय तथा लन्दन के विभिन्न संस्थानों में श्रीमन्महाप्रभु की वाणी का प्रचार किया। ऑक्सफोर्ड में उन्हें मात्र १५ मिनट के लिये बोलने का अवसर दिया गया किन्तु अल्प समय में ही उन्होंने श्रोतागणों को इतना अधिक प्रभावित कर दिया कि उन्हें बकिन्घम राजभवन (Buckingham Palace) में राजसभा को सम्बोधित करने हेतु निमन्त्रण दिया गया।

श्रील प्रभुपाद की आज्ञा एवं आशीर्वाद से श्रील वन गोस्वामी महाराज ने इङ्गलैण्ड में लन्दन गौड़ीय मिशन सोसाइटी की स्थापना की तथा भारतीय सचिव लार्ड जैटलैण्ड सोसाइटी के उद्घाटन अनुष्ठान में सभापति के रूप में उपस्थित हुए। वास्तविक धर्म के विचारों में गहन रुचि रखने वाले लन्दन हाई सोसाइटी के समृद्ध सदस्यों ने श्रील प्रभुपाद से पत्र के माध्यम से वार्त्तालाप प्रारम्भ किया एवं उनके समक्ष विभिन्न प्रश्न प्रस्तुत किये। लन्दन गौड़ीय मिशन सोसाइटी की आलोचना का प्रधान विषय हवाई-डाक के माध्यम से प्रत्येक सप्ताह लन्दन पहुँचने वाले श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रदत्त उत्तर थे।

जब श्रील वन गोस्वामी महाराज जर्मनी में प्रचार करना चाहते थे तो कुछ राजनीतिक तनाव के कारण उन्हें अंग्रेजी भाषा में न बोलने का परामर्श दिया गया। उन्हें जर्मन अनुवादक के माध्यम से अपनी मातृभाषा अथवा सीधे जर्मन भाषा में ही बोलने के दो विकल्प दिये गये। श्रील वन गोस्वामी महाराज ने अपने वक्तृत्व को जर्मन भाषा में प्रस्तुत करने का निश्चय किया तथा मात्र ६ महीने में जर्मन भाषा सीख कर उन्होंने दो ग्रन्थों की रचना भी की। लन्दन की ही भाँति जर्मनी में भी उन्हें प्रचार

कार्य में सफलता की प्राप्ति हुई। उन्होंने कोनिग्सबर्ग, लीप्ज़िग, ड्रेसडेन, बर्लिन तथा म्यूनिच में स्थित विश्वविद्यालयों में वक्तृता प्रदान की तथा प्राग, विएना एवं पेरिस सहित अन्य देशों के शहरों से भी उन्हें वक्तृता देने के लिये आमन्त्रित किया गया। वहाँ पर जर्मनी के पूर्व प्रतापी सम्राट ने उन्हें सम्मानित किया।

दिसम्बर, १९३६ में श्रील वन गोस्वामी महाराज के भारत लौटने पर कई तत्कालीन विशिष्ट भारतीय विद्वानों ने उनको विधिवत् सम्मान प्रदान किया। उनके साथ आये दो जर्मन भक्त श्रील प्रभुपाद के चरणों का आश्रय करने के लिये तत्पर थे तथा इनमें से एक कुछ समय पश्चात् श्रीपाद सदानन्द स्वामी के नाम से परिचित हुए। इस प्रकार श्रील वन गोस्वामी महाराज के प्रचार-कार्य हेतु किये गये प्रयासों से श्रील प्रभुपाद ने विदेशियों को गौड़ीय वैष्णव धर्म में दीक्षित करना प्रारम्भ किया।

विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में प्रचार

श्रील प्रभुपाद के शिष्यों में से एवं सम्भवतः श्रीमन्महाप्रभु की धारा में से भी, श्रील वन गोस्वामी महाराज विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में प्रचार करने वाले प्रथम व्यक्ति थे। उनका विचार था कि यदि युवा वर्ग श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं को ग्रहण करेगा तो स्वतः ही अन्य लोग भी उसे ग्रहण करेंगे। इनके पश्चात् बहुत से वैष्णव आचार्यों ने इस पद्धति का अवलम्बन किया।

अनेक बार विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों ने उन्हें वैदिक शास्त्रों में वर्णित भगवान् की उपासना करने के धर्म, भागवत् धर्म के वैशिष्ट्य पर वक्तृता करने हेतु निमन्त्रित किया। श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित भारतीय वैदिक धर्म के अद्वितीय वैशिष्ट्य का स्थापन करना ही उनके प्रचार का प्रधान लक्षण था।

श्रील वन गोस्वामी महाराज ने दो बार अमेरिका की यात्रा की। प्रथम बार १९३९ ई॰ में उन्होंने न्यूयार्क, बॉस्टन, स्टॉकब्रिज, वाशिङ्गटन डी॰सी॰ तथा फिलाडेल्फिया आदि पूर्वी तट के शहरों में व्यापक रूप से श्रीगौर-वाणी का प्रचार किया तथा वहाँ से मध्य-पश्चिमी प्रदेश शिकागो चले गये। इसके पश्चात् वह जापान गये तथा वहाँ से हाङ्गकाङ्ग होते हुए भारत लौट आये। १९६० ई॰ में वह पश्चिम जर्मनी, ऑस्ट्रिया, बेल्जियम, हालैण्ड, डेनमार्क, स्वीडन तथा कई अन्य स्थानों में गये। १९७४ ई॰ से १९७५ ई॰ के मध्य में वह पुनः श्रीमन्महाप्रभु की वाणी के प्रचार के लिये अमेरिका गये।

अमेरिका तथा स्वीडन के विश्वविद्यालयों ने उनके श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु के अनुवाद को थीसिस के रूप में मान्यता प्रदान की गई तथा इन दोनों देशों में उन्हें क्रमशः साहित्य एवं धर्मविज्ञान में मानद डाक्टर की उपाधि से सम्मानित किया गया।

व्रज के युवा-वर्ग को गौड़ीय वैष्णव सिद्धान्तों, विशेष रूप से श्रीचैतन्य देव के अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्व में निष्णात करने हेतु उन्होंने वृन्दावन में 'Institute of Oriental Philosophy' तथा श्रीनन्दग्राम में श्रीपावन

सरोवर के तट पर एक प्राथमिक विद्यालय की स्थापना हेतु विशेष प्रयास किए। प्रारम्भ में उन्होंने 'Institute of Oriental Philosophy' को 'Vaisnava Theological University' नाम दिया था किन्तु कई कारणों से उन्हें इसका नाम परिवर्त्तन करने के लिये बाध्य होना पड़ा।

अति सृजनात्मक साहित्यिक अवदान

श्रील प्रभुपाद के अप्रकट लीला को प्रकाशित करने के उपरान्त श्रील वन गोस्वामी महाराज ने किञ्चित स्वतन्त्र रूप से रह कर बङ्गाली, हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा में वैकुण्ठेर पथे, विरह-वेदना, My First Year in England, Geeta as a Chaitanyaite Reads it, Shree Chaitanya, The Search, My Lectures in England, Sri Bhaktirasamrta Sindhu इत्यादि बहुत से ग्रन्थों की रचना पर अपने ध्यान को केन्द्रित किया। उन्होंने अंग्रेजी भाषा में त्रैमासिक पत्रिका 'Indian Philosophy and Culture' भी प्रकाशित की।

१९३८ ई॰ में अधिकांश समय उन्होंने अयोध्या में रह कर यजुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान् के आनुगत्य में वेदों का अध्ययन किया। वहाँ उन्होंने बङ्गला भाषा में 'वेदेर-परिचय' नामक ग्रन्थ की रचना भी की।

सरस्वती के पुत्र

एक बार मैं कुछ भक्तों के साथ श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज के दर्शन हेतु उनके वृन्दावन स्थित मठ में गया किन्तु वहाँ पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि वह अस्वस्थ हैं। जब मैं उनके कक्ष के बाहर से ही उनको प्रणाम ज्ञापन करके जाने ही वाला था तो श्रील महाराज ने मुझे भीतर बुलाया। वह थोड़ा-सा अप्रसन्न हुए कि मैं उनसे भेंट किये बिना ही जा रहा था। मैंने कहा, "आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं होने के कारण मैं आपको कोई असुविधा नहीं देना चाहता था। मैंने सुना है कि चिकित्सकों ने आपको कम-से-कम बोलने के लिये कहा है।"

श्रील महाराज ने कहा, "क्या मैं बिस्तर पर लेटे हुए मात्र छत की बीम की गिनती करता रहूँ? क्या मैं वैष्णवों से वार्त्तालाप भी न करूँ? हम सरस्वती-पुत्र हैं, श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के पुत्र। जब तक हम हरि-कथा का परिवेशन करते रहते हैं, हम स्वस्थ अनुभव करते हैं किन्तु जब हमें इस सुयोग से वञ्चित किया जाता है तब हम वास्तविक रूप में अस्वस्थ अनुभव करते हैं। तुम मुझे स्वस्थ देखना चाहते हो या अस्वस्थ?

"फिर, इस जगत् के चिकित्सक हमारे शारीरिक स्वास्थ्य के लिये बहुत से निर्देश देंगे किन्तु हम हमारे पारमार्थिक चिकित्सक 'श्रीगुरु' के निर्देशों का पालन करने के ही अभिलाषी हैं जिनका कहना है, 'जो व्यक्ति आत्मा का पोषण करने वाला आहार सही रूप से लेते हैं उन्हें किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती किन्तु जो व्यक्ति आत्मा के आहार का वर्जन करता है अथवा उसे पर्याप्त मात्रा में ग्रहण नहीं करता तथा मात्र स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर के पोषण पर ही ध्यान देता है, वह वास्तविक रूप में व्याधि को निमन्त्रित करता है। जिस दिन आत्मा

का आहार स्वरूप हरि-कथा कहने अथवा सुनने का अवसर प्राप्त नहीं होता वही दुर्दिन है। 'नित्यं भागवत सेवया', नित्य-प्रति श्रीमद्भागवतम् की सेवा करना भक्ति के प्रधान अङ्गों में से एक है।"

गुरु महाराज के प्रति स्नेह एवं सम्मान

गुरु महाराज के अप्रकट के पश्चात् आयोजित विरह सभा में श्रील वन गोस्वामी महाराज सभापति थे। अपनी वक्तृता प्रदान करते समय वह निरन्तर अश्रुपूर्ण नेत्रों से क्रन्दन कर रहे थे, यहाँ तक कि उनका वक्तृत्व भी प्रायः अबोधगम्य था। तथापि, करुण स्वर में उन्होंने कहा, "यद्यपि श्रीमाधव महाराज श्रील प्रभुपाद के कई शिष्यों से कनिष्ठ थे तथापि इन्होंने ही श्रील प्रभुपाद के आदर्शों का अपने प्रचार एवं आचरण में सम्पूर्ण रूप से पालन किया। हम सबने अर्थात् हम अन्यान्य गुरुभ्राताओं ने समय के फेर से कुछ छोटे सुधार अथवा परिवर्त्तन कर लिये हैं, किन्तु न तो श्रीमाधव महाराज के व्यक्तिगत आचरण में तथा न ही उनके प्रचार में, एक मुहूर्त्त के लिये भी परिवर्त्तन की प्रवृत्ति देखी गयी।

गुरु महाराज के इस जगत् से अप्रकट होने के पश्चात् श्रील वन गोस्वामी महाराज ने मुझे समाधि अनुष्ठान से सम्बन्धित बहुत से निर्देश दिये। उन्होंने बताया कि समाधि का माप समाधिस्थ देह से सवा गुणा अर्थात् एक तथा एक चौथाई माप का होना चाहिये, देह को नमक एवं मिट्टी से ढकने से पूर्व, उसे मस्तक एवं मुख सहित एक नये गेरुएँ वस्त्र से पूर्णतया ढक देना चाहिये जिससे कि मिट्टी देह को स्पर्श न कर पाए तथा समाधि का स्थापन सड़क से पर्याप्त दूरी पर होना चाहिये, जिससे कि यदि सड़क को चौड़ा करने के लिये नगरपालिका मठ की कुछ भूमि लेती भी है तो भी समाधि को स्थानान्तरित न करना पड़े।

असुविधाओं में भी श्रील प्रभुपाद के आनुगत्य में दृढ़ विश्वास

१९७८ ई॰ में श्रील प्रभुपाद के आविर्भाव-स्थान पुरी में आयोजित प्रथम व्यास-पूजा महोत्सव के अवसर पर सभी निमन्त्रित भक्तों के ठहरने की व्यवस्था का सेवा-दायित्व मुझ पर था। मैंने श्रीमद्भक्ति हृदय वन गोस्वामी महाराज के लिये विकल्प रूप में दो स्थानों की व्यवस्था की। उनमें से एक तो हमारे उस समय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ की भूमि की खरीद में संग्रहीत एक पुरानी कोठी में साधारण कक्ष था तथा दूसरा श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज के मठ में पर्याप्त सुविधाओं से युक्त एक अच्छा कक्ष था। स्वाभाविक रूप से किसी भी प्रकार की जागतिक-सुविधाओं के विचार की अवहेलना करते हुए श्रील वन गोस्वामी महाराज ने श्रील प्रभुपाद के जन्मस्थान पर रहना पसन्द किया तथा उन्होंने मुझसे कहा, "कौन जानता है कि मैं इस जगत् में कितने समय के लिये रहूँगा? हो सकता है कि इसके पश्चात् मुझे इस स्थान पर पुनः लौटने का सुअवसर ही न मिले। इसलिये मेरे गुरुपादपद्म की आविर्भाव एवं बाल्य-लीला स्थली में वास



"जब तक हम हरि-
कथा का परिवेशन करते
रहते हैं, हम स्वस्थ
अनुभव करते हैं किन्तु
जब हमें इस सुयोग से
वञ्चित किया जाता है
तब हम वास्तविक रूप
में अस्वस्थ अनुभव
करते हैं।"

करना ही श्रेयस्कर है। मैं इस स्थान पर ही वास करूँगा जिसे श्रील प्रभुपाद ने निज चरण-कमलों से अलंकृत किया।"

हमारे मठ में वास करने के उनके निर्णय को सुनकर मैंने शीघ्रतापूर्वक मात्र एक रात्रि में ही उनके लिये नारियल-पत्रों द्वारा एक व्यक्तिगत शौचालय निर्मित किया जिसकी छत को एक भारी तिरपाल से ढक दिया। यद्यपि हमारे मठ में सुविधाओं का अभाव था तथापि श्रील महाराज ने सब कुछ प्रसन्नतापूर्वक सहन करते हुए अपनी अगाध गुरु-निष्ठा का प्रदर्शन किया।

श्रील वन गोस्वामी महाराज ने आरती एवं व्यास-पूजा उत्सव के अन्य सभी कार्य सम्पन्न किये। सन्ध्या के समय हरि-कथा का परिवेशन करते समय उन्होंने कहा, "यह अति हर्ष का विषय होगा यदि आज के पश्चात् श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के अनुगत-जन उनकी व्यास-पूजा महोत्सव में यहाँ इस स्थान पर तथा तिरोभाव-तिथि का पालन करने के लिये श्रीधाम मायापुर में उनके समाधि-मन्दिर में एकत्रित हों।"

श्रील महाराज की हार्दिक अभिलाषा अब पूर्ण हो रही है। श्रील प्रभुपाद की आविर्भाव-तिथि एवं तिरोभाव-तिथि के वार्षिक महोत्सव क्रमशः श्रीपुरी-धाम एवं श्रीधाम मायापुर में आयोजित किये जाते हैं।

अपने श्रीविग्रहों के प्रति प्रेम एवं निष्ठा

इस जगत् से अपनी अप्रकट लीला करने से पूर्व ही श्रीमद्भक्ति हृदय वन गोस्वामी महाराज ने अपनी समाधि का निर्माण करा लिया था जिससे कि भविष्य में किसी को कष्ट न हो तथा वे अपने गुरुभ्राताओं अथवा शिष्यों से किसी प्रकार की सेवा ग्रहण न करें। इसके अतिरिक्त उनकी अपने द्वारा प्रतिष्ठित विग्रहों के निकट में ही वास करने की अत्यन्त प्रबल आकाङ्क्षा थी। इसलिये अपने शिष्यों अथवा गुरुभ्राताओं के द्वारा उन्हें किसी अन्य स्थान में समाधि प्रदान करने की आशङ्का से भी उन्होंने अपने प्रकट काल में ही अपनी समाधि हेतु समस्त व्यवस्था कर दी थी। यह उनका अपने विग्रहों के प्रति अगाध प्रेम एवं निष्ठा का ही निदर्शन कराता है।



ज्ञानावलम्बकाः केचित्, केचित् कर्मावलम्बकाः।
वयं तु हरिदासानां पादत्राणावलम्बकाः॥

श्रीपद्यावली (५८)

[कुछ व्यक्ति ज्ञान के पथ का अवलम्बन करते हैं, कुछ कर्ममार्ग का अवलम्बन करते हैं, पन्तु हम तो केवल हरिभक्तों की चरणपादुकाओं को वहन करते हैं।]



श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज



लौकिक शिक्षा से अतीत बुद्धिमत्ता

श्रील भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज निरन्तर, चौबीस घण्टे में से चौबीस घण्टे ही हरिनाम, हरि-कथा एवं हरिसेवा में रत रहते थे, इनको छोड़कर एक मुहूर्त्त भी विश्राम नहीं करते थे। कोई भी उनके समक्ष आता तो वह उनसे गौड़ीय विचारधारा से सम्बन्धित अवश्य ही कोई-न-कोई प्रश्न करते, वे किसी को भी नहीं छोड़ते थे, जिस किसी भी प्रकार से क्यों न हो, हरि-प्रसङ्ग को प्रारम्भ करते-ही-करते थे।

जब मैं मठ में नया-नया आया तो मुझे उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे देखते ही उन्होंने मुझसे पूछा, "भागवत का प्रथम श्लोक क्या है?" मेरे उत्तर देने पर उन्होंने मुझसे 'सुश्रूशया' का अर्थ पूछा? उस समय मुझे इतनी अधिक जानकारी तो थी नहीं, तब भी जितना मुझे आया मैंने उन्हें सुना दिया। बाद में उन्होंने मेरे हाथ में एक पत्र दिया तथा कहा, "इसे भलीभाँति पढ़ कर इसमें संशोधन कर दो तथा पुनः सुन्दर रूप से लिख दो।"

मैंने वैष्णवोचित मर्यादा तथा भय के कारण उनसे तो कुछ कहा नहीं, किन्तु बाद में मैंने उनके गुरुभ्राता श्रीउद्धारण प्रभु से पूछा, "महाराज तो स्वयं इतना अधिक जानते हैं, तब फिर उन्होंने इस पत्र को मुझे संशोधन करने के लिए क्यों दिया? मैंने अभी-अभी उन्हें बताया ही है कि मैं तो बहुत नया व्यक्ति हूँ।"

मेरी बात सुनकर उनके गुरुभ्राता श्रीउद्धारण प्रभु ने कहा, "अरे बाबा, श्रीअरण्य महाराज तो निरक्षर है, यह पढ़ना-लिखना बिल्कुल भी नहीं जानता।"

श्रीउद्धारण प्रभु की बात सुनकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा तथा वह

आश्चर्य प्रत्येक बार श्रील अरण्य महाराज की कथा तथा उनसे वार्त्तालाप होने पर वर्धित ही होता गया। उनकी हरि-कथा बड़े-से-बड़े विद्वान को भी निर्वाक कर देती थी तथा विद्वान उन्हें अपने से भी अधिक श्रेष्ठ मानते थे, कोई स्वप्न में भी चिन्ता नहीं कर सकता था कि वह निरक्षर भी हो सकते हैं।



कठोर किन्तु स्नेहमयी शिक्षा

श्रील भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज श्रील प्रभुपाद के आदेश से मासिक भिक्षा संग्रह करने के लिये बहुत से स्थानों पर जाते थे। इसी उपलक्ष्य में वे मेरे गुरुपादपद्म श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के द्वारा कोलकाता में मठवास करने से पूर्व किराये पर लिये गये घर में भी जाते थे।

एक दिन जब श्रीभक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज तथा श्रीकीर्त्तन प्रभु मासिक भिक्षा संग्रह करने के लिए मेरे गुरुपादपद्म के पास पहुँचे तब हॉल में श्रीमन्महाप्रभु के तैल-चित्र को देखकर श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने गुरु महाराज से पूछा, "श्रीमन्महाप्रभु का आलेख सुन्दर है। क्या आपको इसे देखने में सुख मिलता है?"

गुरु महाराज ने उत्तर दिया, "हाँ महाराज।"

श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने थोड़ा गम्भीर होकर कहा, "क्या श्रीमन्महाप्रभु आपको सुख प्रदान करने के लिए यहाँ विराजमान रहें या फिर आपको श्रीमन्महाप्रभु को सुख प्रदान करने हेतु चेष्टा करनी चाहिये?" श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने गुरु महाराज से पुनः अन्य प्रश्न किया, "आपने श्रील प्रभुपाद का शिष्यत्व स्वीकार किया है, आपकी रसोई की क्या व्यवस्था है?"

गुरु महाराज ने उत्तर दिया, "मैंने एक उत्कल (निवासी) ब्राह्मण को रसोई के कार्य में नियुक्त किया है। रसोई का सम्पूर्ण कार्य वही देखते हैं।"

गुरु महाराज की बात सुनकर श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने अत्यन्त आवेग के साथ कहा, "क्या आपके हाथों को मगरमच्छ ने खा लिया है जो आप अपने हाथों से भगवान् के लिए भोग बनाकर उन्हें अर्पणकर स्वयं प्रसाद ग्रहण नहीं कर सकते?"

अभी गुरु महाराज कुछ कहते, उससे पहले ही श्रीकीर्त्तन प्रभु अत्यन्त धीमे स्वर में उनसे कहने लगे, "महाराज, आप इनसे इस प्रकार से बात मत करें। यह अत्यन्त भद्र पुरुष हैं। यह स्वयं रसोई पकाकर भोजन नहीं कर पाएँगे। आपके व्यवहार से

इनकी गौड़ीय मठ के प्रति श्रद्धा शिथिल हो सकती है। यह असन्तुष्ट हो सकते हैं।"

यद्यपि श्रीकीर्त्तन प्रभु ने अत्यन्त धीमे स्वर में कहा तथापि उनकी बात को गुरु महाराज ने भी सुना और देखा कि श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज और भी अधिक असन्तुष्ट होकर कहने लगे, "मैं ही यदि इनको नहीं बोलूँगा तो अन्य कौन बोलेगा? यह मेरा गुरुभ्राता है, मुझे इसे सब कुछ कहने का पूर्ण अधिकार है।"

गुरु महाराज श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज की बात सुनकर गद्‌गद हो गए। उनके इस प्रकार के व्यवहार से उनका जो अपनापन झलका उसी के कारण गुरु महाराज स्वयं को सम्पूर्ण जीवनभर उनका कृतज्ञ मानते थे।

उनके जाने के पश्चात् गुरु महाराज ने दो दिन तक बिना कुछ खाये-पिये नये बर्तनों आदि की व्यवस्था करके स्वयं भोजन का रन्धन करके भोग लगाकर प्रसाद पाना प्रारम्भ किया।

श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने सदैव यह सिखाया कि भगवान् का नाम एवं विग्रह जिसमें कि उनका चित्रपट भी सम्मिलित है, भगवान् से अभिन्न होने के कारण परम सेव्य वस्तु है। श्रीमन्महाप्रभु के तैल-चित्र के विषय में श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज की शिक्षा के अनुरूप चित्रपट को भगवान् से अभिन्न मानकर, गुरु महाराज ने स्वयं भगवान् और उनके शुद्ध भक्तों के चित्रपट को उचित सम्मान प्रदान करने का आदर्श दिखलाया। उन्होंने न तो स्वयं कदापि उन्हें जहाँ तहाँ रखा और न ही अपने किसी आश्रितजन को ऐसा दायित्वहीन कार्य करने की अनुमति प्रदान की। उन्होंने अपने उस श्रीमन्महाप्रभु के तैल-चित्र को श्रीगौड़ीय मठ, बागबाजार में भेज दिया। जब भी वहाँ नगर-सङ्कीर्त्तन का आयोजन होता, वही श्रीमन्महाप्रभु का चित्रपट रथ के ऊपर विराजमान होता था।

श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज किसी के भी मन को प्रसन्न करने हेतु कोई बात नहीं कहकर वास्तविक सत्य, मङ्गलजनक बात ही बोलते थे।

कृष्ण की सम्पत्ति के दुरुपयोग के विषय में चेतावनी

जब श्रील भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज भिक्षा संग्रह करने जाते थे तो वह लोगों से स्पष्ट बात करते थे। वे अनुनय-विनय अथवा प्रशंसामूलक वचनों का प्रयोग करके नहीं बल्कि – 'असुरे लुटिया खाय कृष्णेर संसार अर्थात् असुर लोग कृष्ण के भोग, उनकी सेवा के लिये निर्मित वस्तुओं को उनकी सेवा में नियुक्त नहीं करके



"ऐसे व्यक्ति जो अपनी सम्पत्ति को श्रीकृष्ण की सेवा में नियुक्त नहीं करते जो वास्तव में उनकी ही है, वे असुर-तुल्य हैं।"

अवैध रूप से लूटकर उसे अपने भोगों में नियुक्त करते हैं, चोर का कार्य करते हैं, दण्डस्वरूप उनका संसार रूपी जाल और अधिक विस्तृत होता जाता है।' ऐसा कह कर उसे अपने मङ्गल हेतु भगवद्-सेवा के लिये प्रसन्नतापूर्वक कुछ देने के लिये कहते थे।

साथ में श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज यह भी कहते थे, "यह मत समझना कि तुम कुछ भिक्षा देकर मुझे कृतार्थ कर रहे हो बल्कि सदैव यह विचार रखना कि मैंने तुमसे कुछ लेकर उसे भगवद्-सेवा में लगाने का दायित्व ग्रहण करके तुम्हें कृतार्थ किया है।"

श्रीगुरु की प्रेरणा से कथा करना

एक समय श्रील भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज श्रील भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज तथा गुरु महाराज (उस समय श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी) उड़ीसा के वारिपदा कॉलेज में प्रचार हेतु गये। जब श्रील भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज तथा गुरु महाराज भाषण दे रहे थे तब श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज लगभग दो घण्टों तक मञ्च पर अवस्थित श्रील प्रभुपाद के आलेख के समक्ष बैठकर हरिनाम करते रहे तथा फिर उन्होंने हरि-कथा का परिवेशन करने से पूर्व उल्लेख किया, "मैं सम्पूर्ण रूप से निरक्षर हूँ, मेरे पास अपनी बोलने की कोई बात नहीं है, किन्तु मेरे गुरुपादपद्म श्रील प्रभुपाद मुझसे जो बुलवायेंगे, मैं वही बोलूँगा।" उस दिन उनकी हरि-कथा को सुनकर सभी अत्यन्त प्रभावित हुए।

निष्कपट रूप से अनुकीर्त्तन करने पर श्रील प्रभुपाद की कृपा

एक समय श्रील भक्ति प्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज ने मुझसे वार्त्तालाप करते हुए बताया, "श्रील प्रभुपाद से किसी विशेष सेवा-कार्य की प्रार्थना करने पर उन्होंने मुझसे कहा था, 'आप श्रीमन्महाप्रभु तथा गौड़ीय वैष्णव-आचार्यों की वाणी का सदैव सर्वत्र प्रचार करना।'

"श्रील प्रभुपाद की बात सुनकर मैंने उनसे कहा, 'मैं तो सम्पूर्ण रूप से निरक्षर हूँ, मैं कैसे प्रचार करूँगा?'

"श्रील प्रभुपाद ने उत्तर दिया, 'आपने आज तक वैष्णवों के मुख से जो कुछ श्रवण किया है, उसका ही कीर्त्तन करना। सदैव अनुकीर्त्तन करने का प्रयास करना, भगवान् निष्कपट भक्त के हृदय में स्वयं प्रेरणा प्रदान करते हैं।'

"श्रील प्रभुपाद की उसी वाणी अथवा कृपा-निर्देश के बल से ही मैं निरक्षर होने पर भी सदैव निर्भीक होकर सभी स्थानों पर उनकी वाणी का कीर्त्तन करता हूँ। कभी-कभी तो देखता हूँ कि मेरे जैसे व्यक्ति के मुख से श्रील प्रभुपाद की वाणी निःसृत होकर विद्वानों तक की जिह्वा को भी स्तम्भित कर देती है। श्रील प्रभुपाद की कृपा से मुझे ग्रन्थों के नाम, श्लोक, पृष्ठ संख्या, श्लोक संख्या आदि भी स्मरण रहते हैं तथा यदि कोई मुझसे कोई प्रमाण पूछता है तो मैं उन्हें अपनी पेटी में रखे ग्रन्थों में से उस ग्रन्थ का नाम आदि बतलाकर उन्हीं से ही ढुढ़ँवाकर दिखला देता हूँ।"

गुरु महाराज के प्रति उनका विनययुक्त विश्वास

श्रील भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज स्वाभाविक दीनता से अलंकृत थे। अत्यधिक ज्येष्ठ होने पर भी उनका गुरु महाराज के प्रति प्रीति तथा विश्वासपूर्ण सम्बन्ध था।

श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज अपने अनेक त्यागी आश्रितजनों को हमारे गुरु महाराज के पास श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में भेजते थे तथा किसी से लिखवा कर कहलवाते थे, "मैं अपने अमुक शिष्य को गौड़ीय-विचारधारा में निष्णात होने के लिये आपके पास भेज रहा हूँ। कारण, आपके अथवा आपके आश्रित जनों के साथ रहकर सीखने का बहुत सुयोग है। मैं किसी को अपने निकट रखकर कुछ सिखा नहीं पाता अतएव आप द्वारा इस दायित्व को ग्रहण करने से मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।"

साधारण विषयों पर पारमार्थिक दृष्टिकोण

एक समय श्रील भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज ने जब कुछ अस्वस्थ लीला प्रकाशित की, एक ब्रह्मचारी उन्हें वैद्य के पास ले गया। वैद्य ने उन्हें कुछ औषधि दी तथा वे मठ में लौट आये। अगले दिन प्रातः काल उस ब्रह्मचारी ने श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज से पूछा, "महाराज, आपका स्वास्थ्य कैसा है?" श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने श्रीमद्भगवद्गीता (२.२०) में से एक श्लोक को उद्धृत करते हुए उत्तर दिया–

न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

[यह जीवात्मा न तो कभी जन्म लेता है और न ही कभी मरता है अथवा पुनः-पुनः इसकी उत्पत्ति या वृद्धि नहीं होती है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और प्राचीन होने पर भी नित्य नवीन है। शरीर के नष्ट होने पर भी जीवात्मा का विनाश नहीं होता है।]

उन्होंने कहा, "भगवान् के वचनानुसार जीवात्मा जड़ वस्तु नहीं है, अतएव वह अस्वस्थ कैसे हो सकती है? क्या तुम मुझे जड़ वस्तु समझते हो? क्या मैं जीवात्मा नहीं हूँ?"

वह ब्रह्मचारी उनकी बात सुनकर निर्वाक हो गया तथा उसने मुझसे आकर कहा, "इनसे तो साधारण व्यक्ति की भाँति कुछ पूछना भी विपदजनक है। इनसे बातचीत करने से पहले बहुत कुछ सोच समझकर जाना ही उचित है।"

वैष्णवों की सन्तुष्टि के लिये भरसक प्रयास करना

एक समय श्रील भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज हमारे वृन्दावन स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में रात्रि में कुछ देरी से पहुँचे तथा वृन्दावन मठ के मठाध्यक्ष मेरे गुरुभ्राता श्रीभक्तिप्रसाद पुरी महाराज ने उन्हें प्रसाद परिवेशन किया। श्रील अरण्य

गोस्वामी महाराज ने जब उनसे दूध के विषय में जिज्ञासा की तब श्रीभक्तिप्रसाद पुरी महाराज ने उनसे कहा, "महाराज, दूध तो समाप्त हो गया है, मुझे आपके आने की जानकारी नहीं थी अन्यथा मैं पहले से दूध अलग से बचाकर रख लेता। आप मुझे क्षमा कीजिए।"

उनकी बात सुनकर श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने आश्चर्यचकित होकर कहा, "क्या, माधव महाराज के मठ में दूध नहीं है?"

उनकी बात सुनकर श्रीपुरी महाराज तो घबरा गये तथा शीघ्रतापूर्वक जाकर किसी चायवाले की दुकान से दूध लाकर उन्हें दिया। दूध को देखकर श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने श्रीपुरी महाराज से कहा, "अब अचानक दूध कहाँ से आ गया?" एवं तब उन्हें शिक्षा प्रदान करते हुए कहा, "वैष्णव के द्वारा किसी वस्तु के माँगने पर उसकी व्यवस्था हेतु प्रयास किये बिना केवल समाप्त होने की बात कहना उचित नहीं है।"

शुद्ध भक्तों के आचरण का अनुकरण करना अनुचित है

एक समय जब मैं श्रील भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज को कृष्णनगर से मायापुर जाने वाली बस में बैठाने के लिये गया तब उनके बस में चढ़ते समय परिचालक ने टिकट खरीदने के लिए कहा। परिचालक की बात सुनकर श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने उससे क्रोधित होकर कहा, "क्या? टिकट! किसकी बस है, कौन किराया लेगा? किससे किराया लेगा? 'असुरे लुटिया खाय कृष्णेर संसार' मेरे कृष्ण का सब कुछ है, यह बस भी उन्हीं की है, मैं उनका साधारण सेवक नहीं, प्रीतिपूर्वक सेवा करने वाला दास हूँ। तुम मुझे टिकट खरीदने के लिये कहोगे? इसके विपरीत तुम्हें मुझे अन्ततः कुछ-न-कुछ श्रीकृष्ण की सेवा के लिये देना चाहिये।" इस प्रकार से परिचालक को डाँट लगाकर वे बस में जाकर बैठ गये।

हमें श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज के आचरण का स्वप्न में भी अनुकरण नहीं करना चाहिये। उनकी बातें सुनकर कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता था मानो वे बहुत अभिमानी व्यक्ति हैं। किन्तु ठीक से विचार करने पर अनुभव होता था कि बात भले ही जैसे भी बोलते हों, किन्तु वास्तव में उनकी बात विशुद्ध सत्य ही होती थी। वह सरल, स्पष्ट वक्ता थे तथा कभी-कभी क्रोध भी करते थे किन्तु उनका क्रोध अधिक देर तक नहीं रहता था, थोड़ी ही देर के पश्चात् प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हो जाते थे।

उनके क्षण भर सङ्ग का प्रभाव

एक समय श्रील भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज वृन्दावन स्थित श्रीगोविन्ददेव के मन्दिर की परिक्रमा कर रहे थे, उसी समय उन्हें किसी एक मायावादी संन्यासी ने कहा, "ॐ नमो नारायणाय अर्थात् मैं आप नारायण को प्रणाम करता हूँ।"

उसके मुख से ऐसा सुनते ही श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने अत्यधिक क्रोधित होकर उसे डाँटते हुए कहा, "पाखण्डी कहीं का। जीव को ईश्वर ज्ञान करता

है। वृन्दावन में रहता है और कभी किसी वास्तविक व्रजवासी की बात को नहीं सुनता। महा-अपराधी! स्वयं को ब्रह्म समझता है। ब्रह्म भगवान् की अङ्ग कान्ति है, इतना भी नहीं समझता। चल मेरे साथ, मैं तेरे रहने की, खाने-पीने की सब व्यवस्था करूँगा। तुम केवल ठीक से शास्त्र के विचार को सुन-समझकर पालन करने की चेष्टा करना।"

वह मायावादी संन्यासी तो श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज की बात सुनकर भयभीत हो गया तथा उनके वचनानुसार उन्हीं के पीछे-पीछे चल पड़ा। जब वह श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में पहुँचे तब श्रीभक्तिप्रसाद पुरी महाराज की अनुपस्थिति से अवगत होकर उन्होंने एक मठवासी से कहा, "अभी श्वेत वस्त्र लाकर इसे दो।"

मठवासी के द्वारा श्वेत वस्त्र लाने पर श्रील महाराज ने उस मायावादी संन्यासी के वस्त्र परिवर्त्तन कराये तथा फिर उसे कुछ उपदेश देने के पश्चात् मठवासी से कहकर गये, "पुरी महाराज से कहना कि अरण्य महाराज इसे मठ में रख कर गया है। वे इसे भली-भाँति गौड़ीय-वैष्णव-विचारधारा की शिक्षा प्रदान करें, जिससे इसका मनुष्य जन्म सफल हो सके।"

वह व्यक्ति सरल तथा गम्भीर था, उसने श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज की बातों को गम्भीरता से लिया एवं अच्छा सेवक बना। उसने एक दिन मुझसे कहा, "पहले अज्ञानतावश मुझे जो कुछ भी सिखाया जाता, मैं उसे स्वीकार कर लेता था किन्तु अब मैं विचार करने के पश्चात् ही किसी वस्तु को धारण करता हूँ।"

उपरोक्त घटना से श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज की निर्भीकता तथा उनके थोड़े समय के सङ्ग के प्रभाव का इङ्गित प्राप्त होता है।

एक कनिष्ठ एवं एक उन्नत वैष्णव की चेतना में आकाश-पाताल का अन्तर

एक समय श्रील भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज हमारे कृष्णनगर स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में कुछ दिनों तक रहे तथा वहीं से एक दिन वे प्रातःकाल मायापुर के लिये चल दिये। उनके श्रीधाम मायापुर पहुँचने पर मैंने उन्हें गुरु महाराज की भजन कुटीर में रहने के लिये कहा, उन्होंने सहर्ष मेरी बात स्वीकार कर ली। वे अपनी काष्ठ की बनी पादुका को गुरु महाराज की भजन कुटीर के बाहर वाले बरामदे में उतारकर भीतर चले गये। कुछ समय के पश्चात् गर्म जल से स्नान करके जब वे गुरु महाराज की भजन कुटीर से बाहर निकलकर आये तब वे कहने लगे, "मेरी पादुका कहाँ है?"

मैंने कहा, "महाराज, आपकी पादुका वहीं पर ही तो रखी हैं जहाँ पर आपने उतारकर रखी थीं।"

उन्होंने मुझसे कहा, "नहीं, यह तो मेरी पादुका नहीं है।"

मैंने कहा, "महाराज, यह आपकी ही पादुका हैं, आप ही इसे यहाँ तक लेकर आये हैं। हमारा कोई भी मठवासी गुरु महाराज के बरामदे में पादुका लेकर नहीं आता।"

"वैष्णव की पादुका
सदैव मेरे मस्तक
पर रहेगी।"



मेरे द्वारा ऐसा कहने से उन्हें अनुभव हुआ कि वास्तव में क्या हुआ है। उन्होंने अत्यधिक गम्भीर होकर उस पादुका को तत्क्षणात् उठाकर अपने सिर पर रखकर अत्यन्त करुण स्वर में कहा, "वैष्णव की पादुका सदैव मेरे मस्तक पर रहेगी।" उन्होंने शास्त्रों में से एक श्लोक उच्चारित किया–

ज्ञानावलम्बकाः केचित्, केचित् कर्मावलम्बकाः।
वयं तु हरिदासानां पादत्राणावलम्बकाः॥

श्रीपद्यावली (५८)

[कुछ व्यक्ति ज्ञान के पथ का अवलम्बन करते हैं, कुछ कर्ममार्ग का अवलम्बन करते हैं, पन्तु हम तो केवल हरिभक्तों की चरणपादुकाओं को वहन करते हैं।]

उन्होंने इस श्लोक का अर्थ उच्चारण किया तथा कहने लगे– "हाय, हाय! कैसा अनर्थ! मैंने किसी वैष्णव की पादुका को भूल से अपने पैरों में पहन लिया। वैष्णव ठाकुर मुझे इसके लिए क्षमा करना, क्षमा करना।"

उन्होंने उस पादुका को पुनः यह सोचकर पहन नहीं लिया कि कोई बात नहीं अब तो भूल से पहनकर आ ही गया हूँ, इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता, बल्कि उन्होंने अपनी भूल को समझकर उसे अपने चरणों में तो लगाया ही नहीं, उसे अत्यधिक मर्यादापूर्वक एक झोले में रखकर कुछ दिनों के पश्चात् स्वयं नङ्गे पाँव कृष्णनगर गये तथा उस पादुका को उस वैष्णव को देकर क्षमा-प्रार्थना की और अपनी पादुका ही पहनी। ऐसी उन्नत चेतना थी उनकी।

दूसरी ओर उनके कृष्णनगर जाने से पूर्व जब मैं कृष्णनगर मठ में गया तो एक ब्रह्मचारी ने मुझसे कहा, "एक पगला महाराज आया था, वह मेरी पादुका लेकर चला गया। जो हो, मैं उनकी पादुका का व्यवहार कर रहा हूँ।" उसकी बात सुनकर मुझे श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज के वैष्णवोचित व्यवहार, उनकी दीनता तथा उनके उच्च आदर्श और उस अनभिज्ञ ब्रह्मचारी के विचार में आकाश-पाताल का अन्तर प्रतीत हुआ।

स्वभाव के अनुरूप सेवा के लिये प्रोत्साहित करना

एक समय श्रील भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज ने नेत्रों की अस्वस्थता प्रकाशित की, जिसके फलस्वरूप उनका किसी को ठीक से देख पाना तथा पहचान पाना कठिन हो गया। गुरु महाराज ने उन्हें कोलकाता अस्पताल में भर्ती कराया एवं मुझे उनकी सेवा के लिये अस्पताल भेजा।

अस्पताल में एक विशेषज्ञ चिकित्सक ने कहा, "पहले इनका मधुमेह (Diabetes) नियन्त्रित करना पड़ेगा, तब जाकर हम इनके नेत्रों का ऑपरेशन करेंगे। उसके लिये हमें इनके आहार को नियन्त्रित करना पड़ेगा। हम अस्पताल से ही इन्हें भोजन देंगे।"

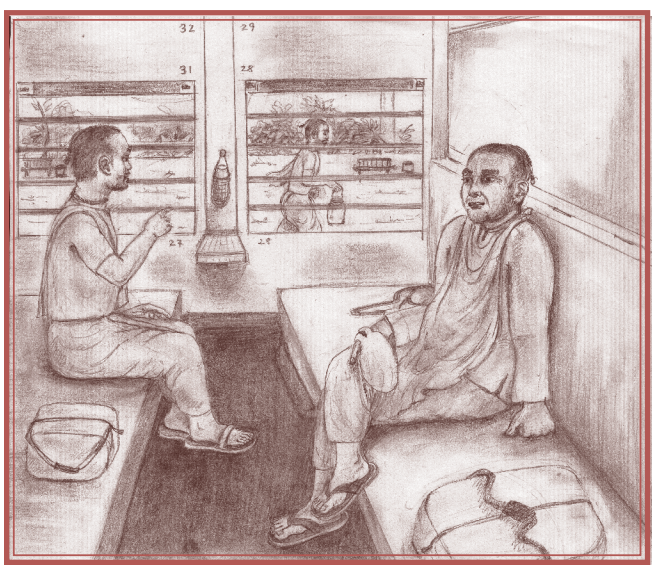
मैंने चिकित्सक से कहा, "हमारे महाराज अस्पताल का खाना तो खायेंगे नहीं, किन्तु हाँ, आप जैसा तथा जो भी देने के लिये कहेंगे, हम केवल वही वस्तुएँ ही इन्हें देंगे।" चिकित्सक ने मेरी बात मान ली तथा मैं मठ से उनके द्वारा बतायी गयी वस्तुएँ ही श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज के लिये लाकर देने लगा।

उसी बीच श्रीअन्नकूट महोत्सव का दिन आया तथा हमारे कोलकाता मठ में विराट महोत्सव का आयोजन किया गया। उस महोत्सव में श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज की एक श्रीमती अमिया राय नामक शिष्या भी आयी। उसने मठ में प्रसाद पाने के पश्चात् अपने घर के सदस्यों के उद्देश्य से कुछ प्रसाद साथ में भी ले लिया। वह मठ से घर जाने के मार्ग में अपने गुरुदेव का दर्शन करने के लिये अस्पताल गयी। दैववश श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज उस समय प्रसाद सेवन कर रहे थे। उन्हें साधारण प्रसाद पाते देखकर उनकी शिष्या ने हाहाकार करते हुए कहा, "हाय! हाय! आज अन्नकूट का दिन है और आपको कैसा प्रसाद परिवेशन किया गया है?"

इससे पहले कि श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज कोई उत्तर प्रदान करते, उस महिला ने अपने साथ लाये प्रसाद में से कुछ प्रसाद उनके भोजन पात्र में डाल दिया तथा श्रील महाराज से उसे ग्रहण करने हेतु जिद्द करने लगी। श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने उसके कहने पर कुछ प्रसाद ले लिया, जिसके फलस्वरूप उनका ब्लड शुगर वर्धित हो गया तथा ऑपरेशन की तिथि को आगे बढ़ाना पड़ा।

चिकित्सक ने मुझसे कहा, "आप जैसा भोजन महाराज को दे रहे थे, वैसा नियन्त्रित भोजन तो हम अस्पताल में भी नहीं दे सकते थे किन्तु अब महाराज को समझा दीजिए कि आपके अतिरिक्त अन्य किसी के भी हाथ का भोजन ग्रहण नहीं करें।"

जब मैंने यह बात जाकर श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज को बतलायी, तब उन्होंने मुझे कहा, "देखो! सेवा दो प्रकार की होती है। प्रथम, अपनी इच्छानुरूप अथवा शास्त्रीय उपदेशानुसार तथा द्वितीय सेव्य के स्वास्थ्य, उनके मङ्गल के अनुरूप अनुकूल वस्तु की व्यवस्था करके सेवा करना। मेरी शिष्या प्रथमोक्त विचार को तो भलीभाँति समझती है, वह अपनी इच्छानुरूप सेवा करती है किन्तु द्वितीय विचार में अभी



उसका प्रवेश नहीं हुआ जिसमें वह सेव्य वस्तु के मङ्गल-अनुरूप अनुकूल सेवा कर पाये। जो हो, अब मैं तुम्हारी एवं चिकित्सक की बात मानूँगा।"

कुछ दिनों के पश्चात् श्रील महाराज के रक्त में शुगर की मात्रा नियन्त्रित होने पर उनका ऑपरेशन हुआ तथा अन्य कुछ दिनों में उनके नेत्रों की ज्योति सामान्य हो गयी।

गुरुभ्राताओं का परस्पर स्नेहयुक्त वार्त्तालाप

एक समय श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा पूर्ण करके हम बहुत से लोग आरक्षित कोच द्वारा मथुरा से कोलकाता जा रहे थे, मार्ग में श्रीपाद भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज ने पूछा, "कोई मेरे लिये दूध साथ में लेकर आया है या नहीं?"

उनकी बात सुनते ही उनके गुरुभ्राता श्रीनारायण मुखोपाध्याय ने उनसे कहा, "महाराज, हमारे साथ में आपकी माँ भी यात्रा कर रही है क्या? कारण, माँ ही यात्रा के समय बच्चे के गले के सूख जाने के भय से अपने साथ उसके लिये दूध लेकर चलती है।"

उनकी बात सुनकर श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज मौन हो गये।

कुछ देर के पश्चात् जब गाड़ी कानपुर स्टेशन पर रुकी तो मैं श्रील प्रभुपाद के एक अन्य आश्रित श्रील कृष्णकेशव ब्रह्मचारी का ढाई लीटर वाला लोटा लेकर स्टेशन से दूध ले आया तथा मैंने जब वह लोटा श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज के हाथ में दिया, तब उन्होंने अपने गुरुभ्राता श्रीनारायण मुखोपाध्याय से कहा, "नारायण दा! देखो, अभी दूध कहाँ से आ गया? क्या वैष्णवजन ऐसे ही कहते हैं कि वैष्णवों में कोटि-कोटि माताओं का स्नेह भरा होता है। तब ऐसे वाञ्छाकल्पतरु वैष्णवों के द्वारा किसकी अभिलाषा-पूर्ति नहीं होगी?"

हम सब भक्त उन दोनों गुरुभ्राताओं के स्नेहयुक्त परस्पर वार्त्तालाप को श्रवण करके परमानन्दित हो रहे थे।

भगवान् उपलब्ध करवायेंगे

श्रील भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज 'वैराग्य'[१] शब्द के मुख्य अर्थ 'विशिष्टे परमपुरुषे राग' में प्रतिष्ठित होने के कारण स्वाभाविक रूप में उसके गौण अर्थ 'विगतराग'[२] से भी सुशोभित थे। वे अपने वस्त्रों के तीन जोड़े से अधिक चौथा किसी भी अवस्था में नहीं रखते थे। कभी यदि तीन जोड़े से कुछ वस्त्र बच जाता तो वह उसे किसी अन्य को दे देते किन्तु भविष्य के लिये अपने निकट एकत्रित करके नहीं रखते थे। वे हमें कहते थे, "यदि मैं इस प्रकार बचे हुए वस्त्र को अपने निकट एकत्रित करने का अभ्यास बनाऊँगा तो विषयी बन जाऊँगा। भगवान् ने श्रीमद्भगवद्गीता (९.२२) में गम्भीर प्रतिज्ञा की है-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

[१]विशिष्ट परम-पुरुष भगवान् में अनुराग
[२]संसार के प्रति आसक्ति-रहित

[अन्य कामनाओं से रहित तथा मेरी चिन्ता में निरत जो व्यक्तिगण सर्वतोभावेन मेरी उपासना करते हैं, नित्य मुझमें एकनिष्ठ उन व्यक्तियों का योग एवं क्षेम मैं वहन करता हूँ।]

"अतएव भगवान् तो सर्वत्र हैं, मुझे जिस समय जिस वस्तु की आवश्यकता होगी, जब वह वस्तु मुझे वहीं पर मिल ही जायेगी, तब फिर किसी भी वस्तु का संग्रह क्यों करूँ? यदि भगवान् के वचन पर विश्वास न करूँ तब फिर मेरा इतने दिनों तक शास्त्रों को श्रवण करने, साधुसङ्ग तथा भजन-साधन आदि करने का क्या लाभ हुआ? श्रील माधवेन्द्र पुरी गोस्वामी के लिये स्वयं दूध लाकर भगवान् ने शिक्षा प्रदान की है कि वे अपने सभी भक्तों को उनकी प्रयोजनीय वस्तु प्रदान करेंगे। मेरी मृत्यु का समय भी निकट आ गया है, यदि अभी भी भगवान् तथा उनके निजजनों के वचनों के प्रति मेरा विश्वास नहीं होगा तो फिर कब होगा?"



"मैं किसी भी वस्तु का संग्रह क्यों करूँ? यदि भगवान् के वचन पर विश्वास न करूँ तब फिर मेरा इतने दिनों तक शास्त्रों को श्रवण करने का क्या लाभ हुआ?"

वैष्णवों के प्रति उच्च निष्ठा

एक दिन कोलकाता में मुझे मेरे गुरुभ्राता श्रीवीरभद्र प्रभु ने बुलाकर दिखलाया, "महाराज, देखो, देखो, यद्यपि ये श्रील प्रभुपाद के आश्रितजन हैं तथापि इतने वरिष्ठ होने पर भी श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज तथा श्रीजगमोहन प्रभु हम सबके जूते रखने वाले घर में से एक-एक करके सभी वैष्णवों की पादुका को लेकर प्रणाम कर रहे हैं।"

मैं भी उन दोनों के द्वारा ऐसे किये जा रहे दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित हो गया कि इन लोगों की वैष्णवों के प्रति कैसी निष्ठा है। श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज सदैव उपदेश देते थे कि भगवान् और भक्तों के प्रति सेवा-बुद्धि रखना, कभी भी भोग बुद्धि न हो, इसका विशेष ध्यान रखना। मैंने उसी दिन से उस जूते-घर में जूता रखना छोड़ दिया। मैंने विचार किया कि अन्य किसी स्थान पर जूते रखने से चोरी होते हैं तो होने दो, किन्तु मेरे जैसे व्यक्ति के जूते को इनके जैसे वैष्णव प्रणाम करें, ऐसा तो उचित नहीं है।

वैष्णवों की सन्तुष्टि के लिये सेवा

एक समय एकादशी के दिन हैदराबाद स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में रन्धन-कार्य में निपुण एक ब्रह्मचारी ने मूँगफली, नारियल, बादाम, काजू से युक्त सब्जी, सूखे मेवे से युक्त पपीते की पायस (खीर), तली हुई मूँगफली तथा अन्य कई सुस्वादिष्ट व्यञ्जन तैयार किये।

सभी भक्त प्रसाद पा रहे थे तभी श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने रन्धन करने

वाले ब्रह्मचारी को निकट बुलाकर कहा, "तुमने बहुत सुन्दर व्यञ्जन तैयार किये हैं। सभी तुम्हारी रसोई की प्रशंसा कर रहे हैं। किन्तु मैं क्या खाऊँ? मेरे दाँत नहीं हैं।" ऐसा कहते हुए श्रील महाराज ने तब उस ब्रह्मचारी के कान को अच्छे से मरोड़ते हुए कहा, "शास्त्र कहते हैं–

चतुर्विध-श्रीभगवत्प्रसाद,
स्वाद्वन्नतृप्तान् हरिभक्तसङ्घान्।
कृत्वैव तृप्तिं भजतः सदैव,
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

श्रीगुर्वाष्टकम् (४)

[जो श्रीकृष्णभक्त-वृन्द को चर्व्य, चुष्य, लेह्य एवं पेय- इन चतुर्विध रस-समन्वित सुस्वादु महाप्रसादन्न द्वारा परितृप्त कर स्वयं तृप्ति लाभ करते हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेव के पादपद्मों की मैं वन्दना करता हूँ।]

"यदि तुम रन्धन के द्वारा भलीभाँति वैष्णवों की सेवा करना चाहते हो तो तुम्हें चारों प्रकार के पकवान तैयार करने पड़ेंगे। अन्यथा सभी तुम्हारी सेवा से सन्तुष्ट नहीं होंगे एवं तुम्हारी सेवा अधूरी मानी जायेगी।"

अद्भुत अप्रकट लीला

श्रील भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज सदैव प्रचार सेवा कार्य में रत रहते थे। गाड़ी, ताँगा, बस, मठ, किसी भक्त के घर अथवा जहाँ पर भी क्यों न हो, वे सदैव हरि-कथा कहते थे। मुझे जब-जब उनके साथ यात्रा का सुअवसर प्राप्त हुआ, मैंने सदैव देखा कि वे सर्वत्र हरि-कथा का परिवेश (वातावरण) बना ही देते थे।

उनकी हरि-कथा में एक अद्भुत आकर्षण था, सुनना प्रारम्भ करने पर उसे छोड़कर अन्य किसी सेवा कार्य के लिये उठकर जाना कठिन तथा कष्टकर प्रतीत होता था। अपने ठीक से नहीं चल पाने तथा ठीक से दिखलायी नहीं देने पर भी उन्होंने – 'श्रील प्रभुपाद ने मुझे सदैव प्रचार करने की आज्ञा दी थी' – यह कहकर प्रचार-सेवा-कार्य को कभी बन्द नहीं किया। वे जहाँ कहीं पर भी होते, हरि-कथा उत्सव करते एवं स्थानीय निवासियों को आमन्त्रित करते।

पश्चिम बङ्गाल में प्रचार-सेवा-कार्य के अन्तर्गत बसिरहाट महाकुमा शहर के निकट धलतिखा ग्राम में सफला एकादशी तिथि के दिन श्रीमद्भगवद्गीता (१८.६६) के 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' तथा श्रीमद्भागवतम् (१०.३१.९) के 'तव कथामृतं तप्त जीवनं' श्लोक की व्याख्या करते-करते व्यास आसन पर ही उन्होंने शरीर त्याग दिया। उनके अप्रकट होने का सम्वाद सुनकर मुझे श्रीचैतन्यभागवत (आदि-खण्ड ७.१३६) में उल्लिखित श्लोक का पुनः-पुनः स्मरण होने लगा।

अनायासेन मरणं बिना दैन्येन जीवनम्।
अनाराधित-गोविन्दचरणस्य कथं भवेत्॥

[जिस व्यक्ति ने गोविन्द के श्रीपादपद्मों की कभी भी आराधना नहीं की है, उसके पक्ष में अनायास मृत्यु एवं दारिद्र-विहीन जीवन-धारण किस प्रकार से सम्भव हो सकता है?]

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य महाराज का निर्याण-संवाद

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज
द्वारा सम्पादित

भगवान् की अभूतपूर्व कृपा के पात्र

शास्त्र कहते हैं, "अन्ते नारायण स्मृतिः – अन्त में नारायण की स्मृति ही वाञ्छनीय है।" विशेषतः श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य महाराज के अन्तिम समय में परम-परात्पर तत्त्व श्रीकृष्ण के विरह में विह्वल गोपियों के मुख से गाये 'तव कथामृतं' श्लोक की स्मृति का जागरण उनके प्रति कृष्ण और कृष्ण-भक्त की कृपा का अपूर्व-निदर्शन स्वरूप है।

अप्रकट लीला प्रकाश

विश्वव्यापी श्रीगौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के श्रीचरणाश्रित प्राचीन त्रिदण्डि संन्यासियों में अन्यतम त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य महाराज ६ जनवरी, १९६७, शुक्रवार एकादशी तिथि में, सन्ध्या ६ बजकर ३० मिनट पर प्रायः अस्सी वर्ष की आयु में चौबीस परगना जिले के अन्तर्गत बसिरहाट महकुमा शहर के निकटवर्त्ती धलतिखा गाँव में श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग की वाणी के प्रचार के उद्देश्य से स्वधर्मनिष्ठ श्रीननीगोपाल कुण्डु महाशय के घर पर अवस्थान करते समय सतीर्थ और शिष्यों के समक्ष भगवान् के प्रसङ्ग की चर्चा करते-करते सचेत अवस्था में स्वधाम में प्रविष्ट हुए हैं।

श्रील महाराज ने स्वधाम-प्राप्ति के दिन श्रीहरिवासर के उपलक्ष्य में अपने शिष्यों से कृष्ण-कीर्त्तन श्रवण करते-करते निकटवर्ती ग्राम में अपने किसी गुरुभ्राता के आगमन के संवाद को प्राप्त करके उन्हें अपने निकट बुलवाया। गुरुभ्राता के आने पर स्वामीजी ने अपने चिरकाल के अभ्यासानुसार उन्हें उपलक्ष्य करके भगवद्-प्रसङ्ग प्रारम्भ किया तथा क्रमशः सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन तत्त्वात्मक 'आम्नायः प्राह तत्त्वं हरिमिह', 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज', 'तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष्यमाणः' और 'तव कथामृतं तप्तजीवनं'- चारों श्लोकों की स्वयं आवृत्ति करते अर्थात् दोहराते हुए रसास्वादन करने लगे। विप्रलम्भ-रस के सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति स्वरूप 'तव कथामृतं' श्लोक की चर्चा करते-करते ही श्रील महाराज के हाथ-चरण आदि शीतल पड़ गये, शिष्यों ने उन्हें बिस्तर पर सुला दिया। लेटी हुई अवस्था में भी उन्होंने कृष्णकथा बोलते-बोलते सम्पूर्ण ज्ञान पूर्वक नित्यधाम में महाप्रयाण किया। महायोगी की भाँति मृत्यु के कष्ट से रहित उनके इस स्वच्छन्द महाप्रयाण को देखकर उपस्थित सभी व्यक्ति अत्यधिक विस्मित और स्तम्भित हो गये थे।

शनिवार प्रातः जब श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के अध्यक्ष परमपूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराज ने श्रीभक्तिप्रकाश अरण्य महाराज के नित्य लीला में प्रविष्ट

होने के सम्वाद का श्रवण किया तथा जैसे ही उन्हें स्वामीजी के कोलकाता के केवड़ातला स्थित श्मशान में पहुँचने की जानकारी मिली, वे तत्क्षणात् अपने सतीर्थ श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी महाराज, श्रीपाद नारायण दास मुखोपाध्याय, श्रीजगमोहन ब्रह्मचारी, श्रीठाकुर दास ब्रह्मचारी एवं अपने चरणाश्रित श्रीभक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज आदि कुछेक भक्तों के साथ अति शीघ्रतापूर्वक श्मशान पहुँचे तथा पुष्प-मालादि द्वारा चिता पर आरूढ़ श्रील महाराज के चिन्मय कलेवर के प्रति यथायोग्य सम्वर्द्धना ज्ञापन की। श्रील माधव गोस्वामी महाराज की बहुत इच्छा थी कि वे श्रील महाराज के कलेवर को श्रीधाम-मायापुर में ले जाकर श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामिपादोक्त संस्कार-दीपिका के विधानानुसार समाधि प्रदान करें, किन्तु भगवद्-इच्छा से उन्हें चिता के ऊपर आरूढ़ अवस्था में देखकर उनकी वह इच्छा पूर्ण नहीं हो पायी।

श्रीपाद अरण्य महाराज अपने प्रकटकाल में सगोष्ठी श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के आचार्य की प्रीति से आकृष्ट होकर उनके कोलकाता, श्रीधाम मायापुर और श्रीधाम वृन्दावन स्थित मठों में प्रायः अवस्थान करते थे। अप्रकट होने से कुछ दिन पूर्व भी उन्होंने अस्वस्थ-लीला का अभिनय करते हुए प्रायः दो मास तक श्रीधाम वृन्दावन स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में वास किया तथा स्वस्थ होने के पश्चात् कोलकाता मठ में भी कुछ दिनों तक अवस्थान किया। श्रीऊर्जाव्रत के उपलक्ष्य में पैदल श्रीव्रजमण्डल की परिक्रमा के समय श्रील महाराज ने शारीरिक असमर्थता के कारण उनके साथ परिक्रमा नहीं कर पाने पर भी उन्हीं के साथ वृन्दावन की परिक्रमा पैदल की। इससे पूर्व श्रील महाराज ने कुछेक मास तक कोलकाता मठ में रहकर नेत्रों की चिकित्सा कराकर दर्शन शक्ति को बहुत अच्छी तरह से प्राप्त किया था। श्रील महाराज प्रतिवर्ष श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के साथ ही श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा करते थे। श्रीगुरु-गौराङ्ग की सेवा में निष्ठायुक्त उनके जैसे एक वैष्णव-बन्धु के सङ्ग से वञ्चित होने पर श्रील माधव गोस्वामी महाराज अत्यन्त मर्माहत हुए हैं। 'स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा हइल सङ्ग-भङ्ग अर्थात् परम स्वतन्त्र श्रीकृष्ण की इच्छा से ही सङ्ग भङ्ग हो गया है।'

श्रील महाराज श्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराज की सुसिद्धान्तपूर्ण वक्तृता का श्रवण करके एवं विश्वव्यापी श्रीचैतन्यवाणी के वितरण में उनके विपुल उद्यम को देखकर अत्यन्त उल्लसित होते थे।

जीवन्त मृदङ्ग

परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के द्वारा सञ्चारित शक्ति के प्रभाव से उन्हीं के श्रीचैतन्यवाणी-सङ्कीर्त्तन-यज्ञ में श्रीपाद अरण्य महाराज एक अन्यतम प्रधान सहायक-जीवन्त मृदङ्ग स्वरूप थे।

शुद्ध भक्ति के प्रचारक

जागतिक-विद्या आदि में श्रील महाराज की अधिक निपुणता नहीं थी तथापि उनका पराविद्या-वधू के जीवन श्रीकृष्ण-कीर्त्तन रूपी शुद्ध विद्या में परम उत्साह था जो जीवन

के अन्तिम मुहूर्त्त पर्यन्त प्रदर्शित हुआ तथा इसी ने उन्हें विद्वत् समाज में चिरवरेण्य बना दिया है। विश्व विद्यालय की सर्वोच्च शिक्षा में शिक्षित होने का अभिमान रखने वाले अनेक स्नातक अध्यापक अध्यक्ष उनके श्रीमुख से ज्ञान-कर्म आदि से निरपेक्ष शुद्धभक्ति के अपूर्व विचार-वैशिष्ट्य को श्रवण करके स्तम्भित हो जाते थे। सद्वंश में उत्पन्न बहुत से धनी-मानी-ज्ञानी अथवा साधारण दरिद्र अज्ञ व्यक्तियों ने भी उनसे हरि-कथा श्रवण करके परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के चरणाश्रय प्राप्ति के सुदुर्लभ सौभाग्य को वरण किया है। अर्थ आदि की भिक्षा के द्वारा भी श्रील प्रभुपाद के श्रीधाम की उज्ज्वलता का सम्पादन, मठ-मन्दिर आदि की सेवा एवं भक्ति ग्रन्थ और पत्रिका आदि के परिचालन-कार्य में बहुत परिमाण में सहायता करके वे प्रभुपाद की परम करुणा के भाजन हुए हैं।

निर्भीक-निरपेक्ष वक्ता

श्रील महाराज हरिकथा-कीर्त्तन के समय श्रील प्रभुपाद के द्वारा व्यवहृत शब्द आदि का प्रचुर परिमाण में व्यवहार करके शुद्धभक्ति पथ के आश्रित सभी भक्तों में ही विस्मय तथा सुख उत्पन्न करते थे। भक्ति के विरुद्ध विचारों को खण्ड-विखण्ड करके शुद्ध भक्ति के सिद्धान्त को स्थापित करने में वे एक निर्भीक निरपेक्ष वक्ता थे, शुद्ध-भक्ति-सिद्धान्त के विरुद्ध विचार को ध्वस्त करने वाले सूर्य-स्वरूप थे। जीवन के अन्तिम मुहूर्त्त पर्यन्त उनकी अपूर्व स्मृतिशक्ति ने सभी में ही विस्मय उत्पन्न किया है।

आदर्श आचरण

श्रील अरण्य महाराज का पूर्वाश्रम यशोहर जिले के अन्तर्गत गङ्गारामपुर नामक ग्राम में था। गृहस्थ आश्रम में रहते समय ही उन्होंने श्रीगौड़ीय मठ समूह के अधिष्ठाता जगद्गुरु आचार्य के चरणों में आकृष्ट होकर 'जहौ युवैव मलवदुत्तमः श्लोक लालसः अर्थात् उत्तम श्लोक कृष्ण को प्राप्त करने की लालसा से उन्होंने युवावस्था में ही सर्वस्व मल की भाँति परित्याग कर दिया'

– इस भागवतीय वचन के अनुसरण के आदर्श को प्रदर्शित किया था।

हमारी प्रार्थना

श्रील प्रभुपाद के शिष्य प्रशिष्यों, और-तो-और श्रील प्रभुपाद के आचार-प्रचार का अनुमोदन करने वाले सभी भक्तों के प्रति ही वे अकृत्रिम सौहार्द एवं निरन्तर मङ्गल कामना यथायोग्य प्रदर्शित करते थे।

हम सभी आज उनके जैसे एक अकृत्रिम आदर्श वैष्णव-बान्धव को खोकर मर्माहत हैं। वे अपने चिरकालीन अभीप्सित श्रीगुरुपादपद्म की सेवा में नित्य अभिनिविष्ट रहकर हमारे स्व-स्वाभीष्ट-सेवा-प्राप्ति के विषय में शुभेच्छा ज्ञापन करें, यही प्रार्थना है।

श्रीचैतन्यवाणी (वर्ष ६, संख्या १२) में प्रकाशित एक लेख से अनुवादित



श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज

गुरुसेवा हेतु कठिनाइयों को प्रसन्नतापूर्वक सहन करना

एक समय श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज एवं श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज श्रील प्रभुपाद के आदेशानुसार कुरुक्षेत्र में सत्-शिक्षा-प्रदर्शनी के आयोजन हेतु अम्बाला गये थे। रात्रि में रहने योग्य किसी स्थान के नहीं मिलने पर उन्होंने ठण्ड के समय में परस्पर आलिङ्गन करके एक ओवरब्रिज़ के नीचे ही कृष्ण-सुदामा द्वारा की गयी गुरु सेवा, जिसमें उन्होंने वन में रात्रि व्यतीत की थी, का स्मरण करते हुए समस्त रात्रि व्यतीत कर दी।

वैष्णवों का स्वाभाविक दैन्य

जब श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज एवं मेरे गुरुदेव श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज (उस समय श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी) मद्रास में प्रचार करने गये थे, उन दिनों 'The Hindu' नामक एक अंग्रेजी समाचार-पत्र में अपने नामों के ठीक विपरीत अद्वैतवादी डा॰ राधाकृष्णन् और द्वैतवादी डा॰ नागराज शर्मा परस्पर के द्वारा लिखे गये विचारों का खण्डन करते थे। अनेक समय तक ऐसे चलने के पश्चात् मद्रास के द्वैतवादियों तथा अद्वैतवादियों ने यह निर्धारित किया कि गौड़ीय मठ के सभापतित्व में अद्वैतवादी डा॰ राधाकृष्णन् और द्वैतवादी डा॰ नागराज शर्मा के बीच शास्त्रार्थ होगा तथा गौड़ीय मठ की ओर से सभापति के पद पर आसीन व्यक्ति का ही विचार सर्वमान्य होगा।

जब वहाँ के स्थानीय लोगों की ओर से शास्त्रार्थ के सभापति पद के लिये गौड़ीय मठ के प्रतिनिधि को नियुक्त करने का प्रस्ताव गुरु महाराज के पास

आया तो वे अति प्रसन्न हुए तथा श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज को सभापति का पद ग्रहण करने हेतु निवेदन किया जिसे उन्होंने भी वैष्णवोचित व्यवहार से स्वीकार कर लिया।

इस उपरोक्त प्रस्ताव के पश्चात् गुरु महाराज को श्रील प्रभुपाद द्वारा तार के माध्यम से शीघ्रातिशीघ्र कोलकाता पहुँचकर किसी विशेष सेवा को सम्पादित करने का आदेशमूलक सम्वाद मिला। जब श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने गुरु महाराज के मुख से श्रील प्रभुपाद के आदेश के विषय में सुना तब उन्होंने कहा, "हयग्रीव प्रभु, आपकी अनुपस्थिति में मैं सभापतित्व नहीं करूँगा।"

गुरु महाराज ने उनसे कहा, "यद्यपि श्रील प्रभुपाद के आदेशानुसार मेरे कोलकाता जाने से ही उनकी प्रसन्नता होगी तथापि गौड़ीय मठ के इतनी महती सभा के सभापतित्व के कारण होने वाले विलम्ब को जानकर श्रील प्रभुपाद को और अधिक प्रसन्नता होगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।"

उपरोक्त सभा का दिन आकर उपस्थित हुआ तथा श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने अपने सभापति के पद को सम्भालते हुए दैन्यपूर्वक सर्वप्रथम कहा, "यद्यपि मैं सभापति के पद के योग्य नहीं हूँ तब भी वैष्णवों एवं समाज के सज्जन व्यक्तियों के आदेश को पालन करने के लिये ही मैंने इस पद पर बैठना स्वीकार किया है।"

सर्वप्रथम डा॰ राधाकृष्णन् ने अपने मत अद्वैतवाद को स्थापित करने का प्रयास किया। उनके पश्चात् जब द्वैतवादी डा॰ नागराज शर्मा को अपना मत स्थापित करने हेतु कहा गया तो उन्होंने सर्वप्रथम श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज की ओर इङ्गित करते हुए कहा, "वैष्णव दैन्य करते हैं तथा वह स्वयं का 'दासोऽस्मि' कहकर परिचय देते हैं किन्तु इसकी गरिमा को समझने में असमर्थ अद्वैतवादी सदैव अवसर का लाभ उठाते हुए स्वयं का अति अहङ्कारवशतः 'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर परिचय प्रदान करते हैं। वास्तव में वैष्णवों को सब स्थानों पर ऐसा दैन्य नहीं करना चाहिये।" उसके पश्चात् डा॰ नागराज ने अपनी विचारधारा को स्थापित किया।

अन्त में सभापति के भाषण में श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने कहा, "वास्तव में निम्न सङ्ग करने वाले में अहङ्कार होता है। श्रेष्ठ व्यक्ति का सङ्ग करने वाले व्यक्ति में अहङ्कार हो ही कैसे सकता है? पिता के समक्ष खड़े होने से पुत्र तथा पुत्र के समक्ष खड़े होने से पिता के रूप में परिचय जिस प्रकार स्वाभाविक होता है उसी प्रकार 'महतो महीयान्' वस्तु को प्राप्त करने वाले व्यक्ति के सङ्ग से दीनता करनी नहीं पड़ती बल्कि दीनता स्वाभाविक रूप में आ जाती है किन्तु यदि कोई निम्न सङ्ग करता है तो उसके हृदय में अहङ्कार आना अवश्यम्भावी है।

वैष्णवों का दीनता प्रकाशित करना कोई बनावटी क्रिया नहीं है अपितु भगवद् अनुभूति का आनुषंगिक फल है। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने अपना परिचय देते हुए कहा है –

जगाइ माधाइ हैते मुञि से पापिष्ठ।
पुरीषेर कीट हैते मुञि से लघिष्ठ॥

मोर नाम शुने जेइ, तार पुण्य क्षय।
मोर नाम लय जेइ, तार पाप हय॥

एमन निर्घृण मोरे केवा कृपा करे।
एक-नित्यानन्द बिनु जगत् भितरे॥

चै॰च॰ (आदि-लीला ५.२०५-२०७)

[मैं जगाइ-माधाइ से भी बड़ा पापी हूँ। विष्ठा के कीड़े से भी नीच हूँ। जो मेरा नाम सुनता है, उसके पुण्य नष्ट हो जाते हैं। जो मेरा नाम लेता है, उसे पाप लगता है। एक श्रीनित्यानन्द प्रभु के बिना जगत् में कौन ऐसा है जो मुझ जैसे निर्घृण, अत्यधिक घृणित जीव पर कृपा करेगा।]

भक्ति राज्य की Topmost, Supreme Authority, सर्वोपरि आचार्य श्रील रूप गोस्वामी ने भी कहा है-

आधारोऽप्यपराधानमविवेकहतोऽप्यहम्।
त्वतकारुण्यप्रतीक्ष्योऽस्मि प्रसीद मयि माधव॥

स्तव-माला, भाग-१
प्रणामप्रणयस्तव (१४)

[यद्यपि मैं अपराधों का आधार (पात्र) हूँ, अविवेकी हूँ तथापि आपकी करुणा की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। हे माधव! मेरे प्रति प्रसन्न होइये।]

दक्षिण भारत के एक वैष्णव कवि श्रीमाधव सरस्वती ने दैन्य प्रकाशित करते हुए कहा है -

ज्ञानावलम्बकाः केचित् केचित् कर्मावलम्बकाः।
वयं तु हरिदासानाम् पादत्राणावलम्बकाः॥

[कोई ज्ञान का अवलम्बन करने वाले हैं, कोई कर्म का अवलम्बन करने वाले हैं। किन्तु हम तो श्रीहरि के दासों की पादुका मात्र का अवलम्बन करने वाले हैं।]

इन महापुरुषों की दैन्योक्ति पर विचार कर स्पष्ट प्रमाणित होता है कि द्वैतवादी वैष्णवों की तुलना में अद्वैतवादियों की वास्तविक स्थिति क्या है। अद्वैतवादी स्वयं के लिये 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'पाश-बद्धो भवेत् जीवः पाश मुक्तः सदाशिवः अर्थात् एक व्यक्ति माया के बन्धन में जीव है तथा माया के बन्धन से मुक्त होने पर सदाशिव बन जाता है' की धारणा रखते हैं किन्तु द्वैतवादियों की स्वयं के विषय में धारणा इस प्रकार की है-

मद् जन्मनः फलं इदं मधु कैटभारे
मत् प्रार्थनीय मद् अनुग्रह एष एव।
त्वद् भृत्य भृत्य परिचारक भृत्य भृत्य
भृत्यस्य भृत्यं इति मां स्मर लोकनाथ॥

मुकुन्द-माला-स्तोत्र (२५)

[हे लोकनाथ! हे मधु-कैटभ का वध करने वाले! कृपया मुझ पर अनुग्रह कीजिये तथा मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कीजिए कि आप मुझे अपने दास के दास के दास के दास के दास के दास के सेवक के रूप में ही स्मरण करें। इससे ही मेरा यह जन्म सफल होगा।]

ढोंगियों की वास्तविक स्थिति प्रकाशित करना

एक समय श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के निर्देशानुसार श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज अपने साथ अपने गुरुभ्राता श्रीस्वाधिकारानन्द प्रभु (बाद में जो श्रील कृष्णदास बाबाजी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुये) को लेकर अम्बाला में प्रचार कार्य में व्यस्त थे। उस समय अम्बाला के स्टेशन अधीक्षक अत्यधिक अनुरोध करके उन्हें स्वयं को भगवान् के रूप में प्रचार करने वाले किसी एक साधु वेषधारी ढोंगी के पास ले कर गये। यद्यपि श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने स्टेशन अधीक्षक को बहुत समझाया था कि भगवान् जिस किसी को भी कह देने से अथवा स्वीकार कर लेने से दोष लगता है किन्तु उन्होंने श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज की बात को नहीं माना। श्रीस्वाधिकारानन्द प्रभु ने भी उन्हें समझाते हुये कहा, "हमारे पास ऐसे व्यक्तियों से मिलने का समय नहीं है।" तब भी स्टेशन अधीक्षक अपनी जिद्द पर अड़े रहे।

उस ढोंगी से वार्त्तालाप करने की अनिच्छा होने पर भी श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज एवं श्रीस्वाधिकारानन्द प्रभु स्टेशन अधीक्षक के सङ्ग उस ढोंगी से मिलने गए। वहाँ श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज ने उस ढोंगी से वार्त्तालाप करते हुए पूछा, "क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ?"

उसने अंग्रेजी भाषा में उत्तर देते हुए कहा, "I am Lord Krishna. I am Mohammed. I am Christ. I am Buddha. I am Chaitanya."

उसकी बात सुनकर श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने कहा, "आप किसी स्वस्थ व्यक्ति के साथ में वार्त्तालाप कर रहे हैं, ऐसा जानकर उत्तर देने से मुझे प्रसन्नता होगी।"

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज की बात सुनकर वह ढोंगी चिढ़कर कहने लगा, "Joseph Stalin, the Leader of Soviet Union, is a dog to me. Franklin D. Roosevelt, the President of United States of America, is a cat to me."

उस ढोंगी को क्रोधित होते देखकर उसके चेले श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज से कहने लगे, "आप भगवान् को विरक्त (परेशान) क्यों कर रहे हैं?"

स्टेशन अधीक्षक ने उस ढोंगी साधु के चेले से कहा, "भगवान् और भक्त में वार्त्तालाप हो रहा है, आप बीच में क्यों बोल रहे हैं?"

तब श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने उस ढोंगी से पूछा, "आपके क्षोभ का, आपके दुःखी होने का कारण क्या है?"

तब उस ढोंगी के मुख से अनायास ही निकल गया, "मैंने भारत को स्वतन्त्र कराने के लिये सब कुछ किया। जब मेरी पत्नी दिल्ली में अत्यधिक अस्वस्थ थी, तब उसकी चिकित्सा के लिए किसी ने कोई भी आर्थिक सहायता नहीं की तथा वह मर गयी। क्या मैं पागल हूँ जो ऐसे व्यक्तियों के लिए अपने प्राणों का बलिदान दूँ जिन्होंने मेरी कोई सहायता नहीं की, एक ऐसे सैनिक की जिसने उनकी स्वतन्त्रता

के लिए इतनी कर्मठतापूर्वक युद्ध किया? जगत् के लोगों ने मुझे ठगा है और अब मैं जगत्वासियों को ठगूँगा।"

उस ढोंगी के मुख से यह सब सुनकर उसे विदा करने आये विशिष्ट व्यक्ति एक-एक करके वहाँ से चले गये। श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने श्रीस्वाधिकारानन्द प्रभु से कहा, "यः पलायते स जीवति अर्थात् इस दुष्ट व्यक्ति के सङ्ग से जो पलायन कर जायेगा वह तो बच जायेगा, अन्य सब फँस जायेंगे।"

श्रील प्रभुपाद की कृपा से सिक्त श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज में ढोंगी लोगों के ढोंग को उघाड़ देने की, उनकी वास्तविक स्थिति को प्रकाशित करने की अतुलनीय प्रतिभा थी।

श्रीमद्भागवतम् की प्रमाणिकता की रक्षा करना

एक समय किसी विद्वान् व्यक्ति ने श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज से जिज्ञासा की, "अनेक लोग श्रीमद्भागवतम् को श्रील वेदव्यास द्वारा रचित प्रमाणिक ग्रन्थ की श्रेणी में नहीं रखते। उनके द्वारा दिया गया तर्क भी कुछ हद तक युक्ति सङ्गत प्रतीत होता है, कारण, श्रीमद्भागवतम् की भाषा, श्रील वेदव्यास द्वारा रचित अन्य ग्रन्थों की भाँति नहीं लगती, उसकी शैली आधुनिक है। प्राचीन भाषा शैली नहीं होने के कारण मन में सदैव यह जानने का कोतुहल रहता है कि भागवत की रचना कब हुई?"

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने एक अभूतपूर्व उत्तर दिया, "अवश्य ही! श्रीमद्भागवतम् की रचना कल ही सम्पूर्ण हुई है।"

> "श्रीमद्भागवतम् हरिभक्ति से सम्बन्धित ग्रन्थों तथा उपनिषदों के मन्थन द्वारा उत्पन्न माखन-स्वरूप सर्वोत्तम ग्रन्थ है। ग्रन्थ के रचना-काल (नूतन अथवा पुरातन) से ग्रन्थ की उत्तमता का कोई सम्बन्ध नहीं है।"



उन्होंने तब नम्रतापूर्वक उस विद्वान् व्यक्ति से पूछा, "क्या प्राचीन होने से ही किसी वस्तु का गुरुत्व, उसका मूल्य अधिक होता है, किसी नई वस्तु के गुरुत्व, उसकी गुणवत्ता के अधिक होने पर क्या उसे स्वीकार नहीं करना चाहिये? उदाहरण स्वरूप, पहले एटम बम नहीं था, बाद में आविष्कृत हुआ तो क्या हमें उसके अधिक शक्तिशाली होने को जानकर, अनुभव कर भी उसे केवल इसलिए अस्वीकार कर देना चाहिये कि वह नया है या फिर उसकी उत्तमता को स्वीकार करके उसे प्रसन्नतापूर्वक गर्व करते हुए ग्रहण करना चाहिये?

"इसी प्रकार हरि-भक्ति से सम्बन्धित ग्रन्थों तथा उपनिषदों का मन्थन करके प्रकाशित होने वाला माखन श्रीमद्भागवतम् उपनिषदों से नूतन होगा या पुरातन? तथा नूतन होने पर भी उसका गुरुत्व अधिक होगा या नहीं?

गौड़ीय वैष्णव धारा के एक विशिष्ट आचार्य श्रील वृन्दावन दास ठाकुर महाशय ने कहा है –

'चारि-वेद 'दधि' भागवत 'नवनीत'।
मथिलेन शुक, खाइलेन परीक्षित॥

श्रीचैतन्यभागवत (मध्य-खण्ड २१.१६)

[चार वेद दधि के समान हैं तथा श्रीमद्भागवतम् नवनीत के समान है। श्रीशुकदेव गोस्वामी ने दधि का मन्थन कर नवनीत का परीक्षित महाराज को आस्वादन कराया।]

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने निष्कर्ष निकालते हुए कहा, "किसी नूतन उत्तम वस्तु को देख-सुनकर उसकी गुणवत्ता की परख करने में अयोग्य व्यक्ति यदि संशयात्मा होकर उसकी अवहेलना कर दे तो इसमें उसकी अपनी ही मूर्खता प्रकाशित होती है। बुद्धिमत्ता तो इसी में है कि किसी श्रेष्ठ के अनुगत होकर वस्तु के उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट होने की पुष्टि होने पर उसी के अनुरूप उससे सम्बन्ध युक्त होना।"

अद्वयज्ञान-परतत्त्व को जानना

एक बार जब श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज मुम्बई में गौड़ीय मठ की स्थापना से पूर्व प्रचार करने के लिये गये तब स्वतन्त्र भारत के प्रथम महाधिवक्ता (Advocate General) एवं थियोसॉफिकल सोसायटी के सभापति श्री एम॰ पी॰ इंजीनियर ने श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज को सोसायटी की एक सभा में आकर वक्तृता देने का निवेदन किया। उस दिन सभा में अन्य वक्ताओं को भी आमन्त्रित किया गया था, इस कारण सभी को १५ मिनट का समय दिया गया।

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने अपने भाषण में कहा, "भगवान् के असीम, अनन्त, सर्वशक्तिमान होने के कारण उन्हें अद्वयज्ञान-परतत्त्व कहा जाता है इसी कारण उन्हें न तो कोई अपने किसी भी प्रकार के प्रयास से जान सकता है और न ही कोई अन्य मनुष्य भगवान् के विषय में किसी को कुछ जना सकता है।"

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।

कठोपनिषद् (१.२.२३)



[इस परमात्म वस्तु को तर्क, मेधा या पाण्डित्य द्वारा नहीं जाना जा सकता।]

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज के भाषण के उपरान्त श्री एम॰पी॰ इंजीनियर ने उनके बैठते नहीं बैठते ही प्रश्न किया, "जब भगवान् को कोई जान नहीं सकता, कोई जना नहीं सकता तब फिर आप लोग संसार छोड़ कर संन्यासी बनकर भगवान् को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न क्यों कर रहे हैं?

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने साथ-ही-साथ उत्तर दिया, "भगवान् को अवश्य ही जान सकते हैं।"

तब श्री एम॰ पी॰ इंजीनियर ने कुछ मुस्कुराते हुए कहा, "महाराज, एक बात तो कहनी ही पड़ेगी कि आप जो भी हैं, एक संन्यासी निश्चित रूप से नहीं हैं। कारण, आपने तो एक वकील की भाँति साथ-ही-साथ अपना कथन परिवर्त्तित कर दिया।"

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने कहा, "आप लोगों द्वारा समय की पाबन्दी है इसलिये मैं अत्यन्त गम्भीर विषय के एक दृष्टिकोण को ही बतला पाया, अन्य एक दृष्टिकोण को बतलाने से पहले ही समय समाप्त हो गया, मैं निर्धारित समय के भीतर अपने द्वारा अभिलषित विषय वस्तु को सम्पूर्ण नहीं कर पाया।"

"अपने प्रयास से अथवा अपने ही समान अधिकार वाले व्यक्ति के प्रयास से कोई भगवान् को नहीं जान सकता।"

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज की बात सुनकर श्री एम॰ पी॰ इंजीनियर ने कहा, "आपने एक गम्भीर विषय को अत्यन्त सुन्दर रूप से बतलाना प्रारम्भ किया है इसीलिये आप १५ मिनट और लेकर कृपया अपने विषय को पूर्ण कर दीजिये।"

तब श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने सिद्धान्त स्थापित करते हुए कहा, "यद्यपि एक ओर शास्त्र यह कहते हैं कि भगवान् के अनन्त, असीम, अद्वयज्ञान-परतत्त्व होने के कारण कोई उन्हें जान नहीं सकता, कोई उन्हें जना नहीं सकता किन्तु दूसरी ओर शास्त्र यह भी कहते हैं कि अनन्त, असीम, सर्वशक्तिमान अद्वयज्ञान-परतत्त्व यदि स्वयं को अन्यों को न जना सके तो उनका असीमत्व, अनन्तत्व, सर्वशक्तिमानत्व ही कहाँ रहा? तथा तब फिर अद्वयज्ञान-परतत्त्व का क्या अर्थ हुआ -

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥

कठोपनिषद् (१.२.२३)

अर्थात् अपने प्रयास से अथवा अपने ही समान अधिकार वाले व्यक्ति के प्रयास से कोई भगवान् को नहीं जान सकता किन्तु भगवान् द्वारा स्वयं अथवा अपने किसी प्रियजन के द्वारा हमारी सेवोन्मुखता को देखकर हमें जानकारी देने पर ही हम भगवान् को जान सकते हैं।

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (१.२.२३४)

[श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण, लीला प्राकृत इन्द्रियों के द्वारा ग्रहणीय नहीं हैं। जब जीवों के हृदय में श्रीकृष्ण की सेवा करने की वासना उदित होती है, उस समय उनकी जिह्वा आदि इन्द्रियों पर नाम आदि स्वयं स्फुरित होते हैं।]

श्रील महाराज की कथा का श्री एम॰ पी॰ इंजीनियर पर इतना गहन प्रभाव पड़ा कि जब श्रील प्रभुपाद मुम्बई आये तब श्री एम॰ पी॰ इंजीनियर ने प्रार्थनामूलक निवेदन करते हुए कहा, "आप लोगों की जो विचारधारा है, कृपया मुम्बईवासियों को उससे वञ्चित मत कीजिए, यहाँ पर भी एक मठ की स्थापना कीजिये।" इसके पश्चात् ही श्रील प्रभुपाद के दिशा-निर्देश में एक किराये के मकान में गौड़ीय मठ की स्थापना करके मुम्बई में विशुद्ध गौड़ीय-विचार-धारा का प्रचार प्रारम्भ हुआ।

श्रीचैतन्य महाप्रभु की वाणी के संदेशवाहक

एक बार मेरे परमाराध्य गुरुदेव श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज (उस समय श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी), श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज तथा श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज (उस समय श्रीसिद्धस्वरूप ब्रह्मचारी) पूर्वीबङ्गाल (अब बङ्गलादेश) स्थित सिलेट नामक स्थान पर प्रचार करने के लिये गये। वहाँ पर ३ दिन की धर्म-सभा का आयोजन किया गया था। प्रथम दिन श्रीसिद्धस्वरूप ब्रह्मचारी ने मायावादियों के मत की अपेक्षा श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं का श्रेष्ठत्व स्थापित करने के लिये अत्यधिक स्पष्ट किन्तु कठोर एवं अमर्यादित शब्दों में विवेकानन्द को बि-बेकानन्द तथा उसके गुरु रामकृष्ण परमहंस को रामहंस, बड़ाहंस इत्यादि कह दिया जिसके फलस्वरूप बहुत से सिलेट निवासी अत्यधिक असन्तुष्ट तथा क्रोधित हो गये। उन्होंने रात में ही पर्चे बँटवाकर पूरे शहर में गौड़ीय मठ के विरुद्ध प्रचार किया तथा धर्मसभा को रद्द करने का आह्वान किया।

अगले दिन श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी जिला न्यायाधीश से जाकर मिले जिन्होंने कहा कि ऐसी परिस्थिति में अन्य दो दिन धर्मसभा में किसी अप्रिय घटना की सम्भावना को देखते हुए सभा नहीं करना ही बुद्धिमानी है। श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी ने उनसे कहा, "मैं आपको प्रतिज्ञा करके कह सकता हूँ कि जिन्होंने कल कथा बोली थी वह अब कथा नहीं बोलेंगे, हम लोग (श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी एवं श्रील श्रीधर महाराज) बोलेंगे।" जिला न्यायाधीश ने कहा, "आपके कहने पर मैं सुरक्षा की सब व्यवस्था कर देता हूँ किन्तु आप लोग थोड़ा सावधानीपूर्वक ही कथा का परिवेशन करना।"

सन्ध्या को सभा के समय हाल कलहप्रिय लोगों से भर गया। सर्वप्रथम श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी ने अपने प्रवचन में सिलेट वासी लोगों के आतिथ्य की प्रशंसा की तथा फिर विषय वस्तु का स्थापन किया। श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी के पश्चात् श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने अपने भाषण में कहा, "हमारे गुरु महाराज श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

ठाकुर ने हमें शिक्षा दी है कि हम स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की वाणी के संदेशवाहक हैं। हम निर्भीक कण्ठ से उन्हीं श्रीचैतन्य महाप्रभु के हृद्गत विचारों को भूतल पर स्थापित करने वाले श्रील रूप गोस्वामी एवं उनके अनुगत श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी आदि भागवत् परम्परा के गुरुवर्गों के द्वारा वेदान्त-सूत्र के अकृत्रिम भाष्य श्रीमद्भागवतम् की विचार-धारा के प्रवाह को ही वितरण करने के उद्देश्य से आये हैं। हम लोग यहाँ पर घूँघट ओढ़कर प्रचार करने के लिये नहीं आये हैं।

"स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की वह विचार-धारा जो न केवल श्रीशङ्कराचार्य, जैमिनि, पतञ्जलि, कणाद आदि बल्कि चार वैष्णव सम्प्रदायों के आचार्य श्रीमध्वाचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीनिम्बादित्य एवं श्रीविष्णुस्वामी के द्वारा स्थापित विचारधारा से भी अधिक उन्नत एवं अभूतपूर्व है, ऐसी विचारधारा के माध्यम से ऐसे विशिष्ट सज्जनों के विचारों की असम्पूर्णता को भी प्रकाशित किया जा रहा है। जगत् की प्रायः समस्त अप-उप-छल-धाराओं को स्तब्ध किया जा रहा है तब फिर विवेकानन्द, रामकृष्ण, भण्डारकर आदि के विषय में ऐसा ना हो, क्या यह विचार समीचीन है?

"दूसरी बात हम लोग तो संदेशवाहक हैं, हमारा काम तो शिक्षाओं का वितरण करना है, आप लोगों को यदि कोई प्रतिवाद करना है तो श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीवेदव्यास, श्रीरूप गोस्वामी से कीजिए। यद्यपि हम उनकी विचारधारा के प्रति अटूट श्रद्धा रखने वाले हैं किन्तु यदि कोई उनसे उन्नत विचारधारा को प्रस्तुत कर दे तो हम उनके शरणागत हो जायेंगे, यदि नहीं तो फिर श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके अनुगतजनों के द्वारा प्रचारित श्रेष्ठ विचारधारा को, मङ्गलमय पथ को जान-सुन-समझ लेने पर भी कौन-सा बुद्धिमान व्यक्ति उसका अनुसरण नहीं करेगा।

"श्रीमद्भागवत् में स्पष्ट रूप से श्रीकृष्ण के स्वयं भगवान् होने का स्थापन किया गया है –

एते चांशकलाः पुंसः
कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

श्रीमद्भागवतम् (१.३.२८)

[पहले जिन अवतारों का वर्णन किया गया है, उनमें कोई अंश तथा कोई कला हैं किन्तु कृष्ण स्वयं भगवान् हैं।]

"इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण ने निम्नलिखित श्लोकों के माध्यम से स्वयं श्रीमद्भगवद्गीता में बताया है कि वही जीवों के एकमात्र चरम लक्ष्य हैं –

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

श्रीमद्भगवद्गीता (१८.६६)

[वर्ण, आश्रम आदि समस्त शारीरिक तथा मानसिक धर्मों का परित्यागकर एकमात्र मेरी शरण ग्रहण करो। मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूँगा।]

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
श्रीमद्भगवद्गीता (१८.६५)

[तुम मुझे चित्त समर्पण करो, मेरे नाम-रूप-गुण-लीला आदि के श्रवण-कीर्त्तन परायण होकर मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो तथा मुझे नमस्कार करो। इस प्रकार तुम मुझे ही प्राप्त करोगे। मैं तुमसे यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, कारण, तुम मेरे प्रिय हो।]

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
श्रीमद्भगवद्गीता (९.२२)

[अन्य कामनारहित तथा मेरी चिन्ता में रत जो व्यक्तिगण सर्वतोभावेन मेरी उपासना करते हैं, मैं नित्य मुझमें एकनिष्ठ उन व्यक्तियों का योग एवं क्षेम वहन करता हूँ।]

"इसलिये हम किसी भी देवी-देवता की आराधना करने वाले रामकृष्ण परमहंस को कैसे स्वीकार कर सकते हैं? उनके मत को स्वीकार करने से क्या लाभ? अपितु ऐसी उपासना श्रीमद्भागवतम् (४.३१.१४) के विपरीत है जिसमें कि दृढ़तापूर्वक कृष्ण की उपासना का ही स्थापन किया गया है -

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥
श्रीमद्भागवतम् (४.३१.१४)

[जिस प्रकार वृक्षकी जड़ सींचने से उसके तना, शाखा, उपशाखा, आदि सभी का पोषण हो जाता है तथा जैसे भोजन द्वारा प्राणों को तृप्त करने से समस्त इन्द्रियाँ पुष्ट होती हैं उसी प्रकार एकमात्र श्रीकृष्ण की पूजा द्वारा ही निखिल देव-पितृ आदि की पूजा हो जाती है।]

"विवेकानन्द के द्वारा कहा गया विचार है कि 'जीवे प्रेम करे जेइ जन सेइ जन सेविछे ईश्वर अर्थात् जीव से जो व्यक्ति प्रेम करता है वास्तव में वही व्यक्ति ईश्वर की सेवा कर रहा है।' परन्तु हम देखते हैं कि उनके अनुगतजन अन्य-अन्य प्राणियों का वध करके उनके माँस को खाते हैं, अतएव इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि उनके द्वारा प्रचारित वाक्यों में प्रयुक्त जीव शब्द का अर्थ केवल मनुष्य ही है किन्तु जीव शब्द का वास्तविक अर्थ समस्त प्राणियों से है।

"अतएव आप स्वयं ही इन सब विषयों पर विचार कीजिये। हम इससे अधिक अन्य कुछ भी नहीं कहेंगे। अन्त में एक बात कहना चाहता हूँ कि हाँ, मेरे गुरुभ्राता श्रीसिद्धस्वरूप ब्रह्मचारी द्वारा इन विचारों को प्रस्तुत करने की पद्धति में जो कमी हुई है, आप उसके लिये हमसे शिकायत कर सकते हैं, किन्तु यह निश्चित जानिये कि विषय-वस्तु आपके निकट शुद्ध ही प्रस्तुत की गयी थी, उसमें कोई मिश्रण नहीं था।"

श्रील महाराज की कथा के समाप्त होने पर बहुत अधिक तालियाँ बजी। स्थानीय

"इन विचारों को प्रस्तुत करने की पद्धति में जो कमी हुई है, आप उस के लिये हमसे शिकायत कर सकते हैं, किन्तु यह निश्चित जानिये कि आपके समक्ष परम-विशुद्ध विषय-वस्तु ही प्रस्तुत की गयी थी।"



लोग वास्तविक रूप में प्रसन्न थे तथा उन्होंने प्रार्थना करके कथा की अवधि को १५ दिन कर दिया। इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु की वाणी का सिलेट में बहुत अधिक प्रचार हुआ। सिलेट उचित गुणवत्ता वाले चूने के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध था इसलिये वहाँ के निवासियों ने गाड़ी भरकर चूना भेजा जिससे श्रीमन्महाप्रभु के धाम में स्थित श्रीचैतन्य मठ तथा श्रीयोगपीठ मन्दिर आदि में सर्वत्र पुतायी की गयी।

निष्कपट रूप से अपने से कनिष्ठ गुरुभ्राता का महिमा-गान करना

श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज प्रत्येक वर्ष, गौर पूर्णिमा के पश्चात् अपने समस्त गुरुभ्राताओं को अपने स्थान श्रीनवद्वीपधाम में कोलेरगञ्ज-स्थित श्रीचैतन्य सारस्वत मठ में उत्सव का आयोजन कर निमन्त्रित किया करते थे। एक वर्ष मेरे परमाराध्यतम गुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज, श्रीगौर पूर्णिमा उत्सव के पश्चात् श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के प्रबन्धन कार्यों यथा परिक्रमार्थियों को विदाई देने तथा परिक्रमा में हुए व्यय इत्यादि का हिसाब-किताब करने इत्यादि में बहुत व्यस्त थे तथा इच्छा एवं यथासम्भव प्रयास करने पर भी, श्रीचैतन्य सारस्वत मठ, नवद्वीप में कुछ विलम्ब से ही पहुँच पाए। जब गुरुमहाराज वहाँ पहुँचे, तब उन्हें देखते ही श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज ने उनसे कहा, "माधव महाराज, आज आपने आने में बहुत अधिक विलम्ब कर दिया। हम सभी आपकी कब से प्रतीक्षा कर रहे थे।"

उनकी इस बात को सुनकर गुरु महाराज ने कहा, "महाराज, हमारे यहाँ पर श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा के उद्देश्य से बहुत से यात्री आए थे, इसलिए परिक्रमा का सुचारु रूप से आयोजन करने के उद्देश्य से हमें बहुत ऋण लेना पड़ा था। आज उस ऋण के भुगतान तथा अन्य व्यवस्थाएँ करते हुए ही बहुत समय चला गया जिससे कि मठ का सेवाकार्य सुचारु रूप से चलता रहे। आप सभी लोग मेरे विलम्ब के कारण मुझे क्षमा करना।"

श्रीगुरु महाराज की बात सुनकर श्रीमद्भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज ने कहा, "महाराज, नारम्भानारभेत् क्वचित् अर्थात् अनावश्यक रूप से अपने भौतिक ऐश्वर्य को वर्धित करने का प्रयास सर्वथा निरर्थक है। इतना आडम्बर करने की क्या आवश्यकता है?"

श्रील यायावर गोस्वामी महाराज के मुख से इस बात को सुनकर श्रीमद्भक्तिरक्षक

श्रीधर गोस्वामी महाराज ने कहा, "माधव महाराज, मैं श्रीयायावर महाराज की बात का उत्तर दूँगा।"

गुरु महाराज ने कहा, "महाराज, जैसी आपकी इच्छा।"

श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज ने कहा, "हाथी के लिए जो गन्ना नसवार अर्थात् सूँघने के साथ ही अन्दर चली जाने वाली अर्थात् एक अति तुच्छ वस्तु के समान होता है, वही गन्ना एक चींटी के लिए पहाड़ जैसा होता है। अर्थात् हमारे लिए जो कार्य बहुत बड़े आडम्बर के समान प्रतीत हो सकता है, वही कार्य श्रीपाद माधव महाराज के लिए बाएँ हाथ का खेल है।

"मुझे इसका प्रत्यक्ष अनुभव है। श्रील प्रभुपाद ने मुझे और श्रीपाद माधव महाराज (उस समय श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी) को श्रीरायरामानन्द और श्रीमन्महाप्रभु की मिलन-स्थली, गोदावरी के तट पर स्थित, कोवूर नामक स्थान पर श्रीमन्महाप्रभु के पादपीठ स्थापना हेतु कुछ स्थान संग्रह करने के उद्देश्य से भेजा था। कई दिनों के अथक प्रयास के बाद मैंने उनसे कहा, 'हयग्रीव प्रभु, श्रील प्रभुपाद ने हमें यहाँ पर बहुत आशा के साथ श्रीमन्महाप्रभु के पादपीठ हेतु स्थान संग्रह करने के उद्देश्य से भेजा है। मेरा ब्रह्मचारी नाम भी रामानन्द दास था तथा यह स्थान श्रीमन्महाप्रभु एवं श्रीरामानन्द रायजी का मिलन स्थल है। यद्यपि हमने तो जो भी सम्भवपर था वह सब कुछ करके देख लिया परन्तु कुछ भी नहीं हुआ। अतः आपकी क्या राय है? क्या हमें यहाँ और अधिक रहना चाहिये अथवा मद्रास में प्रचार के लिए चले जाना चाहिये?'

"मेरी बात सुनकर श्रीहयग्रीव प्रभु ने मुझसे कहा था, 'महाराज, हमने तो अभी तक कोई विशेष चेष्टा की ही नहीं है। इसलिए कृपया थोड़ा समय दीजिए, कुछ चेष्टा करके देखते हैं। बाद में विचार करेंगे।"

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने तब वहाँ पर उपस्थित सभी वैष्णवों को कहा, "आप सभी इससे ही अनुमान लगाइए कि श्रीपाद माधव महाराज की योग्यता किस प्रकार की है। जहाँ पर हमारी समस्त चेष्टाएँ समाप्त होती थीं, वहीं उनकी चेष्टा प्रारम्भ होती थी। बाद में उनकी अन्यतम चेष्टाओं के फलस्वरूप कोवूर में स्थान संग्रह किया गया तथा वहीं पर मठ बना। श्रीपादमाधव महाराज को श्रील प्रभुपाद Volcanic Energy अर्थात् ज्वालामुखीय ऊर्जा सम्पन्न कहते थे। श्रीवासुदेव प्रभु उन्हें 'सर्व-घटे' अर्थात् समस्त प्रकार के कार्यों को करने में सर्वश्रेष्ठ योग्यता रखने वाले-कहत `थे।

"इनक `विषय में मेरा अपना कथन यह है कि श्रीपाद माधव महाराज की तुलना एकमात्र श्रीमन्महाप्रभु के परिकर श्रीवक्रेश्वर पण्डित से ही हो सकती है जो बिना किसी क्लान्ति के बहत्तर घण्टे तक निरन्तर नृत्य कर सकते थे।"

उपरोक्त प्रसङ्ग में गुरु महाराज की महिमा कीर्त्तन के अतिरिक्त एक शिक्षणीय विषय यह भी है कि यद्यपि श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज हमारे गुरु महाराज से मठवास की दृष्टि से एवं संन्यास आश्रम

ग्रहण के विचार से ज्येष्ठ होने पर भी अपने कनिष्ठ सतीर्थ की महिमा को देखने एवं उसे वर्णन करने में कुण्ठित नहीं हुए। कारण, ऐसे महापुरुष वैकुण्ठ अर्थात् कुण्ठा रहित स्थान के भी सर्वोपरि प्रकोष्ठ गोकुल के अनुरागी-जनों के निर्मत्सर अनुगामी होने के कारण जागतिक किसी भी सीमा में आबद्ध नहीं होते और इसलिए वे इस प्रकार की स्वाभाविक, विनम्र और निष्कपट रूप से प्रशंसा करने में समर्थ होते हैं।

प्रतिष्ठा से घृणा

एक समय किसी एक भक्त ने श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज से जिज्ञासा की, "श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने स्वरचित 'वैष्णव के?' नामक कीर्त्तन में 'तोमार प्रतिष्ठा, शूकरेर विष्ठा' नामक पद में प्रतिष्ठा की तुलना शूकर की विष्ठा से क्यों की है?"

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने उत्तर प्रदान किया, "प्रतिष्ठा इतनी घृणित तथा सार रहित है कि किसी भी प्राणी के लिये अनुपयोगी शूकर की विष्ठा[१] से उसकी तुलना करना समीचीन ही हुआ है। वास्तव में यदि श्रील प्रभुपाद को इससे भी अधिक निकृष्ट तुलना योग्य कोई शब्द मिलता तो वे उसका ही उपयोग करते।"

अन्यों को हरि-कथा कहने हेतु प्रेरित करना

एक बार श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज ने मुझसे जिज्ञासा की, "यदि मैं तुमसे कथा करने के लिये कहूँ तो क्या तुम मञ्च पर खड़े होकर वक्तृता दे सकते हो?"

मैंने उत्तर दिया, "नहीं महाराज, मैं तो अभी बहुत ही नया व्यक्ति हूँ। मैं स्वयं ही कुछ ठीक से नहीं जानता तब फिर भाषण कैसे दूँगा?"

श्रील महाराज ने पुनः मुझसे जिज्ञासा की, "श्रीचैतन्य महाप्रभु के विषय में आपका क्या अभिमत है, विचार है?"

मैंने उत्तर दिया, "महाराज, स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के विषय में मेरा अपना तो कोई स्वतन्त्र विचार नहीं है, किन्तु गुरु-वैष्णवों के मुख से मैंने अब तक जो समझा है, मैं उसी के अनुसार आपके समक्ष कुछ बतलाने का प्रयास कर सकता हूँ।" श्रील महाराज की अनुमति मिलने पर मेरे लिए जो सम्भवपर हो पाया मैंने उसे बतलाया।

फिर उन्होंने पूछा, "श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षा पद्धति के विषय में आपको क्या जानकारी है? तथा उनकी शिक्षाओं का पालन किस प्रकार सम्भव है?"

तब मैंने कहा, "श्रीचैतन्य महाप्रभु ने

---

[१]यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि श्रील प्रभुपाद ने शूकर की विष्ठा ही क्यों कहा जबकि मनुष्य की विष्ठा भी उतनी ही असार वस्तु है। ऐसा इसलिए कि मनुष्य की विष्ठा का फिर भी एक उपयोग यह है कि शूकर उसे ग्रहणकर जीवित रहते हैं, परन्तु शूकर की विष्ठा नितान्त असार है, क्योंकि समस्त पशु-प्रजातियाँ यहाँ तक कि शूकर भी उसकी अवहेलना करते हैं।

कृष्ण-कीर्त्तन के लिए चार गुणों को आवश्यक बतलाया है-

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव साहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

श्रीशिक्षाष्टक (३)

जो स्वयं को तृण की अपेक्षा अधिक छोटा मानते हैं, जो वृक्ष के समान सहिष्णु होते हैं, स्वयं मानशून्य तथा अन्य व्यक्तियों को सम्मान प्रदान करते हैं, वही सदैव हरिनाम-कीर्त्तन के अधिकारी हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु इन चार गुणों के साक्षात् मूर्त्तिमान स्वरूप हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत (आदि-लीला ३.२०-२१) में श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्रीचैतन्य महाप्रभु के वचनों का उल्लेख किया है –

आपनि आचरि' भक्ति शिखामु सबारे।
आपने ना कैले धर्म शिखान ना जाय॥

[मैं स्वयं आचरण करके सबको भक्ति की शिक्षा दूँगा। स्वयं धर्म का आचरण किये बिना धर्म सिखाया नहीं जा सकता।]

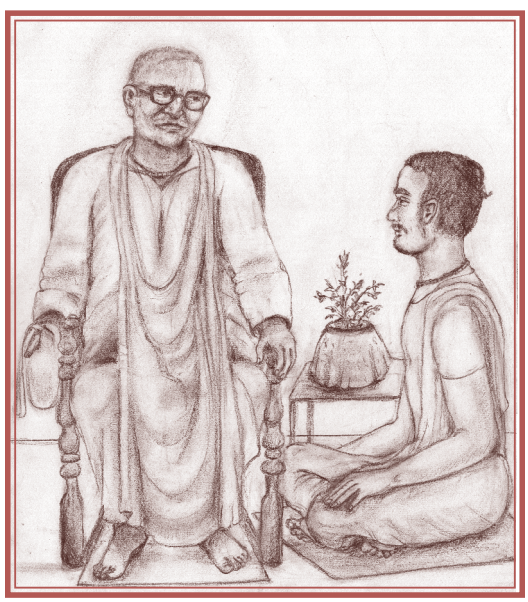
इसे सुनकर श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने मुझसे कहा, "संक्षेप में तुमने जो बताया उसी को विस्तार से बतलाने को ही भाषण कहते हैं, और भाषण का क्या अर्थ होता है?" तब उन्होंने साथ में यह भी बतलाया, "तृणादपि सुनीचेन- श्रेष्ठ सङ्ग के द्वारा स्वतः ही सिद्ध हो जायेगा, इसलिये कृत्रिम साधन की कोई आवश्यकता नहीं है, सेवा साधन ही करना होगा।"

सेवा करने की भावना का फल

एक बार श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज ने मुझे उपदेश देते हुए कहा, "कभी भी कीर्त्तन के सुर, ताल, मान, लय इत्यादि की ओर अधिक ध्यान नहीं देकर सदैव कीर्त्तन के गूढ़ अर्थ तथा कीर्त्तन की रचना करने वाले भक्त के हृद्गत विचारों का अनुसरण करने का प्रयास करना। उग्रश्रवा बनना अर्थात् सदैव श्रेष्ठ वैष्णवों के मुख से ही भगवान् की वीर्यवती कथा का श्रवण करना।"

मैंने साथ-ही-साथ प्रश्न किया, "महाराज सब समय श्रेष्ठ वैष्णवों के मुख से ही श्रवण करना कैसे सम्भव होगा?"

श्रील महाराज ने उत्तर दिया, "सेवा के माध्यम से सब सम्भवपर है। जब-जब अवसर प्राप्त हो, श्रेष्ठ वैष्णवों की सेवा करना।"



"वैष्णवों की निष्कपट सेवा के माध्यम से सब सम्भवपर है।"



श्रील महाराज के उपरोक्त आदेश को हृदयङ्गम कर मैंने वैष्णव सेवा का यथासम्भव एक भी अवसर नहीं गँवाया। अपने जीवन में मैंने अनेक प्रकार से वैष्णव सेवा की जैसे कि उनके लिये पानी गर्म करना, वस्त्र धो देना, कमरे की सफाई कर देना, उन्हें एक स्थान से अन्य स्थान पर ले जाना, ध्यानपूर्वक उनके मुख से हरि-कथा एवं वार्त्तालाप श्रवण करना तथा निकट से उनके आचरण को देखना।

मेरी सेवावृत्ति से प्रसन्न होकर हमारे मठ में आने वाले श्रील प्रभुपाद के अनेकानेक आश्रित शिष्य प्रायः मेरे गुरुपादपद्म से स्वयं ही कहते, "माधव महाराज, आप भारती महाराज को हमारे साथ रहने का ही सेवा दायित्व प्रदान करो।" ऐसा होने से मुझे उन भुवन पावन वैष्णवों की सेवा का सौभाग्य, उनके भजन के आदर्श को साक्षात् रूप से देखने का अवसर तथा उनके मुख से भक्ति राज्य के अति निगूढ़, अति सूक्ष्म रहस्यमय विचारों को श्रवण करने का सुवर्ण सुयोग प्राप्त हुआ।

सरस्वती-पुत्र

एक बार मैं पंजाब के कुछ भक्तों के साथ श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज के दर्शन करने हेतु श्रीनवद्वीप में गया। किन्तु हमारे श्रीचैतन्य सारस्वत गौड़ीय मठ पहुँचने पर उनके सेवक ने बतलाया कि महाराज अस्वस्थ हैं इसलिए उनके समक्ष जाना उचित नहीं। सेवक की बात सुनकर हम लोग बाहर से ही उन्हें प्रणाम करके जाने ही लगे थे कि श्रील महाराज ने हमारे कण्ठ की ध्वनि को सुनकर सेवक से पूछा, "बाहर कौन आया है?" जब सेवक ने मेरा नाम बताया तो उन्होंने कहा, "अन्दर आने दो।"

जब हम लोग उनके सामने गए तो उन्होंने कुछ असन्तुष्ट होते हुए कहा, "यहाँ पर आकर भी मुझसे मिले बिना ही जा रहे हो।"

मैंने कहा, "नहीं महाराज ऐसी बात नहीं है। आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं होने के कारण ही हम आपको कष्ट नहीं देना चाहते थे तथा इसीलिये बाहर से आपको प्रणाम करके जा रहे थे।"

मेरी बात सुनने के पश्चात् उन्होंने बहुत देर तक श्रील प्रभुपाद के समय में किये गए पंजाब में अपनी प्रचार सेवा की बहुत सी बातें बतलायी, पंजाब के लोगों के आतिथ्य के विषय में भी बतलाया तथा यह भी कहा कि, "हम सरस्वती (अर्थात् श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर) की सन्तान हैं, भगवान् एवं भक्तों के चरित्र का गान कर अपने आपको सरस्वती[२] की सेवा में नियुक्त करने से ही ठीक रहते हैं। यदि नित्यप्रति कथा-कीर्त्तन करते हुए ही हमारा शरीर चला जाये, तो हमारा अहोभाग्य है।"

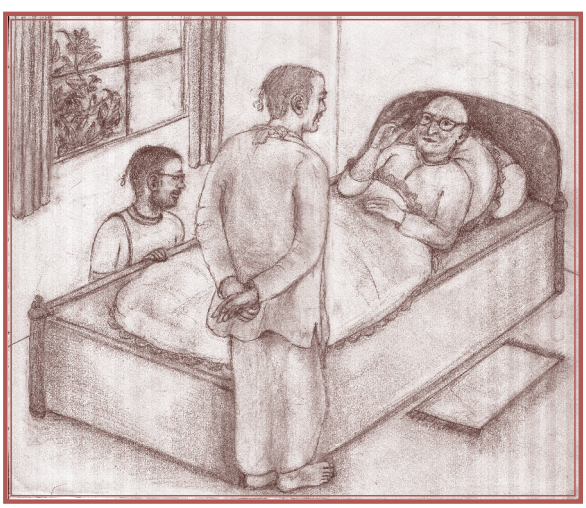
[२]'सरस्वती' वाणी की अधिष्ठात्री देवी का भी नाम है।

श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज का महिमामृत

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज
द्वारा सम्पादित

उनका आविर्भाव एवं आरम्भिक जीवन

पूज्यपाद श्रीधर गोस्वामी महाराज कार्तिक मास, कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि, शनिवार, १० अक्टूबर १८९५ ई॰ को वर्धमान जिले के कालना उपमण्डल के अन्तर्गत, हाँपानिया नामक ग्राम में आविर्भूत हुये थे। उन्होंने पण्डितप्रवर श्रीयुक्त उपेन्द्रचन्द्र भट्टाचार्य विद्यारत्न महोदय को पिता रूप में एवं श्रीमती गौरीदेवी को माता के रूप में वरण करके शुभक्षण में प्रकटलीला प्रकाशित की थी। माता–पिता दोनों ही स्वधर्मनिष्ठ भगवद्–परायण सज्जन थे। उन्होंने पुत्र का नाम रखा– श्रीरामेन्द्रसुन्दर भट्टाचार्य।



१९२३ ई॰ में श्रील महाराज परमाराध्य श्रील प्रभुपाद की कृपा से उनके प्रति आकृष्ट हुये एवं कोलकाता १ नं., उल्टाडाङ्गा जंक्शन रोड पर स्थित गौड़ीय मठ में आवागमन करने लगे जिससे कि वे श्रील प्रभुपाद के श्रीमुख से हरि–कथा श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त करके मनुष्य जीवन के वास्तविक उद्देश्य को पूर्ण कर सकें। श्रील महाराज श्रील प्रभुपाद की कथा को बहुत ही मनोयोग के साथ श्रवण किया करते थे। अतिशीघ्र ही दिसम्बर मास में उन्होंने उक्त गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान में एकान्त भाव से योगदान दिया एवं श्रील प्रभुपाद के विशेष स्नेहभाजन हुए।

वैशाख मास (अप्रैल) में श्रील महाराज ने श्रील प्रभुपाद से श्रीहरिनाम महामन्त्र और श्रावण मास (अगस्त) में पाञ्चरात्रिक विधि के अनुसार मन्त्रदीक्षा प्राप्त की। दीक्षा–उपरान्त उनका नाम श्रीरामानन्द दास हुआ।

शीघ्र ही, १९३० ई॰ में श्रील प्रभुपाद के द्वारा उपदिष्ट साधन–भजन में उनकी ऐकान्तिक निष्ठा, श्रीगुरु–वैष्णव–सेवा में निष्कपट अनुराग एवं श्रील प्रभुपाद की विचारधारा का अनुसरण करते हुये सत्–शास्त्र–सिद्धान्तों के परिवेषण कार्य में उनकी विशेष निपुणता को लक्ष्य करके श्रील प्रभुपाद ने उन्हें त्रिदण्ड संन्यास वेष प्रदान किया तथा उन्हें नाम दिया – त्रिदण्डिभिक्षु श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर अर्थात् 'शुद्ध भक्ति की रक्षा करने वाले एवं उसकी 'श्री' अर्थात् सुन्दरता को धारण करने वाले'। वस्तुतः वे श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रदत्त उस नाम की

यथार्थ रूप में सार्थकता सम्पादित करके गुरुकृपा से आज जगत्–वरेण्य हुए हैं।

उनकी अद्वितीय प्रतिभा

श्रील महाराज में वैष्णवोचित समस्त सद्गुण विराजमान थे। श्रीगुरुकृपा से ही भगवद्कृपा प्राप्त होती है और उन भगवान् में जिनकी अकिञ्चना भक्ति होती है, उनमें देवता समस्त सद्गुणों सहित निवास करते हैं। उच्च ब्राह्मण कुल में जन्म, ऐश्वर्य, पाण्डित्य एवं सौन्दर्यादि गुण रहने पर भी वास्तव में हमने उनके मठ जीवन में कदापि उन्हें आभिजात्य अथवा पाण्डित्य का किसी प्रकार का दम्भ प्रकाशित करते नहीं देखा। बड़े–बड़े विद्वानों से सुसज्जित विचार–सभा में उनकी स्थिर–धीर चित्त एवं गम्भीर भाव से भक्तिशास्त्र–विरुद्ध अपसिद्धान्त खण्ड–विखण्ड करके सत्–सिद्धान्त स्थापन करने की शैली अत्यन्त सुन्दर थी।

एक शोध–निबन्ध के समान उनकी हरिकथा

उनके श्रीमुख से श्रीमद्भगवद्गीता–भागवत आदि सात्वत शास्त्रों की अपूर्व युक्तिपूर्ण भक्तिपरक व्याख्या और शुद्धभक्ति–सिद्धान्त–मूलक हरि–कथा श्रवण करके अनेक सारग्राही सज्जनों ने जगद्गुरु श्रील प्रभुपाद के चरणाश्रय में अपना जीवन सार्थक करने का सौभाग्य प्राप्त किया है। उनका प्रत्येक सम्भाषण मानो एक–एक Thesis के समान है, यदि कोई उन्हें मनोयोगपूर्वक अध्ययन कर ले, तो उससे ही डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर सकता है।

श्रीब्रह्म गायत्री की अभूतपूर्व व्याख्या

गरुड़पुराण में श्रीमद्भागवतम् को समग्र वेदमाता ब्रह्मगायत्री का भाष्य–स्वरूप कहा गया है। श्रील महाराज ने श्रीभागवतम् के आनुगत्य में ब्रह्मगायत्री की 'श्रीराधापदं धीमहि अर्थात् मैं श्रीराधा के चरणों का ध्यान करता हूँ' रूपी जो अपूर्व व्याख्या–माधुर्य प्रकाशित किया है, वह अप्राकृत रसज्ञ सुधीसमाज में विशेष रूप से समादृत हो रहा है।

श्रीमद्भागवतम् (१०.३०.२८) में उल्लेख है [कृष्ण का अनुसन्धान करते हुए गोपियाँ कहती हैं] 'अनयाराधितो नूनं— इस सौभाग्यशाली गोपी ने अवश्य ही [भगवान् हरि] की आराधना की है'। यहाँ जिनके द्वारा कृष्ण के भली–भाँति आराधित होने की बात कही गयी है अर्थात् जिनके द्वारा कृष्ण आनन्दित होते हैं, उन स्वरूप–शक्ति ह्लादिनी [श्रीराधा] के एकान्त आनुगत्य के बिना कृष्ण के श्रीचरणकमलों की प्राप्ति का और कोई उपाय क्या हो सकता है? यही तो व्रज–वधूओं के द्वारा अङ्गीकार की गई रम्या उपासना–पद्धति है।

[श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने लिखा है—]

'राधा भजने यदि मति नाहि भेला।
कृष्ण भजन तव अकारण गेला॥

[यदि श्रीराधा के भजन में तुम्हारी मति नियुक्त नहीं हुई है तब तुम्हारा कृष्ण का भजन करना व्यर्थ ही है।]

यह उपरोक्त वचन ही तो स्वरूपरूपानुगवर्य श्रीगुरुपादपद्म का उपदेश है, इस मन्त्र का जप करने से ही तो माया पिशाची भागेगी।

श्रीमद्भगवद्गीता (१०.१०) में कहा गया है, 'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते— मैं भक्तों को वह बुद्धियोग प्रदान करता हूँ जिसके द्वारा वे मुझे प्राप्त होते हैं'। इस वचन में श्रीभगवद्–पादपद्मों की नित्यसेवा प्राप्त करने की शुद्ध–निश्चयात्मिका बुद्धि को इङ्गित किया गया है, जिसके लिए वेदमाता गायत्री के निकट प्रार्थना करनी चाहिये। पूज्यपाद महाराज के हृदय में श्रीराधानित्यजन—श्रीवार्षभानवी दयितदास होने का भाव रखने वाले श्रीगुरुदेव की कृपा से ही इस व्याख्या की स्फूर्त्ति हुयी है।

'श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्ये'—इस वेदवचन का अभिधा [मुख्य] वृत्ति के द्वारा 'मैं श्रीकृष्ण के आश्रय में स्वरूपशक्ति ह्लादिनी के सारभाव का आश्रय ग्रहण करता हूँ एवं मैं ह्लादिनी के सारभाव के आश्रय में श्रीकृष्ण का आश्रय ग्रहण करता हूँ— जब इस प्रकार का न्यायसिद्ध अर्थ प्राप्त होता है, तब लक्षणा [गौण] वृत्ति का अवलम्बन करके 'श्याम'— शब्द का 'हार्दब्रह्मत्व' [निर्विशेष ब्रह्म जो सबके हृदय में विद्यमान हैं] रूपी अर्थ अनुमान करने का प्रयोजन क्या है?

श्रीब्रह्म गायत्री का मूल उद्देश्य श्रीराधा के चरणों का ध्यान करना है— श्रीराधापदं धीमहि। इस अर्थ का आनुगत्य करने पर ही श्रीराधानाथ श्यामसुन्दर के श्रीचरणों की प्राप्ति होगी, वे श्यामसुन्दर ही परमसत्य हैं। श्रील श्रीधर महाराज के द्वारा कृत गायत्री का यह अर्थ ही सर्वत्र जययुक्त हो रहा है।

श्रद्धापूर्ण सम्मान के पात्र

श्रील महाराज इतने भजनविज्ञ थे कि हमारे गौड़ीय मठ–मिशन के प्रायः सभी प्रवीण संन्यासी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ आश्रमी सेवक ही पूज्यपाद श्रीधर महाराज को यथायोग्य मर्यादा प्रदान करते थे एवं उनके साथ इष्टगोष्ठी करके सुख का अनुभव करते थे।

नित्यलीलाप्रविष्ट पूजनीय त्रिदण्डिगोस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज एवं नित्यलीलाप्रविष्ट पूज्यपाद त्रिदण्डिगोस्वामी श्रीमद्भक्ति सारङ्ग गोस्वामी महाराज ने भी परमपूज्यपाद श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर देव गोस्वामी महाराज से त्रिदण्ड संन्यासवेष ग्रहण किया था।

जिन्होंने पाश्चात्य देशों में विपुल रूप से श्रीचैतन्यवाणी का प्रचार किया एवं बहुत से मठ–मन्दिर स्थापित किये, जो पूज्यपाद केशव महाराज से त्रिदण्ड संन्यासवेष ग्रहण करके त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज के नाम से विश्व में विख्यात हुए, वह भी अपने प्रकटकाल में अपने ज्येष्ठ भजनविज्ञ गुरुभ्राता पूज्यपाद श्रीधर महाराज के प्रति विशेष मर्यादा प्रदर्शन करते थे तथा समय–समय पर उनके निकट आकर कृष्णकथा श्रवण करने में अपरिमित सुख का अनुभव करते थे।

उनकी अपूर्व बुद्धिमत्ता

पूज्यपाद महाराज ने विद्यालय में अध्ययन के समय अपने विचक्षण अभिभावकों के

निर्देशानुसार अंग्रेजी भाषा की शिक्षा के साथ–साथ संस्कृत भाषा में भी विशेष निपुणता प्राप्त की थी। सुविख्यात विद्वान पण्डित वंश में उनका जन्म हुआ था, अतः अति अल्प आयु में ही संस्कृत भाषा में कविता आदि की रचना करने में उनकी स्वतःसिद्ध बुद्धिमत्ता परिलक्षित हुई। परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के श्रीचरणाश्रय में उनकी वह स्वतःसिद्ध भगवद्–प्रदत्त शक्ति और भी अधिक विकसित हो गई। श्रील प्रभुपाद अपने प्रकटकाल में समय–समय पर श्रीधर महाराज के द्वारा रचित श्लोक – विशेषतः 'श्रीमद्भक्तिविनोद–विरह–दशकम्' नामक स्तोत्र का पाठ करके उनके प्रति अत्यन्त प्रसन्न होते थे।

उनके द्वारा रचित – 'श्रीश्रीप्रभुपादपद्म स्तवकः', 'श्रीदयितदासप्रणति–पञ्चकम्', 'श्रीश्रीदयितदास–दशकम्', और 'श्रीश्रीप्रभुपाद–प्रणतिः' – इन स्तोत्रों के द्वारा सहज ही बोध होता है कि उनकी श्रीगुरुपादपद्म में किस प्रकार की ऊर्जिता अथवा प्रबल अनुरागमयी भक्ति विराजमान थी। इनके अतिरिक्त उनके द्वारा रचित 'श्रीमद् गौरकिशोर–नमस्कार–दशकम्', 'श्रीमद्रूप–पदरजः–प्रार्थना–दशकम्', 'श्रीमन्–नित्यानन्द–द्वादशकम्', 'श्रील गदाधर–प्रार्थना', 'ऋक्–तात्पर्यम्', 'श्रीगायत्री–निर्गलित–अर्थम्', 'श्रीप्रेमधामदेव–स्तोत्रम्', 'श्रीगौरसुन्दर–नुतिसूत्रम्' आदि स्तोत्र श्रीगौड़ीय वैष्णव समाज में विशेष रूपसे समादृत हैं।

उल्लिखित स्तोत्रादि का श्रील प्रभुपाद के निजजन भजनानन्दी वैष्णवप्रवर नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीपाद कृष्णदास बाबाजी महाराज एवं त्रिदण्डिगोस्वामी श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज प्रचुर आदर करते थे एवं अपने प्रकटकाल में अत्यन्त प्रीति के साथ उनका कीर्त्तन और आस्वादन करते थे। यह दोनों श्रील श्रीधर महाराज के विशेष गुणग्राही थे।

विशेष काव्यरत्न के रचयिता

उनके 'प्रेमधामदेव–स्तोत्रम्' में श्रीमन्महाप्रभु की आदि–मध्य–अन्त प्रायः समस्त लीला ही संक्षेप में वर्णित की गयी है। यह अनुपम काव्यरत्न स्वरूप–स्तोत्र अन्वय–टीका–अनुवाद के साथ स्वतन्त्र ग्रन्थाकार रूप में प्रकाशित होने पर एक नित्यपाठ्य विराट भक्तिग्रन्थ के रूप में आत्मप्रकाश करेगा।

उनके द्वारा बङ्गला भाषा में रचित श्रीगौरसुन्दर के आविर्भाव–दिवस के दिन कीर्त्तित 'अरुण–वसने सोनार सूरज – श्रीचैतन्यदेव लाल वर्ण के वस्त्र धारण किए हुए स्वर्णिम सूर्य के समान हैं' आदि गीतों का भी वैष्णवजन परम आदर के साथ कीर्त्तन करते हैं।

बृहद्–मृदङ्ग की सेवा में उनका योगदान

पूज्यपाद महाराज की सम्पादकता में श्रील रूप गोस्वामी–प्रणीत सम्पूर्ण 'श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु' ग्रन्थ (मूल श्लोक, टीका, अन्वय और बङ्गानुवाद के साथ) प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त श्रीमद्भगवद्गीता (मूल श्लोक, अन्वय और बङ्गानुवाद के साथ), श्रीप्रपन्नजीवनामृतम् (शरणागति–मूलक महाराज के द्वारा स्वरचित संस्कृत श्लोक, बङ्गानुवाद

के साथ) आदि कुछ ग्रन्थ बाङ्ग्ला भाषा में एवं अंग्रेजी भाषा में भी बहुतसे ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। यह ग्रन्थ पाश्चात्य देशों के विद्वत् समाज में विशेष रूप से समादृत और विपुल रूप से प्रचारित हो रहे हैं।

यह हमारे अत्यन्त आनन्द का विषय है कि पूज्यपाद महाराज की श्रीमुखनिःसृत शुद्धभक्ति–सिद्धान्त वाणी को श्रवण करके उनके प्रति आकृष्ट होकर पाश्चात्य देशों के अनेक सारग्राही सज्जन व्यक्तियों ने श्रीधाम नवद्वीप में स्थित श्रीचैतन्य–सारस्वत गौड़ीय मठ में आगमनपूर्वक श्रील महाराज के श्रीचरणों के आश्रय का सौभाग्य प्राप्त किया है। भक्तों ने उनकी अर्धशायित अथवा शायित अवस्था में अंग्रेजी भाषा में उपदिष्ट वाणी को संग्रह (Record) करके उन्हें ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया है। ये समस्त ग्रन्थ अंग्रेजी भाषा–भाषी पाश्चात्य विद्वत् समाज में विशेष रूप से समादृत हुए हैं। इन भक्तों की हृदयगत उत्साहमयी चेष्टाओं से पाश्चात्य देशों के लण्डन आदि कुछ विशेष–विशेष स्थानों पर प्रचारकेन्द्र भी स्थापित हुए हैं। इन सभी प्रचारकेन्द्रों में श्रील प्रभुपाद की शुद्धभक्तिसिद्धान्त वाणी विभिन्न भाषाओं में विपुल रूप से प्रचारित हो रही है। श्रील महाराज ने जीवन भर प्रायः एक स्थान पर ही अवस्थान किया तथापि उन्होंने 'पृथ्वीते आछे जत नगरादि ग्राम। सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम॥ अर्थात् मेरे नाम का पृथ्वी के प्रत्येक नगर एवं ग्राम में, सर्वत्र प्रचार होगा।''—श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुख की इस वाणी को अत्यन्त अद्भुत पद्धति से सार्थक सिद्ध किया है।

श्रील सरस्वती ठाकुर के वास्तविक अनुयायी

परमाराध्य श्रील प्रभुपाद ने अपने अप्रकटकाल के पूर्वदिवस पूज्यपाद श्रीधर महाराज के श्रीमुख से श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशय के द्वारा कीर्त्तित—'श्रीरूप मञ्जरीपद, सेइ मोर सम्पद, सेइ मोर भजन–पूजन'—इत्यादि गीत श्रवण करने की इच्छा प्रकाशित करके उनके प्रति विशेष करुणा प्रकाशित की थी। पूज्यपाद महाराज ने परमाराध्य प्रभुपाद के उस कृपाशीर्वाद को मस्तकपर धारण करके अपने अप्रकटकाल के शेष मुहूर्त्त तक श्रीस्वरूप–रूपानुगवर श्रील प्रभुपाद का मनोऽभीष्ट पूर्ण करने के लिये सतत यत्न किया।

श्रील प्रभुपाद ने अपने अप्रकटकाल के कुछ दिन पूर्व कहा था—

'भक्तिविनोद धारा कदापि अवरुद्ध नहीं होगी, आप लोग और अधिक उत्साह के साथ श्रीभक्तिविनोद–मनोऽभीष्ट के प्रचार में व्रती होना।'

ठाकुर श्रील भक्तिविनोद रूपानुगवर महाजन हैं। परमाराध्य श्रील प्रभुपाद ने उनका मनोऽभीष्ट पूर्ण करने का महान आदर्श स्थापित किया है। उनके चरणाश्रित निजजन पूज्यपाद तीर्थ महाराज, गोस्वामी महाराज, माधव महाराज, वन महाराज, यायावर महाराज, कृष्णदास बाबाजी महाराज और श्रीधर महाराज आदि प्रमुख वैष्णवाचार्य उस आदर्श का अनुसरण करते हुए रूपानुग श्रील प्रभुपाद के गणों में गणित हुए हैं। वर्त्तमान में श्रील प्रभुपाद एवं उनके अनेक



पार्षद नित्यलीला में प्रविष्ट हो गये हैं, ऐसे में श्रील प्रभुपाद का श्रीचरणाश्रय प्राप्त करने के लिये उनके दासानुदासों को भी उस श्रीगुरु-मनोऽभीष्ट को पूर्ण करने की महती आशा और आकाङ्क्षा हृदय में दृढ़भावसे पोषण करनी होगी। इस विषय में रूपानुग वैष्णवों की पदधूलि, पदजल और अवशिष्ट प्रसाद ही हमारा एकमात्र बल और भरोसा है।

उनके एकनिष्ठ सेवक

श्रील महाराज की अस्वस्थ लीला के समय उनके प्राच्य और पाश्चात्य देश के सेवक दिवा-रात्रि जिस प्रकार से उनके श्रीअङ्ग की सेवा में तत्पर हुए, वह निश्चित रूप से अभूतपूर्व, कल्पनातीत एवं आदर्शस्वरूप है। श्रील ईश्वरपुरी के द्वारा श्रील माधवेन्द्रपुरी की अप्रकट लीला के सेवादर्श के अनुसरण में गौड़देशीय कुछ बालसेवक विशेषतः तपन नामक एक बालक गुरुसेवा में अत्यन्त अद्भुत रूप से काय-मन-वाक्य को समर्पण करके गुरुदेव के असीमित कृपाशीर्वाद का पात्र बना है।

मेरा सैभाग्य

पूज्यपाद महाराज की अप्रकटलीला से चतुर्थ-दिवस पूर्व अर्थात् आठ अगस्त सोमवार को मुझे दैवक्रम से पूज्यपाद श्रीधर महाराज के दर्शन के लिये श्रीचैतन्य सारस्वत मठ में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके अप्रकटकाल तक वहाँ अवस्थानपूर्वक समय-समय पर मैंने पूज्यपाद महाराज के श्रीचरणों के सान्निध्य में आकर उनकी कुछ-कुछ सेवा का सुयोग प्राप्त करने का सौभाग्य भी प्राप्त किया था। समाधि की आनुष्ठानिक क्रियाएँ मेरे पौरोहित्य में ही सम्पादित हुयी थीं।

हमारा नितान्त दुर्भाग्य

नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर के निर्याण प्रसङ्ग में श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुख निःसृत वचन श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने पयार-छन्द में इस प्रकार लिखे हैं—

'हरिदास आछिल पृथ्वीर रत्नशिरोमणी।
ताँहा बिना रत्नशून्या हइला मेदिनी।
कृपा करि कृष्ण मोरे दियाछिल सङ्ग।
स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा हैल सङ्ग-भङ्ग॥'

चै॰च॰ (अन्त्य-लीला ११.९७.९४)

[हरिदास पृथ्वी पर विराजित सर्वोत्तम रत्न-स्वरूप थे, हरिदास के बिना यह पृथ्वी रत्न से शून्य हो गयी है। श्रीकृष्ण ने अतिकृपापूर्वक मुझे (हरिदास ठाकुर का) सङ्ग प्रदान किया था। आज श्रीकृष्ण की स्वतन्त्र इच्छा से ही मेरा सङ्ग भङ्ग हो गया।]

"हम आज परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के एक निजजन के अभाव में उक्त ठाकुर हरिदास के निर्याण-प्रसङ्ग का स्मरण करते-करते दुःख के समुद्र में निमग्न हो गये हैं। उनके अभाव की पूर्त्ति कदापि सम्भवपर नहीं है।

हमारे दुर्दैववशतः सारस्वत गौड़ीय गगन के परमोज्जवल सूर्यगण, सभी एक–एक करके अन्तर्ध्यान–लीला आविष्कार करके गौड़ीय गगन को अन्धकारमय कर रहे हैं। हाय! हाय! हम क्रमशः रक्षक और पालकशून्य हो रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे भ्रम एवं कुसिद्धान्त रूपी मेघसमूह एक बार पुनः शुद्धभक्ति–सिद्धान्त रूपी सूर्य को आच्छादित करने का प्रयास कर रहे हैं।

अहैतुकी कृपावर्षण कौन करेगा?

'दुःख मध्ये कोन दुःख हय गुरुतर? – समस्त प्रकार के दुःखों मे से कौन सा दुःख सर्वोपरि है?' इस प्रश्न के उत्तर में श्रीमन्महाप्रभु अपने पार्षदप्रवर श्रील राय रामानन्द के मुख से पुनः स्वयं ही कह रहे हैं— 'कृष्णभक्त विरह बिना दुःख नाहि देखि पर। – कृष्णभक्त के विरह से अधिक विकट अन्य कोई दुःख दिखाई नहीं देता।'

वास्तव में ही कृष्णभक्त के वियोग से उत्पन्न दुःख की कोई सीमा नहीं है, सान्त्वना भी नहीं है। करुणा के सागर, परदुःख–दुःखी, दूसरों के कष्ट को स्वयं अनुभव करने वाले, उनकी व्यथा में व्यथित, कृष्णगत–प्राण कृष्णभक्त के अतिरिक्त कृष्णविमुख जीव को कृष्णकथा श्रवण कराकर, कृष्ण का सन्धान प्रदान कर, उनके उद्धार की चेष्टा और कौन कर सकता है? मुझ सदृश पतित–दुर्गत माया–मोह में अन्धे जीवों का मोह–अन्धकार नष्ट करने के लिये निःस्वार्थ भाव से और कौन चेष्टा करेगा?

श्रीगौरहरि के पार्षद

भक्ति ही जीवमात्र का परमधर्म है। उस भक्ति में अपसिद्धान्त रूपी दोष के प्रवेश करने पर अधर्म का प्रादुर्भाव होता है। उस धर्म–दोष को दूर करके सद्धर्म की संस्थापना के लिये श्रीभगवान् निज–पार्षदों के साथ युग–युग में अवतीर्ण होते हैं। पुनः यथासमय अपने भक्तों को प्रेरित करके उनके द्वारा सद्धर्म का प्रचार कराकर वह जीवों के प्रति करुणा प्रकाशित करते हैं। तभी परमकरुण श्रीगौरहरि ने अपने निजजन श्रील ठाकुर भक्तिविनोद एवं श्रील प्रभुपाद सरस्वती गोस्वामी ठाकुर को क्रमशः प्रेरित करके तथा हाल ही में उनके ही निजजन पूज्यपाद श्रीधर महाराज, माधव महाराज आदि प्रमुख आत्मीय वर्ग के द्वारा सद्धर्म की संस्थापना रूपी कार्य कराया था।

उनके श्रीचरणों में सकातर प्रार्थना

हाय! वर्त्तमान समय में क्रमानुसार इनके अदर्शन से हम सम्पूर्ण रूप में रक्षकशून्य हो गये हैं। हे गौरसुन्दर! हमारी रक्षा करो! पूज्यपाद श्रीधर महाराज निश्चित ही परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के श्रीचरणों में उपनीत होकर उनकी नित्यसेवा में नियुक्त हैं, वह वहाँ से हम दीन–हीन जनों के प्रति किञ्चित कृपादृष्टि निक्षेप करें, यही उनके चरणों में हमारी सकातर प्रार्थना है।

वैष्णव अदोषदर्शी होते हैं। पूज्यपाद महाराज हमारे ज्ञात और अज्ञात रूप में कृत सभी अपराधों, त्रुटि–विच्युतियों को क्षमा और संशोधन करके, हमारे ऊपर

निष्कपट कृपा करें, यही उनके चरणों में हमारी गलवस्त्र धारणपूर्वक सकरुण प्रार्थना है। वह श्रील प्रभुपाद की नित्य सेवा में नियुक्त हुए हैं, हमें भी कृपा करके सहगण श्रील प्रभुपाद के श्रीपादपद्मों की सेवा में अधिकार प्रदान करके कृतकृतार्थ करें, उनके चरणों में यही प्रार्थना निवेदित करता हूँ।

श्रीचैतन्यवाणी (वर्ष २८, संख्या ७) में प्रकाशित एक लेख से अनुवादित

श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस गोस्वामी महाराज



बाल्यकाल से ही असाधारण प्रतिभा सम्पन्न

श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस गोस्वामी महाराज कार्तिक मास में कृष्ण प्रतिपदा तिथि को उड़ीसा के गञ्जाम जिले में बड़गड़ ग्राम में कुलीन ब्राह्मण कुल में आविर्भूत हुए थे। श्रील महाराज का माता-पिता द्वारा प्रदत्त नाम 'श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ' था। इनके पूर्वज बड़गड़ राजा के राजपुरोहित होने के गुरुत्वपूर्ण दायित्व को पीढ़ी-दर-पीढ़ी अति सम्मान के साथ सम्पन्न करते आ रहे थे।

एक समय बड़गड़ के राजा ने श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ की प्रतिभा की बात को सुनकर अपने राजपुरोहित के पुत्र के सम्बन्ध सूत्र से स्नेहवशतः उन्हें राजसभा में सादर आमन्त्रित किया जहाँ राजकीय कवि एवं विद्वत्-मण्डली उपस्थित थी। सभा में सभाजनों के साथ प्रश्नोत्तर करते हुए विभिन्न आलोचनाओं के द्वारा श्रीउज्ज्वलेश्वर ने अपने पाण्डित्य का प्रकाश किया तथा विद्वत्-मण्डली को परास्त कर दिया। राजा ने श्रीउज्ज्वलेश्वर की प्रतिभा से मुग्ध होकर उसे 'पट्टयोषी अर्थात् विद्या में प्रवीण' की उपाधि प्रदान की एवं उसके साथ ही उन्हें 'श्रेष्ठ सभाकवि' के रूप में एवं 'राजगुरु' के पद पर आसीन किया।

सरलता के प्रशंसक

श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने अपनी बाल्यावस्था में संस्कृत शिक्षा के साथ अंग्रेजी भी सीखना प्रारम्भ किया था किन्तु अंग्रेजी के दो समान शब्दों यथा Put तथा But के उच्चारण के अन्तर को लक्ष्य करके उन्होंने उस भाषा की व्याकरण को उचित नहीं मानकर केवल संस्कृत भाषा को ही अपना लक्ष्य बनाया तथा उसमें पारङ्गत हुए।

भूल दिखाने वाले मङ्गलाकांक्षी अत्यन्त दुर्लभ

जब श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ राजगुरु बने तब राजा के राजमहल के एक नूतन अंश के नक्शे को देखकर उन्होंने इंजीनियर से कहा, "आपके द्वारा बनाये गये नक्शे के अनुसार थोड़े ही समय में भवन में दरार पड़ जायेगी, अतएव मेरा परामर्श है कि इस पर विचार करके ही आगे बढ़ने से अच्छा होगा।"

इंजीनियर ने श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ की बात को सुना तो सही, किन्तु उसे लेशमात्र भी गुरुत्व नहीं दिया। भवन के सम्पूर्ण होने के कुछ ही समय पश्चात् उसमें दरार पड़ गयी, तब इंजीनियर को श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ द्वारा कही बात का स्मरण आया तथा वह उनके पास गया।

जब इंजीनियर ने श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ से उनके द्वारा की गयी भविष्यवाणी के आधार के विषय में जिज्ञासा की तो उन्होंने कहा, "यद्यपि यह सत्य है कि मैं इंजीनियर नहीं हूँ किन्तु तब भी नदी के प्रवाह के इतने निकट बहने के कारण ही मैंने अनुमान लगा लिया था कि जिस प्रकार आप नींव रखवा रहे हैं, जैसा ढाँचा बना रहे हैं, उससे असुविधा होगी ही होगी।

"मैंने अपने माता-पिता द्वारा प्रदत्त संस्कारों से यह निश्चित रूप से सीखा है कि यदि कोई विशिष्ट व्यक्ति हमें कोई बात बोले तो हमें उस पर ध्यान अवश्य ही देना चाहिये। जगत् में हमारी भूल पकड़कर हमें दिखाने वाले लोगों का मिलना अत्यन्त कठिन है। यदि आप उस समय मेरी बात पर थोड़ा भी ध्यान देते, तब धन तथा समय की हानि न होती, किन्तु अब भी यदि आप किसी बुद्धिमान व्यक्ति के द्वारा कही गयी बात पर थोड़ा ध्यान देना सीखकर अपनी भूल सुधार लेने का अभ्यास बना लेंगे तो आपको बहुत अधिक लाभ होगा।"

निर्भीक दृढ़ निश्चय के फलस्वरूप मृत देह से वर प्राप्ति

बड़गड़ के राजा के राजगुरु श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ तथा धराकोट के राजा के राजगुरु श्रीलिङ्गराज मिश्र ने मिलकर एक साथ तन्त्र साधना प्रारम्भ की। उसी तन्त्र साधना के अन्तर्गत एक समय वे दोनों अमावस्या की रात्रि में श्मशान जाकर एक मृत देह की छाती पर बैठकर मन्त्र साधना करने लगे। मन्त्र के प्रभाव से जब मृतदेह का हाथ उठा तब श्रीलिङ्गराज मिश्र तो वहाँ से उठकर भाग गये किन्तु श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने 'मृषा, मृषा अर्थात् तुम्हारे समस्त प्रयास विफल होंगे' उच्चारण करके मन्त्र का प्रयोग किया।

उन्होंने मृत देह के हाथ को पुनः-पुनः दबाकर नीचे कर दिया। धीरे-धीरे मृत ने निस्तेज होकर जिज्ञासा की, "आपके साधन का क्या उद्देश्य है?"

श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने उत्तर दिया, "विद्या-अर्जन करना।"

मृत देह से शब्द आया, "जाओ, तुम्हें सर्वोत्तम विद्या की प्राप्ति होगी। लेशमात्र भी चिन्ता मत करो।" हुआ भी वैसा ही, श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ एक उच्च कोटि के विद्वान् बने।

प्रेत के साथ वार्त्तालाप

एक समय राजगुरु श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ किसानों को किराये पर दी हुई अपनी भूमि पर उपजी फसल को बेचकर धन लेकर अपने घर की ओर आ रहे थे कि मार्ग में भयङ्कर आँधी-तूफान उपस्थित हुआ। इस कारण वे आगे नहीं बढ़ पाये तथा किसी एक ग्राम में पान वाले की दुकान को खुला देखकर उन्होंने दुकानदार से पूछा, "भाई, क्या यहाँ एक रात रहने की कहीं व्यवस्था हो सकती है?"

उस दुकानदार ने पूछा, "आपके पास अपना बिस्तर इत्यादि है?"

उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, है।"

दुकानदार ने कहा, "तब तो आप सामने खाली पड़े घर में ही रह सकते हैं।"

वह उन्हें वहाँ ले गया तथा उन्हें स्थान दिखलाकर वहाँ से चला गया। अभी श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ थोड़ी देर सोये ही थे कि उस स्थान पर रहने वाला प्रेत कुछ उत्पात करने लगा। श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ की निद्रा भङ्ग हो गयी, उन्होंने अपने समक्ष एक विराट शरीरधारी दैत्य को देखा। उन्होंने दैत्य से संस्कृत भाषा में पूछा, "तुम कौन हो?"

दैत्य ने कहा, "मैं ब्रह्म दैत्य[१] हूँ।"

श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने पूछा, "तुम यहाँ क्यों आये हो?"

ब्रह्म दैत्य ने कहा, "मैं तो यहाँ पर ही वास करता हूँ, आये तो तुम यहाँ पर हो।"

श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने पूछा, "चाहते क्या हो?"

ब्रह्म दैत्य ने कहा, "मैं तुम्हें भक्षण करना चाहता हूँ।"

श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने पूछा, "तुम मुझे भक्षण क्यों करना चाहते हो?"

ब्रह्म दैत्य ने आश्चर्यचकित होकर कहा, "यह कैसा प्रश्न है? इस घर में जो आता है, वह मेरा आहार बनता है।"

श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने पूछा, "मैं ब्राह्मण हूँ। तुम्हें ब्रह्म हत्या करने का भय नहीं है? मुझे भक्षण करके भी तुम्हारा क्या लाभ होगा? तुम तो प्रेत योनि में ही रह जाओगे।"

ब्रह्म दैत्य ने कहा, "ब्रह्महत्या का भय, इसमें भय की क्या बात है? मैं तो ब्रह्मदैत्य ही हूँ। मैं स्वयं भी कभी ब्राह्मण था। प्रेतयोनि में तो मुझे रहना ही है किन्तु तुम्हें भक्षण करके मुझे कुछ तो तृप्ति मिलेगी।"

श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने कहा, "तुम अपने उद्धार की चिन्ता क्यों नहीं करते।"

दैत्य ने कहा, "ऐसा महानुभाव कौन है, जो मेरा उद्धार करेगा।"

श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने कहा, "मैं तुम्हारा उद्धार करूँगा।"

दैत्य ने कहा, "देखिये, मेरा उद्धार इच्छा करने पर भी हर कोई नहीं कर सकता। जो व्यक्ति भागवत में वर्णित अम्बरीष महाराज की भाँति दशमी को एकाहार, एकादशी को निर्जल, एकादशी की रात्रि में हरि-सङ्कीर्त्तन तथा द्वादशी में भी एकाहार करने वाला होगा, वैसा व्यक्ति यदि अपने द्वारा कृत एक

---

[१]उपनयन संस्कार के पश्चात् अकाल-मृत्यु को प्राप्त करने वाले किसी ब्राह्मण का प्रेत

एकादशी के फल को मुझे प्रदान करेगा, तभी मेरा उद्धार सम्भवपर है किन्तु ऐसा महानुभाव कहाँ मिलेगा?"

श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने कहा, "मैं उसी प्रकार की एकादशी तिथि का पालन करता हूँ। मैं ही तुम्हारा उद्धार कर दूँगा।" ऐसा कहकर श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने अपनी अञ्जुली में जल लेकर एक एकादशी के फल को प्रदान करने का सङ्कल्प लेकर उस जल को उसके ऊपर छिड़क दिया। जिसके फलस्वरूप सोडे की बोतल को खोलते समय होने वाले शब्द की भाँति ध्वनि हुई तथा वह दैत्य उद्धार प्राप्त करके चला गया।

इस प्रकार श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ को सोने में बहुत देरी हुई तथा उसी के फलस्वरूप उन्हें उठने में भी देरी हुई। दूसरी ओर, पान के दुकानदार ने जब प्रातःकाल भी घर को भीतर से बन्द देखा तो वह अन्य ग्रामवासियों को बुलाकर भीतर की खबर जानने के लिए चेष्टान्वित हुआ। जब राजगुरु श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने बाहर का कोलाहल सुना तो उन्होंने द्वार खोला तथा उन्हें देखकर ग्रामवासियों ने आश्चर्यपूर्वक पूछा, "आपको कुछ हुआ नहीं?"

उन्होंने पूछा, "क्या होना था?"

तब ग्रामवासियों ने कहा, "यह तो प्रेत का निवास स्थान है। यहाँ पर रात्रि में रहने वाला कोई भी व्यक्ति जीवित नहीं बचता। यह पान की दुकान वाला महामूर्ख है जो उसने आपको इसी स्थान पर रहने के लिए कहा। भगवान् का लाख-लाख धन्यवाद है कि आपको कुछ नहीं हुआ। क्या आपको प्रेत ने कुछ नहीं कहा?"

श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने उत्तर दिया, "वह आया था, उसने जो कहना था उसने कहा, मैंने जो कहना था मैंने कहा। अब वह केवल मात्र एक एकादशी तिथि के माहात्म्य के फलस्वरूप उद्धार प्राप्त करके चला गया है। अब इस स्थान पर भविष्य में किसी को भी रहने में कोई असुविधा नहीं होगी।"

बाद में वार्त्तालाप करते-करते जब ग्रामवासियों को पता चला कि यह व्यक्ति राजगुरु श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ है तब तो सभी पान के दुकानदार को कहने लगे, "तेरा भाग्य बहुत अच्छा है जो इन्हें कुछ नहीं हुआ, अन्यथा न जाने तेरे साथ-ही-साथ राजा ग्रामवासियों की भी क्या अवस्था करता!"

तान्त्रिक की माया को पहचानना

एक समय राजगुरु श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ के साथ बहुत से लोग किसी एक ग्राम में रात्रि में रुके। उस ग्राम में वास करने वाले किसी एक तान्त्रिक ने उन सबको मिठाई देना प्रारम्भ किया। किन्तु श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने अपनी तन्त्र योग साधना के प्रभाव से यह जान लिया कि वास्तव में वह मिठाई नहीं, बल्कि किसी पशु की विष्ठा है। अतएव उन्होंने सभी को वह बात बतलायी। प्रायः सभी ने उनकी बात पर विश्वास कर लिया किन्तु एक-दो लोगों के अविश्वास करने को समझकर उन्होंने उन्हें किसी तृण के स्पर्श से विष्ठा के रूप में परिवर्त्तित करके दिखला ही दिया।

श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस गोस्वामी महाराज

"अनेक लोग मन्त्रों की दुहाई देकर
साधारण लोगों को मूर्ख बनाते हैं
किन्तु सावधानीपूर्वक विचार करने पर
उनकी भूल अथवा अन्यों को मूर्ख
बनाने की वृत्ति को पकड़ना कोई
दुष्कर कार्य नहीं होता।"



कपटी का सत्य प्रकाशित करना

एक समय एक व्यक्ति ने श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ के गाँव में सम्वाद भेजा कि मैं अमुक तिथि में आकर मिर्ची से यज्ञ करके दिखलाऊँगा तथा किसी को उसके जलने से खाँसी, श्वास कष्ट आदि की भी असुविधा नहीं होगी। उसकी बात सुनकर ग्राम में अधिकांश व्यक्ति कौतुहलपूर्वक उस तिथि की प्रतीक्षा करने लगे तथा सर्वत्र केवल मात्र उस व्यक्ति की ही चर्चा होने लगी।

जब श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने इस सम्वाद के विषय में सुना तो उन्होंने उस व्यक्ति के ढोंग को सब के समक्ष प्रकट करने का निश्चय किया। उन्होंने इसके लिये मिर्ची को भिन्न-भिन्न प्रकार से जलाकर अनेक प्रयोग किये जिससे कि किसी को कोई श्वास कष्ट आदि न हो तथा अन्ततः उन्होंने विधि खोज निकाली। उन्होंने मिर्ची को घी में भिगोकर समस्त ग्रामवासियों को यज्ञ करके दिखला दिया। किसी को भी श्वास-कष्ट आदि नहीं हुआ। सभी ने उनसे पूछा, "कैसे तथा किस मन्त्र के माध्यम से ऐसा सम्भवपर हुआ कि मिर्ची के जलने पर भी किसी को असुविधा नहीं हुयी।"

श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने उत्तर दिया, "वह व्यक्ति आप सबको मूर्ख बनाने का प्रयास कर रहा था, मैंने उसकी मूर्खतापूर्ण चतुरता को पकड़ने के लिये अनेक उपाय किये और अन्त में देखा कि मिर्ची को घी में डुबोकर रखने के पश्चात् जलाने पर कोई असुविधा नहीं होती। अनेक लोग मन्त्रों के नाम पर साधारण लोगों को मूर्ख बनाते हैं किन्तु सावधानीपूर्वक विचार करने पर उनकी भूल अथवा अन्यों को मूर्ख बनाने की वृत्ति को पकड़ना कोई दुष्कर कार्य नहीं होता।"

जो व्यक्ति ग्राम में आकर मिर्ची से यज्ञ करके दिखलाने वाला था, वह श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ द्वारा किये गये यज्ञ की बात को सुनकर निर्धारित तिथि में आया ही नहीं।

आदर्शमय सत्यनिष्ठा

श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ के राजगुरु होने के कारण राज कर्मचारी कभी तो राजा की

ओर से तो कभी स्वयं अपनी ओर से समय-समय पर उनके घर पर सीदा जैसे कि धान, फलियाँ, आटा देकर जाते थे तथा यह भी बोलकर जाते थे कि कुछ भी बचाना नहीं, सब कुछ समाप्त कर देना।

अगली बार जब वे लोग पुनः सीदा देने के लिये आये तब श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने सीदा लेने से यह कहकर मना कर दिया, "मेरे पास पूर्व में दिया गया ही बहुत-सा सीदा बचा हुआ है, कारण, मैं इतना अधिक तो खा नहीं पाया।"

राज कर्मचारी ने कहा, "अन्य किसी राजगुरु ने तो आज तक ऐसा नहीं कहा कि वे सीदा नहीं चाहते।"

श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने कहा, "उनके विषय में तो मैं सठीक नहीं बोल सकता कि वे सीदे को जमीन में दबा देते हैं या फिर कुछ और करते हैं किन्तु मैं अपने विषय में कह सकता हूँ कि मैं कोई हाथी नहीं हूँ जो इतना सब कुछ खाकर समाप्त कर दूँ तथा मैं मिथ्या आचरण करने का भी पक्षपाती नहीं हूँ। अतएव तुम लोग कृपा करके अपना सीदा वापस ले जाओ।"

इस प्रकार हमें श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज के प्रारम्भिक जीवन के गठन में ही एक दृढ़ सङ्कल्प युक्त आदर्श चरित्र का इङ्गित प्राप्त होता है।

सेवा आराध्य देव को कष्ट देने के लिये नहीं

श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के सान्निध्य में आने से पूर्व श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ सूर्यदेव की उपासना करते थे। उन्होंने सूर्य दर्शन एवं पूजन के बिना कुछ भी ग्रहण नहीं करने का कठोर व्रत धारण किया था।

एक समय जब वे श्रीधाम वृन्दावन की यात्रा पर थे तब सर्दी के दिनों में धुन्ध के कारण उन्हें एक दिन प्रातः से लेकर प्रायः सन्ध्या तक सूर्यदेव के दर्शन नहीं हुए जिस कारण उन्होंने उस दिन न तो कुछ खाया और न ही जल की एक बूँद तक भी ग्रहण की। जब उनकी गाड़ी दिल्ली स्टेशन पर रुकी तब उन्हें गाड़ी की खिड़की में से सूर्यदेव के दर्शन हुए। जब उनके मन में स्टेशन पर उतरकर जल अथवा किसी फल आदि को खरीदने की बात आयी, तब तक गाड़ी के चलने का सिग्नल हो गया।

हठात् उसी समय एक बड़ी टोकरी को अपने सिर पर ढ़ोये एक व्यक्ति ने आकर उनसे कहा, "शीघ्र द्वार पर आकर इस टोकरी को उतरवा दो।" उनकी बात सुनकर श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ द्वार पर गये, टोकरी को उतरवाकर जैसे ही उन्होंने रखा तो देखा कि वहाँ पर कोई नहीं है तथा गाड़ी भी चल पड़ी। उन्होंने उस टोकरी की ओर देखा तो पाया कि उसमें बेमौसम के बहुत से पके हुए फल तथा उत्कृष्ट मिठाइयाँ हैं।

वह समझ गये कि उनके आराध्यदेव सूर्यदेव ने स्वयं आकर उन्हें यह सब वस्तुएँ दी हैं। उन्होंने विचार किया, "आराध्यदेव की आराधना करना आराधक का कर्त्तव्य

है किन्तु आराधक के द्वारा ऐसा व्रत ग्रहण करना, जिसके लिये उसके आराध्य देव को कुछ कष्ट उठाना पड़े, सर्वथा अनुचित है।" उन्होंने उन फलों एवं मिठाइयों को स्वयं स्वीकार नहीं करके वृन्दावन पहुँचकर महात्माओं में वितरित कर दिया तथा अपने आराध्यदेव के द्वारा स्वयं की सेवा कराने वाले कठोर व्रत का त्याग करने का निर्णय लिया।

धाम में सरलता ही पालनीय

एक समय श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ श्रीधाम वृन्दावन से श्रीनवद्वीप तथा वहाँ से श्रीधाम मायापुर आये। मायापुर में उन्हें श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के दर्शन हुए। दैव से उन दिनों श्रीनवद्वीप धाम की परिक्रमा प्रारम्भ होने वाली थी, तो श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने कटहल के एक वृक्ष के नीचे अपना बिस्तर लगा लिया। उन दिनों मठ में वहीं मायापुर में ही उत्पन्न होने वाले मोटे-मोटे चावलों का भोग लगता था। श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ के लिये उन चावलों को ग्रहण कर पाना सम्भवपर नहीं था, उन्होंने किसी से भी इस विषय में बात नहीं की तथा स्वयं बिस्कुट को पानी में घोलकर ही पीकर अपनी उदरपूर्ति कर लेते। इतने बड़े विद्वान्, कुलीन कुल में आविर्भूत होने वाले तथा राजगुरु होने पर भी श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ अभिमान के लेशमात्र से भी रहित थे। धाम में आने पर किस प्रकार की चित्तवृत्ति होनी चाहिये, यह उनके आदर्श से स्वतः ही अनुमान लगा लेना चाहिये।

श्रील प्रभुपाद के एक वाक्य का प्रभाव

एक दिन श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ, श्रील प्रभुपाद तथा अन्यान्य अनेक संन्यासी, ब्रह्मचारियों के साथ श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा के अन्तर्गत श्रीगोद्रुम द्वीप में जाने के उद्देश्य से सरस्वती नदी को पार करके गोद्रुम पहुँचा देने वाली नौका में बैठ गये। उन्हें पान खाने का अभ्यास था, उसी अभ्यासवशतः उन्होंने उस समय भी पान खाते-खाते सरस्वती में पीक फेंक दी। श्रील प्रभुपाद ने उन्हें ऐसा करते हुए देखा तथा साथ-ही-साथ कहा, "हम सरस्वती को गङ्गा से अभिन्न मानते हैं।"

श्रील प्रभुपाद के शब्दों में इतनी शक्ति थी कि उसे सुनते ही श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ पश्चाताप करते हुए विचार करने लगे, "जिस गङ्गा के दर्शन, उसमें स्नान करने के उद्देश्य से लोग कितना कष्ट उठाकर तथा अर्थ व्यय करके आते हैं, जिस गङ्गा की देव-ऋषि, मुनि- महाजन आदि वन्दना करते हैं, मैंने उसी गङ्गा में अपने बुरे अभ्यास के कारण पीक फेंककर अपराध किया, इसके द्वारा मैंने किसी साधु के मन को दुःखी किया।" ऐसा विचार कर श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने अपनी जेब से पान का डिब्बा निकालकर सरस्वती नदी में फेंक दिया तथा प्रायश्चित स्वरूप प्रतिज्ञा की, "मैं अपने जीवन काल में आज के पश्चात् कभी भी पान ग्रहण नहीं करूँगा।"

साधु के वचन को कैसे श्रवण करना चाहिये तथा कैसे पालन करना चाहिये यही उपरोक्त दृष्टान्त से प्रकाशित होता है।



श्रील प्रभुपाद के श्रीचरणों में जीवन समर्पित करना

कुछ दिनों तक श्रीधाम मायापुर में वास, श्रील प्रभुपाद के मुख से वीर्यवती हरि-कथा के श्रवण तथा श्रीधाम नवद्वीप की परिक्रमा के अन्तर्गत स्थानों के माहात्म्य के श्रवण के साथ-साथ विशुद्ध गौड़ीय विचारधारा को आत्मसात् करने की योग्यता रखने के कारण श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ ने अपनी विद्वता तथा राजगुरुत्व को असार जानकर बिना किसी विलम्ब के श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय ग्रहण करके उनसे हरिनाम तथा दीक्षा प्राप्त की। उसी दिन मेरे शिक्षागुरु श्रीकृष्णकेशव ब्रह्मचारी की भी दीक्षा हुई थी। श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ की भजन पद्धति, उनकी सेवा-परिपाटी, उनकी अगाध निष्ठा को देखकर दीक्षा के लगभग दो वर्ष के पश्चात् ही श्रील प्रभुपाद ने उन्हें संन्यास भी प्रदान कर दिया तथा उन्हें श्रीभक्तिगौरव वैखानस महाराज नाम द्वारा अभिहित किया।

श्रील प्रभुपाद के अनेक आश्रितजन श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ द्वारा संन्यास-प्राप्ति को देखकर आश्चर्यचकित हुए। कारण, श्रील प्रभुपाद बहुत से भक्तों को कई वर्षों तक दीक्षा भी प्रदान नहीं करते थे और इन्हें इतने कम समय में संन्यास भी प्रदान कर दिया।

ब्राह्मणता से वैष्णवता को श्रेष्ठ स्थापित करना

श्रील भक्तिगौरव वैखानस गोस्वामी महाराज संन्यास के उपरान्त अनेक स्थानों पर प्रचार करने के लिये जाते थे। एक समय जब वे उड़ीसा स्थित बालासोर में प्रचार करने के उपरान्त बरहमपुर गये तब तीन विभिन्न राज्यों के राजगुरु उनके पास आये तथा उन्होंने कहा, "उज्ज्वलेश्वर रथ, तुमने कुलीन ब्राह्मण तथा राजगुरु होने पर भी गौड़ीय मठ में जाकर सभी जाति-पाति के लोगों के सङ्ग को ही स्वीकार किया, वास्तव में तुम्हारे कारण हम ब्राह्मणों तथा राजगुरुओं के सम्मान की हानि हुई है।"

उनकी बात सुनकर श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज ने अत्यधिक विनय-भाव से उन्हें श्रील प्रभुपाद द्वारा पुनः स्थापित किये गये दैव-वर्णाश्रम-धर्म की महत्ता तथा

जीव के निरुपाधिक वास्तविक आत्म-स्वरूप तथा बद्ध-अवस्था के अन्तर को समझाया। उन्होंने बताया कि जीव का वास्तविक स्वरूप भगवान् का नित्य दास है किन्तु बद्ध अवस्था में उसका स्वरूप ब्राह्मण जैसी अनेक जागतिक उपाधियों से आच्छादित हो गया है।

श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज ने उन्हें यह सब विषय समझाकर उनकी आस्था को श्रील प्रभुपाद के चरणों तथा गौड़ीय मठ के प्रति स्थापित किया और उनके द्वारा उठाये गये समस्त प्रश्नों की सुमीमांसा की। जो राजगुरु पहले उन्हें भला-बुरा बोल रहे थे, उन्होंने ही बाद में स्वीकार किया, "श्रीउज्ज्वलेश्वर, तुमने तो वास्तव में हमारे सम्मान को कई गुणा वर्धित ही किया है।"

अन्यों के विश्वास के पात्र

एक समय श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने श्रीपुरुषोत्तम मठ (चटक पर्वत, पुरी) में एक मास व्यापी अनुष्ठान के आयोजन की अभिलाषा की। जब भक्तों ने श्रील प्रभुपाद से पूछा, "इस अनुष्ठान का दायित्व किसे दिया जाये।" तब श्रील प्रभुपाद ने कहा, "श्रीपाद वैखानस महाराज को दायित्व देने पर वह उसे बहुत भली प्रकार से निर्वाह करेंगे।"

जब श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज को श्रील प्रभुपाद के आदेश का पता चला तो वे एक ओर तो अत्यधिक आनन्दित हुए किन्तु दूसरी ओर चिन्तित भी हो उठे कि सब व्यवस्था किस प्रकार से करेंगे। किन्तु उस समय वे जिस शहर में प्रचार सेवा कार्य कर रहे थे, वहीं के किसी व्यवसायी व्यक्ति ने उनसे कहा, "आप लेशमात्र भी चिन्तित मत होइये तथा आपको किसी वस्तु को अन्य-अन्य स्थानों से एकत्रित करके ढोकर ले जाने की भी कोई आवश्यकता नहीं, मैं यहीं पर बैठे-बैठे ही आपको पुरी में सब वस्तुओं की प्राप्ति की व्यवस्था करा देता हूँ।"

उपरोक्त प्रसङ्ग से यह ज्ञात होता है कि लोग उनके प्रति इतना अधिक विश्वास, इतनी अधिक श्रद्धा रखते थे कि उन्हें एक मुहूर्त्त के लिए भी चिन्तित होते हुए देख नहीं पाते थे।

विग्रह-प्रतिष्ठा की वास्तविक पद्धति

श्रील भक्तिगौरव वैखानस गोस्वामी महाराज को जब किसी भी स्थान पर श्रीविग्रहों के दर्शन प्राप्त होते थे तो वे सर्वप्रथम यही जिज्ञासा करते थे, "यह विग्रह किसके द्वारा प्रतिष्ठित है?" यदि उन्हें उन विग्रहों की प्रतिष्ठा करने वाले किसी प्रमाणिक वैष्णव का परिचय प्राप्त हो जाता, तब वे विग्रहों



"जिस श्रीविग्रह की किसी प्रमाणिक वैष्णव ने प्रतिष्ठा नहीं की, शास्त्रों में ऐसे श्रीविग्रह को प्रणाम करने हेतु निषेध है।"



को प्रणाम करते, अन्यथा उनकी अन्य जिज्ञासा होती, "इन विग्रहों का किन-किन विशिष्ट वैष्णवों ने दर्शन किया है?" यदि उन्हें किसी विशिष्ट प्रतिष्ठित वैष्णव के द्वारा विग्रहों के दर्शन करने का सन्धान मिल जाता तब वे विग्रहों को प्रणाम करते, अन्यथा बिना प्रणाम किये वहाँ से चल देते।

वह प्रायः कहा करते थे, "जिस श्रीविग्रह की किसी प्रमाणिक वैष्णव ने प्रतिष्ठा नहीं की, शास्त्रों में ऐसे श्रीविग्रह को प्रणाम करना निषेध है। किसी शुद्ध भक्त, महाभागवत से सम्पर्कयुक्त होने पर ही मूर्त्ति श्रीविग्रह कहलाती है। महाभागवत के द्वारा मूर्त्ति को अपने हस्तकमल से स्पर्श करने अथवा प्रणाम ज्ञापन करने, अपने मुख से उस विग्रह के उद्देश्य से प्रणाम-मन्त्र आदि का उच्चारण अथवा उनका नामकरण करने, नेत्रों के माध्यम से उनका दर्शन आदि करने पर ही मूर्त्ति अथवा प्रतिमा श्रीविग्रह बनती है अन्यथा वह काष्ठ, पत्थर इत्यादि जड़ पदार्थों से निर्मित मूर्त्ति ही है। वैष्णव के अतिरिक्त किसी अन्य के द्वारा प्रतिष्ठित विग्रह को प्रणाम करके अपने अमङ्गल का आह्वान कौन बुद्धिमान करेगा?

"उदाहरण स्वरूप, किसी घर के स्वामी का घर तब तक अन्य किसी का नहीं हो सकता जब तक वह व्यक्ति अपने हाथ से हस्ताक्षर, निरक्षर होने पर अपने अंगूठे की छाप अथवा अपने द्वारा तैयार की गई वसीयत में उसका नाम उल्लेख न करे। वकील के द्वारा वसीयत का सम्पूर्ण ड्राफ्ट बना लेने पर, टाइपिस्ट के द्वारा सब कुछ टाइप कर लेने पर, स्टांप लगा देने पर अथवा उनके द्वारा यह कहने पर भी- 'हमने सब आपके नाम लिख दिया है'- कुछ नहीं होता, जब तक उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये ड्राफ्ट पर मालिक के हस्ताक्षर न हों। किसी भी राष्ट्र की मुद्रा तब तक केवल मात्र एक सामान्य कागज ही रहती है, जब तक उस पर गवर्नर के हस्ताक्षर न हों। ठीक इसी प्रकार जब तक महाभागवत, अपने प्राणधन अर्थात् अचिन्त्य दुष्प्राप्य भगवान् को किसी को प्रदान नहीं करते तब तक किसी को भी उन पर अधिकार प्राप्त नहीं होता।

"यह विग्रह-प्रतिष्ठा की वास्तविक पद्धति है। अतएव एक मूर्त्ति को प्रणाम कर मैं अप्रामाणिक पद्धति का समर्थन क्यों करूँ?"

उनके ऐसे आचरण को देखकर तथा उनके मुख से उपरोक्त बात को सुनकर ही इस सिद्धान्त की शिक्षा मुझे प्राप्त हुयी थी।

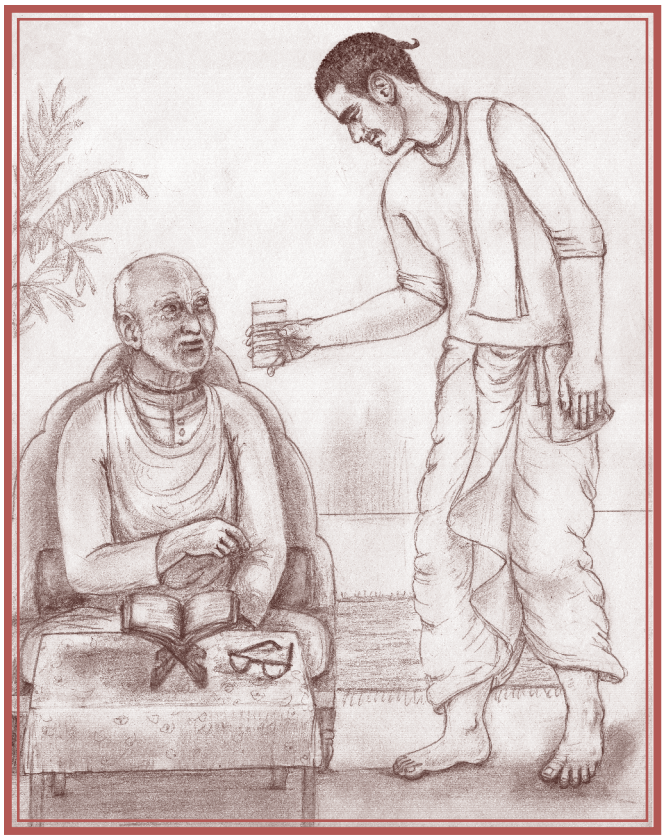
मन्त्रों के उच्चारण में निपुणता

गुरु महाराज द्वारा स्थापित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में श्रील भक्ति गौरव वैखानस गोस्वामी महाराज के प्रकटकाल तक जितने भी श्रीविग्रहों की स्थापना हुई, वह सब गुरु महाराज ने उनसे ही करवायी। श्रीविग्रहों की प्रतिष्ठा करते समय मैंने उनका एक वैशिष्ट्य लक्षित किया कि उन्हें कभी किसी मन्त्र को उच्चारण करने के लिये ग्रन्थ को देखने की आवश्यकता नहीं पड़ी, वे बिना रुके कण्ठस्थ मन्त्रों का उच्चारण करते थे। यद्यपि विग्रह-प्रतिष्ठा में उनके सहायक मेरे सतीर्थ श्रीभक्तिसुहृत दामोदर महाराज को उनकी ओर से आदेश था, "तुम ग्रन्थ

खोलकर मेरे द्वारा उच्चारित सभी मन्त्रों को मिलाते जाना तथा किसी भूल के होने पर मुझे टोकना।" किन्तु कभी भी उनके द्वारा उच्चारण में कोई भी भूल नहीं हुई।

केवल आवश्यकता के अनुरूप ही वस्तु को स्वीकार करने के प्रति सतर्क

एक समय मैंने गुरु महाराज के आदेश से श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज के लिये उनके वस्त्रों के माप के अनुरूप चार जोड़े वस्त्र बनाकर, उन्हें रङ्ग करके दिये, किन्तु उन्होंने उसमें से एक जोड़े को मुझे लौटाते हुए कहा, "मैं सदैव तीन जोड़े वस्त्र ही रखता हूँ। यदि चार रखूँगा तो विषयी बन जाऊँगा। अतएव तुम मेरे शुभचिन्तक का कार्य करते हुए इसे अपने लिये रख लो।"



सरलता का अनोखा प्रदर्शन

एक समय जब गुरु महाराज प्रचार-सेवा हेतु श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज को विमान के माध्यम से कोलकाता से गुवाहाटी लेकर जा रहे थे तब मार्ग में श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज ने गुरु महाराज से कहा, "महाराज, मुझे लघुशंका आ रही है।"

गुरु महाराज ने कहा, "तब फिर आप शौचघर में जाकर लघुशंका कर आइये।"

किन्तु उन्होंने अत्यधिक सरलतापूर्वक कहा, "महाराज, हमारे गुरुवर्गों का हमारे लिये उपदेश है कि 'जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण-अधिष्ठान अर्थात् प्रत्येक जीव में कृष्ण के परमात्मा स्वरूप में विराजमान रहने के कारण उन सभी को सम्मान प्रदान करना।' अतएव मैं इस विमान में लघुशंका कैसे करूँ?"

गुरु महाराज ने पूछा, "आपका क्या तात्पर्य है?"

उन्होंने कहा, "मेरे द्वारा त्यक्त मूत्र यदि विमान के शौचघर के छिद्र में से किसी व्यक्ति के मस्तक पर पड़ेगा तब तो अनर्थ हो जायेगा।"

जब गुरु महाराज ने उन्हें बताया कि ऐसा नहीं होता तभी वह निःसङ्कोच मूत्र त्याग करने के लिये गये।

सतर्क विचार

श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज जिस किसी स्थान पर जाते, क्षुधा अथवा तृष्णा लगने पर वहाँ पर दिखलायी पड़ने वाले व्यक्ति को अपने निकट बुलाकर बैठाते तथा पूछते, "बताओ तो, मनुष्य शरीर धारण करने वाले व्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य क्या है? मठवास का क्या उद्देश्य है? हरिभजन क्यों करना चाहिये?" आदि आदि। यदि उन्हें उस व्यक्ति से हरिभजन के अनुकूल उत्तर प्राप्त हो जाता, तब तो वह उससे अपने लिये भोजन सामग्री अथवा जल आदि लाने की बात कहते अन्यथा मौन धारण कर लेते।

एक समय श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज हमारे कोलकाता मठ में आये हुए थे। एक दिन उन्होंने किसी एक ब्रह्मचारी को अपने निकट बुलाया तथा उससे पूछा, "तुम मठवासी क्यों बने?"

उस ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, "मठवास करने से ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यधिक सहज हो जाता है, अतएव मैं ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये मठ में आया हूँ।"

जब श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज उस ब्रह्मचारी से वार्त्तालाप कर रहे थे, तभी मैं उनके कक्ष के सामने से जा रहा था। उन्होंने मुझे बुलाया तथा उस ब्रह्मचारी को अपने कक्ष से जाने हेतु कहा। जब वह ब्रह्मचारी चला गया तब श्रील महाराज ने मुझसे अत्यधिक मधुर धीमे स्वर में कुछ भङ्गी करते हुए कहा, "नरोत्तम, एक बात सुनो। यह ब्रह्मचारी मुख्य रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये आया है, हरिभक्ति करने के लिये नहीं आया। इसके हाथ से जल ग्रहण करने से इसकी चित्तवृत्ति मुझ में भी प्रवेश करेगी। अतएव तुम ही मुझे जल लाकर पिलाओ।"

प्रत्येक क्रिया में उनकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिन्ता-भावना को देखकर मैं आश्चर्यचकित हो जाता था।

मृदु प्रतिवाद करने की पद्धति

एक समय श्रील भक्तिकुसुम श्रमण गोस्वामी महाराज के द्वारा सम्पादित श्रीनवद्वीप पञ्जिका में एकादशी-तिथि सम्बन्धित एक भूल को देखकर श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज ने श्रील भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज, श्रील भक्ति-आलोक परमहंस गोस्वामी महाराज तथा श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज आदि के साथ परस्पर विचार-विमर्श किया तथा फिर एक पत्र लिखकर मुझे मेरे सतीर्थ श्रीभक्तिसुहृत दामोदर महाराज के साथ जाकर उस पत्र को श्रील भक्तिकुसुम श्रमण गोस्वामी महाराज को जाकर देने के लिये कहा।

जब मैंने उस पत्र को पढ़ा तो मैं उनके द्वारा लिखित भाषा से उनके अति मृदु प्रतिवाद करने की पद्धति से अवगत हुआ। उन्होंने लिखा, "श्रीपाद श्रमण महाराज, यदि आप अपनी पञ्जिका में एकादशी को इस तिथि पर बतायेंगे तब फिर श्रीहरिभक्तिविलास के उस श्लोक की क्या गति होगी जिसमें एकादशी-तिथि की गणना करने की विधि वर्णित है?" मुझे उनके द्वारा मृदुलता से सत्य बात लिखने की पद्धति बहुत अच्छी

लगी। बाद में श्रील श्रमण गोस्वामी महाराज ने उन्हें पत्र के माध्यम से लिखा, "भूल शोचनीय है, मैं पञ्जिका में हुई भूल में सुधार कर लूँगा।"

उन दिनों भक्तजन किसी का प्रतिवाद करने पर उचित कारण प्रस्तुत नहीं कर पाने पर अपनी भूल को स्वीकार करने में किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नहीं करते थे किन्तु आजकल ऐसा युग आ गया है कि किसी का प्रतिवाद करने पर यदि वे स्वयं भी गम्भीर चिन्तन करके इस निष्कर्ष पर पहुँच जायें कि हाँ, उनकी भूल हुई है तथा उनके पास अपनी बात को प्रमाणित करने हेतु कोई शास्त्रीय प्रमाण अथवा युक्ति अथवा महाजन का उदाहरण नहीं है तब भी अपनी मिथ्या प्रतिष्ठा, आत्मसम्मान पर आघात मानने के कारण वैष्णव-वेष होने पर भी अवैष्णवोचित आचरण करने में तनिक भी लज्जा का अनुभव नहीं करते तथा अपने हठ के कारण स्वयं का ही अकल्याण करते हैं।

यथासम्भव वैष्णवों की सेवा करना

हम लोग अर्थात् श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के भक्त लोग जब भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते समय बरहमपुर स्टेशन से होकर जाते थे तब हमारे लिये श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज का यह सशक्त आदेश था, "बरहमपुर से जाते समय मुझे अवश्य समाचार मिलना चाहिये, कारण, मैं अन्य कोई वैष्णव-सेवा तो कर नहीं सकता, अन्ततः बरहमपुर से होकर जाने वाले भक्तों के लिये अपने गञ्जाम स्थित मठ से प्रसाद तो भेज ही सकता हूँ। यदि मुझे इस सेवा से वञ्चित किया गया तो मेरा क्रोधित होना स्वाभाविक होगा, मुझे बाद में उसके लिये दोषी मत ठहराना।"

यद्यपि उनका गञ्जाम स्थित मठ बरहमपुर रेलवे-स्टेशन से बहुत दूरी पर था तथा हम लोग उन्हें प्रसाद आदि के लिये कष्ट भी देना नहीं चाहते थे तब भी उनके आदेश तथा उनके द्वारा भेजे गये प्रसाद को वास्तव में उनके द्वारा हमारे मङ्गल के उद्देश्य से किये गये प्रसाद(कृपा) के रूप में ही स्वीकार करते थे। जब भी किसी को बरहमपुर से आना-जाना होता था तो वे लोग मुझे अथवा मेरे गुरुभ्राता श्रीभक्तिललित गिरि महाराज को पत्र के माध्यम से श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज को सम्वाद भेजने हेतु कहते थे। कारण, श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज हम दोनों के द्वारा लिखित बङ्गाली को ही पढ़ पाते थे, अन्यों के द्वारा लिखित बङ्गाली को नहीं।

अत्यन्त कनिष्ठ भक्त को सम्मानित करना

१९६२ ई॰ में श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज ने अस्वस्थ-लीला की तथा उन्हें बरहमपुर में एक अस्पताल में भर्ती कराया गया। उनके अस्पताल में भर्ती होने की बात को सुनकर गुरु महाराज ने मुझे उनकी सेवा के उद्देश्य से बरहमपुर भेजा। मुझे उनके निकट भेजते समय गुरु महाराज ने उनकी बहुत सी बातें बतायी, उनकी सेवा

परिपाटी आदि के विषय में भी बताया। बरहमपुर पहुँचकर मैंने यथासम्भव श्रील महाराज की सेवा की।

कुछ दिनों के पश्चात् गुरु महाराज ने मेरे पास सम्वाद भेजा, "तुम्हारी अनुपस्थिति के कारण मायापुर मठ का बहुत-सा सेवा कार्य रुका हुआ है। अतएव मेरे द्वारा भेजे जा रहे श्रीभक्तिशरण साधु महाराज के वहाँ पहुँचने पर तुम श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज की आज्ञा लेकर मायापुर चले आना।"

जब श्रीसाधु महाराज बरहमपुर पहुँचे तो मैंने गुरुदेव की आज्ञानुसार श्रील महाराज से जाने की अनुमति माँगी। उन्होंने मुझसे कहा, "तुम प्रथम बार हमारे यहाँ आये हो, अतएव मेरी अभिलाषा है कि तुम हमारे गञ्जाम स्थित मठ के श्रीविग्रह किशोर-किशोरी के दर्शन करते हुए ही जाओ।"

मैंने कहा, "महाराज, जैसी आपकी आज्ञा।" श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज ने अपने एक आश्रित को मेरे साथ जाने तथा यात्रा की सब व्यवस्था करने के लिये कहा।

उनका सेवक जब मुझे बरहमपुर से लेकर गञ्जाम पहुँचा तब मैंने देखा कि वहाँ पर बहुत से भक्तों ने सङ्कीर्त्तन के द्वारा मेरा स्वागत किया तथा सङ्कीर्त्तन करते-करते ही मुझे वहाँ से मठ तक लेकर गये। एक और आश्चर्यजनक बात कि उन्होंने मेरे स्वागत के लिये पूरे मार्ग में एक-के-पश्चात्-एक श्वेत वस्त्र को कालीन की भाँति बिछाया। ऐसा देखकर मैं तो बहुत लज्जित हुआ, उस पर चलने में सङ्कोच भी हुआ किन्तु जब मैंने श्रील महाराज के सेवक से पूछा कि आपने इतना सब मेरे जैसे व्यक्ति के लिए क्यों किया, तब उन्होंने कहा, "वैष्णव का आदर-सत्कार हमने स्वेच्छा से नहीं बल्कि गुरु महाराज के आदेश-निर्देशानुसार ही किया है।"

मैं तो यह बात सुनकर अवाक् रह गया तथा श्रील महाराज की सेवा-परिपाटी एवं अपनी अवस्था की तुलना श्रीमद्भागवतम् (१०.८१.१६) के एक श्लोक के साथ करने लगा।

क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यामं परिरम्भितः॥

[कहाँ तो मैं अत्यन्त पापी, दरिद्र एवं अयोग्य ब्राह्मण तथा कहाँ लक्ष्मी के एकमात्र आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण, किन्तु तब भी उन्होंने मुझे अपनी भुजाओं में भरकर हृदय से लगा लिया।]

यद्यपि यह श्लोक सुदामा ने श्रीकृष्ण के प्रति कहा है तथापि यह श्लोक सम्पूर्ण रूप से श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज द्वारा जो मात्र मेरे गुरुवर्ग ही नहीं अपितु मेरे गुरु महाराज के संन्यास गुरु भी हैं, मेरा सम्मान किये जाने पर मेरे मन की स्थिति को अभिव्यक्त करता है।

रन्धन-सेवा में सतीत्व बनाए रखना

श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज बहुत सुन्दर रन्धन करना जानते थे। अपनी वृद्धावस्था में तथा बहुत से आश्रितजनों के होने पर भी वे अपने ठाकुर श्रीकिशोर-किशोरी के लिये स्वयं रन्धन सेवा कार्य

करते थे। उनके द्वारा बनाये गये खाद्य पदार्थों को ग्रहण करने में हमें सङ्कोच होता था। एक समय मैंने उनसे पूछा, "महाराज, आप अपनी वृद्धावस्था में भी रन्धन सेवा कार्य क्यों करते हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया, "मैं क्या असती हूँ जो अपने पति की सेवा करना छोड़ दूँ। उनकी सेवा नहीं करूँगा तो किसकी करूँगा?"

श्रील महाराज द्वारा बनायी गई केले के छिलकों की चटनी तथा खीर इतनी अधिक स्वादिष्ट होती थी कि मुझे उसके स्वाद का आज तक भी स्मरण है।

हास-परिहास युक्त टिप्पणी

मेरे गुरुभ्राता श्रीललिताचरण प्रभु जिस दिन श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज को प्रसाद सेवन के समय बहुत-सी सामग्रियाँ परिवेशन करते थे, तब श्रील महाराज उनसे रसिकता (परिहास) करते हुए कहते थे, "ललिता चरण, आज तो तुम दाता कर्ण बन गये।"

उनके इन वचनों की मेरे हृदय पर ऐसी छाप पड़ी कि अभी तक भी मुझे कुछ अधिक भोजन सामग्री देने पर मेरे मुख से निकल ही जाता है कि आज तो तुम दाता कर्ण बन गये हो।

पद-पद में शिक्षा

श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज जहाँ कहीं पर भी जाते थे, वे सर्वत्र श्रील प्रभुपाद के आदर्श, उनके विशिष्ट-चरित्र, उनकी शिक्षाओं तथा उनकी महिमा का ही गान करते थे। उनका भाषण सदैव संस्कृत भाषा में होता था, तब भी संस्कृत की सरल शैली में प्रस्तुति के कारण उसे समझने में बङ्गाली, उड़िया, आसामी, हिन्दी भाषी आदि किसी को भी असुविधा नहीं होती थी। उनके भाषण, उनके आचरण, उनके व्यवहार सभी में शिक्षा प्राप्त होती थी, शिक्षा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। पद-पद में उनसे शिक्षा मिलती थी।

वैष्णवों द्वारा कीर्त्तन करने का माहात्म्य

एक समय मैं श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज के आनुगत्य में उन्हीं के किसी आश्रित व्यक्ति के घर बरहमपुर में किसी एक अनुष्ठान में गया था। बहुत से भक्तों ने मिलकर वहाँ पर वैष्णव-पदावली का कीर्त्तन किया। श्रील वैखानस गोस्वामी

"जिस घर में सन्त-समागम, हरिकथा-कीर्त्तन आदि नहीं होता वह घर एक महाभयानक अन्धकूप के समान है।"

महाराज ने कथा का परिवेशन किया तथा अन्त में अनुष्ठान का आयोजन करने वाले भक्तों से कहा, "वैष्णवों ने आकर तुम्हारे घर पर कीर्त्तन किया है, इससे अवश्य ही तुम्हारा मङ्गल हुआ है। जिस घर में सन्त-समागम, हरिकथा-कीर्त्तन आदि नहीं होता उसकी तुलना श्रीप्रह्लाद महाराज ने महाभयानक अन्धकूप से की है।"

एक भविष्यवाणी

जब श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज का मठ बन रहा था तब उन्होंने भविष्यवाणी करते हुए अपने आश्रितजनों से कहा था, "तुम लोगों को अर्थ की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। स्वयं ही कोई व्यक्ति आयेगा और सब प्रकार की व्यवस्था कर देगा। तुम लोग केवल भगवान् का भजन करो।"

इस बात के कुछ समय के पश्चात् ही यद्यपि उन्होंने शरीर त्याग दिया किन्तु तब भी उनके द्वारा कही गयी बात सत्य हुई तथा बहुत अच्छा मन्दिर बना। 'सत्यं विधातुं निज भृत्य भाषितम्' महापुरुषों-भक्तों द्वारा कही गयी बात को भगवान् अवश्य ही सत्य करते हैं।

आज तक भी उनसे विरह अनुभव

श्रील वैखानस गोस्वामी महाराज को अप्रकट हुए लगभग पचास वर्ष से भी अधिक समय हो गया है तथापि उनका स्मरण आने पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो मैं उन्हें अपने समक्ष ही देख रहा हूँ।

श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस महाराज का विरह-महोत्सव

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित

अप्रकट लीला प्रकाश

पूज्यपाद वैखानस महाराज पिच्चानवे (९५) वर्ष की आयु पर्यन्त इस धराधाम में प्रकटलीला करके २२ जनवरी, १९६६, श्रवणा नक्षत्र युक्त शुक्ल प्रतिपदा तिथि, शनिवार दोपहर में उड़ीसा के अन्तर्गत गञ्जाम जिले के गोञ्जु नामक ग्राम में निज प्रतिष्ठित 'श्रीसारस्वत आश्रम' में श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारी के श्रीचरणकमलों का स्मरण करते-करते श्रीश्रीराधा गोविन्द की नित्य नवनवायमान रसास्वादन चमत्कारिता-पूर्ण मध्याह्न-लीला में प्रविष्ट हुए हैं।

श्रीगुरुपादपद्म चरणाश्रय ग्रहण

हमने सुना है कि पूज्यपाद महाराज गृहस्थाश्रम में रहते समय संसार से अनासक्त होकर सद्गुरु का अनुसन्धान करने में प्रवृत्त हुए थे। उसी समय एकदिन दैव की कृपा से परमाराध्य प्रभुपाद का एक चित्रपट उनके दृष्टिगोचर हुआ। उस चित्रपट के दर्शन मात्र से ही उनका चित्त भुवनमङ्गल प्रभुपाद-पद्म के प्रति अत्यन्त आकृष्ट हुआ एवं वे तत्क्षणात् मन ही मन प्रभुपाद को अपने पारमार्थिक जीवन के एकमात्र नियामक

और बान्धव-सद्गुरु के रूप में वरण करके उनके दर्शन करने के लिये विशेष उत्कण्ठित हो उठे। प्रभुपाद की अहैतुकी कृपा से वे अतिशीघ्र संसार-बन्धन-छेदन के आदर्श को प्रदर्शित करके १९३३ ई॰ में श्रीधाम मायापुर में उपस्थित हुए तथा श्रील प्रभुपाद के श्रीचरणों का आश्रय किया। प्रभुपाद ने उनके शुद्धभक्तिपथ का अनुसरण करने में आन्तरिक अनुराग देखकर उन्हें बिना किसी विलम्ब के कृष्णनाम महामन्त्र और अष्टादशाक्षर मन्त्र दीक्षा प्रदान की।

भजन के प्रति उनकी तीव्र उत्कण्ठा

परमाराध्य प्रभुपाद से दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् श्रीउज्ज्वलेश्वर रथ पट्टयोषी श्रीउज्ज्वलरसानन्द दास के नाम से परिचित हुए। तत्पश्चात् भजन साधन में उनके उत्तरोत्तर (दिन-प्रतिदिन) वर्धित अत्यधिक आग्रह को देखकर श्रील प्रभुपाद ने ४४५ गौराब्द, १ मार्च, १९३४ शुक्रवार श्रीश्रीगौर-आविर्भाव-पौर्णमासी की शुभ तिथि में श्रीमन्महाप्रभु की प्रकट-स्थली श्रीधाम मायापुर योगपीठ में उन्हें यथाविधि त्रिदण्ड संन्यास प्रदान किया। उनके संन्यास का नाम - त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस महाराज हुआ। तभी से उन्होंने गुरु के आनुगत्य में परिव्राजक के वेष में भारत के विभिन्न स्थानों पर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-वाणी के प्रचार में आत्मोत्सर्ग किया।

श्रील महाराज ने परमाराध्य प्रभुपाद के प्रकट काल में एवं उनके अप्रकट के पश्चात् बड़ी-बड़ी सभाओं में संस्कृत भाषा में सुसिद्धान्तपूर्ण वक्तृता प्रदान करके श्रीगुरु-वैष्णव आदि सभी के आनन्द को वर्धित किया है। श्रील महाराज ने श्रीगौड़ीय मठ के संस्कृत ग्रन्थ प्रचार विभाग में भी बहुत अधिक परिमाण में सहायता की है।

श्रील प्रभुपाद द्वारा अप्रकट लीला आविष्कार करने के पश्चात् श्रील महाराज ने अपनी वृद्धावस्था में अपने उड़ीसावासी शिष्यों के विशेष अनुरोध से ब्रह्मपुर (चलती भाषा में बरहमपुर) के निकट स्थित गौञ्जु ग्राम में 'श्रीसारस्वत आश्रम' नामक एक मठ की प्रतिष्ठा करके वहाँ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधागोविन्द की सेवा प्रकट की एवं अप्रकट-काल पर्यन्त वहाँ रहकर भजन साधन करते-करते इस लीला का सम्वरण किया।

आदर्श वैष्णव स्वभाव

पूज्यपाद महाराज में वैष्णवोचित गुणसमूह स्वाभाविक रूप से देदीप्यमान थे तब भी उनका सरलतापूर्ण अमायिक व्यवहार- उनकी शान्त सौम्य मधुर मूर्त्ति के स्मरण से हृदय बहुत ही विह्वल हो उठता है। परमाराध्य प्रभुपाद के अप्रकट के पश्चात् श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के अध्यक्ष (श्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराज), श्रीभक्तिप्रमोद पुरी, श्रीभक्तिसौध आश्रम, श्रीभक्तिशरण शान्त महाराज आदि कुछेक गुरुभ्राताओं ने उनसे संन्यास ग्रहण किया तथापि वे उनके प्रति गुरुभ्राता-उचित गौरव ही प्रदर्शित करते थे तथा इस प्रकार उन्होंने वैष्णवोचित अमानी मानद स्वभाव के आदर्श को ही प्रदर्शित किया है।



"यद्यपि श्रील महाराज ने संन्यास-गुरु की उपाधि स्वीकार कर अपने अनेक गुरुभ्राताओं को संन्यास प्रदान किया तथापि वे उनके प्रति गुरुभ्राता-उचित गौरव ही प्रदर्शित करते थे तथा इस प्रकार उन्होंने वैष्णवोचित अमानी मानद स्वभाव के आदर्श को ही प्रदर्शित किया।"



उनके प्रिय स्तव-स्तुति

अत्यधिक वृद्ध अवस्था में भी उनकी प्रखर स्मरण शक्ति को देखकर हम स्तम्भित हो जाते थे, श्रीमद्भागवतम् की गर्भस्तुति, ब्रह्मस्तुति, रासपञ्चाध्याय, भ्रमरगीत, श्रीप्रह्लाद कृत नृसिंह-स्तव, श्रीगजेन्द्र स्तव, ब्रह्मसंहिता से गोविन्द स्तव, श्रीरूप-रघुनाथ द्वारा रचित बहुत से स्तव, सम्पूर्ण भगवद्गीता आदि एवं बहुत से वेद मन्त्रों को हमने प्रतिदिन उन्हें नियम-पूर्वक आवृत्ति करते सुना है।

सुविज्ञ प्राचीन भागवत

उन्होंने अति वृद्ध अवस्था में आत्म-सङ्गोपन किया है, तब भी आज हम उनके जैसे एक सुविज्ञ प्राचीन भागवत के विरह से हृदय में विशेष व्यथा का अनुभव कर रहे हैं। वे हमारे प्रति प्रसन्न होकर स्नेह और कृपा वितरण करें।

श्रीचैतन्यवाणी (वर्ष ६, संख्या ३) में प्रकाशित एक लेख से अनुवादित

श्रीमद्भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज



श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय ग्रहण

श्रीमद्भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज के पूर्वज मूलतः उड़ीसा से थे, किन्तु उनके पितामह के स्थानान्तरित होने के कारण उनका जन्म पश्चिम बङ्गाल के मेदिनीपुर जिले के अन्तर्गत दुर्मुठ नामक स्थान में हुआ। अपनी युवावस्था में ही श्रील महाराज (उस समय श्रीसर्वेश्वर पण्डा) की जगन्नाथ पुरी में श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के आश्रित श्रीमद्भक्तिप्रसून बोधायन गोस्वामी महाराज से भेंट हुई थी। श्रीमद्भक्तिप्रसून बोधायन गोस्वामी महाराज से श्रील प्रभुपाद की शिक्षाओं एवं महिमा श्रवण करने के पश्चात् श्रीसर्वेश्वर पण्डा ने जगन्नाथ पुरी स्थित श्रीपुरुषोत्तम मठ में श्रील प्रभुपाद के चरणकमलों का आश्रय ग्रहण किया तथा उन्हें दीक्षा के पश्चात् श्रीसर्वेश्वर ब्रह्मचारी नाम दिया गया।

एक ज्योतिषी की भविष्यवाणी

एक समय एक अत्यन्त प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित ज्योतिषी ने श्रीसर्वेश्वर ब्रह्मचारी एवं एक अन्य ब्रह्मचारी की हस्त-रेखाओं को देखकर दृढ़तापूर्वक कहा, "तुम दोनों का विवाह होकर ही रहेगा तथा तुम गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करोगे। कोई उसे टाल नहीं सकता।"

श्रीसर्वेश्वर ब्रह्मचारी की कीर्त्तन करने में दक्षता एवं गौड़ीय वैष्णव सिद्धान्त में गहन प्रवेश के कारण श्रील प्रभुपाद की उन्हें नवयुवक होने पर भी संन्यास देने की इच्छा थी किन्तु ज्योतिषी की भविष्यवाणी के कारण श्रीसर्वेश्वर ब्रह्मचारी संन्यास लेने से भयभीत थे कि कहीं विवाह करने की कामना उनके हृदय में सुप्त अवस्था में न हो। श्रीसर्वेश्वर ब्रह्मचारी की संन्यास लेने में अरुचि को समझकर श्रील प्रभुपाद ने कहा, "संन्यास अर्थात् सम्पूर्ण रूप से

"यदि किसी की श्रीकृष्ण में दृढ़ भक्ति हो तो उसकी भक्ति का बल विधाता के लेख को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देता है।"

श्रीकृष्ण के चरणकमलों में शरणागत होना। भगवान् श्रीकृष्ण के अभयचरणारविन्द में शरण लेने में भय कैसा?"

श्रीसर्वेश्वर ब्रह्मचारी ने १९३६ ई॰ में संन्यास ग्रहण किया एवं वह श्रील प्रभुपाद के अन्तिम संन्यासी शिष्य थे। उन्हें श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज नाम प्रदान किया गया।

अन्य ब्रह्मचारी के विषय में ज्योतिषी की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई तथा उन्हें विवाह के बन्धन में बँधना पड़ा किन्तु श्रील यायावर गोस्वामी महाराज ने विवाह नहीं किया। बहुत समय के पश्चात् जब उस ज्योतिषी की पुनः श्रील यायावर गोस्वामी महाराज से भेंट हुई तो इनकी हथेली को देखकर उन्होंने कहा, "मुझे समझ नहीं आ रहा कि क्या कहूँ? आपकी हस्त-रेखाओं के साथ-साथ आपके भाग्य का भी परिवर्त्तन हो गया है। मैंने वैष्णवों से श्रवण किया है, 'कृष्ण भक्ति यदि हय बलवान्। विधिर कलम काटि करे खान-खान अर्थात् यदि किसी की श्रीकृष्ण में दृढ़ भक्ति हो तो उसकी भक्ति का बल विधाता के लेख को खण्ड-खण्ड कर देता है।' इससे पूर्व मुझे वैष्णवों के इस वचन पर दृढ़ विश्वास नहीं था किन्तु अब इसकी सत्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण मेरे समक्ष है। भक्ति वास्तव में किसी के भी भाग्य को परिवर्त्तित कर सकती है।"

किसी की प्रशंसा करने में शीघ्रता मत करो

श्रील यायावर गोस्वामी महाराज भविष्य में होने वाली घटनाओं को स्पष्ट रूप से देखने में सक्षम थे। उनकी दूरदर्शिता के विषय में मैं यहाँ पर केवल एक ही प्रसङ्ग का वर्णन कर रहा हूँ। १९६० ई॰ में गुरु महाराज ने हमारे वृन्दावन स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के श्रीगौराङ्ग महाप्रभु एवं श्रीश्रीराधा-गोविन्द के विग्रहों की प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में एक विराट उत्सव का आयोजन किया तथा उसमें श्रीमद्भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज सहित अपने अनेकानेक गुरुभ्राताओं को निमन्त्रित किया।

उत्सव में आने वाले भक्तों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण किसी एक ही स्थान पर सभी के रहने एवं प्रसाद की व्यवस्था करना सम्भवपर नहीं था। इसलिये विभिन्न धर्मशालाओं में वैष्णवों के ठहरने एवं वहीं पर उनके प्रसाद की व्यवस्था की गई।

उत्सव के समय हुई धर्म-सभा में एक अत्यन्त युवा नवीन संन्यासी ने अत्यन्त सुशिक्षित एवं विद्वान् होने के कारण अंग्रेजी भाषा में हरि-कथा का परिवेशन किया तथा

अपने वक्तव्य में शास्त्रों से बहुत से श्लोकों को उद्धृत किया। सभी इस प्रकार अत्यन्त सुन्दर पद्धति से प्रस्तुत वक्तृता को सुनकर अत्यधिक प्रभावित हुए।

अगले दिन प्रसाद के समय जब श्रील प्रभुपाद आश्रित श्रीमद्भक्तिविकास हृषीकेश गोस्वामी महाराज ने उस युवक संन्यासी की प्रशंसा करनी प्रारम्भ की तब श्रील यायावर गोस्वामी महाराज एवं श्रीपाद कृष्ण केशव ब्रह्मचारी वहीं पर उपस्थित थे। चूँकि उनके प्रसाद की सेवा का दायित्व मुझ पर था इसलिये मैं भी वहीं पर था।

प्रशंसा को सुनकर श्रील यायावर गोस्वामी महाराज ने श्रील हृषीकेश गोस्वामी महाराज को रोककर गरजते हुए कहा, "इस समय इस युवक संन्यासी की प्रशंसा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यद्यपि निश्चित रूप से उसने बहुत सुन्दर प्रकार से हरि-कथा का परिवेशन किया किन्तु नवीन भक्त होने के कारण कौन कह सकता है कि उसने उस कथा को कितना धारण किया है? कथा कहना एक बात है किन्तु उसे पालन करने में वह कितना दृढ़ है? पहले उसे वैष्णव जगत् में जीने तो दो, प्रशंसा करने के लिये बहुत समय पड़ा है।

"एक बङ्गाली कहावत है, 'मोरले यदि उड़ले छाइ, तबे सतीर गुण गाइ अर्थात् किसी सती स्त्री के सतीत्व का तब तक गुणगान नहीं करना चाहिये जब तक उसकी मृत्यु एवं संस्कार के उपरान्त उसके शरीर की राख न उड़ जाए।' इसी प्रकार जब तक कोई व्यक्ति सम्पूर्ण जीवन उचित आचरण एवं शिष्टता का प्रदर्शन नहीं करता तब तक मात्र उसके सुन्दर हरि-कथा परिवेशन करने जैसे अन्य गुणों को देखकर उसकी प्रशंसा करना बुद्धिमानी नहीं है। सांसारिक विद्वान् भी अच्छा बोलते हैं किन्तु प्रायः हम देखते हैं कि उनका श्रीहरि, गुरु, वैष्णव में विश्वास नहीं होता। इसलिये इस प्रकार के लोगों में जो गुण देखे जाते हैं वह जड़ीय होते हैं।

इस प्रसङ्ग से पूर्व मैं श्रील यायावर गोस्वामी महाराज को अत्यन्त मृदुभाषी के रूप में ही जानता था। वह सरल एवं स्पष्ट वक्ता थे तथा जो उन्हें अनुभव हुआ, वही उन्होंने कहा।

१९६२ ई॰ में हरिद्वार में कुम्भ-मेले के समय यह ज्ञात हुआ कि वह युवा संन्यासी भक्ति मार्ग में दृढ़ नहीं था तथा वहाँ वह स्त्रियों से घनिष्ठता से मिला जिसके कारण



"जब तक कोई व्यक्ति सम्पूर्ण जीवन उचित आचरण एवं शिष्टता का प्रदर्शन नहीं करता तब तक मात्र उसके कुछ गुणों को देखकर उसकी प्रशंसा करना बुद्धिमानी नहीं है।"

उसने गौड़ीय मठ के भक्तों के सङ्ग का त्याग कर दिया। इसके उपरान्त उसने सबकी निन्दा प्रारम्भ कर दी।

गुरुभ्राता के लिये स्नेहमयी चिन्ता

एक समय श्रील यायावर गोस्वामी महाराज कालना गये। उस समय वहाँ पर श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज श्रीअनन्त वासुदेव मन्दिर में सेवा कार्य कर रहे थे। जब श्रील यायावर गोस्वामी महाराज श्रील पुरी गोस्वामी महाराज से मिले तो उन्होंने कहा, "आपने इस मन्दिर का सेवा-दायित्व अपने ऊपर लिया है तथा साथ-ही-साथ श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ की विभिन्न सेवाओं का दायित्व भी आप पर है। आप अकेले इन सब दायित्वों का निर्वाह किस प्रकार करेंगे? अपने समय एवं ऊर्जा को सम्पूर्ण हृदय से एक स्थान पर ही सेवा में लगाने से अच्छा होगा।" उनके परामर्श को स्वीकार करते हुए श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति को श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ की सेवाओं में नियुक्त किया।

केवल कीर्त्तन करो

एक दिन श्रील यायावर गोस्वामी महाराज के मेदिनीपुर स्थित श्रीश्यामानन्द गौड़ीय मठ के ब्रह्मचारी ठाकुरजी के लिये भोग लगाने के लिये मठ में तनिक भी चावल न होने पर दुःखी थे। जब उन्होंने अपनी चिन्ता का कारण श्रील यायावर गोस्वामी महाराज के समक्ष व्यक्त किया तो उनकी परिस्थिति को शीघ्र ही समझते हुए श्रील महाराज ने उन्हें सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा, "चिन्ता मत करो।" तब मन्दिर के द्वार को भीतर से बन्द करके चाबी को अपने पास रखते हुए उन्होंने ब्रह्मचारियों को आदेश देते हुए कहा, "भगवान् की प्रसन्नता के लिये कीर्त्तन एवं कथा का परिवेशन करो। आपको किसी भी विषय में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, कारण, आप लोग भक्त हैं।" इसके पश्चात् उन्होंने मठ के द्वितीय तल पर स्थित अपने कक्ष की ओर प्रस्थान किया तथा वहाँ पर उच्च स्वर में हरिनाम करने लगे।

कुछ समय के पश्चात् एक व्यक्ति मन्दिर के द्वार पर दस्तक देकर किसी को द्वार खोलने के लिये पुकारने लगा किन्तु ब्रह्मचारियों के द्वारा मन्दिर के हॉल में उच्च स्वर से होने वाले कीर्त्तन के कारण कोई भी उसकी पुकार को नहीं सुन सका। अन्त में श्रील महाराज ने अपने कक्ष से लक्ष्य किया कि कोई द्वार के बाहर खड़ा है। एक कीर्त्तन के पूर्ण होने के पश्चात् तथा दूसरा कीर्त्तन प्रारम्भ होने से पूर्व श्रील महाराज ने द्वितीय तल से चाबियाँ गिराते हुए एक ब्रह्मचारी को द्वार खोलकर देखने के लिये कहा कि कौन आया है। जब उन्होंने द्वार खोला तो देखा कि एक व्यक्ति चावल की एक बहुत बड़ी बोरी के साथ-साथ अन्य वस्तुओं को लेकर खड़ा था।

जब मठवासियों ने इन खाद्य सामग्रियों के क्रयकर्त्ता के विषय में जिज्ञासा की तो उस व्यक्ति ने कहा, "मैं नहीं जानता। मैं मात्र इतना ही जानता हूँ कि किसी ने मुझे इन सामग्रियों को मठ में पहुँचाने के



लिये कहा था, किन्तु वह कौन था यह मैं नहीं जानता।"

ब्रह्मचारियों ने पूछा, "क्या उस व्यक्ति ने तुम्हारे रिक्शे का किराया दिया है?"

"हाँ", उस व्यक्ति ने कहा।

श्रील यायावर गोस्वामी महाराज सम्पूर्ण रूप से भगवान् के प्रति शरणागत थे इसीलिये भगवान् को भोग निवेदन नहीं कर पाने के कारण उनके अन्तर्हृदय में हो रही पीड़ा को देखकर भगवान् ने सेवा के लिये उपयोगी समस्त आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध करा दी।

सदैव कीर्त्तन करो

श्रील यायावार गोस्वामी महाराज अन्तर्हृदय से बहुत ही मधुर कीर्त्तन करते थे। एक समय जब वह कीर्त्तन कर रहे थे तो बिजली चली गयी। इस परिस्थिति में क्या कर्त्तव्य है यह सुनिश्चित नहीं कर पाने के कारण वहाँ उपस्थित भक्त व्याकुल हो गये। श्रील यायावर गोस्वामी महाराज ने शीघ्र ही प्रतिक्रिया करते हुए उन्हें अशान्त न होने के लिये कहा तथा स्वयं उन्होंने कीर्त्तन प्रारम्भ किया, "भजहुँ रे मन, श्रीनन्दनन्दन, अभय चरणारविन्द रे – हे मेरे मन!

तुम श्रीनन्दनन्दन के अभय अर्थात् समस्त प्रकार के भयों का विनाश करने वाले श्रीचरणकमलों का भजन करो।"

उनका आचरण उनकी भगवान् के प्रति सम्पूर्ण शरणागति को लक्षित करता था। इस प्रकार वह कभी भी किसी भी वस्तु के लिये चिन्ता नहीं करते थे तथा चाहते थे कि अन्य भी न करें।

सर्वशक्तिमान चिकित्सक

एक समय एक भक्त ने पूर्व में हाथ में लगी चोट के कारण होने वाले संक्रमण के सम्बन्ध में एक चिकित्सक से विचार-विमर्श किया। भक्त की जाँच करने के पश्चात् चिकित्सक ने यह निर्धारित किया कि संक्रमण से बचने के एकमात्र उपाय-स्वरूप भक्त की एक अङ्गुली काटनी पड़ेगी। उन्होंने भक्त को कुछ दिनों के पश्चात् शल्यचिकित्सा करवाने हेतु पुनः आने के लिये कहा।

चिकित्सक के पास अङ्गुली कटवाने के लिये जाने से पूर्व वह भक्त श्रील यायावर गोस्वामी महाराज के दर्शन के लिये गया। श्रील महाराज को प्रणाम करने के पश्चात् उसने बताया कि एक अथवा दो दिन के पश्चात् उसे अपनी अङ्गुली कटवाने के लिये जाना है। यह सुनने के पश्चात् श्रील महाराज ने कहा, "तुमने अवश्य ही कोई वैष्णव अपराध किया है जिसके परिणामस्वरूप तुम्हें अपनी अङ्गुली गँवानी पड़ रही है। शीघ्रतापूर्वक जाओ तथा जिन वैष्णव के चरणों में अपराध किया है उनसे क्षमा प्रार्थना करो।"

भक्त ने गम्भीर होकर स्वीकार किया, "हाँ, मैंने एक शुद्ध भक्त के चरणों में अपराध किया है। किन्तु वह भक्त देह त्यागकर चले गए हैं। मुझे क्या करना चाहिये?"

श्रील यायावार गोस्वामी महाराज ने उससे कहा, "जहाँ उस भक्त का दाह संस्कार हुआ था उस स्थान पर जाकर उनसे कातरता-पूर्वक क्षमा-प्रार्थना करो।"

उस भक्त ने श्रील महाराज के निर्देशों का पालन किया तथा अङ्गुली कटवाने से पूर्व जब उस भक्त ने पुनः चिकित्सक से एक अन्तिम जाँच करवायी तो चिकित्सक ने आश्चर्य प्रकट करते हुए उस भक्त से पूछा, "आपने कौन सी औषधि ली है तथा आपने किससे इस प्रकार की औषधि प्राप्त की?"

उस भक्त ने कहा, "मैंने किसी भी प्रकार की औषधि नहीं ली है तथा आप यह प्रश्न क्यों पूछ रहे हैं?"

चिकित्सक ने कहा, "यह अविश्वसनीय है। इससे पूर्व जब मैंने आपका परीक्षण किया था उस समय अङ्गुली काटने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था किन्तु अब ऐसा कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। आपका हाथ स्वतः ही ठीक हो जायेगा।"

एकमात्र 'माधव', कोई अन्य नहीं

प्रत्येक वर्ष श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा के पूर्ण होने के पश्चात् श्रील प्रभुपाद के प्रायः समस्त शिष्यगण कोलद्वीप स्थित श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज के मठ में एकत्रित होते एवं प्रसाद सेवन करते

थे। एक बार जब गुरु महाराज वहाँ अपने गुरुभ्राताओं से मिले, उन्होंने सबको इस सम्वाद से अवगत कराया कि श्रीजगन्नाथ पुरी स्थित श्रील प्रभुपाद की जन्म स्थली को संग्रह करने का सुअवसर उपस्थित हुआ है एवं यह सुझाव दिया कि हम सब मिलकर उस स्थान को खरीद लें।

परस्पर इस विषय पर विचार-विमर्श करन `क `पश्चात ्उनक `कुछ गुरुभ्राताओं न `अपन `सामर्थ्यानुसार कुछ धन प्रदान करन `की सहमति दी, परन्तु यह समस्त राशि भी आवश्यक निधि की तुलना में नगण्य थी। गुरु महाराज ने व्यग्रता का अनुभव करते हुए कहा, "हमें आवश्यक धन संग्रह करने का कोई अन्य उपाय सोचना पड़ेगा।"

उस समय श्रीमद्भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज ने श्रीनृसिंह पुराण के इस श्लोक का उल्लेख किया –

माधवो माधवो वाचि, माधवो माधवो हृदि।
स्मरन्ति माधवः सर्वे, सर्वकार्येषु माधवम्॥

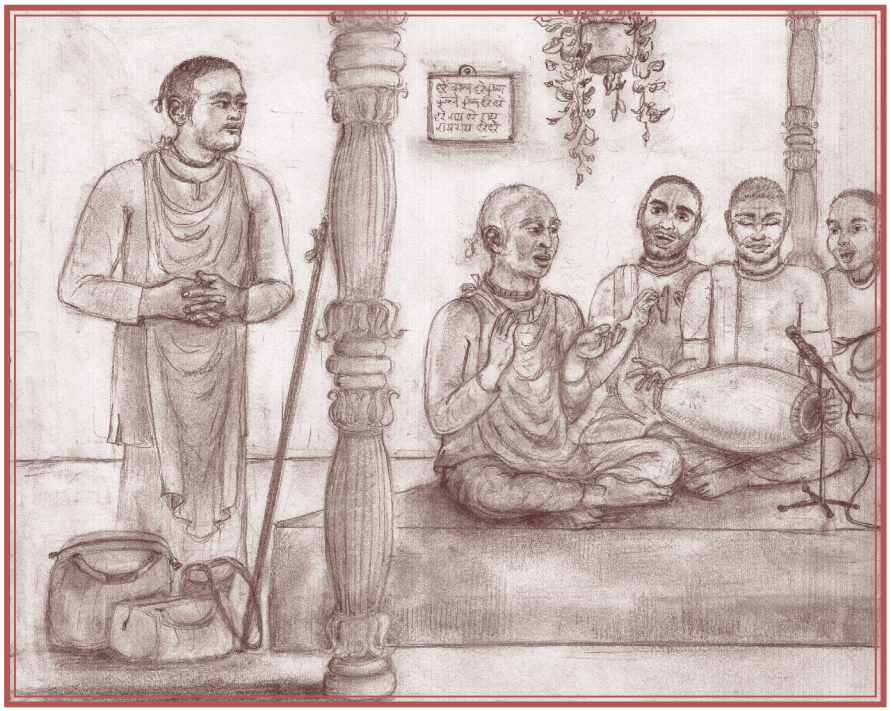
['माधव' नाम सबके मुख पर है। माधव सभी के हृदय में हैं। समस्त साधुगण अपने सभी कार्यों को करते हुए श्रीलक्ष्मीजी के स्वामी श्रीमाधव को सदा स्मरण करते हैं।]

यद्यपि इस श्लोक में 'माधव' नाम भगवान् श्रीकृष्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है, परन्तु श्रील यायावर गोस्वामी महाराज ने यह श्लोक गुरु महाराज के सन्दर्भ में कहा था एवं उनका अभिप्राय था, "सभी गुरुभ्राताओं के वचनों में एवं हृदय में श्रीमाधव महाराज उपस्थित हैं। सभी गुरुभ्राता श्रीमाधव महाराज को स्मरण करते हैं, कारण वे जितनी आवश्यकता हो, उतनी ही लक्ष्मी (अर्थात् धन) संग्रह कर सकते हैं। सभी गुरुभ्राता अपने समस्त कार्यों में श्रीमाधव महाराज को स्मरण करते हैं, अतः जब वे उपस्थित हैं, तब सभी कार्य पूर्णतया सम्भव हैं। किसी अन्य पर निर्भर होने की क्या आवश्यकता है?"

यह सुनकर गुरु महाराज समझ गए कि उनके सभी गुरुभ्राता इस महत् कार्य का दायित्व केवल उन्हें ही सौंपकर उन पर कृपा कर रहे हैं, इसलिए उन्होंने उन सभी को साक्षात् दण्डवत् प्रणाम ज्ञापन किया। इस प्रकार अत्यन्त हर्षपूर्वक उन्होंने श्रील प्रभुपाद के जन्म स्थान को संग्रह करने का सम्पूर्ण दायित्व स्वीकार किया।

उनकी सेवा निष्ठा

श्रील प्रभुपाद की आविर्भाव स्थली संग्रह करने के उपरान्त तथा जिस समय मठ का निर्माण कार्य हो रहा था, गुरु महाराज ने वहाँ पर १९७९ ई॰ में श्रील प्रभुपाद की आविर्भाव तिथि के उपलक्ष्य में एक उत्सव का आयोजन किया। गुरु महाराज ने अपने समस्त गुरुभ्राताओं को स्वहस्तलिखित निमन्त्रण पत्र भेजा जिसमें लिखा था, "कृपया इस उत्सव में उपस्थित होकर हमें आशीर्वाद प्रदान करें।" जो उत्सव में भाग लेने में समर्थ थे वे उत्सव से प्रायः एक अथवा दो दिन पूर्व पहुँच गये। श्रील यायावर गोस्वामी महाराज की ओर से कोई प्रत्युत्तर प्राप्त



नहीं हुआ था इसलिये गुरु महाराज को लगा कि डाक के माध्यम से भेजा गया निमन्त्रण पत्र खो गया है तथा उन्होंने शीघ्र ही उन्हें तार के माध्यम से निमन्त्रण भेजा। जैसे ही श्रील यायावर गोस्वामी महाराज को तार मिला उन्होंने अपना सामान बाँधा एवं उत्सव में योगदान देने हेतु जगन्नाथ पुरी के लिये चल पड़े।

साधारणतया जब भी कोई अतिथि अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचता है तो सर्वप्रथम वह यह जानना चाहता है कि अपना सामान कहाँ रखे, वह कहाँ स्नान करे तथा उसके रहने की व्यवस्था कहाँ पर है? किन्तु श्रील यायावर गोस्वामी महाराज का इस प्रकार का स्वभाव नहीं था। जब वह उत्सव में पहुँचे तब आने के साथ-ही-साथ अपने सामान को एक ओर रखकर उन्होंने सर्वप्रथम कीर्त्तन में योगदान दिया। उनका विचार था, "जब तक मठ में पहुँचकर मैं कोई सेवा नहीं करता हूँ, तब तक मुझे अपने रहने के लिए स्थान अथवा अपने सामान तक को रखने के स्थान की अपेक्षा करना किस प्रकार युक्तिसङ्गत है? सर्वप्रथम मुझे सेवा

करने दो उसके उपरान्त ही अपने रहने के स्थान के लिये पूछना उचित है।" इस प्रकार की सेवावृत्ति थी उनकी।

सदैव कृपा वितरण करना

जब कोई भी श्रीमद्भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज के दर्शन करने हेतु आता था तो वह उनके आने के साथ-ही-साथ उन्हें प्रसाद देते थे। एक समय वह एक ऐसे स्थान में रह रहे थे जहाँ आस-पास कहीं भी मौसमी नहीं मिलती थी। वहाँ एक दर्शनार्थी उनके लिये बहुत दूर से कुछ मौसमी फल लेकर आया। यद्यपि यह फल विशेष रूप से उनके लिये ही लाये गये थे किन्तु उन्होंने साथ-ही-साथ उसे टुकड़ों में काटकर उपस्थित भक्तों में वितरित कर दिया। उनका इस प्रकार का वैशिष्ट्य था।

चित्त-निर्मलकारी कीर्त्तन

श्रील प्रभुपाद द्वारा अपने शिष्यों को प्रदत्त अन्तिम उपदेशों में से एक यह था कि सब एक साथ मिलकर रूप-रघुनाथ की वाणी का प्रचार करें। इस उपदेश को ध्यान में रखते हुए गुरु महाराज प्रायः अपने गुरुभ्राताओं को कहते थे, "विधाता की इच्छानुसार हम सभी भिन्न-भिन्न स्थानों में रहने तथा विभिन्न संस्थान स्थापित करने के लिये बाध्य हुए हैं। किन्तु श्रील प्रभुपाद की इच्छा को पूरा करने के लिये जब कभी भी सम्भवपर हो हमें मिलना चाहिये।" इस प्रकार जब भी गुरु महाराज मठ में किसी उत्सव का आयोजन करते तो वह सदैव अपने गुरुभ्राताओं को निमन्त्रित करते थे तथा सभी को श्रील प्रभुपाद की शिक्षाओं एवं महिमा कीर्त्तन करने का सुयोग प्रदान करते थे।

ऐसे ही एक उत्सव के समय सभापति पद पर आसीन श्रीदुर्गानाथ वसु नामक एक गणमान्य न्यायाधीश ने अपने आसन से उठकर गुरु महाराज को बताया कि उसे किसी अन्य कार्यक्रम के लिये जाना पड़ेगा। अतएव रात्रि की सभा समाप्त होती है।

गुरु महाराज ने मुझे न्यायाधीश के साथ उनकी कार तक जाने का आदेश दिया तथा उन्हें कुछ प्रसाद देने के लिये भी कहा। न्यायाधीश ने ठाकुरजी एवं उपस्थित वैष्णवों को प्रणाम किया तथा उसके पश्चात् हम एक साथ उनकी कार की ओर चल पड़े। इसी बीच गुरु महाराज ने श्रील यायावार गोस्वामी महाराज को कीर्त्तन करने के लिये प्रार्थना की, कारण, समय के अभाव के कारण उन्हें कथा परिवेशन का सुयोग नहीं मिला था। गुरु महाराज की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए श्रील यायावर गोस्वामी महाराज ने खड़े होकर 'नारद मुनि, बजाय वीणा' कीर्त्तन का सुमधुर गान करना प्रारम्भ किया। तब तक न्यायाधीश कार में बैठ चुके थे तथा जाने के लिये प्रस्तुत थे। किन्तु श्रील महाराज का कीर्त्तन श्रवण करने के उपरान्त वह इस प्रकार से सम्मोहित हो गये कि कार से बाहर निकलकर सभा में अपने स्थान पर आकर बैठ गये।

कीर्त्तन समाप्त होने के उपरान्त न्यायाधीश ने गुरु महाराज से प्रार्थना करते हुए कहा, "कृपया कल इन संन्यासी को मेरे घर लेकर आइये। मैंने इससे पूर्व कभी भी

कीर्त्तन को सुनकर इस प्रकार के आनन्द का अनुभव नहीं किया जैसा मुझे अभी प्राप्त हुआ है। यह अत्यन्त मार्मिक एवं चित्त को निर्मलता प्रदान करने वाला कीर्त्तन था तथा मैं अपने सम्पूर्ण परिवार को इस आनन्द की अनुभूति करवाना चाहता हूँ। मैं कल कार भिजवा दूँगा। आप सभी कल कृपा करके इन महाराज के साथ कीर्त्तन के लिये मेरे घर पर पधारिये।"

'जीव' शब्द का अर्थ

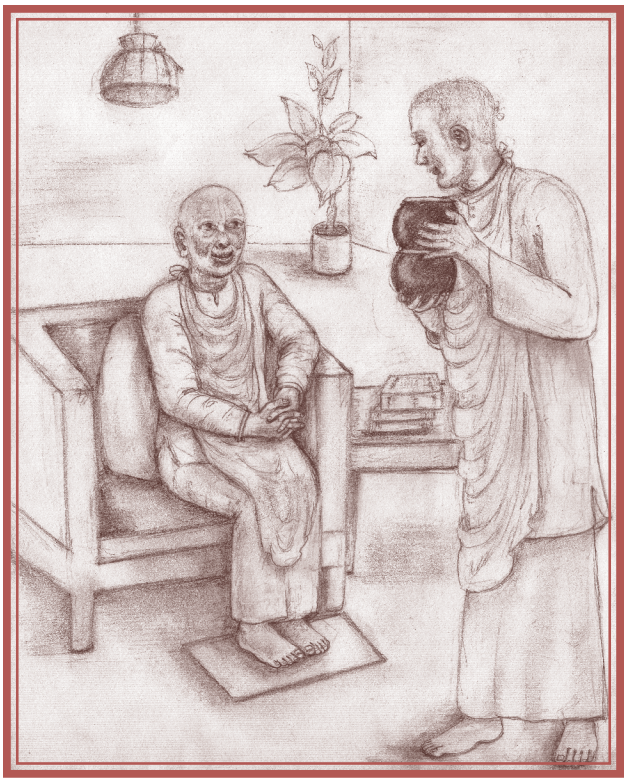
एक समय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ कोलकाता में आयोजित धर्मसभा में श्रील यायावर गोस्वामी महाराज ने विवेकानन्द द्वारा प्रचारित वाक्य 'जीवे प्रेम करे जेइ जन सेइ जन सेविछे ईश्वर अर्थात् जीव से जो व्यक्ति प्रेम करता है वास्तव में वही व्यक्ति ईश्वर की सेवा कर रहा है।' के विषय में अपना व्याख्यान प्रस्तुत किया।

श्रील महाराजने कहा, "क्या इस वाक्य में जीव शब्द मात्र मनुष्यों अर्थात् स्त्रियों एवं पुरुषों के लिये ही प्रयुक्त हुआ है? क्या बकरी, मुर्गी, मछली, पक्षी तथा अन्य प्राणी जीव नहीं हैं? क्या उनके कर्ण एवं चक्षु नहीं हैं? क्या आहत करने पर उनके देह से रक्त प्रवाहित नहीं होता? क्या वे मनुष्यों की भाँति आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन नहीं करते? यद्यपि वे जल एवं वन जैसे भिन्न-भिन्न स्थानों में वास करते हैं किन्तु उनमें भी प्राण हैं। अतएव विवेकानन्द के अनुगतजन ऐसे प्राणियों को क्यों खाते हैं? क्या वे अस्पताल एवं विद्यालय मात्र मनुष्यों के लिये इसलिये ही बनाते हैं क्योंकि उनका विचार है कि मनुष्य ही प्रेम का उपयुक्त अधिकारी है? वास्तव में चेतनता-प्राप्त प्रत्येक प्राणीमात्र ही जीव है। जब कोई भगवान् के तत्त्व को भली-भाँति समझ लेता है तो वह सरलता से यह अनुभव कर सकता है कि समस्त प्राणी भगवान् के अंश हैं। तब वह मात्र मनुष्यों से ही नहीं अपितु स्वाभाविक रूप से समस्त प्राणियों से प्रेम करता है।"

श्रील यायावर गोस्वामी महाराज के कथा परिवेशन के उपरान्त एक सज्जन व्यक्ति खड़ा हुआ एवं कहने लगा, "विवेकानन्द आप साधुओं से भिन्न था। वह सभी लोगों के मङ्गल के उद्देश्य से अस्पताल एवं विद्यालय निर्माण कार्य तथा अन्य प्रकार के दान-पुण्य आदि कार्यों में व्यापक स्तर पर सम्मिलित था। किन्तु हम गौड़ीय मठ के साधुओं को इस प्रकार के धर्मार्थ कार्य करते हुए कभी नहीं देखते।"

श्रील यायावर गोस्वामी महाराज ने तब सभापति के पद पर आसीन विश्वविद्यालय

"जब कोई भगवान् के तत्त्व को भली-भाँति समझ लेता है तो वह सरलता से यह अनुभव कर सकता है कि समस्त प्राणी भगवान् के अंश हैं।"



के प्राध्यापक श्रीनारायण गोस्वामी को इन सज्जन व्यक्ति की टिप्पणी का उत्तर प्रदान करने हेतु उन्हें थोड़ा और समय देने के लिये कहा। तथापि श्रीनारायण गोस्वामी ने कहा, "दोनों पक्षों के लिये तटस्थ होने के कारण मेरे द्वारा इनके व्याख्यान पर आलोचना करने से अच्छा होगा।" उस सज्जन व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए श्रीनारायण गोस्वामी ने कहा, "विवेकानन्द द्वारा प्रचारित वाक्य में आप जीव शब्द किसके लिये प्रयुक्त करते हो? बङ्गालियों के लिये जीव शब्द का एक अर्थ जिह्वा भी होता है तो क्या जिह्वा के स्वादानुसार इसको सब कुछ देकर इसकी सेवा करके आप भगवान् की सेवा कर रहे हो? मात्र मनुष्य ही नहीं अपितु समस्त प्राणी ही जीव हैं। तो फिर विवेकानन्द के अनुगतजन यदि समस्त जीवों से प्रेम करते हैं तो अण्डे, माँस, मछली इत्यादि का सेवन क्यों करते हैं?

"यदि विवेकानन्द के अनुगतजनों के लिये जीव शब्द का अर्थ मात्र मनुष्य है तो फिर बन्दीगृहों की क्या आवश्यकता है? क्या हमें सभी बन्दीगृहों को बन्द करके समस्त कैदियों को उनकी इच्छानुरूप उन्हें मद्यपान, नशीले पदार्थ इत्यादि उपलब्ध करवाकर उनकी सेवा नहीं करनी चाहिये? क्या यह वास्तविक जीव सेवा है? क्या यह भगवान् की सेवा के समान होगी? मैं आशा करता हूँ कि विवेकानन्द का विचार अपनी इन्द्रियों के वशीभूत अथवा अन्य प्राणियों को दुःख देने की अपनी दुष्कामनाओं पर नियन्त्रण नहीं रखने वाले व्यक्तियों की सेवा करने का नहीं होगा। बहुत समय पूर्व जब विवेकानन्द का जन्म भी नहीं हुआ था तब श्रीचैतन्य महाप्रभु ने शास्त्रों का सम्पूर्ण सार प्रदान किया, "जीवे दया, कृष्ण-नाम, सर्व-धर्म-सार अर्थात् जीवों के प्रति दया एवं कृष्ण-नाम करना ही समस्त शास्त्रों का सार है।"

जिस व्यक्ति ने श्रील यायावर गोस्वामी महाराज की कथा पर विरोध प्रकट किया था जब उसने श्रीनारायण गोस्वामी की व्याख्या को श्रवण किया तो उसने क्षमा प्रार्थना की तथा यह स्वीकार किया कि वह शास्त्रों के गूढ़ अर्थ को नहीं समझ

पाया था तथा बिना ठीक से समझे ही विवेकानन्द द्वारा प्रचारित शास्त्र विरुद्ध विचार के प्रति आकर्षित हो गया था।

उनका रन्धन एवं जगन्नाथ प्रसाद के प्रति प्रेम

यदि श्रील महाराज को यह ज्ञात होता कि कोई भक्त जगन्नाथ पुरी से आया है तो वह उनसे पूछते कि क्या वह अपने साथ कुछ प्रसाद लाया है तथा प्रसाद कहाँ है? उन्हें विशेष रूप से जगन्नाथ के चावल एवं दो दिन तक भी ठीक रहने वाला राहिनि-दाल प्रसाद अति प्रिय था। जब भी हमारा जगन्नाथ पुरी जाना होता तो उनके जगन्नाथ प्रसाद के प्रति प्रेम को जानकर उनकी सेवा के उद्देश्य से हम उनके लिये प्रसाद अवश्य ले आते थे।

श्रील महाराज रन्धन सेवा में भी अत्यन्त निपुण थे। जब उनके पास रन्धन के लिये कोई सामग्री नहीं होती तो भी वह कुछ-न-कुछ ढूँढ़कर तथा जो कुछ भी उपलब्ध होता उसी से रसोई कर देते। एक समय जब उनके पास चटनी बनाने हेतु उचित सामग्री नहीं थी तो उन्होंने एक पत्तों से युक्त वृक्ष को देखकर पूछा, "यह कौन सा वृक्ष है?" जब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह इमली का वृक्ष है तो उन्होंने उसी के पत्तों से चटनी बना दी।

सभी को भगवत्-सेवा में नियुक्त करना

श्रील यायावर गोस्वामी महाराज सभी को उनकी योग्यता एवं गुणों के आधार पर सेवा में नियोजित करते थे। जब भी कोई संन्यासी अथवा ब्रह्मचारी मठ में आता तो वे उसे हरि-कथा के परिवेशन हेतु कहते, जिसमें मैं भी सम्मिलित था। श्रील महाराज हमसे अत्यधिक ज्येष्ठ थे इसी कारण हमें उनके समक्ष कथा कहने में सङ्कोच होता था। हमारे सङ्कोच को लक्ष्यकर वह कहते, "चिन्ता मत करो। मैं यहाँ पर उपस्थित नहीं रहूँगा।" ऐसा कहकर वह ऊपर अपने कक्ष में चले जाते। बाद में वह हमें कहते कि उन्होंने हमारे द्वारा परिवेशित सम्पूर्ण कथा का श्रवण किया। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि जिस किसी से भी भेंट हो उन्हें शीघ्र ही भगवत् सेवा में नियोजित कर देना चाहिये।

मुझे आशीर्वाद एवं उत्साह प्रदान करना

एक समय श्रील यायावर गोस्वामी महाराज ने मेरे विषय में एक धर्मसभा में कहा, "यह भक्त किसी के भी प्रति ईर्ष्या, द्वेष अथवा शत्रुता का भाव नहीं रखता है। यह निर्मत्सर साधु है।"

यद्यपि वास्तविकता में मुझमें इस प्रकार के गुण नहीं हैं तथापि उन्होंने ऐसा कहकर मुझे एक दिन ऐसा बनने हेतु आशीर्वाद प्रदान किया है। गुरु महाराज की कृपा से मुझे श्रील यायावर गोस्वामी महाराज की सेवा का सुयोग प्राप्त हुआ। सेवा के माध्यम से मुझे उनका सङ्ग, उनके आचरण का समीप से दर्शन तथा उनका स्नेहमय आशीर्वाद प्राप्त हुआ।



त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज का नित्यलीला में प्रवेश

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज
द्वारा सम्पादित

श्रील प्रभुपाद के स्नेहपात्र

यह हमारे मर्मान्तक दुःख का विषय है कि श्रील नरोत्तम दास ठाकुर महाशय की तिरोभाव–तिथि पूजा के दिन अस्मदीय परमाराध्यतम श्रीश्रीगुरुपादपद्म के परम प्रियतम स्नेहपात्र हमारे सतीर्थवर परम पूज्यपाद त्रिदण्डिगोस्वामी श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज इस संसार को त्यागकर नित्य लीला में प्रविष्ट हो गये हैं। श्रील प्रभुपाद के अन्तिम संन्यासी शिष्य श्रील महाराज, सन्ध्या में प्रायः छः बजे मेदिनीपुर स्थित श्रीश्यामानन्द गौड़ीय मठ में अपने आश्रित मठवासी भक्तों के द्वारा उच्च स्वर में किये जा रहे महासङ्कीर्त्तन के मध्य चेतनायुक्त अवस्था में श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग–गान्धर्विका–गिरिधारी" के श्रीचरणों का स्मरण करते–करते नित्यलीला में प्रवेश कर गये।

श्रीगुरुपादपद्म की कृपा–प्राप्ति

पूज्यपाद महाराज ने स्वयं सम्पादित 'श्रीश्रीभागवत–गीतामृत' ग्रन्थ में 'श्रीगुरुकृपालाभ' नामक गीतामृतमें लिखा है—

"सद्गुरु सम्बन्ध आर भागवतगाथा।
पुरीधामे गिया आमि पाइनु सर्वथा॥
जगन्नाथ दीनबन्धु पतितपावन।
आमा' आकर्षिया दिला सद्गुरु चरण॥
आमा बिना गति नाइ जानिनु जखन।
सद्गुरु अन्वेषणे छुटिनु तखन॥
जगन्नाथ धामे मोर श्रीगुरुचरण।
तेरश' तेतिश साले पाइनु दरशन॥
ॐ श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती विष्णुपाद।
तिनिइ आमार गुरु श्रील प्रभुपाद॥

[पुरीधाम में जाने पर मुझे सब कुछ अर्थात् एक सद्गुरु के साथ सम्बन्ध एवं भगवद्–कथा श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्रीजगन्नाथ दीनों के बन्धु एवं पतितपावन हैं। मुझ को आकर्षित कर उन्होंने मुझे सद्गुरु के श्रीचरणों की सेवा प्रदान की। जब मुझे यह अनुभव हुआ कि सद्गुरु के बिना सद्गति सम्भव नहीं है, तब मैं सद्गुरु को ढूँढ़ने में रत हुआ था। वर्ष १३३३ बङ्गाब्द अर्थात् १९२६ ई॰ में सर्वप्रथम मुझे अपने गुरुदेव ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद के श्रीचरणों का साक्षात्कार हुआ।]

उनके द्वारा रचित उक्त कविता से हम जान सकते हैं कि वह सद्गुरु के चरणों का अन्वेषण करते–करते श्रीजगन्नाथ क्षेत्र में आकर साक्षात् जगदीश्वर श्रीजगन्नाथदेव के श्रीचरणों में शरणागत हुए थे। शरणागत–वत्सल परमकरुणामय श्रीजगन्नाथदेव ने ही उन्हें सद्गुरु का सन्धान प्रदानकर अपने अभिन्न प्रकाश–विग्रह परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के श्रीचरणों के सान्निध्य में पहुँचाने की व्यवस्था कर दी—

"गुरु कृष्णरूप हन शास्त्रेर प्रमाणे।
गुरुरूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे॥
चै॰च॰ (आदि-लीला १.४५)

[शास्त्र के प्रमाणानुसार श्रीगुरु कृष्ण का ही स्वरूप हैं तथा कृष्ण श्रीगुरुरूप में भक्तों पर कृपा करते हैं।]

आविर्भाव एवं बाल्यकाल

श्रील महाराज मेदिनीपुर जिले के अन्तर्गत काँथि उपमण्डल के दुरमुठ नामक ग्राम में एक स्वधर्मनिष्ठ 'पाण्डा' उपाधिविशिष्ट ब्राह्मण-परिवार में आविर्भूत हुये थे। भगवद्भक्त माता-पिता शिशुकाल से ही पुत्ररत्न के स्वभावसिद्ध भगवद्-अनुराग का दर्शन करके अत्यन्त विस्मित होते थे तथा भगवान् के श्रीचरणों में सर्वदा उनके भक्तिमय दीर्घ जीवन की प्रार्थना करते थे।

यथासमय उन्होंने विद्या-अभ्यास आरम्भ किया। बालक की असामान्य प्रतिभा को देखकर शिक्षक और अभिभावक सभी मुग्ध हो जाते थे। क'छ वर्षों तक इसी प्रकार विद्यानुशीलन करते-करते बालक की स्वतःसिद्ध भगवद्-भजन की स्पृहा अत्यन्त प्रबल हो उठी। मानो भगवद्-प्रेरित होकर ही उन्होंने श्रीपुरुषोत्तम धाम में उपस्थित होकर वहाँ श्रीपुरुषोत्तम जगन्नाथदेव की अपार कृपा से उनके निजजन एक सद्गुरु के श्रीचरणों के आश्रय का सौभाग्य प्राप्त किया। श्रीहरि वाञ्छाकल्पतरु हैं तथा अपने भक्त की आन्तरिक इच्छा को कदापि अपूर्ण नहीं रखते, अपितु शीघ्रातिशीघ्र ही उसे पूर्ण कर देते हैं।

एक सुदृढ़ साधक का आदर्शमय चरित्र

१९२६ ई॰ में श्रीधाम मायापुर में परममङ्गलमय श्रीश्रीगौराविर्भाव-तिथि के शुभ दिन श्रीगुरुदेव से श्रीहरिनाम महामन्त्र और इष्टमन्त्र दीक्षा प्राप्ति के पश्चात् श्रील महाराज श्रीसर्वेश्वर ब्रह्मचारी के नाम से परिचित हुए। श्रील महाराज दीक्षा प्राप्ति के पश्चात् श्रील प्रभुपाद के निर्देशानुसार श्रीधाम मायापुर में स्थित आकर-मठराज श्रीचैतन्य मठ के मूल-मन्दिर में श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारी की त्रिसन्ध्या अर्चनादि सेवा को विशेष निष्ठा के साथ सम्पादन करने में नियुक्त हुये। साथ ही वे उक्त मठ में स्थित पराविद्या पीठ में श्रीहरिनामामृत व्याकरण आदि शास्त्रों का भी विशेष रुचि के साथ अध्ययन करने लगे। निद्रा-आलस्य, प्रजल्प आदि में वृथा समय नष्ट नहीं करके श्रीगुरु के द्वारा प्रदत्त भजन-क्रिया के अनुष्ठान में, श्रीहरि-गुरु-वैष्णव सेवा और श्रीगीता-भागवतादि भक्तिशास्त्रों के अनुशीलन में अपना समस्त समय व्यतीत करते हुए उन्होंने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का महत्-आदर्श प्रदर्शित किया है।

वह परम निर्मल पवित्र चरित्र, शान्त-सौम्य मधुर मूर्त्ति थे एवं सबके साथ ही उनका सरलतापूर्ण सुकोमल व्यवहार था। मठवासी वैष्णव एवं आगन्तुक भगवद्-कथा श्रवण के इच्छुक सज्जन उनके श्रीमुख से सरल भाषा में सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन तत्त्व के विषय में सद्-शास्त्र सिद्धान्त श्रवणकर बहुत आकृष्ट होते थे। वह अति सुकण्ठ से युक्त थे। उनके मधुमिश्रित कण्ठ

से मधुमयी महाजन-गीति को श्रवण करके श्रोता अत्यन्त मुग्ध और आकृष्ट-चित्त हो जाते थे।

अनन्त वैष्णव गुणों से मण्डित

शास्त्र कहते हैं- 'कृष्णभक्ते कृष्णेर गुण सकलि सञ्चरे - कृष्ण अपने भक्त में अपने समस्त गुणों का सञ्चार करते हैं'। वस्तुतः श्रील महाराज वैष्णवोचित अशेष गुणोंसे अलंकृत थे। शास्त्रों के सुकठिन दार्शनिक तत्त्वों की वह इस प्रकार सुन्दर, सरल भाषा में व्याख्या करते थे कि उनके श्रीमुख से अपूर्व भाषण अथवा गीता-भागवतादि शास्त्र-ग्रन्थों का पाठ और व्याख्या श्रवण करके पण्डित-अपण्डित सभी श्रोता अत्यन्त मुग्ध हो जाते थे तथा पुनः-पुनः श्रवण करने की आकांक्षा प्रकाशित करते थे। दक्षिण कोलकाता में स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में निमन्त्रित विद्वत्जन-मण्डित महती सभा में हमने देखा है कि पूज्यपाद यायावर महाराज की वक्तृता सभापति, प्रधान-अतिथि और सारग्राही श्रोतावृन्द सभी का चित्त विशेष रूप से आकर्षित करती थी।

उनके द्वारा रचित ग्रन्थ विशेष रूप से अनुशीलन-योग्य

श्रील महाराज ने अपनी अस्वस्थ-लीला प्रकाश के समय में भी अपने सुपण्डित शिष्यों की सहायता से कुछ ग्रन्थों का प्रकाशन किया। उनके द्वारा सम्पादित ग्रन्थों में 'श्रीश्रीभागवत-गीतामृत' नामक ग्रन्थ अन्यतम है, जिसकी प्रथम एवं द्वितीय धारा में उनकी स्वरचित गीति प्रकाशित हुयी है। उसमें गीता एवं चतुःश्लोकीय भागवत की कविता के रूप में व्याख्या सभी के लिये ही अनुशीलन योग्य है।

महादुर्दिन, महादुर्दैव

आज वास्तव में ही उनके समान एक परमभक्त सुहृत्वर के अभाव में हृदय में अति शून्यता का अनुभव हो रहा है। गौड़ीय वैष्णवजगत् क्रमशः भक्तिरसपात्र भक्त-भागवतों से शून्य हो रहा है। श्रीमन्महाप्रभु की शुद्धभक्ति-सिद्धान्तवाणी के सारग्राही वक्ताओं और श्रोताओं की संख्या का कम होना जगत् के लिये महाक्षति, महादुर्दिन, महादुर्दैव है। इस हानि की पूर्त्ति मानो असम्भव है, इस दुर्दिन का अन्त एवं सुदिन का समागम बहुत दूर प्रतीत होता है।

क्षति की पूर्त्ति नितान्त असम्भव

कृष्ण कृपापूर्वक अपने जिन समस्त निजजनों को आकर्षित करके उन्हें नित्यलीला में प्रविष्ट करा रहे हैं, पुनः कृष्ण के ही द्वारा कृपा करके उन्हें यथासमय इस मर्त्यधाम में प्रेरित नहीं करने पर माया द्वारा आबद्ध जगत् के जीवों के ये दुर्दिन अन्य किसी प्रकार से भी समाप्त नहीं होंगे। ठाकुर हरिदास के अप्रकट लीला प्रकाश करनेपर श्रीमन्महाप्रभु ने उनके विरह में विह्वल होकर कहा था—

'कृपा करि कृष्ण मोरे दियाछिल सङ्ग।
स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा हैल सङ्ग भङ्ग॥'

चै॰च॰ (अन्त्य-लीला ११.९४)

[श्रीकृष्ण ने अतिकृपापूर्वक मुझे (श्रील हरिदास ठाकुर का) सङ्ग प्रदान किया था। आज श्रीकृष्ण की स्वतन्त्र इच्छा से ही मेरा सङ्ग भङ्ग हो गया।]

'हरिदास आछिलो पृथ्वीर रत्न-शिरोमणि।
ताहा बिना रत्न-शून्या हइल मेदिनी॥'

चै॰च॰ (अन्त्य-लीला ११.९७)

[श्रील हरिदास पृथ्वी पर विराजित सर्वोत्तम रत्न-स्वरूप थे, हरिदास के बिना यह पृथ्वी रत्न से शून्य हो गयी है।]

वास्तव में ही नित्यलीलाप्रविष्ट त्रिदण्डिगोस्वामी श्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराज, नित्यलीलाप्रविष्ट त्रिदण्डिगोस्वामी श्रीमद्भक्तिहृदय वन महाराज, नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीमद् कृष्णदास बाबाजी महाराज एवं नित्यलीलाप्रविष्ट त्रिदण्डिगोस्वामी श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज आदि वैष्णव समस्त विश्व के उद्धारक हैं तथा उनके अभाव की पूर्त्ति सर्वथा असम्भव है। उनकी तुलना केवलमात्र उनसे ही हो सकती है।

मुझसे कोटि गुणा अधिक श्रेष्ठ

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट पूज्यपाद त्रिदण्डिगोस्वामी श्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराज एवं पूज्यपाद यायावर गोस्वामी महाराज परस्पर घनिष्ठ मित्र थे। पूज्यपाद माधव महाराज के समस्त मठों में आयोजित होने वाले सभी विशिष्ट उत्सवों में श्रील यायावर गोस्वामी महाराज उपस्थित होते थे तथा कृपापूर्वक अपने गुरुभ्राताओं एवं उनके शिष्यों को अपने सङ्ग से आनन्द प्रदान करते थे। विशेषकर हमारे कोलकाता स्थित मठ में वे उत्सवों के अतिरिक्त भी आवागमन करते थे तथा हमें अपने दिव्य सङ्ग का सौभाग्य प्रदान करते थे। आज उनके अन्तरहृदय के निष्कपट स्नेहयुक्त समस्त वचनों का स्मरणकर हृदय अत्यन्त व्याकुल, अधीर हो रहा है। हम श्रील महाराज को परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के 'कनिष्ठ पुत्र' के रूप में मनन करते थे, जिनको श्रील प्रभुपाद विशिष्ट आदर एवं हार्दिक स्नेह प्रदान करते थे। अप्रकट के समय श्रील महाराज की आयु प्रायः ७८ वर्ष थी। यद्यपि आयु में वे मुझसे कुछ कनिष्ठ थे परन्तु ज्ञान, गुणों एवं साधन-भजन में वे मुझसे कोटि गुणा अधिक वरिष्ठ थे।

उनके श्रीचरणों में सकातर प्रार्थना

हाय! श्रील महाराज इतना शीघ्र ही हमें चिरकाल के लिये दुःख के सागर में निमज्जित कर चले जायेंगे, यह दुर्भाग्यवश हम कभी कल्पना भी नहीं कर पाये। मैं इसी कारण उनके अन्तिम दर्शनों से भी वञ्चित हो गया।

समस्त गुरुभ्राताओं के प्रति निश्चित ही उनकी समान दृष्टि थी परन्तु मुझ समान दीन-दरिद्र दुर्भाग्ययुक्त अधम जीव के प्रति उनकी स्नेहमयी दृष्टि मानो कुछ अधिक परिमाण में थी। अदोषदर्शी वैष्णव-शिरोमणि श्रील महाराज हमारी जानबूझकर अथवा अज्ञानतावश की गयी समस्त त्रुटि-विच्युतियों का संशोधन कर हम पर अपनी अलौकिक कृपा वर्षण करें, यही उनके श्रीचरणों में हमारी सकातर प्रार्थना है।

श्रील महाराज परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के निजजन हैं, श्रील प्रभुपाद ने निश्चय ही उनको श्रीराधागोविन्द की नित्यलीला में प्रवेशाधिकार प्रदान किया है। श्रील महाराज से प्रार्थना है कि वे इस अधम के लिये भी करुणामय श्रील प्रभुपाद के श्रीचरणों में उनकी करुण कृपा-कटाक्ष प्रदान करने के लिये प्रार्थना कर दें।

उनके जीवन का लक्ष्य एवं उसके लिये यत्न

परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के अप्रकट के पश्चात् उनके शिष्य हम गुरुभ्राताओं में परस्पर मतभेद उत्पन्न हो गये तथा एकजुट रहने का भाव क्षीण होने के कारण अनेक गुटों का निर्माण हो गया। परन्तु श्रील महाराज ने अपने सम्पूर्ण जीवन भर श्रील प्रभुपाद का मनोऽभीष्ट पूर्ण करने के लिये सतत प्रयास किया। श्रील प्रभुपाद का निर्देश था, "आप अभी अद्वय-ज्ञान तत्त्व की अप्राकृत इन्द्रियतृप्ति के उद्देश्य से आश्रय-विग्रह के आनुगत्य में परस्पर मिलजुलकर रहना।" इस वाणी का अनुसरण किस प्रकार से सम्भवपर हो सकता है, श्रील महाराज उसके विषय में सतत चिन्तायुक्त एवं चेष्टापरायण रहते थे।

शुद्ध राग-भक्ति के प्रति उनकी सुदृढ़ निष्ठा

श्रील महाराज की नामभजन के प्रति निष्ठा नितान्त आदर्श-स्वरूप थी। अत्यन्त अस्वस्थ-लीला-अभिनय के समय भी उन्होंने प्रतिदिन एक लाख हरिनाम ग्रहण करने का आदर्श स्थापित किया। परमाराध्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रील प्रभुपाद दोनों महाजनों ने ही नाम में रुचि के आधार पर ही वैष्णवता का तारतम्य निर्धारित करने का निर्देश दिया है। उन दोनों ने ही नाम-भजन-निष्ठा रहित रागानुगा भक्ति के अभिनय को कदापि राग-भक्ति के रूप में स्वीकार नहीं किया।

भजन में उत्साह प्रदान करने के लिये प्रार्थना

श्रील महाराज के अभाव में उनके द्वारा स्थापित मठ-मन्दिर मानो निष्प्राण हो गये हैं। हम भी उनके समान एक वैष्णव-सुहृत् के अभाव में मृतप्राय ही हो गये हैं। उनके श्रीचरणों में यही एकान्त प्रार्थना है कि अदृष्ट रहते हुये भी वे अपने आश्रित जनगण में शक्ति का सञ्चार कर उन्हें पुनर्जीवित करें तथा हमको भी अपना कृपा-कटाक्ष प्रदानकर भजन के प्रति उत्साह प्रदान करें। पूज्यपाद माधव गोस्वामी महाराज जो उनके परम सुहृत् गुरुभ्राता हैं, उनके चरणाश्रित उनके समस्त शिष्यवर्ग, उनके मठ के वर्त्तमान अध्यक्ष आचार्य- ये सभी ही पूज्यपाद यायावर गोस्वामी महाराज के स्नेहपात्र हैं। वे सभी उनके विरह में कातर होकर उनकी कृपा की प्रार्थना कर रहे हैं। उन सभी के प्रति वे अपने नित्यधाम से ही स्नेहाशीर्वाद वर्षण करें, यही सभी द्वारा सकातर प्रार्थना है।

श्रीचैतन्यवाणी (वर्ष २४, संख्या १०) में प्रकाशित एक लेख से अनुवादित



श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज



सम्पूर्ण शरणागति अर्थात् पीछे कुछ नहीं छोड़ना

श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज (उस समय श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय) सम्पूर्ण रूप से मठवास करने से पूर्व भारतीय रेलवे में नौकरी करते थे तथा उन्हें रेलवे की ओर से रहने के लिये एक स्थायी स्थान मिला हुआ था जिसमें १९२१ ई॰ में श्रील प्रभुपाद भी तीन दिन रहे थे। श्रील प्रभुपाद के तीन दिन के दिव्य सङ्ग के प्रभाव से श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय ने अपने जीवन को श्रील प्रभुपाद की सेवा हेतु समर्पित करने का निश्चय किया। मुण्डकोपनिषद् (१.२.१२) के 'गुरुमेवाभिगच्छेत्' श्लोक के सिद्धान्त का पालन करते हुए उन्होंने समझा कि गुरु के पास सम्पूर्ण रूप से शरणागत होकर ही जाना चाहिये जिससे कि गुरु-गृह में एक बार जाकर वहाँ से पुनः पीछे छोड़ी गयी किसी वस्तु को लेने के लिये नहीं जाना पड़े। सब कुछ साथ में ले जाने से पुनः अन्ततः एक बार जाना पड़ेगा, ऐसी बात मन में नहीं आयेगी। अतएव वे अपने घर से च व तु अर्थात् मेज, कुर्सी, अलमारी इत्यादि सब कुछ ट्रक में भरकर मठ में ले आये तथा इस प्रकार 'गुरुमेवाभिगच्छेत्' का आदर्श प्रकाशित किया। इसी कारण वे पीछे कुछ भी छोड़कर नहीं गये।

श्रीमन्महाप्रभु के प्रियजन

श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज के साथ भिक्षा संग्रह करने तथा गौड़ीय मठ से प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'गौड़ीय' के नवीन ग्राहकों को संग्रह करने के लिये विभिन्न कार्यालयों में जाते थे। उन दिनों साप्ताहिक गौड़ीय में श्रीमद्भागवतम् का कुछ-कुछ अंश

प्रकाशित होता था तथा किसी-किसी स्थान पर श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर एवं श्रील भक्तिविनोद ठाकुर आदि गौड़ीय वैष्णव आचार्यों का चित्र भी होता था।

एक दिन एक व्यक्ति ने श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज से प्रश्न किया, "भागवत को तो भगवान् का अभिन्न कलेवर कहा जाता है तब फिर उसके भीतर किसी मनुष्य का चित्र क्यों रहेगा?"

जिन किन्हीं कारणों से श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने तो कोई उत्तर नहीं दिया किन्तु श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय ने अत्यधिक सटीक उत्तर दिया, "ग्रन्थ-भागवत एवं भक्त-भागवत के वैशिष्ट्य तथा भक्तों के स्वभाव के विषय में बतलाने वाले बहुत से शास्त्रीय निगूढ़ रहस्यों को तुमने सम्पूर्ण रूप से नहीं समझा है, जैसा कि –

साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै-
रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती
श्रीगुर्वाष्टकम् (७)

[निखिल शास्त्रों ने जिनका साक्षात् हरि के अभिन्न विग्रह रूप से गान किया है एवं साधुजन भी जिनकी उसी प्रकार से भावना करते हैं, जो भगवान् के एकान्त प्रिय हैं, मैं उन्हीं (भगवान् के अचिन्त्य-भेदाभेदप्रकाश विग्रह) श्रीगुरुदेव के पादपद्मों की वन्दना करता हूँ।]

"इन सब को जाने बिना तुम्हें कैसे समझ आयेगा कि साप्ताहिक गौड़ीय में प्रकाशित चित्र मनुष्यों के नहीं बल्कि मुक्त महापुरुषों के हैं तथा यह भी तुम्हें नहीं समझ आयेगा कि ये मुक्त महापुरुष भगवान् से अपने सम्बन्ध के कारण उनसे उसी प्रकार अभिन्न हैं जिस प्रकार श्रीमद्भागवतम् भगवान् से अभिन्न है।"

अन्त में उन्होंने कहा, "मैं इतने उच्च ब्राह्मण कुल से हूँ कि तुम्हारे चौदह पीढ़ी के पुरुष स्वयं को कृतार्थ मानेंगे यदि उनमें से किसी एक को भी उस स्थान पर जल पीने को मिले जहाँ मैंने पेशाब किया है। परन्तु तुम मेरे उन प्रभु पर जिनके श्रीचरणों में मैंने सिर झुकाया तथा उस पत्रिका पर जिसे मैं वितरण करने के लिये आया पर प्रश्न उठा रहे हो!"

सन्ध्या के समय श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने श्रील प्रभुपाद को बतलाया कि इस प्रकार किसी ने प्रश्न किया था तथा मैं तो उत्तर नहीं दे पाया किन्तु मेरे साथ गये नये भक्त श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय ने यह उत्तर दिया।

बात सुनने के साथ-ही-साथ श्रील प्रभुपाद के नेत्रों से अश्रुओं की धारा बह निकली। श्रील प्रभुपाद ने श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय को उपलक्ष्य करके कहा, "श्रीमन्महाप्रभु ने हमारी ओर से बात बोलने के लिए अपने एक निजजन को प्रेरित किया है।"

हम श्रील प्रभुपाद के जीवन-चरित्र में सुनते हैं कि श्रीमन्महाप्रभु ने सपार्षद उनके समक्ष स्फुरित होकर शुद्ध भक्ति के विपुल



प्रचार हेतु श्रील प्रभुपाद से धन, जन आदि प्रेरित करने की बात कही थी तथा यहाँ श्रील प्रभुपाद ने स्वयं स्वीकार किया कि श्रीमन्महाप्रभु ने अपने निजजन श्रीअतुलचन्द्र बन्धोपाध्याय को प्रेरित किया है।

अन्यों की श्रद्धा को वास्तव वस्तु में लगाना सर्वोत्तम भिक्षा-संग्रह

श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय सदैव कोट-पैन्ट पहनकर भिक्षा-संग्रह करने जाते थे। एक दिन वे किसी सेठ के घर गये। घण्टी बजाने पर स्वयं सेठजी ही बाहर आये।

जब श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय ने अपने गौड़ीय मठ से आने का परिचय दिया तो सेठजी ने कहा, "मेरा गौड़ीय मठ में विश्वास नहीं है।"

सेठजी की बात को अनसुना करके श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय घर के अन्दर की ओर चल दिये।

सेठ जी ने उन्हें पुनः कहा, "अरे भाई, तुमने सुना नहीं, मेरा गौड़ीय मठ में विश्वास नहीं है।"

श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने तब भी कुछ नहीं कहा और भीतर रखी कुर्सी पर बैठ गये।

सेठजी ने तीसरी बार चिढ़ते हुए अपनी बात को दोहराया, "मैंने कहा मेरा गौड़ीय मठ में विश्वास नहीं है!"

अब की बार श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने प्रत्युत्तर में कहा, "हाँ, हाँ। मैंने सुन लिया है कि तुम्हारा गौड़ीय मठ में विश्वास नहीं है, इसीलिए मैं तुम्हारा विश्वास उत्पन्न कराने के लिए यहाँ आया हूँ। यदि तुम्हारा विश्वास होता तो क्या तुम गौड़ीय मठ में जाये बिना रह सकते थे?" तब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उन्हें गौड़ीय मठ के वैशिष्ट्य, गौड़ीय मठ के उद्देश्य आदि के विषय में संक्षेप में बताया।

श्रीअतुलचन्द्र प्रभु के पाण्डित्यपूर्ण वक्तव्य से अत्यन्त प्रभावित होकर सेठजी ने कृतज्ञतापूर्वक उन्हें एक बहुत बड़ी धनराशि प्रणामी स्वरूप देनी चाही। श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने प्रणामी को अस्वीकार करते हुए कहा, "मेरी बात पर विश्वास करो, मैं प्रणामी लेने नहीं बल्कि आपकी श्रद्धा को उत्पन्न कराने के लिये ही आया था।"

सेठजी ने अत्यधिक सम्मानपूर्वक श्रीअतुलचन्द्र प्रभु को स्वयं अपनी गाड़ी चलाकर गौड़ीय मठ तक छोड़ा और श्रील प्रभुपाद के दर्शन किये तथा उनके हाथ में ही प्रणामी दी एवं तबसे प्रायः नित्यप्रति गौड़ीय मठ में आने लगे।

एक अपराधी का उद्धार

एक समय श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर कानपुर में अपने गणों के साथ प्रचार के उद्देश्य से गये

थे। श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय कानपुर में भिक्षा-संग्रह रूपी सेवा कार्य से जब थोड़ी देर के लिये बाहर गये, उसी बीच कानपुर के जिलाधीश श्रील प्रभुपाद के दर्शनों के लिये आये तथा वार्त्तालाप करते समय उन्होंने हेयता व्यक्त करते हुए श्रील प्रभुपाद से कहा, "आपके साथ अधिकांश उच्च शिक्षित व्यक्ति हैं। क्या आपका मिशन शिक्षित को भिक्षुक बनाना है?" यह बात बोलकर जिलाधीश अशिष्टतापूर्वक वहाँ से चले गये।

बाद में जब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु श्रील प्रभुपाद के समक्ष आये तो श्रील प्रभुपाद ने उन्हें जिलाधीश द्वारा कही गयी बात से अवगत कराया। श्रीअतुलचन्द्र प्रभु को श्रील प्रभुपाद की बात सुनकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो श्रील प्रभुपाद जिलाधीश के कटाक्ष से कुछ दुःखी हैं। वे साथ-ही-साथ ताँगे पर बैठकर जिलाधीश के निवास स्थान पर पहुँच गये तथा उन्होंने जिलाधीश से कहा, "तुमने श्रील प्रभुपाद जैसे महापुरुष, भगवान् के निजजन को जैसी बात बोली है, उससे तुम्हारा सर्वनाश अवश्यम्भावी है, तुमने आग से खेलने का प्रयास किया है, इससे अब तुम्हारी चौदह पीढ़ियाँ नरक यातना भोग करेंगी।"

जिलाधीश श्रीअतुलचन्द्र प्रभुकी बातें सुनकर घबरा गये तथा उनसे अपने कर्त्तव्य के विषय में अनुनय-विनय पूर्वक पूछताछ करने लगे। तब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उनसे साथ-ही-साथ श्रील प्रभुपाद से क्षमा-प्रार्थना तथा सेवा करने का परामर्श दिया।

जिलाधीश श्रीअतुलचन्द्र के साथ ही श्रील प्रभुपाद के निकट आये। तब श्रीअतुलचन्द्र ने श्रील प्रभुपाद से कहा, "प्रभुपाद, आप जिलाधीश के प्रति प्रसन्न हो जाइये, जिससे उनका आपके चरणों में कोई अपराध न रह जाये।"

श्रील प्रभुपाद ने जिलाधीश को बहुत कथा श्रवण करायी तथा जिलाधीश ने ५०० रुपये देकर श्रील प्रभुपाद की सेवा की।

जिलाधीश को अपराध से बचाने के लिये श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने बहुत बड़ा दायित्व ग्रहण किया। उपरोक्त प्रसङ्ग में श्रीअतुलचन्द्र प्रभु का श्रील प्रभुपाद के चरणकमलों में दृढ़ विश्वास, श्रील प्रभुपाद के चरणकमलों में अपराध करने वाले व्यक्ति की दुर्गति, अपराधी के उद्धार का उपाय तथा उसके उद्धार, उसके मङ्गल की चेष्टा आदि अनेक गुण प्रकाशित हुए हैं।

श्रील प्रभुपाद एवं उनके आश्रितों का प्रतिरक्षण

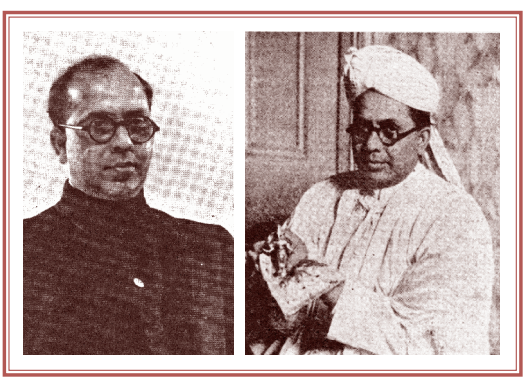
एक समय जब श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर सपरिकर श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा करते हुए श्रीधाम वृन्दावन पहुँचे, तब उस समय श्रीबाँके बिहारी मन्दिर के प्रबन्धक श्रीहलगु लाल ने वृन्दावन के प्रायः सभी प्रधान मन्दिरों में यह सम्वाद भेजा, "श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती अपने साथ महात्मा गाँधी के हरिजनों अर्थात् धोबी, भङ्गी, मेहतर, चमार आदि सभी जातियों के लोगों को अपने साथ लेकर चल रहा है। अतएव उन्हें मन्दिर में प्रवेश नहीं करने दिया जाये।"

जब श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय के कान में यह बात पड़ी, तब वे अपने साथ ब्राह्मण

"श्रील प्रभुपाद ने विशुद्ध दैव-वर्णाश्रम धर्म का प्रवर्त्तन किया है अर्थात् सामाजिक वर्ण एवं आश्रम का निर्धारण व्यक्ति की जाति अथवा कुल से नहीं अपितु उसके आन्तरिक गुणों पर आधारित है।"

कुल में आविर्भूत श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज, गुरु महाराज (उस समय श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी), श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी (बाद में श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज), श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी (बाद में श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज) आदि अनेक गुरुभ्राताओं को साथ में लेकर श्रीराधा-मदनमोहन मन्दिर के गोसाईं से भेंट करने के लिए गये।

श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय ने श्रीगोसाईंजी से वार्त्तालाप करते हुए उनसे पूछा, "क्या हम लोग जिन्होंने ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण किया है आपको भ्रष्ट, पतित आदि प्रतीत होते हैं अथवा विशुद्ध वैष्णव धर्म को पालन करने के लिये दृढ़व्रती होकर



हमने शास्त्रीय आचरण ही किया है? श्रील प्रभुपाद ने विशुद्ध दैव-वर्णाश्रम धर्म का प्रवर्त्तन किया है अतएव उनके विषय में प्राकृत विचार बुद्धि रखने पर जगत् का अकल्याण ही होगा।

"और हाँ, मैं तुम्हें स्मरण कराना चाहता हूँ कि मैं अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय हूँ जिसकी कन्या का हाथ माँगने के लिये आये तुम्हारे कुल के व्यक्तियों को मैंने यह कहकर मना कर दिया था कि हम कुलीन ब्राह्मण होने के कारण आपके साथ पंक्ति भोजन करने को भी घृणित मानते हैं तब फिर अपनी कन्या का विवाह आपके कुल में कदापि सम्भव नहीं।"

उनके द्वारा परिचय देने मात्र से ही गोसाईं जी ने क्षमा-प्रार्थना करनी प्रारम्भ कर दी तथा उनके साथ श्रील प्रभुपाद के दर्शन हेतु गये। उसके पश्चात् स्वयं श्रील प्रभुपाद को समस्त यात्रियों के साथ श्रीराधा-मदनमोहन जी के दर्शन हेतु लेकर आये तथा उन्हें अत्यधिक मर्यादा प्रदान की। तब फिर श्रीराधा-मदनमोहन के गोसाईं की देखादेखी अन्यान्य समस्त देवालयों के गोसाइयों ने भी श्रील प्रभुपाद को यथोचित मर्यादा प्रदान की।

एक मात्र बाँके बिहारी के गोसाईं ने ही श्रील प्रभुपाद के शिष्यों के मन्दिर में प्रवेश पर आपत्ति प्रकट करते हुए कहा, "उनकी परिक्रमा के कुछ यात्रियों के पास संन्यास का दण्ड है, जिसे देखकर बिहारी जी भयभीत हो जायेंगे।" उनकी बात सुनकर श्रील प्रभुपाद ने कहा, "यदि ऐसा है तो हम कदापि ठाकुरजी को भयभीत करने के लिये नहीं जायेंगे।"

एक विषयी व्यक्ति से भिक्षा संग्रह

एक समय श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय अपने गुरुभ्राता श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज को साथ में लेकर मद्रास (चेन्नई) में एक कञ्जूस व्यवसायी के पास गये। वह व्यवसायी केवल तमिल भाषा ही जानता था और इन दोनों गुरुभ्राताओं को तमिल भाषा का एक अक्षर भी नहीं आता था। इसी कारण, श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज से कहा, "मैं इस व्यवसायी से केवल इङ्गित के द्वारा ही वार्त्तालाप करूँगा और आप केवल पुनः पुनः अपने संन्यास के त्रिदण्ड को उसकी ओर लेकर जाना और मेरे निषेध करने पर उसे पीछे कर लेना।"

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने उनसे पूछा, "त्रिदण्ड को आगे-पीछे करने का क्या उद्देश्य है?"

श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उत्तर दिया, "उसके द्वारा वह व्यवसायी या तो यह समझेगा कि मैं आपके नारायण स्वरूप त्रिदण्ड के आशीर्वाद से उसे वञ्चित कर रहा हूँ अथवा यह कि आप उसे नारायण स्वरूप त्रिदण्ड के द्वारा भस्म कर दोगे, और मैं उसकी रक्षा कर रहा हूँ।"

अब जब श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज अपने त्रिदण्ड को उसके समक्ष लेकर जाने लगे तब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उनके दण्ड को रोका तथा उस व्यवसायी को अपने दोनों हाथ के इङ्गित के द्वारा दस दिखलाया। ऐसा देखकर उस व्यवसायी ने अपने हाथ के इङ्गित से एक दिखलाया, तब श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज पुनः अपने त्रिदण्ड को उस व्यवसायी की ओर ले गये और श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उसे रोका। अब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उन्हें अपनी नौ अङ्गुलियाँ दिखलायी तथा उसने दो अङ्गुलियाँ। ऐसा करते-करते जब दोनों पाँच-पाँच पर रुक गये तब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु खड़े हो गये तथा वह व्यवसायी कुछ इङ्गित करके भीतर चला गया।

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने श्रीअतुलचन्द्र प्रभु से जिज्ञासा की, "प्रभु, पाँच अङ्गुलियों का अर्थ क्या है?"

श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उत्तर दिया, "महाराज, मुझे स्वयं नहीं पता, ५ रुपये, ५० रुपये, ५०० रुपये अथवा अन्य कुछ, जो हो, देखा जायेगा।"

वह व्यवसायी भीतर से पाँच सौ रुपये लाया तथा उसने श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज के हाथ में देकर उनसे त्रिदण्ड द्वारा अपने मस्तक पर आशीर्वाद देने हेतु प्रार्थना की। श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने अपने त्रिदण्ड को उसके मस्तक से स्पर्श कराके उसे आशीर्वाद प्रदान किया।

उसके घर की चौखट को पार करते

समय श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने वहाँ पदाघात किया अर्थात् आते समय वहाँ की भूमि पर लात मारी। जब श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने उनसे इसका कारण पूछा तब उन्होंने कहा, "ऐसे व्यक्ति का द्वितीय बार सङ्ग न हो, अन्यथा विषयी हो जाने का भय है। ऐसे व्यक्ति के सङ्ग को पदाघात कर रहा हूँ, केवल ही नहीं, घृणा करके पदाघात कर रहा हूँ।"

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज कहते थे, "श्रीअतुलचन्द्र प्रभु मूली की खेती करते थे अर्थात् मूली को जड़ से उखाड़ने की भाँति एक ही बार में जो प्राप्त होता, वह लेकर आते थे तथा पुनः कभी उस व्यक्ति के निकट नहीं जाते थे तथा अन्य लोग बैंगन की खेती करते थे अर्थात् समय-समय पर एक ही व्यक्ति के पास जाकर उससे कुछ-न-कुछ लेकर आते थे। आन्तरिक रूप से एक विचार अन्य की तुलना में उत्तम नहीं है। दोनों ही मात्र भिन्न-भिन्न विचार हैं। देश, काल, पात्र के अनुसार जो भी विचार हरिसेवा के अधिक अनुकूल हो, वही उत्तम है।"

एक रानी से भिक्षा संग्रह

एक समय श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय उड़ीसा में एक स्थान पर गये जहाँ पर निर्मित मन्दिर की परिचालना एक वृद्ध रानी करती थी जो कि रानी माता के नाम से विख्यात थी। एक दिन रानी माता ने अपने सेवक के माध्यम से उनसे पुछवा भेजा, "महात्मा जी, आपको यहाँ रहने में कोई असुविधा तो नहीं है?" श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उत्तर भिजवाया, "यद्यपि सब ठीक है किन्तु तकिये के बिना नींद नहीं आती।"

श्रीअतुलचन्द्र प्रभु की बात सुनकर रानी माता ने उनके पास एक तकिया भेजा तथा सम्वाद भिजवाया कि वह इसे अपने पास रख सकते हैं। जैसे ही श्रीअतुलचन्द्र को वह तकिया प्राप्त हुआ वह उसे लेकर श्रीधाम मायापुर की ओर चल दिये। श्रीयोगपीठ में आकर जब उन्होंने उस तकिये को खोला तो उसमें से लगभग ढ़ाई हजार रुपये मिले।

परम्परागत रूप से भारतीय संस्कृति में पुरुष ही साधुओं को भिक्षा देते हैं, स्त्रियाँ नहीं। रानी माता के द्वारा सेवक को भेजने से श्रीअतुलचन्द्र प्रभु समझ गये थे कि वह उनकी किसी प्रकार से सेवा करना चाहती हैं। उनके द्वारा तकिये के लिये प्रार्थना करना रानी माता के लिये गुप्त रूप से भिक्षा देने का एक माध्यम था। श्रीअतुलचन्द्र प्रभु की भिक्षा करने की अद्भुत पद्धति को देख-सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो जाते थे।

सेवा हेतु स्वयं को वकील के रूप में प्रस्तुत करना

नैमिषारण्य के अन्तर्गत सीतापुर जिले के एक व्यक्ति ने वहाँ की रानी की इच्छानुसार पहले तो गौड़ीय मठ के लोगों को मठ के निर्माण हेतु एक स्थान देने की प्रतिज्ञा की किन्तु कुछ समय के पश्चात् एक विदेशी आई॰ सी॰ एस॰ ऑफिसर के- 'यदि रानी के पास अधिक भूमि है तो वह अपनी प्रजा को कुछ करने के लिये दे, बङ्गाल अथवा अन्य किसी स्थान के व्यक्ति को

कुछ भी देने से स्थानीय जनता का क्या लाभ?' – शिकायत करने पर उसने गौड़ीय मठ के लोगों को स्थान देने की अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने से मना कर दिया।

जब गौड़ीय मठ के भक्त कोलकाता जाने हेतु सीतापुर स्टेशन पर एकत्रित हुए तब परस्पर में वार्त्तालाप करते समय यह बात श्रीअतुलचन्द्र प्रभु के कान में पड़ी। उस दिन दैववश उनकी गाड़ी तीन घण्टे देरी से आने वाली थी। श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने भक्तों से कहा, "मैं उस व्यक्ति से भेंट करके आता हूँ।"

मार्ग में श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने एक उत्पाद-कर पुस्तिका खरीदी। वे कोट-पैंट तो पहनते ही थे, अतएव उतपाद-कर पुस्तिका को बगल में दबाकर वे उस व्यक्ति के समक्ष उपस्थित होकर कहने लगे, मैं गौड़ीय मठ का कानूनी सलाहकार हूँ, मैं आपके विरुद्ध मानहानि का मुकद्दमा करने के लिए आया हूँ। कारण, आपके प्रतिज्ञा करने पर गौड़ीय मठ ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं में नैमिषारण्य में गौड़ीय मठ के प्रस्तावित मठ की घोषणा कर दी थी किन्तु अब आप लोगों के विपरीत निर्णय लेने पर उनका नाम खराब होगा।"



उनकी बात सुनकर उस व्यक्ति ने विदेशी आई॰ सी॰ एस॰ ऑफिसर द्वारा लिखित बात दिखायी, जिसे देखकर श्रीअतुलचन्द्र ने अत्यधिक उच्च स्वर से कहा, "वह मूर्ख क्या जानता है कि हम यहाँ से कुछ लेने के लिये नहीं बल्कि देने के लिए यहाँ पर भूमि संग्रह कर रहे हैं। हम अन्य स्थानों से अर्थ संग्रह करके यहाँ पर निवेश करके यहाँ का विकास करेंगे। यहाँ आपके राज्य में कोई एक भी योग्य व्यक्ति नहीं है जो हमारी भाँति ऐसे कार्य को करने हेतु आगे आये और यदि कोई आगे आयेगा भी तो वह देने से बहुत अधिक लेगा तथा हम जितना आपसे लेंगे, उससे दस गुणा अधिक आपको लौटायेंगे। जो हो, अब मुख्य विषय पर आइए, आप अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे या मैं आपके विरुद्ध मामला करूँ।"

जब वह व्यक्ति गौड़ीय मठ के लिये स्थान देने के लिये मान गया तब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उनसे दस हज़ार रुपये जुर्माना स्वरूप देने की बात कही तथा अन्त में वार्त्तालाप करते-करते पाँच हज़ार रुपये जुर्माना स्वरूप लेकर समय पर रेलवे स्टेशन आ गये।

उनकी तीव्र बुद्धिमत्ता

श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय को विदेश में प्रचार सेवा कार्य के लिये भेजने से पूर्व श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने अपने एक जर्मन शिष्य अर्नस्ट-जॉर्ज-शुल्ज़ (दीक्षित नाम सदानन्द दास) से पूछा, "विदेश प्रचार में भेजने से पूर्व अतुलचन्द्र को क्या उपाधि देनी चाहिये? मैं उन्हें ऐसी उपाधि देना चाहता हूँ जो मेरे द्वारा अब तक विदेश भेजे गये समस्त प्रचारकों से उनकी सर्वोत्कृष्टता को उचित ढ़ङ्ग से व्यक्त कर सके।"

श्रीसदानन्द प्रभु ने 'Missionary-in-Charge' का सुझाव दिया जो श्रील प्रभुपाद को पसन्द आया। तब उन्होंने श्रीअतुलचन्द्र प्रभु को यह उपाधि प्रदानकर विदेश प्रचार सेवा कार्य के लिये भेजा।

श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने विदेश प्रचार हेतु मठ से एक पैसा भी नहीं लिया, विदेश जाकर वहीं से भिक्षा करके सब कार्य चलाया।

जिस स्थान पर वे रह रहे थे, एक दिन वहाँ पर काम करने वाले एक सेवक ने उनसे कहा, "आपके नाम से लैटर-बॉक्स में बड़ा लिफ़ाफ़ा आया है, भीतर नहीं जा पाने के कारण वह बाहर ही लटक रहा है। अतएव अच्छा हो कि आप उसे अभी उठा लायें।"

जब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उस लिफ़ाफ़े को खोला तो देखा कि उसमें वर्धमान के महाराज ने उनके नाम एक चैक भेजा था किन्तु वह विचार करने लगे कि मेरे पास तो यहाँ मेरे नाम का अंग्रेजी बैंक खाता नहीं है। जो हो, उन्होंने बैंक में जाने का निश्चय किया।

बैंक में मैनेजर ने उनसे कहा, "आपकी पहचान करने वाले किसी एक व्यक्ति के हस्ताक्षर के बिना हम आपके चैक को कैश नहीं कर सकते।"

उस दिन श्रीअतुलचन्द्र प्रभु का Marquis of Zetland के साथ हाथ-मिलाते हुए एक चित्र समाचारपत्र में छपा था। श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने देखा कि वही समाचारपत्र मैनेजर की मेज पर ही था, उन्होंने साथ-ही-साथ उस पृष्ठ को खोलकर मैनेजर को वह चित्र दिखलाते हुए पूछा, "यह किसका चित्र है?"

उस मैनेजर ने चित्र के नीचे लिखे परिचय को पढ़कर कहा, "Indian monk A.B. Gosvami and Marquis of Zetland."

तब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने मैनेजर से कहा, "उस चित्र में और मुझमें कोई अन्तर है?" उनकी बात सुनकर जब मैनेजर ने दो-तीन बार चित्र और उनकी ओर देखा तो श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने पूछा, "क्या हुआ?"

उसने कहा, "ओह! आप तो ए॰ बी॰ गोस्वामी ही हैं।"

तब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने कहा, "तब फिर आप ही मेरी पहचान कीजिए।" मैनेजर ने वैसा ही किया। ऐसी थी उनकी सुतीक्ष्ण बुद्धि।

विपरीत परिस्थितियों में भी विश्वास बनाए रखना

श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर की अप्रकट लीला के

"वैष्णवों के द्वारा ठगा जाना, उनकी बात में विश्वास करके अपनी हानि कराना भी किसी विशेष सुखद भविष्यत् का ही कारण बनेगा।"



पश्चात् जब सारस्वत गौड़ीय मिशन में बहुत गड़बड़ी हुयी तब किसी एक विशिष्ट व्यक्ति ने श्रील प्रभुपाद के एक विशेष शिष्य के विषय में कहा, "मुझे अमुक व्यक्ति की 'हाँ' और उसके दाहिने हाथ, उसके भ्राता की 'हूँ' में कोई विश्वास नहीं है। 'एइ कथाय जार विश्वास, तार बापेर मुखे गू' अर्थात् जिन्हें अमुक की 'हाँ' एवं अमुक की 'हूँ' में विश्वास है उनके पिता का मुख इन दोनों भाइयों की विष्ठा[१] से भरा होगा। ये लोग हमें ठग रहे हैं, हमें इन्हें अच्छा सबक सिखाना चाहिये।"

श्रील गोस्वामी महाराज ने उग्रतापूर्वक नहीं अपितु अपने प्रशान्त स्वभावानुसार शान्तिपूर्वक उन्हें उत्तर प्रदान करते हुए कहा था, "भगवान् सर्वज्ञ हैं तथा वह सदैव अपने भक्तों का पथ प्रदर्शन एवं रक्षा करते हैं। वैष्णवों के द्वारा ठगा जाना, उनकी बात में विश्वास करके अपनी हानि कराना भी किसी विशेष सुखद भविष्यत् का ही कारण होगा।"

मायापुर में भूमि संग्रह

श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज का श्रीधाम मायापुर में जो मठ है, वह उसके लिये स्थान संग्रह करने तथा वहाँ पर मठ मन्दिर इत्यादि बनाने में सम्पूर्ण अनिच्छुक थे। वह पुनः-पुनः कहते थे, "श्रीधाम मायापुर में श्रील प्रभुपाद द्वारा संस्थापित श्रीचैतन्य मठ तथा मेरे गुरुभ्राता श्रीमाधव महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ हैं, तब फिर मुझे अलग से परिश्रम करके किसी स्थान को बनाने की क्या आवश्यकता है? किन्तु हाँ मेरे मन में एक अभिलाषा होती है कि मेरे गुरुभ्रातागण जितनी अधिक भूमि का संग्रह कर सकते हैं, कर लें। कारण, अन्यथा भविष्य में अवाञ्छित लोग यहाँ पर अपने स्थान बनाकर धाम की पवित्रता को हानि पहुँचाने का प्रयास करेंगे।"

वे यह भी कहते थे, "भूमि खरीदने के लिये जिसे जितने धन की आवश्यकता हो, मैं उसे दूँगा किन्तु हाँ, उस व्यक्ति को उस स्थान की देख-रेख का दायित्व अवश्य ही ग्रहण करना पड़ेगा।"

श्रील गोस्वामी महाराज की ऐसी दूरदर्शिता थी, भविष्य में होने वाली परिस्थिति को वे पहले ही देख लेते थे। आजकल श्रीधाम मायापुर में बहुत से अवाञ्छित लोग आकर भक्ति के विरुद्ध अनेक कार्यों में लिप्त भी हैं।

[१] अर्थात् इन दो भाइयों का सङ्ग इतना अधिक हानिकारक है कि वह न केवल उनका सङ्ग करने वाले के अपितु उसके पिता के लिए भी अमङ्गलजनक है। जिस प्रकार सत्सङ्ग पूर्वजों का भी उद्धार करता है उसी प्रकार असत्सङ्ग अमङ्गल प्रस्तुत करता है।

श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज ने बहुत हठ करके श्रील गोस्वामी महाराज को श्रीधाम मायापुर में स्थान संग्रह करने हेतु मनाया। इसी कारण, जब उस स्थान पर बबूल के पेड़ के नीचे भित्ति स्थापना का दिवस आया तब श्रील गोस्वामी महाराज ने स्वयं भित्ति नहीं देकर श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज से ही भित्ति दिलायी।

उस दिन कीर्त्तन के लिए मृदङ्ग, करताल तथा भक्तों के बैठने के लिये दरी आदि हमारे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ से ही गयी थी। श्रील प्रभुपाद के अनेक आश्रितजनों के द्वारा उस दिन वहाँ पर जो भावपूर्ण कीर्त्तन, परस्पर मर्यादापूर्ण आदर्शमय वार्त्तालाप, व्यवहार तथा गम्भीर हरि-कथा का परिवेशन किया गया था, उसे सुनकर मैंने उस दिन स्वयं को परम सौभाग्यशाली तथा धन्य माना था। अन्त में सभी को बताशा प्रसाद दिया गया था किन्तु उसे प्राप्त करके कोई भी असन्तुष्ट नहीं हुआ, बल्कि सभी परम सन्तुष्ट ही हुये थे।

मुझे उस दिन अपने बाल्यकाल में कण्ठस्थ किये एक श्लोक का स्मरण हो आया था –

अजायुद्धे ऋषिश्राद्धे प्रभातेमेघाऽम्बुरा।
दाम्पत्ये कलहे चैव बभारम्भे लघुक्रिया॥

[बकरी के युद्ध में, ऋषि अर्थात् साधु के द्वारा की गयी श्रद्धापूर्वक सेवा में, प्रभात के समय मेघ के शब्द में तथा पति-पत्नी के कलह में आरम्भ तो बहुत जोर से होगा किन्तु अन्त किसी लघु क्रिया के द्वारा ही हो जायेगा।]

यद्यपि उस उत्सव से पूर्व मुझे सर्वदा यही अनुभव होता था कि उपरोक्त श्लोक आजकल के सन्दर्भ में नहीं लागू होता। किन्तु उस दिन मुझे अनुभव हुआ कि यह श्लोक श्रील गोस्वामी महाराज के उत्सव में सम्पूर्ण रूप से लागू हो गया।

उनकी दीनता का एक दृष्टान्त

जब श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज का श्रीधाम मायापुर में मठ-निर्माण कार्य चल रहा था, तब वे हमारे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में गुरु महाराज की भजन कुटीर में ही निवास करते थे। वे समय के अत्यधिक पाबन्द थे, प्रतिदिन एक ही समय पर आते-जाते थे। एकदिन किसी कारणवश वे हमारे मठ में अपने आने के समय से लगभग पाँच मिनट पूर्व आ गये तथा गुरु महाराज की भजन कुटीर में प्रवेश करने से पूर्व गम्भीरतापूर्वक पूछने लगे, "प्रभुवर, मैं आज पाँच मिनट पूर्व आ गया हूँ क्या मैं भीतर जा सकता हूँ या फिर मुझे अपनी असमयनिष्ठता के लिये पाँच मिनट प्रतीक्षा करके प्रायश्चित करना चाहिये?"

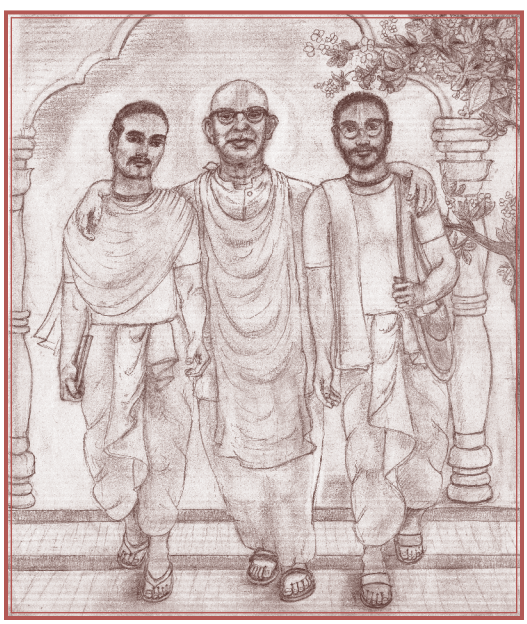
जितनी सेवा भलीभाँति करना सम्भवपर हो उतनी ही स्वीकार करो

श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज जब भी किसी उत्सव में वैष्णवों को निमन्त्रण करते थे, तब प्रत्येक मठ से एक या फिर अधिक-से-अधिक दो वैष्णवों को ही निमन्त्रण करते थे। वे कहते थे, "श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने स्वयं आचरण करके हमें शिक्षा प्रदान की है कि मर्यादापूर्वक

जितने वैष्णवों की सेवा करना सम्भवपर हो, उतने ही वैष्णवों को निमन्त्रण करना चाहिये। अधिक वैष्णवों को निमन्त्रण करके उनकी सेवा भलीभाँति नहीं कर पाने पर दोष लगता है।"

धाम के लिये गहन सम्मान

जब श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ से अपने मठ की ओर जाते थे तब उन्हें एक ओर उनके सेवक श्रीगौर दास प्रभु तथा दूसरी ओर मैं पकड़कर लेकर जाते थे। एक दिन जब हम श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ से बाहर निकल ही रहे थे, उसी समय हमें उन दिनों मायापुर में नया-नया आया साइकिल रिक्शा दिखलायी पड़ा, जिसे श्रीयोगपीठ में जनरेटर की चौकीदारी करने वाला नीलू चला रहा था। उसे देखकर श्रीगौर दास प्रभु ने श्रील गोस्वामी महाराज से कहा,



"महाराज! रिक्शे पर बैठकर जायेंगे?"

उनकी बात सुनकर श्रील गोस्वामी महाराज ने अत्यधिक गम्भीर स्वर में कहा, "मैं और धाम में रिक्शे पर चढ़ूँगा, यह कदापि होगा नहीं। हाँ, मैं यह भी जानता हूँ कि तुम लोग भविष्य में कार में यात्रा करोगे, किन्तु ऐसा करने के लिये तुम मेरी सहमति प्राप्त नहीं कर पाओगे।" वास्तव में अपने सम्पूर्ण जीवन में वह धाम में कभी भी किसी रिक्शे अथवा कार इत्यादि में नहीं बैठे। जब भी किसी रिक्शे अथवा गाड़ी में वह धाम के लिये यात्रा करते थे तो वह धाम की सीमा पर पहुँचने पर वहाँ से आगे पैदल चलना प्रारम्भ करते थे।

श्रीगौर दास प्रभु ने कहा, "महाराज! कभी-कभी चलते-चलते आपके गिरने का भय लगता है।"

श्रील गोस्वामी महाराज ने परिहास करते हुए कहा, "मेरे गिरने का दायित्व मेरा नहीं है, उसका दायित्व तुम लोगों का है।"

जब वे अपने मठ के समक्ष पहुँच गये, तब उन्होंने अपने एक अन्य प्रिय सेवक श्रीवनविहारी बाबा को बहुत उच्च स्वर में पुकारकर कहा, "वन बाबा, गौर (गौर दास प्रभु) ने मुझे आज मार डाला! मुझे इतनी दूर यहाँ तक पैदल लाते-लाते थका दिया।"

उनका अपने शिष्यों के साथ इस प्रकार का मधुर एवं रसिक सम्बन्ध था।

सेवा के लिये सब तर्कसङ्गत

एक समय श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज हमारे श्रीधाम मायापुर मठ की

गौशाला में अपने सेवक श्रीगौर दास प्रभु के साथ में आये। उन दिनों मैं गायों की सेवा करता था। गौशाला में दो हृष्ट-पुष्ट बछड़ों को देखकर श्रील गोस्वामी महाराज ने मुझसे पूछा, "इन दोनों बछड़ों की आयु कितनी है।"

मैंने कहा, "महाराज जी, लगभग एक वर्ष।"

उन्होंने निःसङ्कोच भाव से मुझे साथ-ही-साथ बोला, "यदि इन दोनों को बैल बना दोगे तो इनसे बहुत से काम ले पाओगे।"

उनकी बात सुनकर उनके सेवक श्रीगौर दास ने उनसे कहा, "महाराज! क्या आप अपने परिवार में रहने पर ऐसा कर सकने की बात तो दूर, क्या केवल कह भी सकते थे?"

श्रील गोस्वामी महाराज ने कहा, "नहीं, वहाँ पर ऐसी बात कहने से तो समाज से ही बहिष्कृत होना पड़ता। किन्तु अब मैं ब्राह्मण नहीं, अप्राकृत म्लेच्छ हूँ। म्लेच्छ जैसा आचरण दिखलायी देने पर भी गुरु-वैष्णव-भगवान् की सेवा के उद्देश्य से किया गया कार्य प्राकृत नहीं अप्राकृत कहलाता है। सेवा के लिये सब तर्कसङ्गत है।"

सब परिस्थितियों में श्रीकृष्ण एवं उनके परिकरों का स्मरण करना

एक समय श्रील गोस्वामी महाराज ने मुझसे पूछा, "आपका नाम क्या है?"

मैंने कहा, "नरोत्तम दास ब्रह्मचारी।"

मेरा नाम श्रवण करने के साथ-ही-साथ श्रील नरोत्तम दास ठाकुर की स्मृति हो आने से उन्होंने कहा, "आपका नाम नरोत्तम है? तब तो आप मेरे प्रभु हैं।"

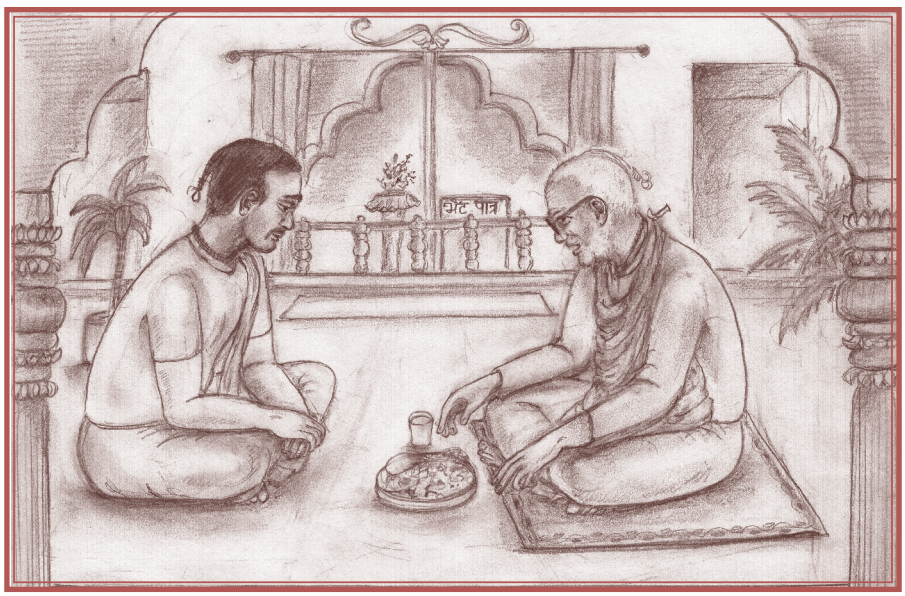
श्रीचैतन्यचरितामृत (आदि-लीला ४.८५) में श्रील कविराज गोस्वामी द्वारा उल्लिखित वचन, "जाँहा जाँहा नेत्र पड़े, ताँहा कृष्ण स्फुरे" को जब इस स्थान पर व्यवहार किया जायेगा तो इसका अर्थ किया जायेगा, "जहाँ-जहाँ पर भी किसी सिद्ध-महापुरुष की दृष्टि पड़ती है वहाँ कृष्ण ही स्फुरित होते हैं।" यहाँ कृष्ण शब्द का तात्पर्य सपरिकर कृष्ण स्फुरित होने से है। अतएव मेरा नरोत्तम नाम श्रवण करने मात्र से ही श्रील गोस्वामी महाराज को श्रीकृष्ण के अन्तरङ्ग परिकर श्रील नरोत्तमदास ठाकुर की स्फूर्त्ति हो आयी।

वैष्णवों का यही वैशिष्ट्य होता है, वे सदैव एक ऐसी भूमिका में अवस्थित रहते हैं, जहाँ पहुँचने की साधारण व्यक्ति स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता।

प्रसाद के सभी द्रव्यों का एक समान सम्मान

जब श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज प्रसाद ग्रहण करते थे, तब वे करेले से लेकर परमान्न (खीर) तक सभी को एक साथ मिलाकर ही ग्रहण करते थे। जब मैंने उन्हें सर्वप्रथम ऐसा करते देखा तब वैष्णव-

"कृष्णप्रसाद अमृत तुल्य है, उसके द्रव्यों में भेद-बुद्धि करना उचित नहीं है।"



विचारधारा में अधिक प्रवेश नहीं होने के कारण मैंने उनसे कहा, "महाराज, आपने जिस प्रकार सब प्रकार के खाद्य द्रव्यों को मिला दिया है, उससे तो किसी भी द्रव्य के स्वाद का कुछ भी पता नहीं चलेगा।"

श्रील महाराज ने उत्तर दिया, "इस ढ़ाई इंच की जिह्वा को क्यों प्रश्रय देना। यही सबसे दुष्ट है। क्या तुम प्रतिदिन प्रसाद ग्रहण करने से पूर्व इस श्लोक का कीर्त्तन नहीं करते?

महाप्रसादे गोविन्दे नाम-ब्रह्मणि वैष्णवे।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते॥

स्कन्द पुराण (उत्कल खण्ड)

[हे राजन! अल्प सुकृतिवान् व्यक्ति का महाप्रसाद, गोविन्द, भगवन्नाम एवं वैष्णव – इन चार वस्तुओं में विश्वास नहीं होता।]

"तथा श्रील भक्ति विनोद ठाकुर ने महाप्रसाद के विषय में क्या लिखा है –

शरीर अविद्या जाल, जड़ेन्द्रिय ताहे काल,
जीवे फेले विषय सागरे।
तार मध्ये जिह्वा अति, लोभमय सुदुर्मति,
ताके जेता कठिन संसारे॥

[यह शरीर अविद्या का जाल है। इसमें जड़ इन्द्रियाँ तो काल स्वरूप ही हैं जो जीवों को विषय सागर में डाल देती हैं। उनमें से भी यह लोभी जिह्वा तो अत्यन्त ही दुर्मति है। संसार में इसे जीतना बहुत कठिन है।]

कृष्ण बड़ दयामय, करिवारे जिह्वा जय,
स्वप्रसाद-अन्न दिला भाइ।
सेइ अन्नामृत पाओ, राधाकृष्ण-गुण गाओ,
प्रेमे डाको चैतन्य-निताइ॥

[कृष्ण परम दयालु हैं। उन्होंने जिह्वा को जय करने के लिये अपना अन्न प्रसाद प्रदान किया है। अतः उस अन्न प्रसादरूपी अमृत को ग्रहणकर आनन्दपूर्वक राधाकृष्ण का गुणगान करो तथा प्रेम से श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु को पुकारो।]

"अतएव कृष्णप्रसाद अमृत तुल्य है, उसमें से मुझे करेला कम, खीर अधिक चाहिये, मैं यह नहीं ग्रहण करूँगा, यह ग्रहण करूँगा आदि विचार उचित नहीं हैं।" उसके पश्चात् उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के वचनों को उद्धृत किया –

'द्वैते' भद्राभद्र-ज्ञान, सब-'मनोधर्म'।
'एइ भाल, एइ मन्द',-एइ सब 'भ्रम'॥

चै॰च॰ (अन्त्य-लीला ४.१७६)

[द्वैत अर्थात् प्राकृत वस्तु में भद्र और अभद्र का ज्ञान करना तो मन का धर्म है। वह अच्छा है, यह बुरा है- यह सब तो भ्रम है।]

अन्त में श्रील महाराज ने कहा, "प्रसाद बुद्धि से सब द्रव्यों को एक साथ मिलाकर ग्रहण करने में ही मङ्गल है।"

उनके प्रसाद पाने पर यदि कोई पूछता, "महाराज, प्रसाद कैसा है?" तो उनका सदैव एक ही उत्तर होता था, "खूब अच्छा बनाया। खूब अच्छा बनाया।" यदि कोई अन्य भक्त कहता, "महाराज, आज यह वस्तु खराब बनी है, इसमें नमक अधिक है या फिर यह वस्तु थोड़ी जल गयी है।" तब सुनने के साथ-ही-साथ कहते, "बुलाओ, बुलाओ, रन्धन करने वाले को बुलाओ, भगवान् की सेवा में अमनोयोग, उसे इसका दण्ड देना पड़ेगा। दो-तीन दिन के लिये उसकी सेवा से छुट्टी करके उसे प्रायश्चित स्वरूप सदैव क्रन्दन करते हुए हरिनाम करने का उपदेश करना पड़ेगा।"

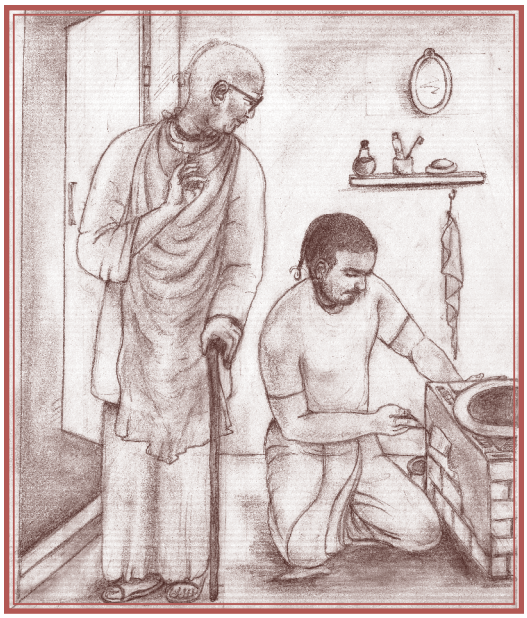
वे यह सब बातें केवल मुख से कहते ही नहीं थे, बल्कि ऐसा करवाने का आदर्श भी स्थापित करते थे।

वैष्णव सेवा का भगवत् सेवा से अधिक माहात्म्य

श्रील गोस्वामी महाराज पुनः-पुनः कहते थे, "मैं मठ में भगवान् की सेवा नहीं, बल्कि वैष्णवों की सेवा के उद्देश्य से आया हूँ। भगवान् की सेवा तो कहीं पर भी प्राप्त हो जाती है, किन्तु भक्तों की सेवा सभी स्थानों पर प्राप्त नहीं होती। भगवान् की सेवा करने से अधिक मङ्गल वैष्णवों की सेवा करने में है। वैष्णवों की सेवा के माध्यम से ही भगवान् की सेवा की उचित परिपाटी का ज्ञान होता है तथा धीरे-धीरे भगवान् की सेवा में रुचि उत्पन्न



"मैं मठ में भगवान् की सेवा नहीं, बल्कि वैष्णवों की सेवा के उद्देश्य से आया हूँ।"



हो जाती है। किन्तु भक्त के आनुगत्य के बिना भगवान् की सेवा करने से पारमार्थिक मङ्गल होने में संशय है।"

सभी वैष्णवों को अपना सेव्य मानना

जब श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज ने अस्वस्थ लीला प्रकट की, तब उन दिनों नवद्वीप, कृष्णनगर आदि में बेंत का बना एक पोर्टेबल कमोड मिलता था, मैं उनके लिये वही खरीदकर ले आया। उसे देखकर श्रील गोस्वामी महाराज ने मुझसे कहा, "मैं इसे कदापि अपने उपयोग में नहीं लाऊँगा। इसे प्रत्येक बार किसी वैष्णव को साफ करना पड़ेगा जिसके विषय में सोचना भी मेरे लिये सम्भवपर होगा नहीं। मैंने अपने जीवन में कभी किसी भी वैष्णव को अपना सेवक नहीं माना, बल्कि सभी वैष्णवों को भले ही वो नया हो अथवा पुराना हो, सभी को अपना सेव्य ही माना है।"

मैंने उन्हें बहुत प्रकार की बातें बोलकर उसे उपयोग करने के लिये मनाना चाहा, किन्तु वे मानें नहीं। अन्त में मैंने स्वयं अपने हाथों से उनके लिये ईंटों से कमोड बना दिया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

नवीन मठ निर्माण एवं श्रीविग्रहस्थापन की प्रयोजनीयता के विषय में उनके विचार

एक समय श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज कहीं पर प्रचार कार्य के लिये गये हुए थे तथा वहीं पर किसी ने उनसे प्रश्न किया, "भारत में प्रायः सभी स्थानों पर अनेक मन्दिर हैं तब फिर नये मठ-मन्दिर आदि की क्या आवश्यकता है? जब स्थापित विग्रहों की सेवा भली-भाँति नहीं हो पाती, तब फिर नये विग्रहों की स्थापना करने की क्या आवश्यकता है?"

श्रील गोस्वामी महाराज ने उत्तर दिया, "भारत देश की जनसंख्या बहुत अधिक है, उसके कारण बहुत असुविधाएँ भी होती हैं। सरकार ने जनसंख्या को नियन्त्रित करने की इच्छा से बहुत सी योजनाएँ भी चलायी हैं। जो अपनी सन्तान कम करेगा, उसे सरकार से बहुत अच्छी सुविधा भी मिलेगी। ऐसा होने पर भी जिनकी सन्तान नहीं है, वे अपनी ही सन्तान प्राप्ति हेतु हजारों प्रयास क्यों करते हैं? वे अन्यों की सन्तान को गोद लेने अथवा अनाथालय में अत्यधिक कष्ट से रह रहे बालकों में से किसी को प्रसन्नतापूर्वक लेने की अभिलाषा क्यों नहीं करते हैं? कारण, अपने बालक

के प्रति जैसी ममता होती है, वह अन्य के बालक के प्रति नहीं हो सकती। इसी प्रकार अपने द्वारा प्रतिष्ठित मठ-मन्दिर-विग्रहों के प्रति जैसी ममता होती है, वह अन्यों के द्वारा प्रतिष्ठित स्थान के प्रति नहीं होती।"

वैष्णवों की लीलाएँ बाह्य-दृष्टि से परे

एक समय श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज ने श्रीधाम मायापुर में कुछ ऐसी अस्वस्थ लीला प्रकाशित की जिस कारण उन्हें उपचार के लिये कोलकाता ले जाया गया। उनके सेवकों के साथ मैंने उन्हें पहले नौका के माध्यम से स्वरूपगञ्ज तथा वहाँ से बस के माध्यम से कृष्णनगर तक ले जाकर उन्हें ट्रेन में बैठा दिया और सेवकों को भलीभाँति यह बात समझा दी कि कैसे कोलकाता में डॉ॰ एन॰ आर॰ सेन गुप्त के यहाँ पहुँचना है।

बाद में जब श्रील गोस्वामी महाराज स्वस्थ होकर श्रीधाम मायापुर में आये तब उन्होंने मुझे बताया, "तुम सब लोग जिस प्रकार से मुझे घाट, वहाँ से स्वरूपगञ्ज, कृष्णनगर आदि लेकर गये थे, मैं सब देख-सुन रहा था। मैंने जान-बूझकर कुछ बोला नहीं और सोचा, वैष्णव जो करना चाहते हैं उन्हें करने देना चाहिये।"

श्रील गोस्वामी महाराज ने उस समय की घटनाओं को ऐसे विस्तार से बताया, मैं सुनकर आश्चर्यचकित रह गया तथा मुझे श्रीचैतन्यभागवत (मध्य-खण्ड ९.२४०) में लिपिबद्ध श्रील वृन्दावन दास ठाकुर के वचन स्मरण हो आये –

जत देख वैष्णवेर व्यवहार-दुःख
निश्चय हि जानिह सेइ परानन्द सुख॥

[वैष्णवों के जो व्यवहारिक दुःख दिखायी देते हैं, वे निश्चित रूप में उनके लिये परमानन्द सुख-स्वरूप हैं।]

यद्यपि बाहरी रूप से सम्पूर्ण अस्वस्थ लीला का अभिनय तथापि भीतर में सम्पूर्ण रूप में सचेत। 'वैष्णव चिनिते नारे देवेर शकति अर्थात् वैष्णवों की क्रिया-मुद्रा को समझने में देवता भी असमर्थ हैं'- सम्भवतः उनके इस प्रकार के आचरण को उपलक्ष्य करके ही यह बात कही गयी है।

प्रभावशाली शिक्षाएँ

श्रील गोस्वामी महाराज के आदर्श जीवन चरित्र से हमें निम्नलिखित शिक्षाएँ मिलती थीं-

१. भक्त को किसी के विरोध की कभी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये, विपरीत परिस्थितियों में भी कभी घबराना नहीं चाहिये। भगवान् भक्त-वत्सल हैं, अपने भक्तों की सदैव रक्षा करते हैं।
२. भोग-वृत्ति से भजन में अग्रसर नहीं हुआ जा सकता। भोगी व्यक्ति का कभी मङ्गल नहीं होता। भगवान् अपने प्रसाद की जो भी व्यवस्था हमारे लिये करें, उसी में परम सन्तुष्ट होकर भजन करने से ही उसमें सिद्धि की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं।
३. हरि-गुरु-वैष्णव की प्रत्येक सेवा को मनोयोग के साथ में करना ही उनके प्रति भक्त की प्रीति का निदर्शन है।

श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज का निर्याण

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित

श्रील प्रभुपाद के प्रचार-मिशन के मूलभूत स्तम्भ

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद के प्रचार-मिशन,— जिसका उद्देश्य समस्त विश्व में श्रीमन्महाप्रभु की वाणी का प्रचार करना था,— के सर्वप्रधान स्तम्भों में अन्यतम थे। इस प्रकार उन्होंने अपने परमाराध्य श्रीगुरुपादपद्म के मनोऽभीष्ट को पूर्ण किया।

दैन्य की प्रतिमूर्त्ति एवं निर्भीक गुरु-सेवक

पूज्यपाद गोस्वामी महाराज श्रीविश्व-वैष्णव-राजसभा के एक विशिष्ट सदस्य थे, साप्ताहिक 'गौड़ीय' पत्रिका के सम्पादक-सङ्घ के सङ्घपति थे, आडम्बर-रहित गुरुसेवा के आदर्श-विग्रह स्वरूप थे तथा सर्वोत्तम वक्ता थे।

अब श्रील महाराज ने श्रीगौरधाम, गौरनाम और गौरमनोऽभीष्ट प्रचारकवर अपने श्रीगुरुपादपद्म परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के सुशीतल श्रीचरणकमलों में नित्य-आश्रय प्राप्त किया है। अपने दिव्य आचरण के द्वारा श्रील महाराज ने जीवन के शेष-मुहूर्त्त तक जगत् में निर्भीक गुरु-सेवा का एक अपूर्व आदर्श प्रदर्शित किया है। यदि हम उनके आदर्श की एक बूँद का भी अनुसरण करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकें, तो हमारा जीवन धन्यातिधन्य हो जायेगा।

उनका विनम्र, अकृत्रिम एवं आदर्श चरित्र

श्रीगौरकरुणाशक्ति श्रील प्रभुपाद के श्रीगौरमनोऽभीष्ट को पूर्ण करने में पूज्यपाद गोस्वामी महाराज प्रधान सहायक थे। श्रीगौरसुन्दर की इच्छा से श्रील महाराज ने एक आडम्बरहीन, अकृत्रिम, आदर्शचरित्र गुरुसेवक के रूप में इस जगत् में अत्यन्त गरिमायुक्त आगमन किया था। आज उन्होंने अपने महान् सेवाव्रत को सम्पूर्ण कर जड़-जगत् से विदा ग्रहण की है।

"कृपा करि' कृष्ण मोरे दियाछिल सङ्ग।
स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा, हइल सङ्ग-भङ्ग॥"

चै॰च॰ (अन्त्य-लीला ११.९४)

[श्रीकृष्ण ने कृपापूर्वक मुझे वैष्णव सङ्ग प्रदान किया था। आज श्रीकृष्ण की स्वतन्त्र इच्छा से ही मेरा सङ्ग भङ्ग हो गया।]

श्रीचैतन्यवाणी (वर्ष ४, संख्या ४) में प्रकाशित एक लेख से अनुवादित

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

असाधारण बाल्य-वृत्तान्त

मेरे शिक्षा गुरु श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज प्रायः कहा करते थे, "जब मैं अपनी माता के गर्भ में था तब एक साधु हमारे गृह में आये एवं मेरी माता को मिष्टान्न प्रसाद दिया जिसे उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक ग्रहण किया। मेरी माता के अनुसार यही मेरी जागतिक विषयों में अनासक्ति, बाल्यकाल से ही साधु बनने की सुदृढ़ अभिलाषा एवं अत्यन्त युवावस्था में ही श्रील प्रभुपाद के निकट आने का कारण बना।"

जब श्रील महाराज शिशु थे, तब एक विशाल पक्षी उन्हें आकाश में ले गया एवं पुनः वापस छोड़ गया। इस प्रकार की घटनाएँ साधारण मनुष्य के साथ कभी घटित नहीं होती, ये सब घटनाएँ दिव्य असाधारण व्यक्तित्व की ही परिचायक हैं।

उनके पथ-प्रदर्शक गुरु

श्रील केशव गोस्वामी महाराज का दिव्य आविर्भाव बङ्गलादेश के वरिशाल जिले के अन्तर्गत वानारिपाड़ा नामक ग्राम में एक समृद्ध जमींदार परिवार में हुआ था। उनकी युवावस्था में ही उनकी दोनों बुआ श्रीमती सरोजिनी दासी एवं श्रीमती प्रियतमा दासी उन्हें श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर से भेंट कराने हेतु लेकर आयीं। श्रीमती प्रियतमा दासी के शीघ्र देह त्याग करने के कारण श्रील केशव गोस्वामी महाराज के जीवन चरित्र में हम श्रीमती सरोजिनी दासी के विषय में ही अधिक श्रवण करते हैं।

सेवकों में रत्न-स्वरूप

मठवास प्रारम्भ के समय श्रील महाराज का नाम श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी था। कुछ समय पश्चात् श्रील प्रभुपाद ने उन्हें

'कृतिरत्न' की उपाधि से विभूषित किया तथा वे इसी उपाधि से सारस्वत-गौड़ीय-वैष्णव-समाज में सुपरिचित हुए। कृति अर्थात् 'कार्य' एवं रत्न अर्थात् 'मणि'। इस प्रकार 'कृतिरत्न' का तात्पर्य एक ऐसे व्यक्तित्व से है जो गुरु-वैष्णवों के सेवा-कार्यों का निष्पादन करने में अति दक्ष हैं तथा ये सेवा-कार्य ही जिनके लिए प्राण-स्वरूप हैं। यह आशीर्वाद स्वरूप उपाधि श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी के लिये सम्पूर्णतया उपयुक्त थी, कारण, वे समस्त सेवकों में रत्नस्वरूप थे।

परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले आदेशों का सुसामञ्जस्य

जब श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी युवावस्था में ही श्रील प्रभुपाद के चरणों का आश्रय ग्रहणकर श्रीधाम मायापुर में ब्रह्मचारी के रूप में मठवास कर रहे थे, तब एक दिन उनकी माता के द्वारा भेजे गये पत्र को पढ़कर श्रील प्रभुपाद ने उन्हें अपनी माता से भेंट करने के लिये घर जाने के लिये कहा था। श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी अपने कर्त्तव्य के विषय में अत्यधिक गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करने लगे। एक ओर वे श्रील प्रभुपाद के पूर्व कथित वचनों पर विचार करने लगे। यथा-

सकल जन्मे पिता-माता सबे पाय।
कृष्ण गुरु नाहि मिले, भजह हियाय॥

श्रीचैतन्यमङ्गल (मध्य-खण्ड)

[प्रत्येक जन्म में सभी को माता-पिता मिलते हैं, किन्तु श्रीकृष्ण एवं श्रीगुरु का मिलना बहुत ही दुर्लभ है। इसलिये मनुष्य जन्म में ही श्रीगुरु का चरणाश्रय कर श्रीकृष्ण का भजन करना चाहिये।]

"प्रत्येक जन्म में सभी को माता-पिता मिलते हैं, किन्तु श्रीकृष्ण एवं श्रीगुरु का मिलना बहुत ही दुर्लभ है।"

तथा दूसरी ओर श्रील प्रभुपाद का आदेश था, "तुम घर जाकर अपनी माता से भेंट कर आओ।"

इन दोनों परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले वचनों का अत्यधिक गम्भीरतापूर्वक चिन्तनकर श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी विचार करने लगे कि श्रील प्रभुपाद के पूर्व कथित वचन उनके अन्तर्हृदय से कहे गये वास्तविक सत्य हैं तथा बाद के वचन मेरी परीक्षा हेतु अथवा मेरी गुरुनिष्ठा को देखने हेतु कहे गये हैं।

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी इन वचनों का चिन्तन करते-करते इस निष्कर्ष पर पहुँचे, "वास्तव में गुरु तो कभी किसी को अनित्य वस्तु, मोह उत्पन्न करने वाली वस्तु से सम्बन्ध रखने के लिये नहीं कहते, वे तो उन्हें सदैव नित्य वस्तु श्रीभगवान् से सम्बन्धयुक्त होने का उपदेश प्रदान करते हैं। अतएव मैं श्रील प्रभुपाद के पूर्व कथित



वचनों का पालन करते हुए इस समय मुझे कहे गये वचनों के वास्तविक भावार्थ को समझते हुए अपने पूर्वाश्रम नहीं जाऊँगा। इससे मेरे द्वारा श्रील प्रभुपाद की अवज्ञा करना नहीं होगा, अपितु इसके द्वारा वे मेरे प्रति प्रसन्न होंगे।"

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी का मठ में रहकर पारमार्थिक दृष्टि से श्रीगुरु को प्रसन्न करने का निर्णय पूर्णतया उचित था, बाद में श्रील प्रभुपाद ने उनके प्रति कृपा ही की।

उदारता एवं दूरदर्शितापूर्वक सेवा

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी के पिता एक समृद्ध जमींदार थे तथा इसी कारण उन्हें पूर्वाश्रम में मुक्तहस्त से धन व्यय करने का अभ्यास था। श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय एवं



मठवास करने के उपरान्त उन्हें श्रीचैतन्य मठ की विभिन्न सम्पत्तियों के प्रबन्धन का दायित्व दिया गया। इस सेवा-कार्य के लिये उन्हें घोड़े पर सवार होकर मायापुर के विभिन्न स्थानों पर जाना होता था। उनको देखनेमात्र से ही स्थानीय लोग भयभीत हो जाते थे। जब भी वह गङ्गा पार करते थे, तो नाविक को यथार्थ भाड़ा गिनकर नहीं देते थे बल्कि जेब में हाथ डालने पर जितना पैसा हाथ में आता, उतना ही दे देते थे। इसीलिए सभी नाविक उनसे प्रार्थना करते थे, "विनोद बाबू! कृपया मेरे साथ आइये। मैं आपको अपनी नौका में गङ्गा पार करा देता हूँ।"

एक समय एक भक्त ने श्रील प्रभुपाद से अभियोग (शिकायत) करते हुए कहा, "हम अत्यन्त परिश्रम करके मठ के लिये भिक्षा संग्रह करते हैं किन्तु विनोदविहारी प्रभु उस परिश्रम से संगृहीत धन को लोगों को मूल्य से अधिक भुगतान करके अनावश्यक रूप से व्यय कर रहे हैं। वह कितना व्यय कर रहे हैं उस पर किञ्चित् मात्र भी ध्यान नहीं देते। क्या यह उचित है?"

श्रील प्रभुपाद ने उस भक्त से पूछा, "जब तुम घर में रह रहे थे तब एक दिन में कितना व्यय करते थे?"

भक्त ने कहा, "एक पैसा।"

प्रभुपाद ने पुनः पूछा, "अब तुम कितना व्यय करते हो?"

भक्त ने लज्जित होते हुए कहा, "लगभग दस पैसे।"

श्रील प्रभुपाद ने कहा, "विनोदविहारी प्रतिदिन लगभग एक सौ-रुपये व्यय करता था किन्तु अब वह लगभग पाँच रुपये व्यय करता है। तब तुम दोनों में से कौन यथार्थ रूप से त्यागी है?"

जिनमें वास्तविक दृष्टिकोण का अभाव है वे देखते हैं कि श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी श्रीहरि-गुरु-वैष्णवों की सेवा के लिए आए धन को व्यर्थ व्यय कर रहे हैं किन्तु

श्रील प्रभुपाद उनकी वास्तविक भावना को जानते थे। श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी अपनी उदारता से एक सहयोगी दल का निर्माण कर रहे थे जो परवर्ती काल में किसी विरोध के उत्पन्न होने पर श्रीगौड़ीय मठ का समर्थन करेंगे।

श्रीगुरु की सामान्य जिज्ञासा में भी उनके मनोऽभीष्ट का दर्शन

श्रील प्रभुपाद की सेवा हेतु जो कुछ भी करना आवश्यक होता, श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी निश्चित ही वह कार्य सम्पन्न करते। एक समय श्रील प्रभुपाद ने उनसे साधारण रूप से पूछा, "क्या हम श्रीगोद्रुमद्वीप में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की भजन कुटीर को संग्रह करने में असमर्थ हैं?" यद्यपि यह एक सामान्य प्रश्न था किन्तु श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी ने उसे अत्यधिक गुरुत्व प्रदान किया तथा वह तब तक शान्ति से नहीं बैठे जब तक कि उन्होंने उस स्थान को संगृहीत नहीं कर लिया। उनकी श्रील प्रभुपाद के प्रति इस प्रकार की अगाध प्रीतियुक्त सेवा भावना थी। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की भजन कुटीर के अतिरिक्त उन्होंने चाँदकाजी का स्थान तथा श्रीधाम-मायापुर में अन्य कई स्थानों का भी संग्रह किया।

वैष्णवों के प्रति हिंसा सहने में असमर्थ

श्रीचैतन्य मठ की सम्पत्तियों की प्रबन्धन-सेवा के अतिरिक्त श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी मठ के कोर्ट-कचहरी सम्बन्धित कार्यों को भी सम्भालते थे। उन दिनों श्रीधाम-मायापुर के चन्द्रशेखर-भवन, श्रीवास-आङ्गन, खोला बेचने वाले श्रीधर का घर एवं चाँदकाजी की समाधि सहित अन्य कई पवित्र स्थानों पर मुस्लिम व्यक्तियों का आधिपत्य था। एक दिन कुछ मुस्लिम युवाओं ने, जिन्होंने चाँदकाजी की समाधि पर कब्जा किया हुआ था, श्रीचैतन्य मठ के कुछ ब्रह्मचारियों पर आघात किया। श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी भक्तों के प्रति हुए इस हिंसक दुर्व्यवहार को सहन नहीं कर सके। उनकी रक्षा के उद्देश्य से उन्होंने श्रीचैतन्य मठ की

ओर से न्यायालय में मुकद्दमा कर दिया जिसके परिणामस्वरूप कुछ मुस्लिम युवकों को कारागार में डाल दिया गया।

श्रील प्रभुपाद ने मुस्लिमों को कारागार में डाले जाने के कार्य की सराहना नहीं की तथा असन्तुष्ट होते हुए कहा, "हमें दुराचारपूर्ण कार्यों का विरोध करना चाहिये न कि दुराचार करने वाले लोगों का। हमें उन्हें कारागार में डालकर दण्ड देने का प्रयास नहीं करना चाहिये अपितु निर्भीकतापूर्वक अपने सिद्धान्तों के पक्ष में खड़े होकर अधार्मिक कार्यों का उच्च स्वर से विरोध करना चाहिये।" अतएव श्रील प्रभुपाद के आदेश पर भक्तों ने मुस्लिम युवाओं की जमानत करवा दी।

श्रील प्रभुपाद की सेवा हेतु अपने प्राणों को सङ्कट में डालना

अपने प्रकट काल में श्रील प्रभुपाद ने श्रीमन्महाप्रभु की विचार-धारा के अनुयायी होने का दम्भ करने वाले अपसम्प्रदायों

के मत एवं साधन-पद्धति के विरुद्ध निर्भीकतापूर्वक प्रचार किया। उन्होंने उच्च स्वर से यह घोषणा की कि भगवान् के श्रीविग्रह के दर्शन कराने हेतु तीर्थ-यात्रियों से धन संग्रह करना सर्वथा अनैतिक है एवं यह विचार कि एकमात्र शौक्र ब्राह्मण ही गुरुपद ग्रहण करने का योग्य अधिकारी है- पूर्णतया असङ्गत है। उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु की विशुद्ध-गौड़ीय विचारधारा के प्रचार द्वारा इन अपसम्प्रदायों के दूषित विचारों का तीव्र विरोध किया एवं उन्हें चुनौती दी जिसके फलस्वरूप उन सम्प्रदायों को दान-दक्षिणा द्वारा प्राप्त होने वाली धन राशि एवं सामाजिक प्रतिष्ठा की बहुत हानि हुई। जैसे-जैसे श्रील प्रभुपाद का यश एवं प्रभाव अधिक विस्तृत होने लगा, ये विपरीत मतावलम्बी उनके प्रति अधिकाधिक ईर्ष्या पोषण करने लगे।

१९२५ ई॰ में श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा के समय श्रील प्रभुपाद ने लगभग पाँच हजार यात्रियों एवं एक-सौ-आठ मृदङ्ग-वादनकारों से युक्त परिक्रमा-दल का नेतृत्व किया। उस विशाल परिक्रमा-पार्टी के सबसे आगे एक बैण्ड एवं एक हाथी के ऊपर भव्य रूप से विराजित श्रीमन्महाप्रभु के विग्रह चल रहे थे। विद्वेषी अपसम्प्रदाय वाले विरोधियों ने प्रौढ़ामाया-तला पर श्रील प्रभुपाद के प्राण हरण करने के घृणित उद्देश्य से परिक्रमा पार्टी पर आक्रमण कर दिया।

अपने गुरुदेव के प्राणों पर विशाल सङ्कट उपस्थित हुआ देखकर श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी ने अविलम्ब एवं निसङ्कोच उनकी सुरक्षा की व्यवस्था की। वे अतिशीघ्र ही श्रील प्रभुपाद को एक सुरक्षित स्थान पर ले गये तथा वहाँ अत्यधिक बुद्धिमानी से, अपने सफेद वस्त्रों को श्रील प्रभुपाद के गेरुएँ वस्त्रों के साथ परिवर्त्तित कर लिया तथा कुछेक भक्तों के साथ श्रील प्रभुपाद को सुरक्षित मायापुर भिजवा दिया। श्रील प्रभुपाद के वस्त्र स्वयं धारणकर श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी अपने प्राणों को सङ्कट में डालकर स्वयं वहीं रह गए।

इसी बीच, श्रील प्रभुपाद के व्यक्तिगत सेवक श्रीपरमानन्द ब्रह्मचारी ने एक स्थानीय निवासी का वेष धारण कर लिया जिससे कि कोई उन्हें गौड़ीय-मठ के भक्त के रूप में न पहचान सके। उन्होंने अपनी धोती के स्थान पर गमछा धारण किया तथा हाथ में एक हुक्का लेकर वह आक्रमण की सूचना देने के लिये पुलिस स्टेशन पहुँचे। शीघ्र ही घटना स्थल पर पुलिस के अधिकारी पहुँच गये तथा स्थिति को नियन्त्रित किया।

जिस प्रकार किसी व्यक्ति के ऊपर आक्रमण होने पर उसका अपना हाथ आत्मरक्षा के लिये स्वतः ही प्रस्तुत होता है, उसी प्रकार श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी ने, जो श्रील प्रभुपाद के अङ्गस्वरूप एवं उनसे अभिन्न हैं, स्वाभाविक रूप में ही न केवल अपने गुरुदेव के विरुद्ध होने वाले इस प्रतिशोधात्मक शारीरिक आक्रमण से उनकी रक्षा की, अपितु उनके सिद्धान्तों के विरुद्ध होने वाले आक्रमणों से भी उनकी विचारधारा की रक्षा की। अपने स्पष्टवादी एवं सुदृढ़तायुक्त प्रचार के द्वारा उन्होंने निर्भीकतापूर्वक सर्वदा ही श्रील प्रभुपाद की विचारधारा का सरंक्षण किया।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रील प्रभुपाद की विचारधारा एक तात्पर्यपर

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अनेक स्थानों पर ऐसा कहा है कि मठ-मन्दिरों का निर्माण करना अनावश्यक है, क्योंकि ऐसा करने से परस्पर मतभेद के फलस्वरूप कोर्ट-कचहरी में मुकद्दमों का होना अवश्यम्भावी है, जिसमें मठवासी भूमि-भवन आदि विभिन्न सम्पत्तियों के लिये झगड़ा करेंगे। किन्तु दूसरी ओर हम देखते हैं कि श्रील प्रभुपाद ने कई मठों का निर्माण किया। हमें इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिये कि श्रील प्रभुपाद ने श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के निर्देशों का उल्लङ्घन किया, अपितु हमें यह समझना होगा की उन्होंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के आदेश का अतिविशिष्ट रूप में पालन किया।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के अन्तरङ्ग पार्षद होने के कारण श्रील प्रभुपाद उनके हृद्गत भावों को सम्पूर्ण रूप में समझते थे। इसलिये वह सहजता से ही उनके प्रत्येक निर्देश के पीछे उनके सूक्ष्म विचार एवं उसमें निहित गूढ़ अर्थ को ग्रहण कर सके। प्रत्येक शिक्षा में सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू होते हैं। पारमार्थिक संस्थानों के निर्माण को व्यर्थ एवं प्रतिकूल बताकर श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इसके नकारात्मक परिणामों के विषय में सतर्क किया है किन्तु इसका कदापि यह अर्थ नहीं है कि पारमार्थिक संस्थानों के निर्माण का कोई सकारात्मक पहलू ही नहीं है। श्रील प्रभुपाद यह भलीभाँन्ति समझते थे कि यदि एक मठवासी भी निष्कपट रूप से शुद्ध-भगवद्भक्ति के पथ पर अग्रसर हो पाये, तब आन्तरिक कलहों की सम्भावना के मूल्य पर भी मठों का निर्माण करना श्रेयस्कर होगा।

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी सहित श्रील प्रभुपाद के मिशन के सभी भक्तों ने भूमि-संग्रह, मठ-निर्माण एवं उनकी देखरेख के लिये अत्यधिक कठोर परिश्रम किया है। उन्होंने कभी भी श्रील प्रभुपाद द्वारा श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के निर्देशों का समुचित ढ़ङ्ग से पूर्ण करने की उनकी निष्ठा पर सन्देह नहीं किया। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि श्रील प्रभुपाद की वाणी एवं आचरण सम्पूर्णतया श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की विचारधारा के अनुरूप था एवं उन्हें श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का पूर्ण अनुमोदन प्राप्त था।

अयोग्य आचार्य की वास्तविकता को प्रकाशित करना

श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अप्रकट के पश्चात् गौड़ीय मठ के नये आचार्य का चयन करने का समय उपस्थित हुआ। मेरे गुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के अनुसार श्रीमद्भक्तिप्रदीप तीर्थ गोस्वामी महाराज इस पद के लिये सबसे अधिक उपयुक्त पात्र थे किन्तु समय आने पर, सर्वसम्मति से श्रीअनन्त वासुदेव प्रभु को आचार्य पद पर नियुक्त किया गया एवं श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी सचिव के रूप में सेवा करने लगे।

जब श्रीअनन्त वासुदेव प्रभु की दुष्कीर्त्ति प्रकाश में आयी तब श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी ने गुरु महाराज को बुलाकर कहा, "हयग्रीव प्रभु! हम लोगों ने अपने हाथ गीली विष्ठा में दे दिये हैं। यदि यह सूखी होती तो इतनी भयङ्कर दुर्गन्ध नहीं आती। किन्तु दुर्भाग्यवश वास्तविकता यह है कि यह अत्यधिक दुर्गन्धमय एवं घृणास्पद है। हमें अनन्त वासुदेव का समर्थन करने एवं वास्तविकता को समझने में इतना अधिक समय लगाने के लिए खेद अनुभव करना चाहिये एवं उसके लिए प्रायश्चित करना चाहिये। एक अयोग्य व्यक्ति की अवश्य ही सहायता की जानी चाहिये किन्तु ऐसा अयोग्य व्यक्ति जो योग्य होने का अभिनय करके साधारण जनता को मूर्ख बनाता है, उसका पूर्णतया बहिष्कार करना कर्त्तव्य है। हमें जगत्वासियों के कल्याण हेतु इस व्यक्ति की वास्तविकता को सबके समक्ष प्रकट करके दिखलाना होगा।

"आपके निर्मल, नम्र वैष्णव स्वभाव के कारण सभी आपको अपना मित्र मानते हैं तथा आपके वचनों को गुरुत्व प्रदान करते हैं। इसलिये कृपा करके आप सभी को एकत्रितकर एक सभा का आयोजन कीजिये जिससे कि हम सभी एकजुट होकर यह निश्चित कर सकें कि इस व्यक्ति का विरोध किस प्रकार करना है।"

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी के आग्रह अनुसार गुरु महाराज ने अपने समस्त गुरुभ्राताओं को सभा के लिये एकत्रित किया जहाँ पर श्रीअनन्त वासुदेव प्रभु के विरुद्ध न्यायालय में मुकद्दमा करने का निर्णय लिया गया। इस मुकद्दमे के परिणामस्वरूप ही गौड़ीय मठ दो भागों में विभाजित हुआ।

श्रील प्रभुपाद की विचारधारा का सामान्य व्यतिक्रम भी अस्वीकार्य

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी के प्रचार से प्रेरित होकर उनके ज्येष्ठ भ्राता ने श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रयकर मठवास किया। जब श्रील प्रभुपाद ने उनके भ्राता को संन्यास ग्रहण करने का आदेश दिया तो वह उसके लिए अनिच्छुक थे। यद्यपि श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी उनसे आयु में कनिष्ठ थे तथापि उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता पर शासन करते हुए कहा, "आप श्रील प्रभुपाद की आपको संन्यास देने की इच्छा को पूर्ण क्यों नहीं कर रहे हो?" इन प्रेरणादायक वचनों पर विचार करके उनके भ्राता ने संन्यास ग्रहण करना स्वीकार किया एवं श्रीभक्तिकेवल औडुलोमी महाराज के नाम से विख्यात हुए।

श्रील प्रभुपाद के अप्रकट के कुछ समय पश्चात् जब श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी स्वयं भी संन्यास ग्रहणकर श्रील केशव गोस्वामी महाराज के नाम से सुविदित हुए, उस समय उनको ज्ञात हुआ कि श्रीऔडुलोमी महाराज एवं उनके शिष्य तीन प्रकार से श्रील प्रभुपाद की शिक्षाओं का व्यतिक्रम कर रहे हैं, यथा– १) वे ऐसा प्रचार कर रहे हैं कि 'हरे-कृष्ण' महामन्त्र का उच्च स्वर में सङ्कीर्त्तन नहीं करना चाहिये, इसका मात्र मन-ही-मन में जप करना चाहिये जिससे कि कोई अन्य इसे श्रवण न कर सके, २) यद्यपि श्रील प्रभुपाद ने स्वयं अपने अनेक शिष्यों यहाँ तक कि श्रीऔडुलोमी

महाराज को भी संन्यास वेष प्रदान किया, उन्होंने उस गेरुएँ संन्यास वेष का परित्यागकर श्वेत बाबाजी वेष स्वीकार कर लिया तथा यह प्रचार करने लगे कि संन्यास-धर्म कलियुग में सर्वथा वर्जित है, तथा ३) यद्यपि श्रील प्रभुपाद ने स्वयं ही श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा के नियमित आयोजन को पुनः स्थापित किया था किन्तु इन लोगों ने परिक्रमा में भाग लेना अथवा उसका आयोजन करना सर्वथा अस्वीकार कर दिया।

श्रील प्रभुपाद की विचारधारा का सामान्य व्यतिक्रम भी स्वीकार नहीं करने वाले श्रील केशव गोस्वामी महाराज ने श्रीऔडुलोमी महाराज एवं उनके अनुगतजनों से सम्पूर्ण रूप से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। वह कभी भी अपने शिष्यों को बागबाजार गौड़ीय मठ अथवा किसी भी ऐसे स्थान पर जहाँ श्रीऔडुलोमी महाराज अथवा उनके अनुगतजनों का निवास हो, जाने की अनुमति प्रदान नहीं करते थे। यदि श्रील केशव गोस्वामी महाराज को यह पता चलता कि उनका कोई शिष्य श्रीऔडुलोमी महाराज के मठ में गया था तो वह उसे प्रायश्चित-स्वरूप तीन दिन तक मात्र पञ्चगव्य लेकर उपवास करने का आदेश प्रदान करते थे। वह कहते थे, "तुम वहाँ क्यों गये थे? वहाँ के परिवेश से तुम्हारा चित्त दूषित हो गया है, अतः तुम्हारे लिए इस प्रायश्चित के द्वारा चित्त का शुद्धीकरण करना अनिवार्य है।"



अन्ततः श्रील केशव गोस्वामी महाराज ने श्रीऔडुलोमी महाराज एवं उनके शिष्यों के विरुद्ध न्यायालय में मुकद्दमा करने का निश्चय किया। उन्होंने निर्भीकतापूर्वक यह घोषणा की कि ये लोग श्रील प्रभुपाद की अनेक शिक्षाओं को स्वीकार नहीं करते हैं, इसलिये ये लोग श्रील प्रभुपाद के वास्तविक शिष्य कहलाने के योग्य नहीं हैं। इन्हें श्रील प्रभुपाद के द्वारा स्थापित मठों में रहने का भी कोई अधिकार नहीं है।

मदीय गुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने मुझे श्रील केशव

गोस्वामी महाराज द्वारा इस मुकद्दमे से सम्बन्धित वक्तव्यों आदि की श्रुतिलिपि प्रस्तुत करने की सेवा में नियुक्त किया था। श्रुतिलिपि प्रस्तुत करके मैं उसे श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज के पास ले जाता था जो उन्हें पढ़कर भाव-स्पष्टता हेतु उसमें कुछ संशोधन करते थे। सम्पूर्ण लिपि तैयार होने पर मैं उसे कोर्ट में जमा करा देता था।

जिस दिन न्यायाधीश को उस केस पर अपना निर्णय सुनाना था, उसी दिन श्रीऔडुलोमी महाराज अपने आठ शिष्यों को संन्यास प्रदानकर तथा स्वयं भी गेरुआ संन्यास वेष धारणकर अपने समस्त संन्यासी शिष्यों एवं अनुयायियों सहित सम्पूर्ण नगर में भ्रमणपूर्वक, उच्च स्वर में हरिनाम सङ्कीर्त्तन करते हुए कोर्ट में उपस्थित हुए।

उन्होंने श्रील केशव गोस्वामी महाराज के द्वारा लगाए गए समस्त अभियोगों का खण्डन करते हुए न्यायाधीश के सम्मुख यह कहा, "हम लोग गेरुएँ वस्त्र धारण कर, अपने संन्यास दण्डों को हाथ में रखकर, उच्चस्वर से हरिनाम सङ्कीर्त्तन करते हुए श्रीनवद्वीप धाम की परिक्रमा कर रहे हैं। हमने श्रीगोद्रुमद्वीप में श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के नाम से एक मठ की स्थापना की है जहाँ पर हमने उनके श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा भी की है। तब किस प्रकार कोई यह कह सकता है कि हम श्रील प्रभुपाद के शिष्य नहीं हैं?"

यह सब सत्य जानकर, न्यायाधीश ने श्रील औडुलोमी गोस्वामी महाराज एवं उनके शिष्यों के पक्ष में निर्णय सुनाया। ऐसा प्रतीत हुआ कि श्रील केशव गोस्वामी महाराज केस में पराजित हुए। मैंने श्रील केशव गोस्वामी महाराज से कहा, "आप एवं आपके गुरुभ्राताओं ने इस केस के सम्बन्ध में बहुत अधिक परिश्रम किया है, मैंने भी आपके द्वारा कथित वक्तव्यों की श्रुतिलिपि प्रस्तुत करने, उन्हें श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज के पास संशोधन के लिये ले जाने तथा न्यायालय में जमा कराने में अत्यधिक परिश्रम किया है, तब भी हम लोग पराजित हो गए। क्या अब पराजित होने पर आप न्यायालय में इस निर्णय के सम्बन्ध में पुनर्समीक्षा याचिका दाखिल नहीं करेंगे?"

श्रील केशव गोस्वामी महाराज ने कहा, "हम हारकर भी जीत गये हैं तथा वे जीतकर भी हार गये हैं।"

मैंने कहा, "महाराज, मुझे यह बात समझ नहीं आई।"

श्रील केशव गोस्वामी महाराज ने तब स्पष्ट करते हुए कहा, "मेरा एकमात्र उद्देश्य यही था कि वे लोग श्रील प्रभुपाद के आदेश-निर्देशों के अनुसार ही आचरण करें और अब हमने देखा कि वे लोग ऐसा ही कर रहे हैं। वे अब संन्यास वेष धारण कर रहे हैं, अन्यों को संन्यास प्रदान कर रहे हैं तथा उच्च स्वर में हरिनाम सङ्कीर्त्तन कर रहे हैं। इस प्रकार हम ही विजयी हुए एवं वे पराजित हुए हैं। हम लोगों का झगड़ा किसी अन्य वस्तु के लिए नहीं, केवल मात्र विशुद्ध सिद्धान्त की स्थापना तथा उनको श्रील प्रभुपाद से सम्बन्धयुक्त कराने के लिए ही था। यदि वे लोग पुनः कभी श्रील प्रभुपाद की शिक्षाओं के

विरुद्ध आचरण करेंगे तब हम अवश्य ही पुनर्समीक्षा याचिका दाखिल करेंगे।"

उन्होंने तब मुझसे पूछा, "यदि कोई तुम्हें मुक्के मारने लगे तो तुम कितने मुक्के सहन कर सकते हो?"

मैंने कहा, "एक भी नहीं, मैं बलपूर्वक मुक्कों का विरोध करूँगा।"

श्रील केशव गोस्वामी महाराज ने पूछा, "यदि तुम्हारे हाथ एवं पाँव रस्सियों से बँधे हों तब तुम कितने मुक्के सहन करोगे?"

मैंने कहा, "तब मारने वाला जितने मुक्के मारेगा, मैं उतने ही मुक्के सहन करने के लिये बाध्य हूँ।"

श्रील केशव गोस्वामी महाराज ने कहा, "इसी प्रकार यदि कोई दोष करेगा एवं श्रील प्रभुपाद की शिक्षाओं के विरुद्ध आचरण करेगा तो हम उनके हाथों को बाँधकर उन पर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से तब तक प्रहार करेंगे जब तक कि वे श्रील प्रभुपाद की शिक्षाओं को पुनः स्वीकार नहीं कर लेते।"

श्रील केशव गोस्वामी महाराज द्वारा श्रीऔडुलोमी महाराज के आचार-विचार का विरोध करने से पूर्व यद्यपि श्रीऔडुलोमी महाराज का श्रील प्रभुपाद के नाम से मठ की स्थापना करने अथवा वहाँ उनके श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा करने का कोई विचार नहीं था, किन्तु श्रील केशव गोस्वामी महाराज के निर्भीक प्रयासों से भयभीत होकर वह इस कार्य में प्रवृत्त हुए तथा मठ का नाम 'श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गौड़ीय मठ' रखा। यह श्रील केशव गोस्वामी महाराज की कृपामयी चेष्टाओं का ही परिणाम है कि आज भी श्रीऔडुलोमी महाराज के शिष्य तथा बागबाजार गौड़ीय मठ के भक्तगण संन्यास ग्रहण करते हैं, नवद्वीप धाम परिक्रमा करते हैं तथा उच्च स्वर से 'हरे कृष्ण' महामन्त्र का सङ्कीर्त्तन करते हैं।

हमारा उद्देश्य भूमि-भवन का व्यवसाय करना नहीं

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी श्रील प्रभुपाद के प्रकटकाल के समय (श्रीचैतन्य मठ द्वारा सेवित) श्रीवास आङ्गन से संलग्न एक भूमिखण्ड को संग्रह करना चाहते थे, जिसका स्वामित्व किसी मुस्लिम के पास था। श्रीधाम-मायापुर में श्रीचैतन्य मठ के बढ़ते हुए प्रभुत्व से अप्रसन्न वह मुस्लिम व्यक्ति अपनी भूमि श्रीचैतन्य मठ को विक्रय करने में अनिच्छुक था। श्रील प्रभुपाद के अप्रकट के पश्चात् कुछ मतभेदों के कारण श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी ने श्रीचैतन्य मठ से पृथक होकर श्रीनवद्वीप शहर में निज संस्थान 'श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति' की स्थापना की। संन्यास ग्रहण करने के उपरान्त वह श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज के नाम से सुविख्यात हुए। जब उस मुस्लिम व्यक्ति ने श्रील महाराज के श्रीचैतन्य मठ से पृथक हो जाने के विषय में सुना तब गौड़ीय संस्थान को परस्पर भूमि-कलह में नियुक्त कर हानि पहुँचाने के उद्देश्य से

"हमारा एकमात्र उद्देश्य
श्रील प्रभुपाद एवं वैष्णवों
की सेवा करना है।"

उसने अति प्रसन्नतापूर्वक उस भूमि को श्रील केशव गोस्वामी महाराज को विक्रय कर दिया।

जब श्रीचैतन्य मठ के भक्तों को यह ज्ञात हुआ कि वह भूमि श्रील केशव गोस्वामी महाराज ने संग्रह कर ली है, तब उन्होंने भूमि की प्राचीर को तोड़कर उसे अपनी ही सम्पत्ति में मिला लिया।

जब मैंने इसका उल्लेख श्रील केशव गोस्वामी महाराज से किया तो उन्होंने हँसते हुए कहा, "यह सर्वथा उचित ही है। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। जब श्रील प्रभुपाद उपस्थित थे, मैं इस स्थान को मुस्लिमों के हाथ से छुड़ाना चाहता था। मुझे यह देखकर अति कष्ट होता था कि आसपास की समस्त भूमि का स्वामित्व होने पर भी यह छोटा-सा भूमिखण्ड ऐसे व्यक्तियों के पास है जो भक्तिमयी क्रियाओं के विरुद्ध हैं। मैंने यह स्थान कोई अपने निजी भोग हेतु संग्रह नहीं किया था, अपितु एकमात्र श्रील प्रभुपाद की सेवा के उद्देश्य से ही संग्रह किया था। यदि श्रीचैतन्य मठ ने उस स्थान पर अपना अधिकार कर लिया है तो इसमें किसी भी प्रकार का कोई दोष नहीं है। अपित ु यह तो मेरा सौभाग्य है कि उन्होंने इस भूमि को श्रील प्रभुपाद की सेवा हेतु अपना लिया है।"

तब उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा, "हम यहाँ पर (परमार्थ राज्य में) भूमि-भवन आदि सम्पत्ति का व्यवसाय करने के लिए नहीं आए हैं। हमारा एकमात्र उद्देश्य श्रील प्रभुपाद एवं वैष्णवों की सेवा करना है।"

श्रील प्रभुपाद के सिद्धान्त-रक्षा हेतु ही हमारी चेष्टाएँ, सम्पत्ति संग्रह के लिए नहीं

इसी प्रकार की एक अन्य घटना श्रील प्रभुपाद के अप्रकट काल के पश्चात् हुई। श्रीचैतन्य मठ के भक्त आम के अनेकानेक वृक्षों से युक्त एक भूमि को विक्रय करना चाहते थे। वह भूमि श्रीनवद्वीप में रौतला नामक स्थान पर थी। श्रील केशव गोस्वामी महाराज ने उसे विक्रय करने का विरोध किया तथा उनके विरुद्ध न्यायालय में मुकद्दमा कर दिया। श्रील महाराज ने अपने गुरुभ्राता श्रीमद्भक्तिविज्ञान आश्रम गोस्वामी महाराज एवं श्रीखगेन प्रभु के नाम से मुकद्दमा किया क्योंकि पूर्व में कुछ मिथ्या आरोपों के कारण श्रील केशव गोस्वामी महाराज को कारागार में जाना पड़ा था जिसके कारण वह अपने नाम से मुकद्दमा दायर नहीं कर सकते थे। जब श्रीचैतन्य मठ के भक्त न्यायालय में अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए आए, तो उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि उनका सम्पत्ति को विक्रय करने का कोई विचार नहीं है तथा भविष्य में भी इसे विक्रय नहीं करेंगे। इसके लिये कोर्ट के समक्ष उन्होंने लिखित निवेदन भी प्रस्तुत किया। यह सुनकर न्यायाधीश ने मुकद्दमा रद्द कर दिया तथा अपने अभिलेख में यह लिख दिया कि यह भूमि कभी भी विक्रय नहीं होगी।

श्रील केशव गोस्वामी महाराज से अत्यन्त कनिष्ठ होने के कारण तथा उनके प्रति गौरव बुद्धिवशतः प्रारम्भ में मुझे उनसे भय

लगता था तथा मैंने कभी उनसे कोई प्रश्न नहीं किया। किन्तु प्रतिदिन उनके साथ प्रतिलेखन सेवा करने के कारण धीरे-धीरे मेरा भय चला गया।

हमारे अत्यधिक प्रयास एवं बहुत अधिक ऋण लेकर किया गया मुकद्दमा हार जाने पर जब मैंने निराशा प्रकट की तब श्रील केशव गोस्वामी महाराज ने कहा, "तुम अभी नए हो। तुम कुछ नहीं समझ सकते।"

उनके इस उत्तर से उलझकर मैंने कहा, "मैं कुछ समझा नहीं।"

तब उन्होंने समझाया, "यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि इस न्याय में हमारी हार हुई है एवं उनकी जीत हुई है किन्तु वास्तव में हमारी जीत हुई है एवं उनकी हार हुई है।"

उनके इन वचनों से मैं और अधिक भ्रमित हो गया तथा उनसे कहा, "मैं अभी भी नहीं समझा। जब मुकद्दमा रद्द कर दिया गया है तो हम किस प्रकार से विजयी हुए हैं।"

श्रील केशव गोस्वामी महाराज ने कहा, "प्रतीत होता है कि मुझे तुम्हें विस्तारपूर्वक स्पष्ट रूप से समझाना होगा। सुनो, हमने सम्पत्ति संग्रह करने के लिये मठवास स्वीकार नहीं किया। यह मुकद्दमा भूमि के लिए नहीं था, अपितु सिद्धान्त-रक्षा के लिए था। यह भूमि श्रील प्रभुपाद की थी तथा वह इसे श्रीमन्महाप्रभु के मिशन की सेवा हेतु व्यवहार करना चाहते थे। हमारे मुकद्दमे के कारण श्रीचैतन्य मठ के भक्तों ने न्यायालय में लिखित निवेदन जमा कर दिया है कि वे इसे कभी विक्रय नहीं करेंगे। वे अब न्यायालय के आदेशानुसार इस भूमि को रखने के लिये बाध्य हैं। इसलिये हम विजयी हुए हैं तथा उनकी पराजय हुई है।"

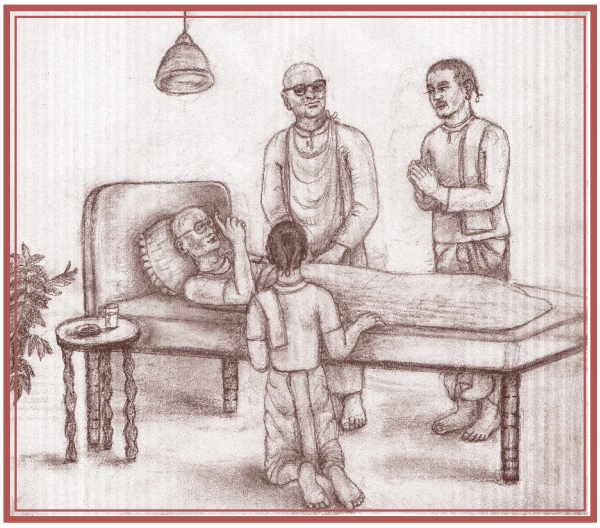
सिंह-स्वरूप-आचार्य

यद्यपि श्रील केशव गोस्वामी महाराज बाह्य दृष्टि से दुबले-पतले प्रतीत होते थे किन्तु पाषण्ड-दलन में वे सिंह के समान उग्र एवं श्रील प्रभुपाद के प्रति निष्ठा में सुदृढ़ थे। जब उन्होंने अपनी अस्वस्थ लीला प्रकाशित की तब गुरु महाराज एवं श्रीजगमोहन प्रभु मुझे अपने सेवक के रूप में लेकर उनसे भेंट करने गए। उस समय गुरु महाराज ने श्रील केशव गोस्वामी महाराज से पूछा, "यदि आप अस्वस्थ लीला प्रकाशित करेंगे तब हम इन मामला-मुकद्दमों को किस प्रकार जारी रख पाएँगे?"

यद्यपि श्रील केशव गोस्वामी महाराज बहुत अस्वस्थ थे किन्तु उनका प्रत्युत्तर इतना अधिक ओजस्वी था कि वह आज तक भी मेरे कर्णों में गूँज रहा है। उन्होंने कहा, "मुझे चाहे कुछ भी हो, मठवासियों को इन मुकद्दमों को जारी रखने का दायित्व लेना होगा अन्यथा उन्हें मठ में रहने का कोई अधिकार नहीं होगा।"

जागतिक हानि-लाभ से परे सर्वदा सर्वत्र श्रील प्रभुपाद की कृपा का दर्शन

प्रारम्भिक दिनों में नवद्वीप स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ में दो ही कक्ष थे- एक ठाकुरजी के लिए तथा एक श्रील केशव गोस्वामी महाराज एवं उनके सेवक



के लिए। यद्यपि उनके पास अति अल्प सम्पत्ति थी एवं धन का भी अभाव था, किन्तु श्रीचैतन्य मठ से पृथक श्रीनवद्वीप-धाम की वार्षिक परिक्रमा प्रारम्भ करने वाले वह पहले व्यक्ति थे।

उन्होंने परिक्रमा के सुव्यवस्थित आयोजन हेतु अनेक लोगों से ऋण लिया तथा किसी भी यात्री से प्रवेश शुल्क लिए बिना जितना अधिक सम्भव हो पाया, सभी लोगों का परिक्रमा करने हेतु आह्वान एवं स्वागत किया। वह लाभ अथवा हानि के विषय में लेशमात्र भी चिन्तित नहीं थे तथा उनका एकमात्र उद्देश्य श्रील प्रभुपाद के मिशन को बनाए रखना था। वे इस प्रकार की उच्च चेतना के धनी थे।

श्रील केशव गोस्वामी महाराज प्रायः कहा करते थे, "यद्यपि मठ के प्रारम्भिक दिनों में बहुत से व्यक्ति श्रील प्रभुपाद के साथ में रहे किन्तु उन्होंने किसी को भी भिक्षा संग्रह के लिये आदेश नहीं दिया। अपनी इच्छा से श्रद्धालु व्यक्ति जो भी भिक्षा दे जाते, उस से ही भक्तों की सेवा होती थी। खाद्य सामग्री के अभाव के कारण दोपहर के समय प्रसाद में सबको एक कटोरी चावल एवं शाक मिलता। जब हम श्रील प्रभुपाद के साथ परिक्रमा करते तो सभी वृक्षों के नीचे ही ठहरते थे। श्रील प्रभुपाद हमारी वर्तमान स्थिति से परिचित हैं इसलिये वह बहुत सी वस्तुएँ भेज रहे हैं। अब हम जब परिक्रमा करते हैं तो हम बड़े-बड़े तम्बुओं में रहते हैं तथा यात्रियों को भी प्रचुर मात्रा में प्रसाद वितरण करते हैं।"

यद्यपि बाहरी रूप में श्रील केशव गोस्वामी महाराज के पास कुछ अधिक नहीं था तथा परिक्रमा आयोजित करने के लिए भी धन ऋण लेना पड़ता था तथापि वे सुनिश्चित रूप से प्रत्येक परिस्थिति में ही श्रील प्रभुपाद की कृपा का दर्शन करते थे तथा वास्तव में उन्होंने कभी कोई अभाव अनुभव नहीं किया।

रेल के माध्यम से तीर्थ भ्रमण

श्रील केशव गोस्वामी महाराज भारत के विभिन्न तीर्थ स्थानों की परिक्रमाओं का आयोजन करने वाले गौड़ीय मठ के इतिहास में प्रथम व्यक्ति थे। वह यात्रियों के लिए रेलगाड़ी किराए पर लेकर उत्तर भारत, दक्षिण भारत एवं अन्य तीर्थों की यात्रा का आयोजन करते थे। उन रेल-डिब्बों के दो विभाग होते थे – एक रन्धन सेवा के लिए तथा दूसरा यात्रियों के रहने के लिए। परिक्रमा पार्टी अपनी इच्छानुसार जिस किसी स्थान पर जितने समय चाहे रुकती थी तथा उसके बाद अगले स्थान के लिए प्रस्थान करती थी।



अप्राकृत प्रीति एवं सम्बन्ध की एक झलक

[श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा १९८८ ई॰ में श्रील भक्तिप्रज्ञान गोस्वामी महाराज के अप्रकटलीला आविष्कार करने के अवसर पर लिखा गया एक पत्र जिसमें उन्होंने निज गुरुभ्राता से विरह में अपनी हार्दिक दीनता को प्रकाशित किया है।]

श्रीश्रीगुरु गौराङ्गौ जयतः

श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ,
ईशोद्यान,
पी॰ओ॰ श्रीमायापुर
जिला नदिया (प॰ब॰)
पिन ७४१३१३

त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिप्रमोद पुरी

दिनांकः २६.१०.१९८८

यह पत्र इस अधम दासानुदास का नित्यलीलाप्रविष्ट परमपूजनीय त्रिदण्डिगोस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज के श्रीचरणों में उनकी विरह-तिथि पूजा के उपलक्ष्य में एक विनम्र निवेदन है—

पूज्यपाद महाराज,

आज आपकी अप्रकट तिथि पूजा है। परन्तु आप तो श्रीगुरुपादपद्म के नित्य पार्षद नित्यजन हैं एवं उनकी नित्यसेवा में नियुक्त

हैं। अप्राकृत तत्त्व होने पर भी आपने अपने प्रिय स्थान श्रीधाम नवद्वीप-मायापुर में अपनी नित्य प्रकट-लीला प्रकाशित की। वहाँ, श्रीधाम मायापुर स्थित श्रीचैतन्य मठ में आप परमाराध्य श्रील प्रभुपाद की नित्यसेवा के आनन्द में विभोर हैं। यह स्थान श्रीमन्महाप्रभु का जन्मस्थान है तथा वृन्दावन से अभिन्न है। आपके परम प्रिय गुरुभ्राता श्रीनरहरि दा भी आपके मुख्य सहायक के रूप में वहीं पर श्रील प्रभुपाद की नित्य सेवा में नियुक्त हैं।

आप दोनों ने अपने इस अधम कनिष्ठ गुरुभ्राता पर उसके मठवास के आरम्भिक दिनों में स्नेहपूर्ण कृपा वर्षण की थी एवं मुझे आपके श्रीचरणों के आनुगत्य में कई वर्षों तक प्रातः से सन्ध्या तक श्रील प्रभुपाद के श्रीचरणों की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन दिनों आपने अपने इस पतित अयोग्य भ्राता के प्रति अपनी असीमित प्रीति के भण्डार को खोलकर उसे सेवा के लिये अत्यधिक उत्साह प्रदान किया था। उस समय आपके स्नेह से आबद्ध होकर मैंने यह निश्चय किया था कि मैं सम्पूर्ण जीवन श्रील प्रभुपाद की सेवा के लिये श्रीधाम मायापुर में ही निवास करूँगा। परन्तु विधि के विधान अनुसार, मुझे श्रीगौड़ीय मठ, कोलकाता में लम्बे समय तक निवास करना पड़ा। मैं श्रील प्रभुपाद के अप्रकट के पश्चात् हमारे गुरुभ्राता नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, कोलकाता में रहा।

मैं अपने जीवन के अन्तिम दिनों में पुनः श्रीधाम मायापुर में ईशोद्यान स्थित श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ में आ गया हूँ। मैं यहाँ पर गत आठ मास से हूँ परन्तु दुर्भाग्यवश यहाँ भी मैं भजनविज्ञ विशुद्ध वैष्णवों के सङ्ग के अभाव में अत्यन्त हार्दिक कष्टप्रद अवस्था में समय व्यतीत कर रहा हूँ। अतएव विरह वेदना से पीड़ित मैं आपके श्रीचरणों में यह प्रार्थना करता हूँ- हे अदोषदर्शी वैष्णव ठाकुर! कृपया अपने इस अभागे कनिष्ठ भ्राता को भूल मत जाइयेगा। प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत नहीं रहते हुए भी कृपया उस पर अपने अप्राकृत स्नेह रूपी अमृत का वर्षण पूर्व की भाँति ही सर्वदा करते रहना ।

कटवा में आपने नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज से त्रिदण्ड संन्यास वेष ग्रहण किया। उस समय यह अधम भी वहीं उपस्थित था। मुझे मनन होता है कि श्रील माधव गोस्वामी महाराज की इच्छानुसार मैंने ही यज्ञ की अग्नि भी प्रज्वलित की थी। आपके प्रकट काल के समय मुझे अनेक अवसरों पर विभिन्न स्थानों पर यथा श्रीनवद्वीपस्थ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा मठ एवं कोलकाता में आपके सङ्ग का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आज मैं यहाँ पूर्णतया असहाय हो गया हूँ। गत १५ अक्टूबर, १९८८ को मैंने अपने जीवन के इक्यानवें वर्ष में प्रवेश किया है एवं मैं सर्वथा अयोग्य हो गया हूँ। मैं शुद्ध भक्तों के सङ्ग की प्राप्ति हेतु स्वेच्छा से किसी भी स्थान पर नहीं जा सकता, तथा स्वयं को इस सौभाग्य से वञ्चित हुआ मानता हूँ। ऐसी स्थिति में,

कृपया अपने इस पतित कनिष्ठ गुरुभ्राता के पारमार्थिक जीवन की आप रक्षा कीजिये एवं यद्यपि आप हमारी दृष्टि से अगोचर हो गये हैं, तब भी अपने अप्राकृत स्नेह रूपी अमृत की वृष्टि से मेरा पोषण कीजिये। आज आपके श्रीचरणों में मेरी यही हृद्गत प्रार्थना है– हे अदोषदर्शी वैष्णवप्रवर! मेरे द्वारा ज्ञात और अज्ञात रूप में कृत सभी अपराधों, त्रुटि–विच्युतियों को क्षमा एवं निज महत्–गुणों से संशोधन करें एवं श्रील प्रभुपाद के श्रीचरण–कमलों की नित्य सेवा में अधिकार प्रदानकर कृतकृतार्थ कीजिये। आपकी शुभ तिरोभाव तिथि के सुअवसर पर आपके श्रीचरणों में केवलमात्र यही प्रार्थना है।

वैष्णव–दासानुदास
श्रीभक्तिप्रमोद पुरी



पूज्यपाद केशव महाराज का महिमामृत

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित

एक असाधारण व्यक्तित्व का शुभाविर्भाव

श्रीभगवान् की इच्छा से उनके अन्तरङ्ग पार्षद श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी का जन्म भक्ति परिवेश से युक्त एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ। अति शिशु अवस्था से ही उनके विलक्षण सद्गुणों यथा उनकी सच्चरित्रता, धर्म में तीव्र अनुराग, अन्याय के निर्भीक भाव से तीव्र प्रतिवाद आदि को देखकर उनके आत्मीय स्वजन एवं विज्ञजन विस्मित होते एवं समालोचना करते हुए कहते कि निश्चित ही यह बालक शीघ्र एक अतिमर्त्य महापुरुष के रूप में आत्म प्रकाश करेगा।

श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय ग्रहण

श्रीपाद विनोदविहारी ब्रह्मचारी प्रभु ने जब १९१५ ई॰ में श्रीधाम मायापुर में आगमन किया, तब उन्हें परमाराध्यतम श्रील प्रभुपाद के दर्शन का सौभाग्य तथा साथ ही उनकी हरि–कथा श्रवण करने का भी विशेष सुयोग प्राप्त हुआ। १९१९ ई॰ में श्रील प्रभुपाद के श्रीचरणकमलों का आश्रय करते हुए उन्होंने नैष्ठिक ब्रह्मचारी अथवा बृहद्व्रती के रूप में 'व्रजपत्तन' श्रीचैतन्य मठ में स्थायी रूप से अवस्थान प्रारम्भ किया तथा प्रणिपात, परिप्रश्न एवं सेवावृत्ति सहित श्रीगुरुदेव से धर्मतत्त्व एवं शास्त्र–सिद्धान्त के सम्बन्ध में अनेक शिक्षाएँ ग्रहण की।

मायावाद का खण्डन

'मायावाद सब प्रकार से भक्ति–विघातक, आत्मघाती विचार है; श्रीमन्महाप्रभु ने उसका किसी भी प्रकार से अनुमोदन नहीं किया, एवं उसे भक्ति–विरोधी बतलाकर सम्पूर्णतया अस्वीकार किया'– यह श्रील प्रभुपाद के श्रीमुख से उन्होंने विशेष रूप से श्रवण किया तथा ब्रह्मचारीजी के हृदय में यह शिक्षा मूलरूप से, दृढ़तापूर्वक स्थापित हो गई। इसी कारण उन्होंने वेदान्त दर्शन–शास्त्र के विभिन्न भाष्यकारों द्वारा रचित लगभग १०–

१२ भाष्य संगृहीत किए एवं इस विषय पर चर्चा करते हुए कटक के रावेनशॉ कॉलेज एवं अनेक विद्वत् सभाओं में शङ्कर-दर्शन की अतार्किकता एवं अप्रमाणिकता के सम्बन्ध में वक्तृताएँ प्रदान की। उनकी वक्तृता का मूल सारांश श्रीधाम मायापुर से प्रकाशित होने वाले तत्कालीन 'दैनिक नदिया प्रकाश' नामक पत्र में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने मूलतः श्रीमन्महाप्रभु की नाम-भजन शिक्षा का अवलम्बन करते हुए ही ब्रह्मसूत्र के विचार का प्रदर्शन किया है। उन्होंने ऐसा लिखा है- 'ब्रह्म' कहने से यह 'शब्द-ब्रह्म' को लक्षित करता है, यह 'शब्द-ब्रह्म' ही श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित 'श्रीनामब्रह्म' है। निराकार, निर्विशेष, निर्गुण-स्वरूपीय ब्रह्म की कथा ब्रह्मसूत्र के लगभग ५५० सूत्रों में कहीं भी उल्लिखित नहीं हुई। ब्रह्म यदि निर्गुण हैं तब ब्रह्म में दया रूपी गुण कदापि उपस्थित नहीं हो सकता। श्रीवेदव्यास ने उपरोक्त तीन शब्दों (निराकार, निर्विशेष, निर्गुण) का वेदान्त में किसी भी स्थान पर उल्लेख नहीं किया।

विभिन्न बुद्धों का वर्गीकरण

एक बार चुँचुड़ा के निकटवर्ती श्रीरामपुर शहर में माननीय वकील श्रीयुत फनीभूषण चक्रवर्ती शास्त्री, एम.ए., बी.एल., महाशय के संस्कृत विद्यालय में स्वामीजी ने सप्ताह-व्यापी श्रीमद्भागवतम् का पाठ किया। उस समय उनके घर में एक विराट लाइब्रेरी देखकर उनको वहाँ अनेक ग्रन्थों के अनुसन्धान का सुयोग प्राप्त हुआ। उन समस्त ग्रन्थों में 'लङ्कावतार-सूत्र' नामक एक बौद्धधर्म के ग्रन्थ ने स्वामीजी का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। उन्होंने उस ग्रन्थ का अध्ययन करने के उद्देश्य से वकील बाबू से वह ग्रन्थ संग्रह किया। इस ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखा है- रावण विमान के द्वारा सर्वोच्च पर्वत पर आए हुए बुद्ध के साथ अद्वैतवाद पर आलोचना करने के लिए जाते थे। स्वामीजी द्वारा रचित 'मायावाद की जीवनी' नामक ग्रन्थ में (पृष्ठ सं॰ २०) इसी 'लङ्कावतार-सूत्र' से संगृहीत प्रमाण को उद्धृत किया गया है। इस प्रकार स्वामीजी ने त्रेतायुग के अद्वैतवादीगणों के इतिहास का संग्रह किया है।

१९४६ ई॰ में स्वामीजी काशी महानगरी में ऊर्जाव्रत पालन के समय एक दिन बुद्धगया गए थे। वहाँ पर उन्होंने देखा कि बुद्धगया के मन्दिर आदि प्राचीन काल से ही अद्वैतवादी सम्प्रदाय के किसी विशिष्ट शङ्कराचार्य महन्त की देखरेख में ही सेवित



एवं परिचालित हो रहे हैं। वे महन्त ही बुद्धगया के सत्ताधिकारी हैं।

"शङ्कर सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य किसी बौद्ध मठ के अधिपति किस प्रकार हो सकते हैं? ऐसा होने से क्या शङ्कर सम्प्रदाय बौद्ध–अनुगत है?" स्वामीजी ने कोतूहलवश मठाधीश महाशय के समक्ष यह जिज्ञासा प्रकट की तो महोदय ने कुछ असन्तुष्ट होकर उनसे 'ललित–विस्तार' नामक ग्रन्थ में उल्लिखित कथा का वर्णन किया एवं ग्रन्थ भी उनके हाथ में दे दिया। इस ग्रन्थ के अध्याय २१, पृष्ठ सं॰ १७८ से एक प्रमाण 'मायावाद की जीवनी' ग्रन्थ में पृष्ठ सं॰ १९ पर उद्धृत किया गया है– "प्राचीन बुद्ध के आविर्भाव स्थान बुद्धगया को अपनी सिद्धि प्राप्ति के अनुकूल मानकर शाक्य बुद्ध ने वहाँ पर एक अञ्जीर के वृक्ष के नीचे बैठकर तपस्या की।"

स्वामीजी ने लिखा है – इस बुद्धगया का ही प्राचीन नाम कीकट है। इस स्थान पर बुद्धदेव की प्रतिमूर्त्ति अभी भी शङ्कर सम्प्रदाय के 'गिरी' संन्यासीगणों के अधिनायकत्व में सेवित होती है। वह ऐसा स्वीकार करते हैं कि बुद्धगया नामक स्थान ही पूर्वबुद्ध अथवा आदिबुद्ध अथवा विष्णुबुद्ध का आविर्भाव स्थान है। यह स्थान शाक्य–सिंह बुद्ध की मुक्ति प्राप्ति के लिए उपासना क्षेत्र–मात्र है। इसके द्वारा यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि प्राचीन बुद्ध अवतार एवं वर्तमान गौतम बुद्ध एक नहीं हैं। अमरकोष में भगवान् बुद्ध का दूसरा नाम 'समन्तभद्र' उल्लिखित है। बोधिसत्त्व बुद्धों में समन्तभद्र का उल्लेख किया गया है, जबकि गौतम मनुष्यबुद्धों में से एक है। वही गौतम ज्ञानप्राप्ति के पश्चात् बुद्ध नाम से विख्यात हुए। अतएव यह ज्ञात होता है कि बुद्ध की तीन श्रेणियाँ हैं– मनुष्य बुद्ध, बोधिसत्व बुद्ध एवं आदिबुद्ध।

मायावाद की उपेक्षा

स्वामीजी ने भक्ति मार्ग का अनुसरण करने वाले साधक जनों को मायावाद के वास्तविक स्वरूप अर्थात् भक्ति प्रतिकूल भाव एवं मायावादी रूपी भक्ति–विधातक सङ्ग को नितान्त अस्वीकार करते हुए उनका समस्त प्रकार से वर्जन करने का उपदेश दिया है। इस उपलक्ष में उन्होंने श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी के शब्दों का उल्लेख किया है– "मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश" अर्थात् मायावादियों द्वारा रचित वेदान्त के भाष्य का श्रवण करने से सर्वनाश होता है। (श्रीचैतन्यचरितामृत, मध्य–लीला ६.१६९)।

श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ने भी मायावाद के विषय में कहा है–

विषय–विमूढ़ आर मायावादी जन।
भक्ति–शून्य दुँहे प्राण धरे अकारण॥
से दु'एर मध्ये विषयी तबु भाल।
मायावादी–सङ्ग नाहि मागि कौन काल॥
मायावाद–दोष जार हृदय पशिल।
कुतर्के हृदय तार वज्र–सम भेल॥
भक्तिर स्वरूप आर 'विषय', 'आश्रय'।
मायावादी 'अनित्य' बलिया सब कय॥
धिक् ता'र कृष्ण–सेवा श्रवण कीर्त्तन।
कृष्ण–अङ्गे वज्र–हाने ताहार स्तवन॥
मायावाद–सम भक्ति प्रतिकूल नाइ।
अतएव मायावादी–सङ्ग नाहि चाइ॥

[विषय-भोगों में रत भौतिकतावादी तथा निर्विशेष मायावादी, दोनों ही भक्ति से सर्वथा रहित हैं अतएव उनका जीवन निरर्थक है। उन दोनों में से विषयी तब भी ठीक हैं। किसी भी अवस्था में मैं मायावादी के सङ्ग की कामना नहीं करता। मायावाद रूपी दोष जिसके हृदय में प्रवेश कर जाता है, कुतर्क के कारण उसका हृदय वज्र के समान कठोर हो जाता है। भक्ति के स्वरूप तथा इसके 'विषय' एवं 'आश्रय' को मायावादी सर्वथा अनित्य मानता है। उनके द्वारा की गयी कृष्ण-सेवा, श्रवण एवं कीर्त्तन को धिक्कार है। उनका स्तुति-गान कृष्ण के अङ्गों पर वज्र द्वारा प्रहार के समान है। मायावाद के समान भक्ति के प्रतिकूल अन्य कोई वस्तु नहीं है, अतएव मैं मायावादी के सङ्ग कदापि नहीं चाहता।]

इस प्रकार मायावाद के खण्डन की चेष्टा द्वारा भक्तिदेवी को हार्दिक सुख प्रदान करना श्रीस्वामीजी के भागवतीय जीवन का एक प्रधान पर्व था।

एक चमत्कारपूर्ण घटना

१९४० ई॰ में जून माह में श्रीब्रह्मचारीजी किसी आवश्यक कारणवश अत्यन्त दुःख सहित श्रीचैतन्य मठ से चले आए। १९४१ ई॰ में उन्होंने संन्यास ग्रहण किया एवं अक्षय तृतीया के दिन बागबाजार पल्ली में ३३-२, बोसपाड़ा लेन स्थित एक किराए के मकान में 'श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति' की स्थापना की।

स्वामीजी के जीवन चरित्र में एक अलौकिक घटना का उल्लेख पाया जाता है। एक समय १९४१ ई॰ अथवा १९४२ ई॰ में, स्वामी जी उनके ३३-२, बोसपाड़ा लेन स्थित गौड़ीय वेदान्त समिति के मुख्यालय पर निज कक्ष में उपस्थित थे। उस समय स्वामीजी के सतीर्थ श्रीपाद नारायणदास मुखोपाध्याय सेवासुहृत प्रभु निज १४ फरडाइस लेन स्थित निवासस्थान से एकादशी तिथि पर उनसे साक्षात्कार करने के लिए उपस्थित हुए। वे प्रातःकाल में आए तथा परस्पर कथोपकथन में दोनों गुरुभ्राताओं का अनेक समय व्यतीत हो गया। अब जब वे वापस जाने के लिए उद्यत हुए, तब श्रीमहाराज उनको कुछ कलेवा, जलपान इत्यादि प्रस्तुत करने के लिए सचेष्ट हुए। किन्तु उस समय उनके हाथ में एक पैसा भी नहीं था जिससे कि अन्ततः कुछ बतासों सहित जल तक ही वे अपने गुरुभ्राता को प्रस्तुत कर सकें। क्या केवल मात्र मुख से ही गुरुभ्राता को विदाई दी जाती है? सम्भ्रान्त कुल के वंशज श्रीमहाराज के प्राण क्रन्दन कर उठे।

ठीक उसी समय, भगवत् प्रेरणा से, एक चिड़िया घर की दीवार के ऊपर स्थित झरोखे में आकर बैठी तथा उसने टप्प की आवाज सहित एक छोटी सी पोटली मेज पर गिरा दी। जब श्रीमहाराज ने उस पोटली को खोला तो देखा कि उसमें ६ आना (३५ पैसे) हैं। श्रीमहाराज ने उसे निश्चित रूप से ही देवप्रेरित जानकर स्वीकार किया एवं एक ब्रह्मचारी सेवक को बुलाकर उस पैसे से कुछ सन्देश मिठाई लाने के



लिए कहा। इस प्रकार, अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सतीर्थ सेवासुहृत प्रभु को उन्होंने उपयुक्त जलपान कराया।

अब उनके पास अपने कोष में अन्य एक भी पैसा नहीं था जिसके द्वारा वे अपने लिए कुछ अनुकल्प की व्यवस्था कर सकें। परन्तु उसी समय द्वार पर एक दस्तक हुई, एक पत्रवाहक आया था। एक अति आश्चर्यजनक घटना! भक्तवत्सल श्रीभगवान् की असम्भव को भी सम्भव करने वाली अहैतुकी कृपा धन्य है, उनका भक्तवात्सल्य अपूर्व है! श्रीमहाराज के गुरुभ्राता परम

पूजनीय त्रिदण्डि गोस्वामी श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरी महाराज ने उनके नाम पर एक सौ रुपए का मनी ऑर्डर भेजा था। इस घटना के द्वारा वहाँ उपस्थित समस्त व्यक्ति अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर पुनः-पुनः श्रीगौराङ्गदेव का जयगान करने लगे। अत्यन्त दरिद्रता के समय में भी स्वामीजी श्रीभगवान् की कृपा का इङ्गित अनुभवकर अदम्य उत्साहपूर्वक सेवा के लिए सदा तत्पर रहते थे।

सभी के सम्मान के पात्र

जब परमाराध्य श्रीप्रभुपाद के श्रीचरणकमलों में श्रीमहाराज ने आश्रय ग्रहण किया तब प्रारम्भ से ही श्रीप्रभुपाद ने उनको श्रीधाम मायापुर की सेवा-उज्ज्वलता को वर्धन करने का महत् दायित्व प्रदान किया। श्रीधाम मायापुर में आकर-मठराज श्रीचैतन्यमठ के मठरक्षक श्रीपाद नरहरि ब्रह्मचारी सेवाविग्रह प्रभु उनके अभिन्न सुहृद परमबन्धु स्वरूप थे। उनके साथ परामर्शकर वे श्रीधाम की नाना प्रकार की सेवाएँ किया करते थे तथा इस प्रकार परमाराध्य श्रील प्रभुपाद का सुख-विधान करते थे। उस समय श्रीमायापुर धामवासियों के बीच वे 'मैनेजर बाबू' के नाम से ही सम्मानित थे। हिन्दू, मुसलमान सभी व्यक्ति एक समान रूप से उनको अपना परम हितकारी बान्धव कह कर ही मनन करते थे। दुष्ट व्यक्ति के दमन एवं शिष्ट व्यक्ति के पालन के सम्बन्ध में उनके न्यायसङ्गत सामञ्जस्यपूर्ण विचार को सभी एकमत से ही स्वीकार कर लेते थे, परन्तु अन्याय को वे किसी भी मुहूर्त्त में, किसी भी रूप में प्रश्रय नहीं देते थे। उनकी इस सुमीमांसा के परिणामस्वरूप ही गरीब प्रजा को प्रायः कोर्ट-कचहरी में वृथा धन नष्ट नहीं करना पड़ता था। मुसलमान प्रजावर्ग भी मठ के कार्यों में प्राण देकर उनकी सहायता करती थी।

नदिया जिले के जिला-मजिस्ट्रेट से आरम्भ कर, मुंशी, वकील, जमींदार एवं सम्भ्रान्त उच्चपदस्थ मर्यादासम्पन्न प्रायः समस्त विशिष्टगण एवं स्कूल, कॉलेज के शिक्षक, अध्यापक एवं अध्यक्ष आदि समस्त शिक्षित सज्जनवृन्द स्वामीजी (तत्कालीन विनोद बाबू) का नदिया जिले के एक प्रधान गणमान्य नागरिक एवं धर्मपरायण हिताकाङ्क्षी सज्जन के रूप में एकमत से ही सम्मान करते थे एवं वे सभी उनके गुणों से मुग्ध थे।

प्रतिवर्ष श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमा एवं श्रीयोगपीठ में श्रीगौर-जन्मोत्सव के आयोजन द्वारा तथा श्रीनवद्वीप धाम-प्रचारिणी सभा के शुभ अधिवेशन के समय एवं १९२९ ई॰ में श्रीधाम मायापुर में पारमार्थिक प्रदर्शनी के शुभारम्भ के समय उन्होंने अपनी अलौकिक सेवाचेष्टा के द्वारा श्रील प्रभुपाद को प्रचुर सुख प्रदान किया।

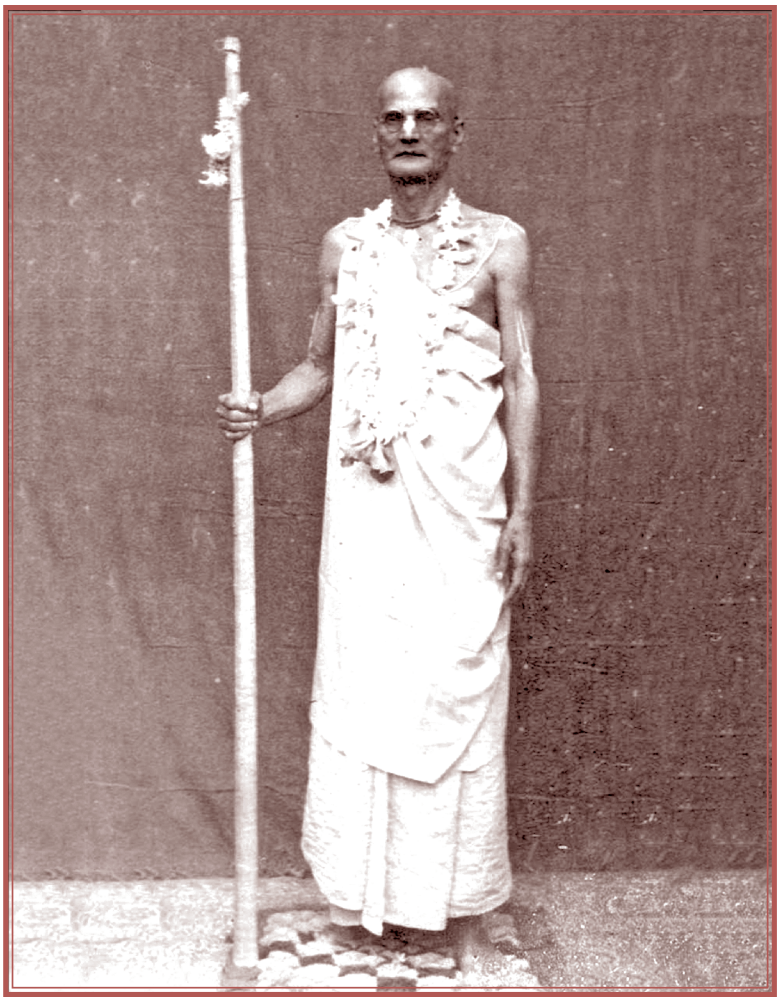
इतना ही नहीं, श्रीस्वामीजी ने अपने ब्रह्मचारी आश्रम के समय में श्रीधाम में मुद्रण-यन्त्र (प्रिन्टिङ्ग प्रेस) की स्थापना एवं वहाँ पर 'दैनिक नदिया प्रकाश' नामक पारमार्थिक पत्र एवं विभिन्न शास्त्रों एवं ग्रन्थों के प्रकाशनकार्य तथा श्रीधाम के मार्गों एवं घाटों के निर्माणकार्य, भूमिपट्टा पर्यवेक्षण आदि विभिन्न सेवा कार्यों को अत्यन्त परिश्रमपूर्वक निष्पादित कर श्रीगुरुपादपद्म को यथेष्ट सुख प्रदान किया।

मठवासी समस्त सेवकवृन्द उनके सहानुभूतिपूर्ण अकृत्रिम व्यवहार से सदा मुग्ध थे। मठ के आश्रित छोटे-छोटे बालक भी उनके एवं श्रीपाद नरहरि प्रभु की आत्मीयता एवं परम विशुद्ध स्नेहपूर्ण व्यवहार के फलस्वरूप अनायास ही निज माता-पिता के स्नेह तक को विस्मृत कर पाते, परन्तु साथ ही उनके स्नेहपूर्ण शासन का भय भी रखते थे। परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के शिष्यगण भी हृदय से अपने सतीर्थ उन दोनों गुरुभ्राताओं के पास जाने के लिए सदा उत्सुक रहते थे, मिलने पर उनके हृदय आनन्द से नाच उठते थे। उस समय श्रीधाम मायापुर समस्त भक्तों के लिए प्राणों का भी प्राणस्वरूप था तथा 'विनोद-दा' एवं 'नरहरि-दा' उन सभी के प्राण-प्रियतम हृदय के बन्धु थे। परमाराध्य श्रील प्रभुपाद भी कोलकाता गौड़ीय मठ से श्रीधाम मायापुर जाने के लिए व्याकुल हो उठते तथा वहाँ पर जाकर मानो उनके प्राण वापस आ जाते, उनको शान्ति प्राप्त होती। किन्तु हाय! 'ते हि नो दिवसा गताः - आज वे दिन नहीं रहे'।

श्रीधाम मायापुर श्रीपाद केशव महाराज के लिए प्राण स्वरूप था। जिस प्रकार एक मछली जल के बिना जीवन धारण नहीं कर सकती, उसी प्रकार श्रीधाम मायापुर में निवास के बिना स्वामीजी अपने जीवन को विडम्बना पूर्ण मानते थे। परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के अप्रकट लीला आविष्कार करने के उपरान्त अभिन्न सुहृद श्रीपाद नरहरि सेवा-विग्रह प्रभु के साथ परामर्शकर श्रीपाद केशव महाराज श्रीधाम नवद्वीप मण्डल में ही कोलद्वीप तेघरीपाड़ा में आ गए तथा वहाँ 'श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति' के सर्वप्रधान आसन की स्थापना की। श्रीमठ का नाम हुआ- श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ। छः बीघा भूमि पर विराट गगनचुम्बी मन्दिर, नाट्य मन्दिर एवं सेवक वासस्थान आदि से युक्त बहु-वैभव सम्पन्न विस्तृत मठ का निर्माण हुआ। नवदीप के नव द्वीपों के अन्तर्गत पञ्चम द्वीप कोलद्वीप के पौराणिक वैशिष्ट्य को संरक्षित रखने के उद्देश्य से स्वामीजी ने श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारीजी के सिंहासन के पास ही स्वतन्त्र सिंहासन पर श्रीभगवान् के वराह अवतार की मूर्त्ति को स्थापित किया तथा उपयुक्त आचार्य द्वारा सात्वत् विधान के अनुरूप उनकी प्रतिष्ठा का कार्य महासमारोह के द्वारा सम्पादित किया। श्रीमन्दिर के समक्ष विशाल नाट्य-मन्दिर अवस्थित है। उसी नाट्य-मन्दिर की पश्चिम दिशा में गत दिनाँक ६ अक्टूबर, १९६८ को उनके चिन्मय देह को समाधि प्रदान की गई। शीघ्र ही वहाँ पर भी विराट समाधि मन्दिर का निर्माण करने की भक्तगण आशा पोषण करते हैं।

रथयात्रा का आयोजन

पूज्यपाद महाराज ने चुँचुड़ा में श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ में प्रति वर्ष प्रायः पच्चीस वर्षों तक श्रीश्रीजगन्नाथ देव के रथयात्रा-महोत्सव का प्रवर्त्तन किया। पिछले वर्ष श्रीकोलद्वीप स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ में भी महासमारोह के साथ श्रीजगन्नाथ देव के रथयात्रा महोत्सव को अनुष्ठित किया गया।



"श्रील महाराज जिस तथ्य को एक बार सत्य कह कर मान लेते, उसमें उनकी निष्ठा ऐसी थी कि उस से च्युत करने के लिए स्वयं भय भी उन से भयभीत होता था।"

शुद्धभक्ति का प्रचार

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के समस्त प्रचार केन्द्रों की प्रतिष्ठा कर पूज्यपाद महाराज ने भारत के विभिन्न स्थानों पर शुद्धभक्ति सिद्धान्त वाणी का प्रचार किया एवं वे अनेक भाग्यवान् जीवों के हृदय में शुद्धभक्ति के बीज का रोपण कर गए हैं। उनकी ओजस्विनी वक्तृता को श्रवणकर अनेक नर-नारी परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के प्रदर्शित शुद्धभक्ति मार्ग का अनुसरण करने का सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं, श्रीश्रीभक्तिविनोद ठाकुर द्वारा पुनः प्रकाशित पवित्र गौड़ीय

धारा में स्नान कर एवं स्निग्ध होकर वे अपना मानव जीवन धन्य, धन्यातिधन्य कर रहे हैं, कृतकृतार्थ हो रहे हैं।

सत्य में उनकी सुदृढ़ निष्ठा

श्रीमहाराज जिस तथ्य को एक बार सत्य कहकर मान लेते, उसमें इस प्रकार निर्भीक भाव से परिनिष्ठित हो जाते कि उस से च्युत करने के लिए स्वयं भय भी उन से भयभीत होता था।

निज शिष्यों का स्नेहयुक्त पोषण

श्रीमहाराज ने 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि – वज्र से भी अधिक कठोर कथा कुसुम से भी अधिक मृदु स्वभाव' के अनुरूप आत्म प्रकाश किया। उनका शिष्य-वात्सल्य अत्यन्त प्रगाढ़, स्वयं में एक आदर्श था। यदि कभी कोई शिष्य किसी विकट व्याधि अथवा पीड़ा से ग्रस्त होता तो उनका कुसुम कोमल हृदय अत्यन्त विगलित हो उठता। वे अपना सब कुछ दे कर भी उस शिष्य की पुनः स्वास्थ्य प्राप्ति की कामना करते। यद्यपि आरम्भ में उन्हें अत्यन्त दरिद्रता का सामना करना पड़ा, परन्तु कुछ समय पश्चात्, भगवत् इच्छा के फलस्वरूप, अनेक विशिष्ट धनाढ्य भक्तों की सहायता से, उन्होंने अनेक स्थानों पर, विशेषतया श्रीनवद्वीप धाम में, विराट मठ-मन्दिर की स्थापना की।

उनका अतिविशिष्ट कृतित्व

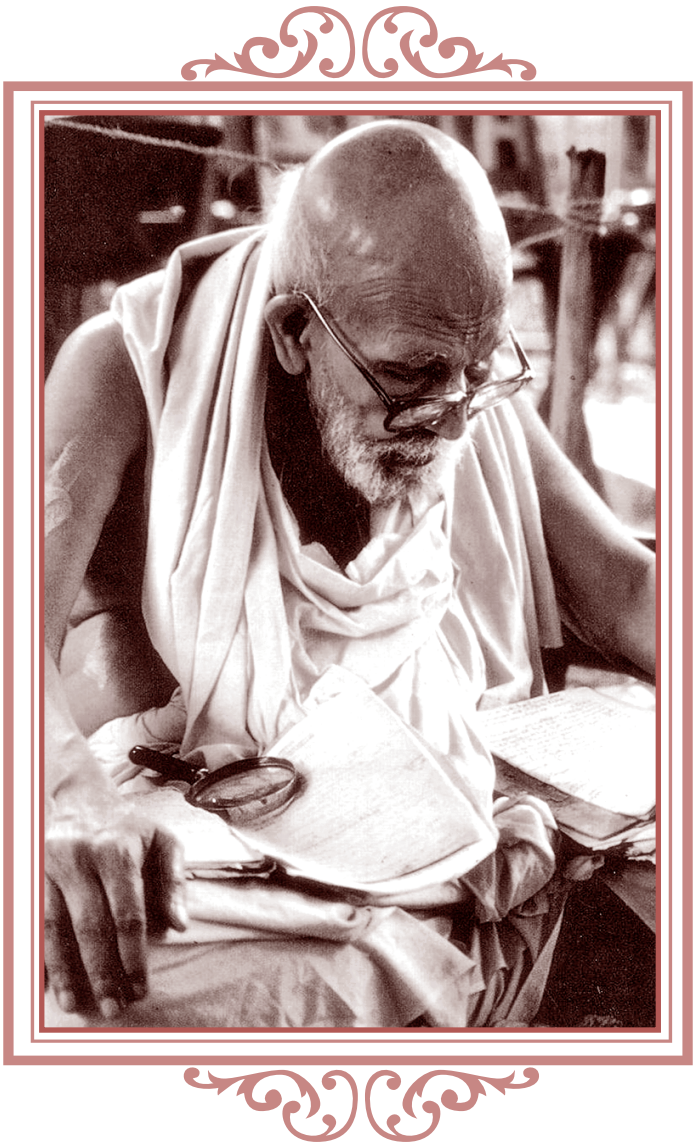
उन्होंने निज आचार्य लीला के समय श्रीगौड़मण्डल, श्रीब्रजमण्डल एवं श्रीक्षेत्रमण्डल की परिक्रमाओं का बृहद् आयोजन किया। इसके अतिरिक्त, आर्यवर्त्त (उत्तरभारत) एवं दक्षिण भारत के प्रायः समस्त प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों पर ही उन्होंने समस्त शिष्यों सहित परिभ्रमण की व्यवस्था की। श्रीशिवधाम श्रीवैद्यनाथ धाम की भी उन्होंने विपुल समारोह के साथ परिक्रमा अनुष्ठित की एवं वहाँ पर एक मास पर्यन्त अवस्थानपूर्वक यथाविधि पाठ कीर्त्तन करते हुए नियमसेवा का पालन किया।

उनका शिक्षा के क्षेत्र में उत्साह अद्वितीय था। श्रीधाम नवद्वीप में स्थित मठ में उन्होंने संस्कृत शिक्षा प्रसार के लिए पाठशाला, छात्रावास, ग्रन्थ-पत्रिका आदि द्वारा प्रचार के उद्देश्य से मुद्रण-यन्त्र की स्थापना, ग्रन्थागार का संस्थापन आदि सेवा कार्यों का सम्पादन किया तथा श्रीमठ मन्दिर की इन सेवाओं के लिए वे सभी को प्रोत्साहित करते थे।

उनका विरह अवर्णनीय

आज उनके समान एक सर्वसद्गुण सम्पन्न, सेवा में उत्साह प्रदान करने वाले, सर्वसदाचारयुक्त अचार्य को खोकर हम जिस प्रकार मर्मवेदना का अनुभव कर रहे हैं, उसे भाषा के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके समान श्रीगुरु-गौराङ्ग-गौरधाम-गतप्राण सतीर्थ के विच्छेद से हमारा हृदय अत्यन्त विह्वल हो रहा है। श्रीकेशव महाराज हमारे प्रति प्रसन्न हों, यही हमारी सकातर प्रार्थना है।

श्रीचैतन्यवाणी (वर्ष ८, संख्या १०) में प्रकाशित एक लेख से अनुवादित



श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज



श्रील प्रभुपाद के 'बृहद् मृदङ्ग' की अद्वितीय सेवा

१९२२ ई॰ में शुभ श्रीजन्माष्टमी तिथि के दिन जब श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज (उस समय श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी) ने श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय करके हरिनाम एवं दीक्षा ग्रहण की तथा सम्पूर्ण रूप से मठ की सेवा में योगदान दिया तब उनकी आयु २४ वर्ष की थी। वह पहले विज्ञान के छात्र थे किन्तु बाद में उन्होंने आर्ट्स लिया, माध्यमिक शिक्षा (I.S.C.) पूर्ण करने के पश्चात् उच्च शिक्षा ग्रहण की तथा कला के क्षेत्र में स्नातक (बी.ए. आर्ट्स) की उपाधि अर्जित की।

श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी को शिक्षित जानकर एक दिन श्रील प्रभुपाद ने उन्हें अपने निकट बुलाकर कहा, "मेरी 'दैनिक नदिया प्रकाश' नाम से एक दैनिक पारमार्थिक पत्रिका (न्यूज़ पेपर) प्रकाशित करने की अभिलाषा है तथा मैं चाहता हूँ कि आप उसके सम्पादक के सेवा कार्य का दायित्व ग्रहण करें।"

श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी ने श्रील प्रभुपाद से जिज्ञासा की, "सम्पादक होने के नाते मुझे क्या-क्या करना पड़ेगा?"

श्रील प्रभुपाद ने उन्हें उत्तर दिया, "जब तुम सम्पादन करना प्रारम्भ करोगे तब तुम्हें स्वयं ही स्फुरित हो जायेगा कि क्या करना है। हरि-गुरु-वैष्णव की प्रसन्नता हेतु दायित्व ग्रहण करके सेवा-बुद्धि से उसका निर्वाह करने की अभिलाषा तथा उसे क्रियान्वित करने पर हरि-गुरु-वैष्णव स्वयं ही निष्कपट भक्त के हृदय में उसे क्रियान्वित करने की पद्धति, विचार आदि स्फुरित करा देते हैं, उसके लिए बाहरी रूप में कुछ बतलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।"

श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रचारित तथा श्रील पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित उसी दैनिक नदिया प्रकाश को जब जनसमूह में वितरित किया गया तो उसने अपने साहित्यिक एवं पारमार्थिक उत्कृष्टता के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को सुसज्जित कर दिया। तत्कालीन अनेकानेक विद्वान् लोग दैनिक नदिया प्रकाश– 'दैनिक पारमार्थिक न्यूज़पेपर' की बात सुनकर ही आश्चर्यचकित हो जाते थे।

मैंने स्वयं श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के श्रीमुख से निम्न प्रसङ्ग को श्रवण किया है।

एक समय बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक श्रीमदनमोहन मालवीय बागबाजार, कोलकाता स्थित श्रीगौड़ीय मठ में श्रील प्रभुपाद का दर्शन करने आये थे तथा उन्होंने 'दैनिक नदिया प्रकाश' का उल्लेख करते हुए श्रील प्रभुपाद से अत्यधिक आश्चर्यान्वित होकर पूछा था, "आप इस पत्रिका को कब तक प्रकाशित करते रहेंगे? आप प्रतिदिन इस पत्रिका के लिये पारमार्थिक सम्वाद कहाँ से एकत्रित करेंगे?"

श्रील प्रभुपाद ने उन्हें उत्तर देते हुए कहा, "पण्डित जी, आप जैसे व्यक्ति जो कि भारत के विद्वानों में अग्रणी हैं, को इस विषय में आश्चर्यान्वित होता देखकर मुझे आपसे कहीं अधिक आश्चर्य हो रहा है। यह जड़–जगत् चिद्–जगत् के मात्र एक चौथाई भाग का प्रतिबिम्ब है।

"जब भगवान् की एक पाद विभूति, अनन्त ब्रह्माण्डों में से इस ब्रह्माण्ड के चतुर्दश भुवनों के एक खण्ड, इस पृथ्वी पर अनेकानेक देशों में विभिन्न भाषाओं में करोड़ों पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं, तथा प्रकाशित करने वालों और पाठ करने वालों को नित्य नवीन प्रतीत होने वाला सम्वाद प्राप्त हो जाता है तब फिर भगवान् की चार पाद विभूति चिद्–जगत् के केवल मात्र एक नित्य प्रकाशित होने वाले पत्र 'दैनिक नदिया प्रकाश' के लिए सम्वाद की प्राप्ति कौन सी बड़ी बात है। वास्तव में हमारे पास अनन्त काल तक प्रतिदिन बहुत सी पत्रिकाएँ प्रकाशित करने के लिये चिद्–जगत् सम्बन्धित पर्याप्त पारमार्थिक विषय–वस्तु उपलब्ध है।"

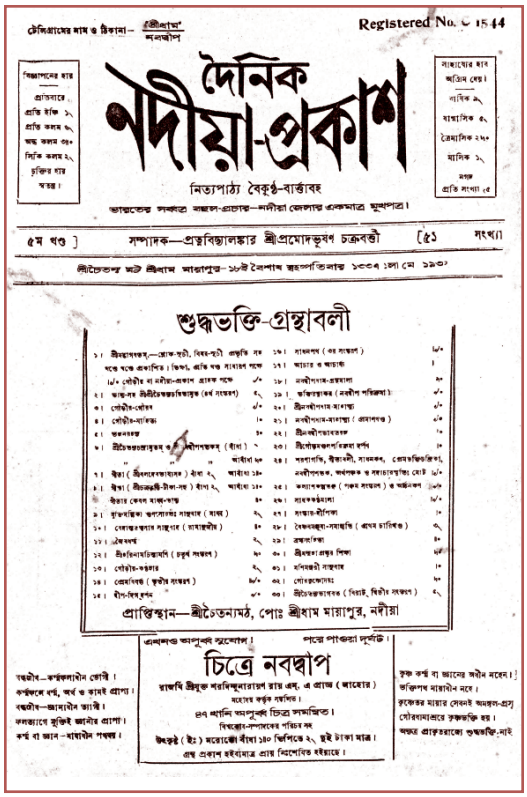
श्रील प्रभुपाद के प्रकट काल से प्रारम्भ करके अपने जीवन के प्रायः लगभग ७५ वर्षों तक श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने श्रील प्रभुपाद के 'बृहद् मृदङ्ग' अर्थात् प्रिन्टिङ्ग प्रेस की उत्साहपूर्वक निरन्तर सेवा की एवं प्रतिक्षण अपूर्व आनन्द का ही अनुभव किया।

मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है कि जब उनकी वृद्धावस्था में अपने कुब के कारण वे अधिक समय तक सीधे बैठकर लिखने में असमर्थ थे, तब वे अपने कुब के निकट लकड़ी की फट्टी रखकर लिखते रहते थे, लिखना कभी भी बन्द नहीं किया। पहले उनका लेख अत्यन्त स्पष्ट था, किन्तु बाद में अधिक आयु होने के कारण हाथ में कम्पन होता था जिससे लेखनी कुछ अस्पष्ट होने लगी, तब भी उन्होंने श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रदत्त 'बृहद् मृदङ्ग' की सेवा को बन्द नहीं किया।

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने श्रील प्रभुपाद के प्रकट काल में दैनिक नदिया


শ্রীশ্রীগুরুগৌরাঙ্গৌ জয়তঃ
Presented in Memory of
Tamluk, Midnapur
শ্রীব্যাসপূজা-সংখ্যা
গৌড়ীয়
পঞ্চরাত্র
ভাগবত
যশঃ
শ্রী
ওঁ নাম
ঐশ্বর্য্য
জ্ঞান
বৈরাগ্য
বিধি
রাগ
অর্চ্চন
কীর্ত্তন
গুরু
গৌড়ীয়
সঙ্ঘপতি—মহামহোপদেশক শ্রীঅতুলচন্দ্র বন্দ্যোপাধ্যায় গোস্বামী ভক্তিসারঙ্গ
সহসঙ্ঘ-সম্পাদক—মহামহোপদেশক শ্রীসুন্দরানন্দ বিদ্যাবিনোদ বি-এ

'গৌড়ীয়' পত্রিকা


দৈনিক
নদীয়া-প্রকাশ
নিত্যপাঠ্য বৈকুণ্ঠ-বার্ত্তাবহ
৫ম খণ্ড] সম্পাদক—প্রত্নবিদ্যালঙ্কার শ্রীপ্রমোদভূষণ চক্রবর্ত্তী [৫১ সংখ্যা
শুদ্ধভক্তি-গ্রন্থাবলী
প্রাপ্তিস্থান—শ্রীচৈতন্যমঠ, পোঃ শ্রীধাম মায়াপুর, নদীয়া
চিত্রে নবদ্বীপ

দৈনিক নদীয়া প্রকাশ

প্রকাশ का सम्पादन, साप्ताहिक गौड़ीय में प्रकाशित करने के उद्देश्य से लेख लेखन, श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के नाम से प्रकाशित श्रीमद्भागवतम् के भाष्य एवं प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में लिखित 'कथा-सार' शीर्षक की पान्डुलिपि प्रस्तुत करके सम्पादन हेतु श्रील प्रभुपाद को देना तथा अनेकानेक ग्रन्थों में विभिन्न सेवाएँ प्रदान की। उन्होंने श्रील प्रभुपाद के अप्रकट के पश्चात् मासिक गौड़ीय तथा कुछ समय के पश्चात् मेरे गुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज द्वारा संस्थापित श्रीचैतन्य वाणी पत्रिका का सम्पादन किया। इस के साथ-साथ उन्होंने समय-समय पर विभिन्न पत्रिकाओं में लिखित असंख्य प्रबन्धों तथा उनके द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित असंख्य ग्रन्थों के माध्यम से सारस्वत-गौड़ीय वैष्णवों का अत्यधिक उपकार किया है।

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के द्वारा की गयी सेवा श्रील प्रभुपाद के विशुद्ध अनुगतजनों के परम मङ्गल को साधित करने वाली स्थायी सेवा है, सारस्वत- गौड़ीय वैष्णव उनकी इन सेवाओं के लिये उनके चिरऋणी तथा चिरकृतज्ञ रहेंगे।

श्रील प्रभुपाद की अप्रकट लीला के पश्चात् श्रीगौड़ीय मठ की जितनी भी शाखाएँ-प्रशाखाएँ, मठ-मन्दिर-मिशन आदि विश्व में प्रसारित हुए हैं तथा जितने भविष्य में प्रसारित होंगे उन सभी में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अर्थात् इन महापुरुष का नाम उल्लेख करने अथवा उल्लेख नहीं करने पर भी इनके द्वारा कीर्तित वाणी का सुदृढ़, अविच्छेद्य सम्बन्ध निश्चित ही रहेगा। कोई भी सज्जन व्यक्ति इस बात को अस्वीकार नहीं कर पायेगा।

भगवान् पर सम्पूर्ण निर्भरता

श्रील प्रभुपाद की अप्रकट लीला के पश्चात् जब गौड़ीय मठ में मतभेद उपस्थित हुए, तब श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज श्रीमन्महाप्रभु, श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु की पदाङ्कित भूमि श्रीकालना में गङ्गा के तट पर निवास करने लगे। उनके साथ उनके गुरुभ्राता श्रीआनन्द लीलामय प्रभु भी निवास करने लगे।

श्रील भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज जब इंग्लैण्ड में प्रचार के उद्देश्य से गये

थे, तब वहीं उनकी वर्धमान के राजा के साथ भेंट हुई थी। १९५९ ई॰ में श्रील भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज के अनुरोध से वर्धमान के राजा ने श्रील पुरी गोस्वामी महाराज को कालना स्थित अत्यन्त प्राचीन श्रीअनन्त वासुदेव का मन्दिर हस्तान्तरित कर दिया। श्रील पुरी गोस्वामी महाराज बहुत पहले से ही श्रीश्रीराधा-गोपीनाथ के श्रीविग्रहों की सेवा करते थे, अब राजा के आग्रह पर उन्हीं के साथ श्रीअनन्त वासुदेव के विग्रहों की भी अति स्नेहपूर्वक सेवा करने लगे।

मुक्त महापुरुषों के द्वारा की जाने वाली सेवा जैसे कि श्रील माधवेन्द्र पुरी के द्वारा श्रीगोपाल, श्रील रूप गोस्वामी के द्वारा श्रीगोविन्द, श्रील सनातन गोस्वामी के द्वारा श्रीमदन-मोहन, श्रील लोकनाथ गोस्वामी के द्वारा श्रीराधा-विनोद, श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के द्वारा श्रीगिरिराज-शिला, श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी के द्वारा श्रीराधा-रमण, श्रील कविराज गोस्वामी के द्वारा श्रीवृन्दावन-चन्द्र, श्रील नरोत्तम दास ठाकुर के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु, श्रील श्यामानन्द प्रभु के द्वारा श्रीश्यामसुन्दर, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के द्वारा श्रीराधा-गोकुलानन्द, श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु के द्वारा श्रीराधा-विजय आदि विग्रहों की सेवा तथा बद्ध जीव के द्वारा किये जाने वाला अर्चन एक नहीं है, उसमें पृथ्वी-आकाश का अन्तर है।

मुक्त पुरुष नाम, विग्रह, स्वरूप- तीनों को अभिन्न तथा चिदानन्द स्वरूप अनुभव करके उनकी भावमयी सेवा करने में समर्थ हैं तथा बद्ध जीव उस अनुभूति के अभाव में शास्त्र-वर्णित विधि-निषेधों के अनुरूप ही उनका अर्चन करने के लिये बाध्य हैं।

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज का जीवन वैराग्यमय था, उन्होंने श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रदत्त बृहद् मृदङ्ग की सेवा को ही सदैव अपने जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य रखा तथा अन्य किसी भी प्रकार की सेवा के उपस्थित होने अथवा अत्यावश्यक होने पर उसे निष्कपट रूप से कर तो दिया किन्तु उसमें कभी भी उस प्रकार से आसक्त नहीं हुए जैसा कि वे भक्ति-ग्रन्थों का प्रकाशन कर श्रील प्रभुपाद की सेवा करने में आसक्त थे।

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने धन, जन, लौकिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति, मठ मन्दिर आदि के लिये भूमि संग्रह करने, शिष्य स्वीकार करने अथवा अन्य उपाय के द्वारा कुछ भी अर्जित करने के लिये अपनी ऊर्जा को कदापि नियुक्त नहीं किया। वे पुनः-पुनः कहते थे, "जो व्यक्ति जिस ओर अपनी ऊर्जा-शक्ति को लगाता है, वह उस ओर ही चला जाता है।"

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज श्रीविग्रहों के अभिषेक के लिये स्वयं गङ्गाजल लेकर आते, उनके लिये भोग-रन्धन, भोग-निवेदन तथा आरती आदि करते। यदि श्रील पुरी गोस्वामी महाराज भिक्षा के लिये जाते तो श्रीआनन्द लीलामय प्रभु श्रीविग्रहों की सेवा करते और यदि श्रीआनन्द लीलामय प्रभु भिक्षा पर जाते तो श्रील पुरी गोस्वामी महाराज श्रीविग्रहों की सेवा करते।

एक समय गुरु महाराज ने मुझे कोलकाता में पत्र लिखकर कहा, "श्रील पुरी गोस्वामी महाराज श्रील नरोत्तम दास

ठाकुर की आविर्भाव-तिथि, माघी पूर्णिमा को अपने कालना स्थित श्रीअनन्त वासुदेव मन्दिर में उत्सव का आयोजन कर रहे हैं, यदि तुम वहाँ जा पाओ तो बहुत अच्छा होगा, मैंने श्रीधाम-मायापुर में श्रीकृष्ण केशव प्रभु, श्रीमधुमथन प्रभु, श्रीविनोद-विहारी प्रभु आदि को भी उत्सव में योगदान देने हेतु कहा है।"

गुरु महाराज के आदेशानुसार मैं उत्सव की निर्धारित तिथि से एक दिन पूर्व कालना पहुँच गया तथा मैंने वहाँ जाकर देखा कि श्रीधाम मायापुर से श्रील गुरु महाराज द्वारा पत्र में उल्लिखित भक्त तो आये ही थे, कोलकाता से भी श्रील प्रभुपाद के आश्रित डॉ॰ एस॰ एन॰ घोष तथा डॉ॰ नवीन रञ्जन सेन गुप्त पहले से ही उपस्थित थे। रात्रि के समय मैंने श्रील पुरी गोस्वामी महाराज से जिज्ञासा की, "महाराज! कल के उत्सव के लिये बर्तन, भोग प्रस्तुत करने की सामग्री, ठाकुर जी के मन्दिर की सजावट के लिये पुष्प आदि कुछ भी तो दिखलायी नहीं पड़ रहा। क्या बात है?"

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने उत्तर दिया, "मुझे तो श्रीआनन्द लीलामय प्रभु ने कुछ नहीं कहा। जो हो, किसी-न-किसी प्रकार से इन सब वस्तुओं की व्यवस्था हो ही जायेगी।"

यह श्रवणकर मैं आश्चर्यचकित हो गया तथा विचार करने लगा, "श्रील महाराज ने उत्सव के लिये अनेक भक्तों को निमन्त्रण करके बुलाया है, और किसी भी प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं होने पर भी उन्हें तो किसी प्रकार की कोई चिन्ता ही नहीं है। इसके अतिरिक्त मुझे यह बात समझ में नहीं आई कि श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने श्रीआनन्द लीलामय प्रभु के नाम का उल्लेख क्यों किया। जहाँ तक मुझे ज्ञात था श्रीआनन्द लीलामय प्रभु को किसी भी प्रकार की व्यवस्था करने का दायित्व नहीं दिया गया था। कौन जाने, श्रील पुरी गोस्वामी महाराज कौन से गम्भीर भाव को अनुभव कर रहे थे।" किन्तु मैं इच्छा करने पर भी चिन्ता से मुक्त नहीं हो पा रहा था। इसी कारण मैंने पहले श्रीआनन्द लीलामय प्रभु से सब जिज्ञासा की किन्तु उनसे कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलने पर मैं पुनः श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के पास गया तथा पूछा, "महाराज, भोग रन्धन के लिये वस्तुएँ कहाँ से आयेंगी, कब आयेंगी?"

उन्होंने उत्तर दिया, "कहाँ से आयेंगी तथा कब आयेंगी, इस विषय में मैं कुछ भी नहीं कह सकता, किन्तु हाँ, मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भगवद् इच्छा से सबकुछ ठीक होगा।"

उनकी बात सुनकर मैंने पूछा, "अच्छा, क्या आप मुझे बता सकते हैं कि यहाँ पर किसी से रन्धन के लिये बड़े बर्तन इत्यादि प्राप्त हो सकते हैं।"

उन्होंने कहा, "कालना नगरपालिका के अध्यक्ष श्रीप्रकृति भूषण दत्त का घर पास में ही है, उनके पास प्रचुर बर्तन हैं, वहाँ से पता किया जा सकता है।"

अगले दिन प्रातः ही मैं श्रीप्रकृति भूषण दत्त के घर पर गया, मैंने जब उनका दरवाजा खटखटाया तो वे नींद से उठकर बाहर आये तथा मैंने उनकी निद्रामय



भङ्गिमा देखकर सर्वप्रथम क्षमा प्रार्थना की, तत्पश्चात् अपने आने का कारण बतलाया। उन्होंने बिना कोई प्रश्न किये अथवा बिना कुछ कहे अपने नौकर को बुलाकर बर्तनों के भण्डार-घर की चाबी देते हुए कहा, "ये जो भी बर्तन ले जाना चाहें, सब ले जाने देना।"

"मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भगवद् इच्छा से सबकुछ ठीक होगा।"

मैं अपने प्रयोजनीय बर्तनों को लेकर आ गया, भक्तों के साथ मिलकर उनकी सफाई की तथा देखा कि तब तक भी केवल एक-दो लोग ही कुछ-कुछ वस्तुएँ लेकर आये थे। मैंने कढ़ाई तथा पतीलों में पानी गर्म करने के लिये रख दिया तथा किसी के द्वारा वस्तुओं को लाकर यहाँ देने की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी ही देर में मैंने देखा कि लोग चींटी की भाँति पंक्ति लगाकर आने लगे तथा देखते-ही-देखते गुड़, चीनी, चावल, दाल, आटा, सब्जियाँ, दूध, छैना आदि का बाजार जैसा लग गया। किसी वस्तु का कोई अभाव नहीं रहा। सबकुछ देखकर मेरे मन में पुनः-पुनः श्रीमद्भगवद्गीता (९.२२) का श्लोक ही स्फुरित होने लगा-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

[अन्य कामना रहित तथा मेरी चिन्ता में निरत जो व्यक्तिगण सर्वतोभावेन मेरी उपासना करते हैं, नित्य मुझ में एकनिष्ठ उन व्यक्तियों का योग एवं क्षेम मैं वहन करता हूँ।]

मैं अपने नेत्रों के समक्ष इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखकर स्वयं को धन्य मानने लगा। मेरे आनन्द की सीमा न रही।

यद्यपि मैंने कभी इतनी मात्रा में रन्धन का कार्य नहीं किया था, तब भी अन्य किसी के नहीं होने के कारण मैंने श्रील प्रभुपाद की रन्धन सेवा करने वाले श्रीकृष्ण केशव प्रभु के दिशा-निर्देश से सब रन्धन कार्य किया। श्रील पुरी गोस्वामी महाराज की इच्छानुरूप जितनी अधिक वस्तुओं को बनाना सम्भवपर था, निरन्तर बनाता ही रहा। सन्ध्या पर्यन्त प्रसाद का वितरण तथा पुनः-पुनः अधिक वस्तुओं का रन्धन चलता ही रहा, अनगिनत भक्तों ने प्रसाद पाया, कितने ही लोग अपने साथ प्रसाद लेकर गये, किन्तु तब भी कोई भी वस्तु कम नहीं पड़ी। कम पड़ने की तो बात ही नहीं, इतनी अधिक वस्तुएँ बची कि लगभग एक मास तक उपयोग में लायी गयी। श्रील पुरी गोस्वामी महाराज को उत्सव के लिये वस्तुओं को माँगकर लाने में जिस प्रकार कोई रुचि नहीं थी, उसी प्रकार उनकी किसी वस्तु को बचाकर रखने की भी लेशमात्र अभिलाषा नहीं थी। कल क्या होगा? कल के लिये कुछ चिन्ता करके कुछ रख लेते हैं- ऐसा उनका विचार नहीं था। ऐसा प्रतीत हुआ कि ये महापुरुष निम्नलिखित श्लोक में सम्पूर्ण रूप से निष्णात हैं-

अलब्धे वा विनष्टे वा भक्ष्याच्छादन साधने।
अविक्लवमतिर्भूत्वा हरिमेव धिया स्मरेत्॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (१.२.११४)

[हरिभक्ति परायण व्यक्ति को भोजन और वस्त्र संग्रह के लिए चेष्टा करने पर भी यदि वह प्राप्त न हो अथवा उपलब्ध सामग्री नष्ट हो जाए, तो भी व्याकुल चित्त न होकर मन में श्रीहरि का ही स्मरण करना चाहिये।]

किसी वस्तु को एकत्रित करके उत्सव करना तथा बिना कुछ एकत्रित किये उत्सव करना, एक बात नहीं है। शरणागत भक्त की इच्छा को भगवान् किसी-न-किसी माध्यम से अवश्य ही पूर्ण करते हैं। श्रील पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा आयोजित सदैव स्मरण रहने वाले इस वैशिष्ट्यपूर्ण उत्सव के उपलक्ष्य में ही मुझे उनकी ही कृपा से कालना में स्थित श्रीगौरीदास पण्डित द्वारा सेवित श्रीश्रीगौर नित्यानन्द प्रभु, श्रीनित्यानन्द शक्ति श्रीजाह्नवा देवी एवं श्रीवसुधा देवी के पिता श्रीसूर्यकान्त सरखेल द्वारा संस्थापित श्रीविग्रहों, श्रीमन्महाप्रभु की लीला से सम्बन्धित इमली के वृक्ष तथा श्रीभगवान् दास बाबाजी महाराज द्वारा सेवित श्रीनाम-ब्रह्म आदि के दर्शन का प्रथम बार सुअवसर प्राप्त हुआ।

इस उत्सव के अनेक वर्षों के पश्चात् श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के प्रकट

काल में उनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ में तथा उनके अप्रकट लीला प्रकाशित करने के पश्चात् उनके चरणाश्रित श्रीभक्तिविबुध बोधायन महाराज के द्वारा अनुष्ठित उत्सवों में मैंने बहुत बार भाग लिया। यद्यपि आधुनिक सुविधाओं से विराट उत्सवों का आयोजन करना अधिक सरल हो गया है किन्तु उस समय बिना किसी सम्बल के जिस प्रकार के उत्सव को आयोजित होते देखा वैसा आयोजन सब प्रकार के सम्बल से युक्त होकर किए जाने पर भी नहीं देख पाया। श्रील पुरी गोस्वामी महाराज की अप्राकृत-महिमा ने, जो उस उत्सव में प्रकाशित हुई, अपने नेत्रों से साक्षात् दर्शन करने के फलस्वरूप, मेरे हृदय पर गहरी छाप छोड़ी थी।

दोषों को अनदेखा कर गुणों को देखना

एक समय श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज ने मुझे हमारे गोकुल स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में होने वाली पारमार्थिक गतिविधियों के विषय में प्रबन्ध (रिपोर्ट) लिखने के लिये कहा। उस समय मैं गोकुल मठ में ही था। वह लेख श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ की मासिक पत्रिका 'श्रीचैतन्य-वाणी' में प्रकाशित होना था। यद्यपि मुझे इससे पूर्व पत्रिका के लिये लेख लिखने का कोई भी अनुभव नहीं था, तब भी श्रील पुरी गोस्वामी महाराज की आज्ञा को गुरु आज्ञा से अभिन्न मानकर मैंने उसका पालन किया।

मैंने उन्हें रिपोर्ट तो लिखकर भेजी ही, साथ में यह निवेदन भी संलग्न किया, "श्रील महाराज जी, मुझे तो लिखने का बिल्कुल ही अभ्यास नहीं है इसलिए मुझसे जैसा बन पड़ा, मैंने वैसा लिखकर भेज दिया है। किन्तु मेरी प्रार्थना है कि आप स्वयं इसमें से जो स्वीकार योग्य हो उसे स्वीकार करके बाकी को छोड़ दीजियेगा।" जब उन्होंने उस रिपोर्ट को 'श्रीचैतन्य वाणी' पत्रिका में प्रकाशित किया, तब मैंने देखा कि उन्होंने उसमें से एक अक्षर को भी इधर-से-उधर नहीं किया, यथारूप प्रकाशित कर दिया।

उसके पश्चात् जब मेरी उनसे भेंट हुयी तब उन्होंने मुझसे कहा, "तुम्हारी भाषा साहित्यिक है। मुझे उस प्रबन्ध में कुछ भी ऐसा दिखलायी नहीं दिया, जिसे हटाने की आवश्यकता हो।"

उनकी बात सुनकर मुझे श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा श्रीगोविन्द देव मन्दिर के पुजारी, श्रीहरिदास पण्डित के विषय में श्रीचैतन्यचरितामृत (आदि-लीला ८.६२) में वर्णित 'वैष्णवेर गुणग्राही, ना देखये दोष अर्थात् वे वैष्णवों के गुणों को ही ग्रहण करते थे, किसी में दोष नहीं देखते थे' वाणी स्मरण हो आयी। वास्तव में यह श्रील पुरी गोस्वामी महाराज का एक विशेष गुण था। केवल एक बार नहीं, बल्कि मुझे पुनः पुनः उनके इस गुण को देखने का अवसर प्राप्त हुआ।

प्रणयी-भक्त

पहले पुरी में श्रीजगन्नाथ रथ-यात्रा के समय उत्सव-प्रबन्धन विभाग रथ के समक्ष

"पैसा तो आने और जाने की वस्तु है, किन्तु जो भाव इस समय हृदय में उदित हुआ है, वह सम्भवतः पुनः उदित न हो।"

एक विशेष स्थान की व्यवस्था करता था जिससे कि भक्तों को कीर्त्तन करने में कोई असुविधा न हो तथा जनसामान्य को वहाँ प्रवेश का अधिकार नहीं होता था। एक समय उस स्थान पर गौड़ीय मठ के भक्त गुरु-महाराज के आनुगत्य में कीर्त्तन कर रहे थे, कीर्त्तन श्रवणकर श्रीजगन्नाथ के सेवक, पण्डा लोग इतने अधिक आनन्दित हुए कि उन्होंने गुरु महाराज को अपने कन्धों पर उठा लिया तथा बलपूर्वक उन्हें भगवान् के रथ पर ले गये।

इसी बीच व्रज-गोपियों के श्रीकृष्ण से कुरुक्षेत्र में मिलन के समय उदित भावों में विभावित श्रीमन्महाप्रभु द्वारा उच्चारित वचनों का श्रील पुरी गोस्वामी महाराज रथ के समक्ष कीर्त्तन एवं गान करने लगे –

सेइ त' पराण-नाथ पाइनु।
जाहा लागि' मदन-दहने झुरि' गेनु॥

चै॰च॰ (मध्य-लीला १३.११३)

[मैंने उन्हीं प्राणनाथ श्रीकृष्ण को पा लिया है, जिनके लिए मैं कामाग्नि में जल रही थी।]

जिस समय श्रील पुरी गोस्वामी महाराज सम्पूर्ण रूप से कीर्त्तन में आविष्ट थे उस समय उनके आसपास के समस्त भक्त भी उसी मिलन के भाव में निमग्न होकर प्रफुल्लित अनुभव करने लगे। एक जेबकतरे ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के थैले में से बटुआ चुरा लिया। चूँकि अधिकांश भक्त कीर्त्तन में निमग्न थे इसलिये मेरे एक गुरुभ्राता श्रीनारायण ब्रह्मचारी (बाद में श्रीभक्तिप्रसाद पुरी महाराज) के अतिरिक्त किसी ने भी चोरी पर ध्यान नहीं दिया तथा उन्होंने आगे बढ़कर जेबकतरे को पकड़ लिया।

जेबकतरे को पकड़कर श्रीनारायण ब्रह्मचारी ने अत्यधिक गर्वपूर्वक श्रील पुरी गोस्वामी महाराज का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया किन्तु श्रील महाराज कीर्त्तन में इतने अधिक आविष्ट थे कि उन्होंने उनकी बातों पर कोई ध्यान ही नहीं दिया। जब श्रीनारायण ब्रह्मचारी ने पुनः-पुनः अधिक आग्रहपूर्वक प्रयास किया तो श्रील पुरी गोस्वामी महाराज अचानक से रुष्ट हो गये तथा उन्हें डाँटते हुए कहा, 'तुम मुझे क्यों परेशान कर रहे हो? पैसा तो आने और जाने की वस्तु है, वह उसे लेता है तो ले जाने दो, किन्तु जो भाव इस समय उदित हुआ है क्या सब समय वह भाव बना रहेगा?'

वहाँ पर उपस्थित भक्तों में से कौन वास्तविक रूप में श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के आन्तरिक भावों अथवा उनके क्षुब्ध होने के कारण को समझ पाया होगा? एकमात्र अत्यधिक निष्कपट एवं पारमार्थिक राज्य

में परिपक्व अथवा दूसरे शब्दों में, सम्पूर्ण रूप से शरणागत व्यक्ति के लिये ही इस प्रकार के सूक्ष्म विचारों पर ध्यान दे पाना सम्भवपर है, समझना तो बहुत दूर की बात है। इसलिये किसी एक प्रणयी-भक्त के हमारे समक्ष उपस्थित होने पर तथा उसके आचरण के स्वयं साक्षी होने पर भी जब तक हम स्वयं को सम्पूर्ण रूप से तथा निष्ठापूर्वक उनकी इच्छा के अनुरूप समर्पित नहीं कर देते, हम उन्हें पहचान नहीं पायेंगे। निष्कपटता एवं शरणागति के अभाव में हम महाभागवत के आचरण को साधारण भक्त की क्रियाओं जैसा मान लेंगे।

हमारे वास्तविक निष्कपट होने पर ही प्रणयी-भक्त अपनी निष्कपट कृपा से अपने वास्तविक स्वरूप तथा उच्च स्थिति को प्रकाशित करते हैं। उस समय हम प्रणयी-भक्त के आचरण को समझने के साथ-साथ उसे हृदयङ्गमकर अपने जीवन में आत्मसात कर पायेंगे। ऐसे उच्चकोटि के वैष्णवों की कृपा से ही हमें उनकी अप्राकृत क्रियाओं के वास्तविक स्वरूप तथा उसके पीछे के गम्भीर भावों को समझने की योग्यता प्राप्त होगी।

शरणागति में किसी भी प्रकार का अभाव होने पर प्रणयी-भक्त कृपा नहीं करते तथा उनकी कृपा के बिना उनके महान् व्यक्तित्व को पहचान पाना सम्भव नहीं तथा इसके कारण हम कभी-कभी उनके आचरण में दोष आरोपित कर देंगे-

महत् कृपा बिना कोन कर्मे 'भक्ति' नय।
कृष्णभक्ति दूरे रहु, संसार नहे क्षय॥

चै॰च॰ (मध्य-लीला २२.५१)

[महत् अर्थात् शुद्ध कृष्णभक्त की कृपा के बिना किसी प्रकार का कोई भी कार्य करने पर भी 'भक्ति' उत्पन्न नहीं हो सकती, कृष्ण भक्ति की बात तो दूर, किसी के संसार का भी क्षय नहीं हो सकता।]

इसलिये प्रणयी-भक्त की कृपा प्राप्त होने पर ही प्रणयी-भक्त एवं जो प्रणयी-भक्त बनने के लिये निष्कपट रूप से चेष्टारत हैं, उनको पहचान पाना सम्भवपर है।

हमने श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के चरित्र में देखा कि किसी के भी द्वारा एक रुपया तक भी देने पर वह उसे मस्तक से लगा कर अतिसावधानीपूर्वक अपने थैले में रखते हुए कहते, "यह पैसा श्रील प्रभुपाद ने भगवान् की सेवा हेतु प्रेरित किया है।" किन्तु उपरोक्त वर्णित उपाख्यान में श्रील महाराज ने कहा, "उन्हें पैसा ले जाने दो किन्तु मुझे परेशान मत करो।" इसका क्या कारण है कि श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने एक ही वस्तु के लिये एक समय में अपने गुरु महाराज द्वारा भगवद् सेवा हेतु प्रेरित मानकर प्रगाढ़ श्रद्धा का प्रदर्शन किया किन्तु दूसरे समय में उसी वस्तु के प्रति असम्मान प्रदर्शित किया? अपने इस आचरण के द्वारा श्रील पुरी गोस्वामी महाराज यह प्रमाणित कर रहे हैं कि समयोपयोगी किसी एक सेवा में निमग्न होने के कारण स्वतः यदि किसी अन्य सेवा की उपेक्षा होती है तो उसमें कोई हानि अथवा दोष नहीं है।

जब जेबकतरा श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के पैसे चुरा रहा था तो उस समय वहाँ पर बहुत से लोग उपस्थित थे

तथा सभी ने अपनी-अपनी योग्यतानुसार ही प्रतिक्रिया की। सम्पूर्ण रूप से कीर्त्तन-रस में निमग्न ज्येष्ठ वैष्णव रथ-यात्रा के दिव्य-भावों का आस्वादन कर रहे थे तथा वे लेशमात्र भी उत्तेजित नहीं हुए जबकि जेबकतरे को पकड़ने वाले नवीन कनिष्ठ भक्त को श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के भावों में बाधा उत्पन्न करने के कारण उनसे डाँट पड़ने पर अवश्य ही दुःख का अनुभव हुआ होगा।

इस घटना को देखकर मुझे श्रीमद्भगवद्गीता (२.६९) का एक श्लोक स्मरण हो आया –

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

[जो आत्मविषयिणी बुद्धि जड़मुग्ध सर्वसाधारण जीवों के लिये रात्रि के समान है, स्थितप्रज्ञ व्यक्ति उसमें जाग्रत रहते हैं, और जिस विषय-प्रवणा बुद्धि में साधारण जीव जाग्रत रहते हैं, तत्त्वदर्शी मुनि के लिये वही रात्रि के समान है अर्थात् वे निर्लिप्तभाव से यथायोग्य विषय स्वीकार करते हैं।]

संसारी व्यक्तियों की चेतना, मात्र इस जड़-जगत् की विषय-भोग की वस्तुओं तक ही सीमित है तथा वे पैसा एकत्रित करने में इतने आसक्त हैं कि एक पैसे के लिये भी झगड़ा कर लेते हैं। उन्हें परमार्थ-विषय में सोचने तक का भी समय नहीं है, यहाँ तक कि वे इसके विषय में जानने के लिये लेशमात्र भी चिन्तित नहीं हैं। इसके विपरीत ऐसे व्यक्ति जो कि आत्म-तत्त्व के विषय में जानते हैं वे सदैव अपनी वास्तविक अप्राकृत सम्पत्ति को प्राप्त करने में ही प्रयासरत रहते हैं, जड़-विषयों को तुच्छ एवं अनित्य जानकर उसमें एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाते।

श्रीमद्भगवद्गीता के इस श्लोकानुसार मैं देख सकता हूँ कि श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के कीर्त्तन में भाग लेने वाले ज्येष्ठ वैष्णव उन्हीं के भावों की भाँति सम्पूर्ण रूप से निमग्न होने के कारण जेबकतरे से अनभिज्ञ थे तथा ज्येष्ठ वैष्णवों के भावों से अनजान होने के कारण कनिष्ठ भक्त ने जेबकतरे को पकड़ने को ही प्राथमिकता दी।

प्रणयी-भक्त के सङ्ग से रहित परिक्रमा वास्विक परिक्रमा नहीं

मुझे अपने गुरु महाराज एवं श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनेकानेक आश्रित भक्तों के सङ्ग में श्रीनवद्वीप-धाम, श्रीव्रज-मण्डल, उत्तर-भारत, तथा दक्षिण-भारत की परिक्रमा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रातः काल से रात्रि तक परिक्रमा को सुव्यवस्थित करने के शारीरिक परिश्रम में व्यस्त रहने पर भी हम उनके सङ्ग में उनके हृदय की गम्भीर-तीव्र-विरह-भावना एवं उनकी वाणी के शक्तिशाली प्रभाव के कारण अशेष आनन्द का अनुभव करते।

एक समय गोवर्धन में व्रजमण्डल परिक्रमा के समय परिक्रमा-पार्टी गोविन्द कुण्ड निश्चित समय से बहुत अधिक देरी से पहुँची।

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने एकत्रित समस्त भक्तों को सम्बोधित करते हुए कहा,

"यद्यपि बहुत देर हो गयी है एवं मैं एक योग्य वक्ता भी नहीं हूँ तथापि श्रीभक्तिदयित माधव महाराज ने मुझे प्रत्येक स्थान की श्रीचैतन्यचरितामृत, भक्ति-रत्नाकर एवं अन्य-अन्य शास्त्रों में वर्णित महिमा के अनुसार कीर्त्तन करने की सेवा प्रदान की है। मुझे यहाँ कथा करने में कोई असुविधा नहीं है किन्तु अधिक देर हो गयी है तथा हमें अभी अन्य कई स्थानों के दर्शन हेतु भी जाना है। आप सबको भूख भी लग रही होगी। इसलिये आप लोगों की श्रवण की इच्छा होने पर ही मैं कथा का परिवेशन करूँगा अन्यथा हम अभी अन्य स्थानों के दर्शन हेतु जायेंगे तथा उचित समय मिलने पर इन सब स्थानों की महिमा कीर्त्तन करेंगे जिससे कि आपको भी प्रसाद पाने में देरी न हो।"

सभी ने एक स्वर में कहा, "घर पर भोजन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। हम यहाँ पर परिक्रमा करने तथा आपके द्वारा हमारे कर्ण-कुहरों में उड़ेले जा रहे अमृत का आस्वादन करने हेतु आये हैं। हम यहाँ पर खाने-पीने तथा सोने के लिये नहीं आये हैं। कृपया इन स्थानों से सम्बन्धित लीलाओं का आप महिमा-कीर्त्तन कीजिए।"

उस समय श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने श्रीचैतन्यचरितामृत से श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद की लीलाओं, गोविन्द कुण्ड की महिमा तथा उस स्थान से सम्बन्धित अन्य लीलाओं का पाठ करना प्रारम्भ किया। उसके पश्चात् उन्होंने गिरिराज-गोवर्धन की महिमा तथा श्रीरघुनाथदास गोस्वामी द्वारा रचित 'श्रीगोवर्धनवास-प्रार्थनादशकम्' का गान किया जिसमें श्रीदास गोस्वामी प्रार्थना कर रहे हैं, "निज-निकट-निवासं देहि गोवर्धन! त्वम् अर्थात् हे गिरिराज-गोवर्धन! आप मुझे अपने निकट वास प्रदान कीजिए।"

समस्त परिक्रमार्थियों ने अत्यन्त ध्यानपूर्वक श्रवण किया तथा सभी इतने शान्त बैठे थे कि एक सुई गिरने की ध्वनि को भी सुना जा सकता था। कई भक्तों की आँखों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे तथा सभी कथा में इस प्रकार से निमग्न थे कि किसी को भी भूख-प्यास नहीं लगी।

आजकल भक्तों को परिक्रमा करने एवं उसकी व्यवस्था करने में पूर्वकाल की अपेक्षा उतना अधिक कठोर परिश्रम नहीं करना पड़ता तथा उनके पास विश्राम करने तथा हरि-कथा श्रवण करने का पर्याप्त समय होता है तब भी हम आजकल की परिक्रमा-पार्टियों को उस प्रकार के आनन्द का अनुभव करते हुए नहीं देखते जैसा कि हमने उस समय अनुभव किया था।

जब हम प्रणयी-भक्तों के सङ्ग में परिक्रमा करते हैं तो व्यर्थ की बातों का समय नहीं होता, बल्कि हम श्रवण, कीर्त्तन तथा स्मरण में ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस प्रकार के उच्चकोटि के भक्तों के सङ्ग में ही हम परिक्रमा करने के वास्तविक लाभ को समझ एवं अनुभव कर सकते हैं।

धाम की महिमा श्रवण करना वास्तविक धाम-सेवा

एक बार हम व्रजमण्डल परिक्रमा के समय मथुरा में 'वृन्दावन दरवाजा' नामक

धर्मशाला में ठहरे थे। उस वर्ष बहुत अधिक वर्षा हुई थी तथा यमुना जी का जल अपने स्तर से बहुत अधिक था। अपनी वृद्धावस्था के कारण उन दिनों श्रील पुरी गोस्वामी महाराज धीरे-धीरे चल पाने के कारण सबसे पीछे रहते थे। हमारी सेवा थी सबके पीछे चलना तथा देखना कि कोई पार्टी से अलग न हो जाये अथवा छूटने के कारण पार्टी से बिछुड़ ना जाये। इस कारण मुझे श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के निकट में चलने का सुअवसर प्राप्त हुआ एवं मैंने उनके श्रीमुख से स्थान-स्थान के माहात्म्य को श्रवण करने का सौभाग्य लाभ किया।

मथुरा के स्थानीय लोगों ने घाटों के बहुत निकट ही मल-मूत्र आदि का त्याग किया हुआ था, उस कारण से परिक्रमा के कुछ यात्री घृणापूर्वक 'हे! थू!! हे! थू!!' करते हुए थूकते हुए चले जा रहे थे। श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने उन पर गुस्सा करते हुए कहा, "ये लोग यहाँ पर धाम के दर्शन नहीं बल्कि मल-मूत्र का दर्शन करने के लिए आये हैं। इन्होंने स्थान की महिमा का कान के माध्यम से दर्शन नहीं किया, यदि कोई साधु मुख से धाम की महिमा का श्रवण करता है तब उसका दर्शन ही भिन्न होता है। 'वास्तविक दर्शन जड़-इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है'- इन यात्रियों को इसकी अनुभूति होना बाकी है।"

वैष्णव अपराधी के प्रति उग्र-व्यवहार

एक समय मैं, मेरे सतीर्थ श्रीविष्णुदास (बाद में श्रीभक्तिविवेक परमार्थी महाराज) श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज के साथ गाड़ी से कोलकाता से पुरी आ रहे थे। जब हमारी गाड़ी हावड़ा स्टेशन पर खड़ी थी, तब एक अत्यधिक धनी-मानी व्यक्ति ने किसी कारणवश श्रीविष्णु प्रभु को बहुत अपशब्द कहे, बुरा-भला सुनाया, उनका अपमान किया।

जब थोड़ी देर के पश्चात् उस व्यक्ति ने एक बड़ी धन राशि श्रील पुरी गोस्वामी महाराज को देनी चाही तब 'मृदूनि कुसुमादपि अर्थात् पुष्प से भी कोमल' के मूर्त्तिमान स्वरूप श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने 'वज्रादपि कठोराणि अर्थात वज्र से भी अधिक कठोर' के अपने अभिनव (नूतन) स्वरूप को प्रकाशित करते हुए तथा उसके प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए उससे कहा, "आपने वैष्णव अपराध किया है, मैं अपराध करने वाले किसी भी व्यक्ति की किसी वस्तु को लेने की बात तो क्या, उससे किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध, वार्त्तालाप आदि भी नहीं करना चाहता।"

उस धनी व्यक्ति ने कहा, "मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ, महाराज, कृपा करके इसे स्वीकार कर लीजिए।"

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने कहा, "मैं आपके द्वारा प्रदत्त सेवा को ग्रहण करने से आपके द्वारा कृत अपराध का भागीदार बनूँगा, अतएव आपके द्वारा की जाने वाली सेवा को मैं कदापि स्वीकार नहीं करूँगा।"

वह व्यक्ति हज़ार प्रयास करने पर भी श्रील पुरी गोस्वामी महाराज को कुछ भी देने के लिये नहीं मना पाया। दुर्भाग्यवशतः वह श्रील पुरी गोस्वामी द्वारा दिये गये

इङ्गित को समझ नहीं पाया कि उसे इस अपराध के लिये श्रीविष्णु दास से क्षमा प्रार्थना करनी चाहिये।

भगवद् सेवा में अत्यधिक उत्कण्ठा

एक रात श्रील भक्ति प्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज ने स्वप्न में देखा कि अग्रद्वीप, श्रीगौड़मण्डल में श्रीमन्महाप्रभु के परिकर, कीर्त्तन करने में अति दक्ष श्रीगोविन्द घोष एवं उनके दो भ्राताओं श्रीवासुदेव घोष, श्रीमाधव घोष के द्वारा सेवित श्रीगोपीनाथजी श्रील महाराज के हाथ से बनी खीर खाना चाहते हैं।

उन्होंने स्वप्न में देखी श्रीगोपीनाथ की इच्छा को इतना अधिक गुरुत्व दिया कि प्रातः काल उन्होंने बिना किसी विलम्ब के अत्यधिक आग्रहपूर्वक मुझे तथा मेरे गुरुभ्राता श्रीभक्तिनिलय मङ्गल महाराज के साथ अन्य कुछेक भक्तों को अपने साथ लिया तथा श्रीभूपेन मित्र के सहयोग से चार रिक्शों की व्यवस्था करके श्रीअग्रद्वीप में पहुँचे तथा उन्होंने श्रीगोपीनाथ के लिये स्वयं खीर रन्धन कर भोग की समस्त व्यवस्था की।

उन्हीं के आग्रह से मैंने भी प्रथम बार श्रीगोपीनाथ के दर्शन किये, उससे पूर्व मुझे उस स्थान अथवा श्रीगोपीनाथ के विषय में कोई जानकारी तक भी नहीं थी।

धाम-परिक्रमा अर्चन का अङ्ग

श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा के समय श्रील गुरु महाराज श्रील पुरी गोस्वामी महाराज को सम्पूर्ण परिक्रमा पार्टी से आगे रखकर उनके श्रेष्ठ आनुगत्य में परिक्रमा करने का विचार ही सदैव पुष्ट करते थे।

मैं कुछेक भक्तों के साथ मिलकर परिक्रमा के मठ से प्रारम्भ होने से पूर्व ही प्रायः सभी संन्यासी, ब्रह्मचारियों तथा यात्रियों को प्रसाद देता था, किन्तु श्रील पुरी गोस्वामी महाराज तथा गुरु महाराज उस समय मठ में कुछ भी ग्रहण नहीं करते थे। जब हमारी परिक्रमा योगपीठ में दर्शन करने के लिए गयी, तब वहाँ पर श्रीविग्रहों के दर्शन के उपरान्त श्रील गुरु महाराज तथा पुरी गोस्वामी महाराज को कुछ देने पर उन्होंने ग्रहण कर लिया। मैंने श्रील पुरी गोस्वामी महाराज से पूछा, "आपके और गुरु महाराज द्वारा मठ में कुछ भी ग्रहण नहीं करने तथा योगपीठ में आकर स्वीकार कर लेने के पीछे क्या रहस्य है? आपके द्वारा बताने पर मैं कृतार्थ होऊँगा, अन्यथा नहीं।"

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने उत्तर दिया, "धाम परिक्रमा अर्चन का अङ्ग है। जिस प्रकार अर्चक अर्चन किये बिना कुछ भी ग्रहण नहीं करता, किन्तु अर्चन करने के पश्चात् प्रसाद ग्रहण करता है तथा पुनः दोपहर के भोग के लिये उसे उपवासी नहीं रहना पड़ता, उसी प्रकार हम धाम परिक्रमा के समय किसी एक स्थान पर दर्शन करने तक उपवासी रहते हैं तथा दर्शन हो जाने के पश्चात् कुछ ग्रहण कर लेते हैं एवं अगले स्थान के दर्शन के लिये उपवासी नहीं रहते।"

"वैष्णवों के द्वारा प्रदत्त प्रत्येक वस्तु निर्गुण एवं प्रकृति के तीन गुणों से परे होती है।"



वैष्णवों के द्वारा प्रदत्त वस्तु निर्गुण

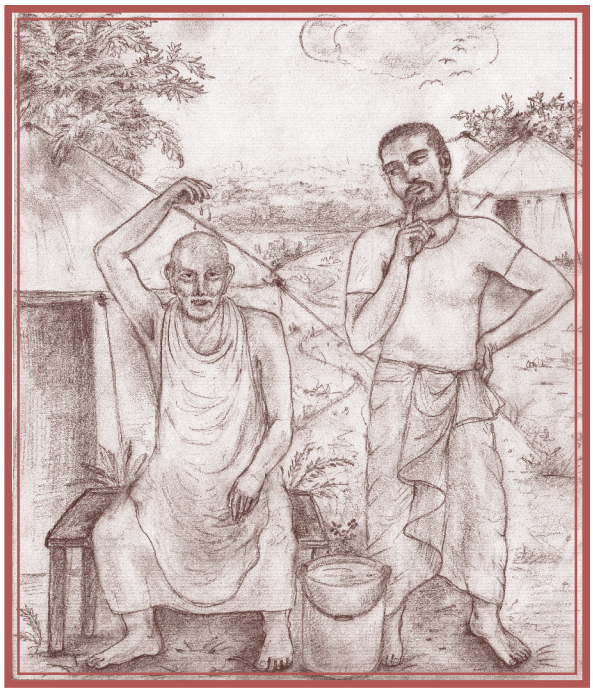
श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज, श्रील गुरु महाराज तथा मैं सदैव भगवान् के भोग में लगने वाले तथा सात्त्विक आहार के अन्तर्भुक्त आने वाले आतप अन्न को ही ग्रहण करते थे।

एक बार मैं श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज के साथ श्रील भक्तिसौरभ भक्तिसार गोस्वामी महाराज के मठ में विग्रह-प्रतिष्ठा उत्सव में योगदान देने हेतु गया। जब हम एक ही साथ में प्रसाद पाने के लिए बैठे थे, तब हमें सिद्ध-अन्न परिवेशन किया गया तथा श्रील सार गोस्वामी महाराज ने स्वयं आकर हमें प्रसाद प्रारम्भ करने हेतु कहा। मैं तो सिद्ध-अन्न खाऊँगा नहीं, इसे जानकर श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने मेरी ओर देखते हुए तथा मुझे ही उपलक्ष्य करते हुए कहा, "वैष्णव की आज्ञा हुई है प्रसाद प्रारम्भ करने की तथा वैष्णव के द्वारा प्रदत्त वस्तु निर्गुण एवं प्रकृति के तीन गुणों से परे होती है।" ऐसा कहकर उन्होंने प्रसाद पाना प्रारम्भ किया। उन्हें ऐसा करते देखकर मैंने भी अपने जीवन में सर्वप्रथम वहीं पर ही वैष्णवों की प्रसन्नता हेतु सिद्ध-अन्न ग्रहण किया।

मैंने श्रील पुरी गोस्वामी महाराज को अपने नियम से अधिक गुरुत्व वैष्णवों के द्वारा प्रदत्त निर्गुण वस्तु के प्रति देते देखकर उस दिन से यही शिक्षा ग्रहण की कि अपने नियम का पालन करने से चतुर्दश ब्रह्माण्ड की कोई वस्तु तो प्राप्त हो सकती है किन्तु भक्ति की प्राप्ति एकमात्र श्रील पुरी गोस्वामी महाराज जैसा विचार धारण करने से अर्थात् वैष्णव-सेवा को प्राथमिकता देने से ही हो सकती है।

समस्त वैष्णवों के प्रति अपूर्व सम्मानपूर्ण भावना

श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा के समय में मेरी श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त गोस्वामी ठाकुर के शिष्यों को प्रातःकाल स्नान आदि के उद्देश्य से गर्म जल देने की सेवा थी। मैं जब भी श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज को गर्म जल देने आता था, तब श्रील पुरी गोस्वामी महाराज उस जल में से कुछ जल अपनी अञ्जुलि में भरकर अपने सिर पर लेते हुए कहते, "यह जल किसी वैष्णव के द्वारा लाया गया है, वैष्णव के द्वारा लायी गयी वस्तु तो प्रसाद स्वरूप है, उसे मैं अपने चरणों पर कैसे डाल सकता हूँ? इसलिए सर्वप्रथम उसे मस्तक पर धारण करता हूँ, तत्पश्चात् उसे शरीर के किसी भी अङ्ग पर डालूँगा। उदाहरण स्वरूप, जिस प्रकार वैष्णव के द्वारा प्रदत्त वस्त्र इत्यादि उनकी कृपा स्वरूप प्रसाद होने पर भी आवश्यकता पड़ने पर धारण किये जा सकते हैं, ठीक उसी भावना से मैं इस जल को ग्रहण करूँगा।"



वे अपने शिष्य तुल्य मेरे द्वारा लाये गये जल इत्यादि के विषय में ऐसे कहते हुए जब मुझे ही वैष्णव मानकर मर्यादा प्रदान करते थे, तब इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी अपने गुरुभ्राताओं के प्रति तथा अन्य श्रेष्ठ वैष्णवों के प्रति कैसी भावना रही होगी।

अनुभूति-सम्पन्न कीर्त्तनीया

कार्तिक मास में श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा के समय श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज अष्टयाम में अष्टकालीय लीला[१] के अनुरूप श्रीशिक्षाष्टक पर आधारित श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित कीर्त्तन के पद तथा श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा लिखित श्रीगोविन्द-लीलामृत के श्लोकों पर आधारित श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित कीर्त्तनों का समयानुसार प्रयुक्त होने वाली राग-रागिनी सहित इतना सुमधुर सुकण्ठ से गान करते थे, ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई कर्णकुहरों में अमृत प्रदान कर रहा है।

उनका हृदयस्पर्शी कीर्त्तन छोटे-से-छोटे तथा बड़े-से-बड़े सभी भक्तों तथा यात्रियों को इतना अधिक आकर्षित करता था कि उन दिनों उस समय कोई भी भक्त कीर्त्तन के समय अनुपस्थित नहीं रहता था। सभी अपने समस्त कार्यों को छोड़कर कीर्त्तन में योगदान देते थे।

श्रील प्रभुपाद के प्रकटकाल में श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज (उस समय श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी) रेडियो के माध्यम से श्रील नरोत्तम दास ठाकुर तथा श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के कीर्त्तन के पदों का गान करके श्रील प्रभुपाद के भुवन मङ्गलकारी विशुद्ध हरिनाम संङ्कीर्त्तन के प्रचार में सहायता करते थे।

एक समय श्रील प्रभुपाद दार्जिलिङ्ग में रहते समय श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी के द्वारा रेडियो पर गान किये गये 'गोपीनाथ, मम निवेदन शुन' नामक कीर्तन को सुनकर इतने अधिक भाव-विभोर हुए थे कि उन्होंने कोलकाता में लौटकर उन्हें पुनः अपने कक्ष में बुलाकर उस कीर्त्तन को श्रवण किया था। सम्भवतः इसी कारणवश 'गोपीनाथ,

[१]श्रीकृष्ण द्वारा अपने नित्य परिकरों के सङ्ग गोलोक वृन्दावन में दिन के आठ यामों के अनुरूप सम्पादित की जाने वाली दिव्य लीलाएँ



"श्रील प्रभुपाद ने हमें बद्धजीवों के अविद्या रूपी मल को दूर करने के उपकरण (झाड़ू) के रूप में प्रस्तुत होने की शिक्षा प्रदान की है। मैं उनकी झाड़ू की एक शलाका बनने पर ही स्वयं को धन्य, कृतकृतार्थ मानूँगा।"



मम निवेदन शुन' उनका अत्यधिक प्रिय कीर्त्तन था।

श्रील प्रभुपाद की प्रपञ्च-मार्जन-लीला में अपनी क्षुद्र स्थिति का निर्धारण

श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने श्रीगौड़ीय कण्ठहार के सङ्कलनकर्त्ता श्रीअतीन्द्रिय दासाधिकारी को एक पत्र के माध्यम से कहा था, "श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने नामहट्ट के झाड़ूदार के रूप में अपना परिचय देते हुए एक अप्राकृत लीला को प्रकट किया है। हम शत-शत लोग शत-शत मुखों द्वारा महाजनों का अनुगमन करते हुए उनकी इस प्रपञ्च-मार्जन की लीला अर्थात् बद्धजीव के अविद्या (कृष्ण-विमुखता) रूपी मल को दूर करने के उपकरण (झाड़ू) के रूप में प्रस्तुत होंगे अर्थात् सर्वत्र अप्राकृत हरि-कथा का प्रचार करेंगे एवं लोगों को दुःसङ्ग से बचाने की चेष्टा करेंगे। यद्यपि हमारा यह कार्य जगत् के लोगों को प्रियकर प्रतीत नहीं हो सकता है, किन्तु यही उनके चरम कल्याण को प्रदान करने वाला एकमात्र साधन है।"

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज श्रील प्रभुपाद द्वारा लिखित उपरोक्त वचनों को दोहराते हुए कहते थे कि, "यद्यपि श्रील प्रभुपाद ने हमें बद्धजीव के अविद्या रूपी मल को दूर करने के उपकरण (झाड़ू) के रूप में प्रस्तुत होने की शिक्षा प्रदान की है तथापि मैं कोई स्वतन्त्र उपकरण बनकर नहीं, बल्कि श्रील प्रभुपाद की झाड़ू की एक शलाका बनने पर ही स्वयं को धन्य, कृतकृतार्थ मानूँगा।"

श्रेष्ठ सङ्ग में प्रतिष्ठित होने का प्रमाण

एक समय मायापुर स्थित श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ में श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज की आविर्भाव-तिथि का आयोजन किया गया था, जिसमें कि धर्मसभा में पहले दिन मेरे सतीर्थ श्रील भक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज तथा दूसरे दिन मुझे सभापति के पद पर अधिष्ठित किया गया था।

श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज ने सभा में दैन्य व्यक्त करते हुए कहा था, "यद्यपि मेरे बान्धवगण श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ के सेवकों ने मेरे जन्मदिवस के उपलक्ष्य में विराट आयोजन किया है तथापि मैं यथार्थ में इस पूजा को ग्रहण

करने के लिये सर्वथा अयोग्य हूँ।

"मेरे गुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद अपने आलेख्य अर्चा-विग्रह स्वरूप में यहाँ विराजमान हैं, उन्हीं में ही समस्त गुरुवर्ग अधिष्ठित हैं। मैं उन्हीं का दासानुदास हूँ। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने ग्रन्थ 'शरणागति (३.३.१)' में हमें सिखाया है-

'सर्वस्व तोमार, चरणे सँपिया,
पड़ेछि तोमार घरे।
तुमि त' ठाकुर, तोमार कुकुर,
बलिया जानह मोरे॥'

[मैं अपना सर्वस्व आपके श्रीचरणों में समर्पितकर आपके घर में (शरण में) पड़ा हुआ हूँ। कृपया आप मुझे अपने कुत्ते (दास) के रूप में स्वीकार करें।]

"उन्हीं की शिक्षा से अनुप्राणित होकर मैं कह रहा हूँ कि मैं अपने गुरुपादपद्म श्रील प्रभुपाद के कुकुर के कुकुर का कुकुर हूँ।

"आप लोग जो मेरी पूजा एवं सम्मान कर रहे हैं, वह वास्तव में मेरे प्रभु से मेरे सम्बन्धयुक्त होने के कारण कर रहे हैं। इसलिये यह पूजा मेरी नहीं, वास्तव में उन्हीं की है। उनके चरणकमलों में बैठने के कारण उनके दास सूत्र में पूजा की सामग्री के मुझसे स्पर्श करने पर भी यह पूजा इस कुकुर की नहीं, बल्कि उसके प्रभु की है, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। अपने ठाकुर की पूजा होते देखकर मुझे बहुत आनन्द होता है। इसलिये आप सभी यदि इस पूजा के मर्म को समझ पायें, तभी मुझे अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति होगी।"

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने जिस प्रकार की दीनताप्रकाश-पूर्वक उपरोक्त विचारों को प्रकट किया था, उससे स्वतः ही उनके सदैव श्रेष्ठ सङ्ग में प्रतिष्ठित होने का इङ्गित प्राप्त होता है। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्रीचैतन्यचरितामृत (आदि-लीला ३.२१) में कहा है-

'आपने ना कैले धर्म शिखान न जाय।
एइ त' सिद्धान्त गीता-भागवते गाय॥'

[स्वयं धर्म का आचरण किये बिना धर्म सिखाया नहीं जा सकता। यही सिद्धान्त गीता-भागवत में कहा गया है।]

स्वयं आचरणकर उन्होंने शिक्षा प्रदान की है कि यदि किसी के द्वारा पूजा करने पर कोई यह मान बैठे कि वे वास्तव में उनकी पूजा कर रहे हैं, तो श्रौत-परम्परा का सम्पूर्ण विचार ही धूमिल हो जायेगा। वास्तव में श्रौत-परम्परा में प्रतिष्ठित भक्त मात्र ही इस प्रकार की अनुभूति से सम्पन्न होता है।

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज की आविर्भाव-पूजा में उनकी दीनता को श्रवण करके मुझे हमारी गौड़ीय-वैष्णव-धारा के श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी आदि मुक्त-महापुरुषों की दीनता का स्मरण हो आया तथा साथ ही यह अनुभव भी हुआ- श्रील पुरी गोस्वामी महाराज कितने अधिक श्रेष्ठ एवं सिद्ध महापुरुष हैं।



"मेरी जन्म तिथि को श्रीमाधव महाराज ने इतनी व्यस्तता में भी स्मरण रखा।"

गुरुभ्राताओं में परस्पर प्रीतियुक्त आदान-प्रदान

एक दिन गुरु महाराज ने मुझे अपने कक्ष में बुलाया तथा मेरे हाथ में गेरूएँ रङ्ग के वस्त्रों का एक जोड़ा, पुष्पमाला, फल, मिठाई तथा एक बन्द लिफाफे में कुछ प्रणामी देकर कहा, "ये सब वस्तुएँ श्रीभक्तिप्रमोद पुरी महाराज को दे आओ, उन्हें आज श्रद्धापूर्वक विशेष रूप से प्रणाम करना। मेरी ओर से भी उन्हें प्रणाम कर देना। कारण, यदि मैं स्वयं जाऊँगा तो वे सङ्कोच करेंगे।"

गुरु महाराज के आदेशानुसार मैं श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज के कक्ष में गया, उन्हें प्रणाम करके मैंने गुरु महाराज द्वारा भेजी गई वस्तुएँ उन्हें प्रदान की तथा गुरु महाराज के प्रणाम को निवेदन किया। तब श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने हँसते-हँसते कहा, "आज मेरी जन्म तिथि है। मेरी जन्म तिथि पर यह सब कुछ! श्रीमाधव महाराज ने इतनी व्यस्तता में भी स्मरण रखा।"

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के मुख से ऐसा सुनकर मुझे पहली बार उनकी आविर्भाव तिथि के विषय में जानकारी हुई। गुरु महाराज ने ही सर्वप्रथम इस प्रकार अपने गुरुभ्राता की आविर्भाव तिथि का पालन करना प्रारम्भ कराया।

जब मैं गुरु महाराज के पास पहुँचा तथा उन्हें बतलाया कि मैंने सब वस्तुएँ श्रील पुरी गोस्वामी महाराज को दे दी हैं, तब गुरु महाराज ने मुझसे कहा, "वैष्णवों की आविर्भाव-तिथि के दिन उनकी पूजा करनी चाहिये। उनका स्मरण, उनकी सेवा करनी चाहिये। उनके पवित्र-चरित्र का कीर्त्तन-श्रवण करना चाहिये। श्रील भक्तिप्रमोद पुरी महाराज मेरे ज्येष्ठ गुरुभ्राता हैं, मैं सदैव उन्हें अपने सिर पर रखता हूँ अर्थात् उनके कक्ष के ठीक नीचे वाले कक्ष में इसी भावना से ही रहता हूँ कि वे मेरे सिर पर हैं और इस प्रकार उनके चरण-कमलों का आश्रय प्राप्त करता हूँ।

मैं अपने मन में अत्यधिक उल्लसित हुआ कि मैं उनकी आविर्भाव-तिथि में अपने गुरु महाराज के हृदय की प्रीति को प्रदर्शित करने वाली भेंट की सामग्री को श्रील पुरी गोस्वामी महाराज तक पहुँचाने का निमित्त बना।

अन्यों को अपनी सम्पत्ति मानने में उदासीन

श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज जब अपने सेवा-कार्य में बहुत अधिक व्यस्त रहते थे तब किसी के कुछ जिज्ञासा करने पर वे उन्हें मेरे निकट भेज देते थे, जब उनकी वृद्धावस्था आयी, तब तो वे अनेक लोगों को ही निःसङ्कोच होकर कहते थे, "मेरी स्मरणशक्ति अब विलुप्त हो रही है, आप श्रीभारती महाराज के निकट जाकर ही अपनी समस्त जिज्ञासाओं का सुष्ठु उत्तर प्राप्त कर सकते हो।"

प्रायः हम देखते हैं कि कई तथाकथित गुरु अपने शिष्यों को अपनी सम्पत्ति मानकर उन्हें श्रेष्ठ वैष्णवों का आनुगत्य करने से निषेध करते हैं किन्तु श्रील पुरी गोस्वामी महाराज अपने शिष्यों को अपनी सम्पत्ति न मानकर उन्हें भगवान् एवं अपने गुरुपादपद्म श्रील प्रभुपाद की सम्पत्ति ही मानते थे। 'अन्याभिलाष शून्य' तथा हरि-कीर्त्तन करने के अधिकारी व्यक्तियों के 'दैन्य, दया, अन्ये मान, प्रतिष्ठा वर्ज्जन' आदि गुणों से युक्त व्यक्ति के अतिरिक्त कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपने आश्रितजनों तथा अपने निकट आने वाले अन्य भक्तों को किसी अन्य वैष्णव के निकट प्रेरित करता है?

गुरुभ्राता द्वारा महिमा गुणगान

श्रील प्रभुपाद के चरणाश्रित श्रीकृष्ण केशव प्रभु हमसे पुनः पुनः कहते थे, "श्रील भक्तिप्रमोद पुरी महाराज जैसे एक विज्ञ एवं उत्तम वैष्णव यदि मठ में बैठे-बैठे मात्र हरिनाम भी करें तो उसमें हम जैसे बद्ध जीवों का परम मङ्गल है। उन्हीं के आकर्षण से सभी लोग आयेंगे तथा संस्थान में रहने वाले व्यक्ति भी उन्हीं की उपस्थिति मात्र के प्रभाव से सब सेवा कार्य सुष्ठु रूप से करेंगे। उनका जैसा व्यक्तित्व है, उनकी जैसी महिमा है, हमारी हजार ढ़ोल पीटकर भी वैसी होगी नहीं। अतएव सदैव उनके सङ्ग की कामना करो।"

मैंने भी अपने जीवन में सदैव यही अनुभव किया कि किसी श्रेष्ठ व्यक्ति की उपस्थिति मात्र ही आस-पास के सम्पूर्ण वातावरण को दिव्य बना देती है। शिष्यों

के द्वारा अपने गुरु की प्रशंसा करना तो एक सामान्य बात है, किन्तु गुरुभ्राता के द्वारा प्रशंसा विशेष गुण नहीं होने पर कदापि सम्भव नहीं है।

भगवद् दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा

वनग्राम से श्रीजगन्नाथ पुरी दर्शनों के लिए आये मेरे एक गुरुभ्राता श्रीब्रह्मानन्द दासाधिकारी के साथ उनके अत्यधिक आग्रह करने पर एक बार श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज भुवनेश्वर में श्रीअनन्त-वासुदेव दर्शन के लिये गये। किन्तु वैष्णव-मर्यादा देने में अनिपुण श्रीब्रह्मानन्द दासाधिकारी ने मार्ग में खण्डगिरि, उदयगिरि आदि स्थानों पर भ्रमण करने में इतनी देर कर दी कि श्रीअनन्त-वासुदेव पहुँचते-पहुँचते मन्दिर बन्द हो गया तथा दर्शन किये बिना ही वे पुरी लौट आये।

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने उस दिन जल तक भी ग्रहण नहीं किया था, भुवनेश्वर जाते समय मार्ग में वे पुनः-पुनः श्रीब्रह्मानन्द प्रभु से कह रहे थे कि दर्शन करने के पश्चात् ही जल अथवा प्रसाद ग्रहण करूँगा। दर्शन नहीं हो पाने के कारण वे बहुत दुःखी हुए, कारण अन्यान्य स्थानों के नहीं अपितु श्रीअनन्त-वासुदेव के दर्शनों की लालसा से ही वे भुवनेश्वर गये थे।

मठ में पहुँचने पर स्नान, तिलक, आह्निक करने के उपरान्त ही श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने मेरे गुरुभ्राता श्रीनवीन मदन ब्रह्मचारी (बाद में श्रीभक्तिनिर्मलानन्द वन महाराज) के द्वारा लाये श्रीजगन्नाथ-प्रसाद को ग्रहण किया।

क्या आजकल कोई भगवद्-दर्शन, वैष्णव-दर्शन के विषय में ऐसा विचार भी करता है? श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के आदर्श को स्मरण करके यही अनुभव होता है कि वे इस जगत् के नहीं बल्कि किसी अन्य जगत् के वासी थे, इस जगत् की मिट्टी से नहीं, बल्कि किसी अन्य जगत्, दिव्य जगत् की मिट्टी के बने थे।

भूल निकालने वाले की महत्ता को समझना

जब श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के भक्त श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराजजी के आनुगत्य में दक्षिण भारत की परिक्रमा करने के लिये गये थे, तब श्रील पुरी गोस्वामी महाराज प्रायः सभी स्थानों के इतिहास, वहाँ पर विराजित विभिन्न विग्रहों, उनकी सेवा-परिपाटी, उनकी महिमा, दर्शन करने की पद्धति तथा उसके क्रम इत्यादि के विषय में सब जानकारी प्राप्त करके अपनी डायरी में लिख लेते थे। जब हम कोलकाता लौटकर आये तो उन्होंने दक्षिण भारत यात्रा का सम्पूर्ण विवरण श्रीचैतन्य वाणी पत्रिका में प्रकाशित करने के उद्देश्य से लिखना प्रारम्भ किया।

एक दिन मैं उनके कक्ष में बैठा था, उनके द्वारा लिखित विवरण को पढ़कर मैंने उनसे कहा, "महाराज, आपने अमुक स्थान का विवरण तो प्रदान नहीं किया।"

उसे सुनकर उन्होंने मुझसे कहा, "तुम ठीक ही कह रहे हो, मैं उसे भी लिख लूँगा।

"वास्तव में मेरा सिद्धान्त है कि मेरी

भूल को देखकर भी मौन रहने वाले की अपेक्षा जो मेरी भूल से मुझ को अवगत कराता है, मैं उसका अधिक आदर करता हूँ। 'हाँ' में 'हाँ' मिलाने वाले तो बहुत मिल जाते हैं, किन्तु सद्भावना युक्त बान्धव का मिलना सहज नहीं है। हमने जो लिख दिया, उसे पढ़कर केवल 'वाह! बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!' कहने वालों को मैं अपना बान्धव नहीं समझता। मुझे मक्खी मारने वाला व्यक्ति नहीं, बल्कि मेरी भूल को निकालने वाला प्रूफ-संशोधक ही अच्छा लगता है।"

इस घटना के तुरन्त बाद श्रील पुरी गोस्वामी महाराज गुरु महाराज के पास गये तथा कहा, "यदि आप चैतन्यवाणी पत्रिका को सुष्ठु रूप से चलाने के अभिलाषी हैं, तो आप भारती महाराज को मेरे साथ प्रकाशन विभाग में दे दीजिए। वह भले ही हाँ में हाँ नहीं मिलाने वाला होने के कारण कुछेक लोगों को अप्रिय लग सकता है, किन्तु इसका यह गुण इसे प्रकाशन विभाग में सेवा करने के योग्य बनाता है तथा पत्रिका की गुणवत्ता को उत्कृष्ट बनाने हेतु यह मेरे लिये अत्यन्त उपयुक्त पात्र है।"

गुरु महाराज ने श्रील पुरी गोस्वामी महाराज से कहा, "भारती महाराज के इस गुण के कारण ही मैं इसे अपना दाहिना हाथ समझता हूँ। यदि इसे ही आपको दे दूँगा तो मेरे पास किसी भी सेवा कार्य को करने वाला कोई भी योग्य व्यक्ति नहीं रहेगा। हमारे नये मठ का निर्माण हो रहा है, उसके लिये मुझे उसकी अत्यन्त आवश्यकता है। अतएव मेरा निवेदन है, इसे अभी मेरे पास ही रहने दीजिए।"

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने सहज ही गुरु महाराज की बात को स्वीकार कर लिया, कुछ भी नहीं कहा। उनमें बालकवत् सरलता थी।

स्वयं को अन्यों द्वारा किये गये उग्र व्यवहार के लिये उत्तरदायी मानना

एक समय श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज अपने एक गुरुभ्राता का दर्शन करने के लिये गये, किन्तु उनके गुरुभ्राता ने उनसे भेंट नहीं करके अपने सेवक के माध्यम से एक सौ रुपये प्रणामी भेजकर उन्हें विदाई दी। श्रील पुरी गोस्वामी महाराज वहाँ से तो लौट आये किन्तु उन्होंने सम्पूर्ण दिवस अन्न-जल का त्यागकर उपवास किया। उन्होंने उस प्रणामी को ठाकुरजी के भेंट-पात्र में डाल दिया तथा स्वयं के लिये एक रुपया भी व्यवहार नहीं किया।

जब मैंने उनसे उनके उपवास का कारण पूछा तब उन्होंने मुझे बतलाया, "मैं वैष्णव-दर्शन करने गया था, दर्शन हुआ नहीं, मैं अपराधी होने के कारण वैष्णव-दर्शन से वञ्चित हुआ हूँ, अतएव प्रायश्चित स्वरूप उपवास अर्थात् सब प्रकार के कार्यों से सम्पूर्ण रूप से निवृत्त होकर हरिनाम कर रहा हूँ। श्रीचैतन्य-भागवत (मध्य-खण्ड ८.१९७) के अनुसार 'सर्व महाप्रायश्चित्त जे प्रभुर नाम अर्थात् प्रभु का नाम करना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित है।'"

मैंने उनसे कहा, "इसमें आपका तो नहीं बल्कि दर्शन नहीं देने वाले का ही अपराध प्रतीत होता है।"

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित कल्याण-कल्पतरु (उच्छवास २.७.६) ग्रन्थ में से कीर्त्तन के एक पद को उद्धृत करते हुए उत्तर दिया, "वैष्णव चरित्र सर्वदा पवित्र अर्थात् वैष्णव का चरित्र सदैव पवित्र होता है, अतएव हमें वैष्णवों के द्वारा वैसा व्यवहार करने पर भी इसमें 'तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष्यमाणो' श्लोकानुसार स्वयं सुसमीक्षा कर इसे अपने ही कर्म का फल स्वीकार कर सदा भगवान् की कृपा पर निर्भर रहना चाहिये।"

वैष्णव-अपराध पर उनका विचार

एक समय हमारे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में एक ब्रह्मचारी ने द्वादशी तिथि में पारण करने के उद्देश्य से प्रसाद पाने के लिये पंक्ति में बैठे किसी एक विशिष्ट संन्यासी की पत्तल को, जिसमें कि प्रसाद भी परिवेशन हो चुका था, वह अभी प्रारम्भ करने ही वाले थे, उठाकर फैंक दिया तथा उस संन्यासी को भी मठ से निकल जाने के लिये कहा।

यह सब देख-सुनकर श्रील पुरी गोस्वामी महाराज अत्यन्त दुःखी हुए तथा उन्होंने कहा, "मैं अब और यहाँ पर नहीं रहूँगा। श्रील माधव महाराज वैष्णवों की कैसी सेवा का आदर्श रख गये हैं, उन्होंने कैसे अपने घोर विरोधी लोगों की भी सेवा की है, यह सभी जानते हैं। मैं उन के स्नेह तथा आदर्श के कारण ही यहाँ रह रहा था किन्तु अब रहना सम्भवपर होगा नहीं।"

कुछ भक्तों ने श्रील पुरी गोस्वामी महाराज को बहुत अधिक मनाने का प्रयास किया किन्तु असफल रहे। श्रील महाराज ने तब श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी के वचनों को व्यक्त किया -

महान्तेर अपमान जे देशे-ग्रामे हय।
एक जनार दोषे सब देश उजाड़य॥

चै॰च॰ (अन्त्य-लीला ३.१६४)

उन्होंने कहा, "एक व्यक्ति के वैष्णव अपमान रूपी दोष करने से सम्पूर्ण ग्राम को उसका फल भोगना होता है। रामचन्द्र खान के उपाख्यान से हम ऐसा जानते हैं, श्रील हरिदास ठाकुर के प्रति अपराध के फलस्वरूप उसने श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के चरणों में अपराध किया तथा बाद में इस कारण उसके सम्पूर्ण ग्रामवासियों को कष्ट भोगना पड़ा। श्रीदेवानन्द पण्डित ने श्रीवास पण्डित को घसीट कर बाहर कर रहे अपने छात्रों को कुछ भी नहीं कहा, यही उनका अपराध बन गया, जिस कारण उन्हें श्रीमन्महाप्रभु की कृपा से वञ्चित होना पड़ा।

श्रीमद्भागवतम् में दक्ष प्रजापति तथा सती के प्रसङ्ग में वर्णन आया है कि यदि वैष्णव-अपराधी व्यक्ति की जिह्वा का छेदन अथवा शास्त्र-युक्तियों के द्वारा स्तम्भन नहीं कर पाओ तो वहाँ से अर्थात् उस स्थान को त्यागकर चले जाना ही विधेय है।"

यही घटना श्रील पुरी गोस्वामी के 'वैष्णव-अपराध' नामक धारावाहिक प्रबन्धों

को लिखने का तथा श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ नामक संस्थान के प्रकाशित होने का प्रारम्भिक कारण बनी।

श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ के आचार्य

श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज को प्रिय लगने वाले 'गोपीनाथ, मम निवेदन शुन' कीर्त्तन तथा उनके द्वारा सेवित श्रीश्रीराधा गोपीनाथ को ही उनका इष्टदेव जानकर मेरे गुरुपादपद्म श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने धर्मसभा के उपलक्ष्य में छापे गये निमन्त्रण पत्र में सर्वप्रथम श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज के नाम के साथ 'श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ के आचार्य' ऐसा प्रयुक्त किया था। तब तक यद्यपि श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज ने श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ की स्थापना भी नहीं की थी, तब भी गुरु महाराज ने उनके नाम के साथ वैसा लिखवा दिया।

बहुत समय के पश्चात् जब श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने भगवद् इच्छा से मठ की स्थापना की तो उन्होंने अन्य कोई नाम नहीं देकर अपने गुरुभ्राता के द्वारा प्रदत्त नाम को ही मर्यादा प्रदान की। इस कारण से ही उनके प्रतिष्ठान का नाम श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ है।

हमारे भक्तिपथ-प्रदर्शक

गुरु महाराज के द्वारा अप्रकट लीला को प्रकाशित करने के पश्चात् श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज ही हम गुरुभ्राताओं के रक्षाकर्त्ता थे, कारण उन्होंने श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में बहुत लम्बे समय तक वास किया था। सामने उपस्थित कण्टक-युक्त मार्ग पर हमें कैसे चलना चाहिये, क्या करना चाहिये, क्या उचित है, क्या अनुचित है, हमें इसके विषय में वही मार्गदर्शन करते थे। उन्हीं के चरणकमलों में शीतलता का अनुभव होता था, अन्यत्र कहीं पर भी शान्ति की प्राप्ति नहीं होती थी।

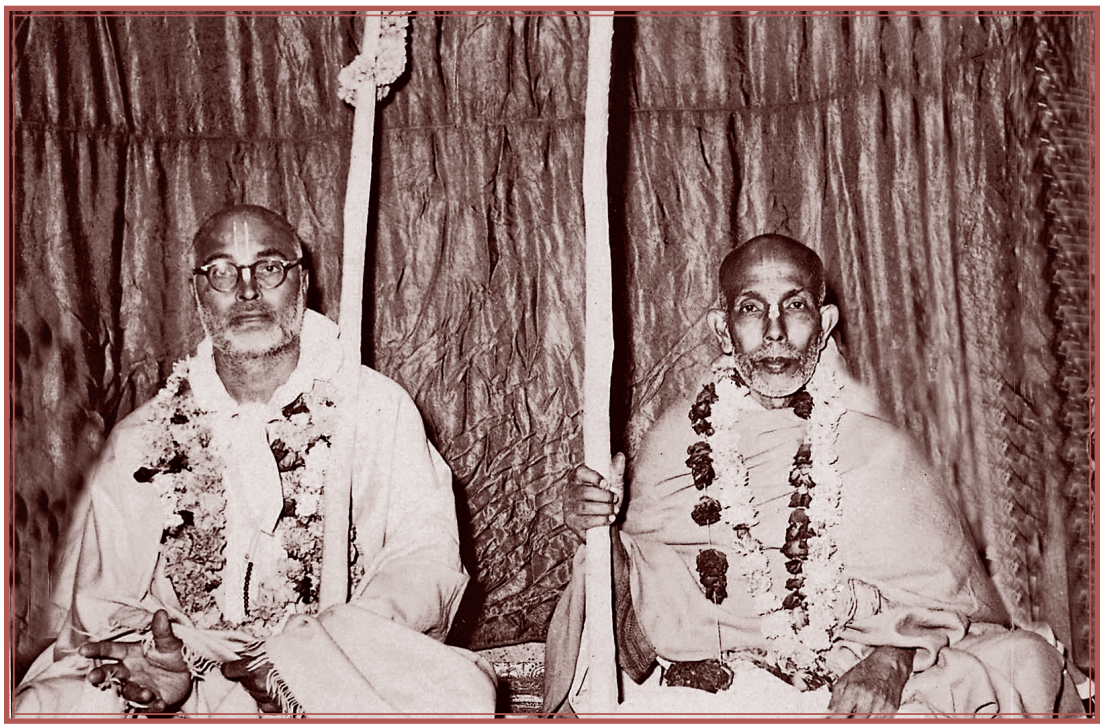
प्रिय मित्र से विरह-दुःख को व्यक्त करना

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज ने गुरु महाराज की अप्रकट लीला के पश्चात् श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा की समाप्ति पर कहा, "परमाराध्य प्रभुपाद का जिस प्रकार 'श्रीगौर-किशोर-केलिभवन' श्रीमायापुर जीवन-स्वरूप था, उन्हीं के निजजन पूज्यपाद माधव महाराज भी उसी प्रकार मायापुर-गत-प्राण थे। श्रीधाम-सेवा की उज्ज्वलता को सम्पादित करने के लिये वे अपने प्रिय जनगण के साथ अत्यधिक उत्साहपूर्वक परामर्श करते थे तथा सभी को धाम-सेवा करने के लिये प्रेरित करते थे।

श्रीश्रीनवद्वीप-भाव-तरङ्ग (२६-२७) में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने 'ईशोद्यान' नामक उपवन के विषय में लिखा है –

मायापुर-दक्षिणांशे जाह्नवीर तटे
सरस्वती-संङ्गमेर अतीव निकटे।
ईशोद्यान नाम उपवन सुविस्तार
सर्वदा भजन-स्थान हउक आमार॥

[मायापुर के दक्षिण भाग में गङ्गा के तट पर एवं इसके सरस्वती से सङ्गम-स्थान के अति निकट में ईशोद्यान



नामक विशाल उपवन सदैव मेरे भजन का स्थान रहे।]

जे वने आमार प्रभु श्रीशचीनन्दन
मध्याह्न करेन लीला लये भक्तजन।
वन-शोभा हेरि' राधा-कृष्ण पड़े मने
से सब स्फुरुक सदा आमार नयने॥

[जिस वन में मेरे प्रभु श्रीशचीनन्दन भक्तजनों को साथ में लेकर मध्याह्न लीला करते है, उस वन की शोभा को देखकर मुझे श्रीश्रीराधा-कृष्ण का स्मरण होता है, ऐसा स्थान सदैव मेरे नयन पथ पर स्फुरित होता रहे।]

"श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के दासानुदासरूप में पूज्यपाद माधव महाराज भी उसी स्थान की सेवा-उज्ज्वलता को अनेक प्रकार से प्रकाशित करने की विशेष इच्छा हृदय में पोषण करते थे। उस ईशोद्यान में ही वे नित्य समाधिस्थ हुए हैं तथा इस कारण ईशोद्यान का अन्तराकाश तो हर्षित हो उठा है परन्तु बाह्य भौतिक परिवेश में स्थित हम सभी उनके विरह में अत्यन्त विषाद-विह्वल हो गये हैं। सतीर्थ, शिष्य और उनके गुणों से आकृष्ट सज्जनवृन्द आज सभी के नेत्र अश्रुओं से पूरित हैं। उनके अभाव में आज लाख-लाख लोगों का समावेश, उनके

द्वारा कीर्त्तन का कोलाहल, सब शून्यप्राय अनुभव हो रहा है।"

श्रील महाराज ने तब श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के श्रीस्तवावली (श्रीश्रीप्रार्थनाश्रय-चतुर्दशकम् ११) में श्रीरूप गोस्वामी से विरह-वेदना मूलक- 'शून्यायते महागोष्ठं अर्थात् व्रजभूमि शून्यप्राय हो गई है'- शब्दों में अपने वक्तव्य को शेष किया।

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज की गुरु महाराज के साथ में ऐसी प्रीति तथा अन्तरङ्ग सम्बन्ध था। गुरु महाराज के सम्बन्ध से ही हम सभी अर्थात् गुरु महाराज के शिष्यों पर उनकी अगाध प्रीति और वात्सल्य था।

श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ, मायापुर का भित्ति स्थापना दिवस

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज ने श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ के सर्वप्रथम स्थान श्रीधाम मायापुर में भूमि संग्रह करने हेतु अपने चरणाश्रित श्रीगोपीनाथ प्रभु को भूमि चयन करने के लिये दायित्व प्रदान किया। जब श्रीगोपीनाथ प्रभु मायापुर में आये तो उन्होंने दो स्थानों का चयन किया तथा मुझसे आकर कहा, "मुझे दो स्थान प्राप्त हो रहे हैं, आपका क्या मत है, हमें कौन सा स्थान लेना चाहिये?"

मैंने कहा, "इसमें जो स्थान अन्यान्य मठों के मध्य में स्थित है, उसको लेना ही उचित है। कारण, वहाँ चारों ओर भक्त ही भक्त हैं, आपके स्थान पर किसी के नहीं रहने पर पहरा देने की चिन्ता तक भी नहीं करनी पड़ेगी। मठ में नमक अथवा अन्य किसी वस्तु के नहीं होने पर निकट से माँगने से भी काम चल जायेगा। अन्य गौड़ीय मठों के निकट में वास करने से सब प्रकार से सुविधाजनक होगा तथा भजन में भी सहायक होगा।"

तब मेरे ही परामर्शानुसार श्रीगोपीनाथ प्रभु ने वर्त्तमान श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ मायापुर की भूमि का संग्रह किया था। श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने भी यह कहकर उस भूमि को ही पसन्द किया, "जब वैष्णव ने उक्त स्थान का चयन कर दिया है, तब फिर और क्या कहना?"

जब श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ की भित्ति की स्थापना का दिन निर्धारित किया गया, तब श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने मुझे स्वहस्तलिखित एक पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने लिखा, "मेरी प्रबल इच्छा है की भित्ति-स्थापना के समय आप अवश्य वहीं पर रहना।" उनके आदेशानुसार जब मैं उनके श्रीधाम मायापुर पहुँचने से दो-तीन दिन पूर्व ही मायापुर में पहुँच गया, तब पुनः मुझे उनका स्वहस्तलिखित पत्र श्रील भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज के चरणाश्रित श्रीकृष्णधन बैनर्जी के माध्यम से प्राप्त हुआ, जिसमें उनकी मेरे प्रति प्रीति, विश्वास तथा कृपा एक साथ प्रकाशित होती हैं।

उसमें श्रील महाराज ने लिखा, "मेरे अत्यन्त प्रिय गोपीनाथ प्रभु की ठाकुर माँ (दादी) ने देह रक्षा की है, वह मेरी शिष्या भी थी। उसके श्राद्ध कार्य हेतु मेरा कोलकाता के निकटस्थ आमता नामक स्थान में रहना अत्यावश्यक है। अतः मैं श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ की भित्ति-स्थापना के लिये मायापुर में उपस्थित नहीं रह



श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ, मायापुर

पाऊँगा। आप श्रीधाम मायापुर पहुँच चुके हैं, ऐसा जानकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई है। मैं आप पर पूर्णतया निर्भर कर सकता हूँ। मुझे दृढ़ विश्वास है कि आप जो भी करेंगे, वही मङ्गलमय होगा। अतएव श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ की भित्ति देने का दायित्व मैं आप पर ही पूर्ण रूप से न्यस्त करता हूँ। आप जो भी कर दोगे, मैं उसे अपने सम्पूर्ण हृदय से स्वीकार कर लूँगा।"

उनके कृपा आदेश को प्राप्त करके

उनकी वैष्णवोचित दीनता का स्मरण करके मेरे मन में आने लगा, "अपने मठवास के प्रारम्भिक दिनों से ही मैं जिन्हें गुरु महाराज की इच्छा से यह सब सेवा कार्य करते देखता था, जो इन सब विषयों में विशेषतः प्रतिष्ठित थे, जिनके सहायक के रूप में सेवा करके मैं स्वयं को धन्य मानता था, आज मैं उन्हीं की कृपा से, उनके आनुगत्य में उनके मठ की भित्ति की स्थापना करूँगा।"

जो हो, मैंने श्रीधाम मायापुर, नवद्वीप धाम के सभी मठों के वैष्णवों को निमन्त्रण दिया तथा शुभ मुहूर्त्त में ईंट, फावड़ा आदि लेकर श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ के लिये संग्रहीत भूमि पर पहुँच गया। मैंने जितने भक्तों के आने की आशा की थी, उससे बहुत अधिक संख्या में भक्तों का समागम हुआ। श्रीचैतन्य मठ के लोग, जो कहीं इस प्रकार के किसी अनुष्ठान में नहीं जाते थे, वे भी वहाँ आकर उपस्थित हुए।

अत्यधिक सुष्ठु रूप से पाँच ईंटों की पूजा करके भित्ति की स्थापना हुयी। भक्तों ने अत्यधिक हर्ष-उल्लास के साथ कीर्त्तन किया, श्रील भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज के चरणाश्रित श्रीफनी लाल ने कई घण्टों तक अथक रूप से मृदङ्ग बजाया। मैंने पहले तो श्रीधाम नवद्वीप से सन्देश आदि मिष्टान्न भक्तों में वितरण करने के लिए मँगवाकर रखा था, वह सब तो शीघ्र ही समाप्त हो गया। श्रीधाम मायापुर में मिठाई की दुकान में जितनी मिठाई, बतासा, सन्देश आदि मिला, वह भी मँगवाकर बाँटा। जहाँ तक मुझे स्मरण है इतनी अधिक संख्या में लोगों ने उत्सव में भाग लिया था कि इतनी मिठाइयाँ मँगवाने पर भी कुछ भक्तों को प्रसाद देना सम्भवपर नहीं हुआ।

यह श्रील पुरी गोस्वामी महाराज की एक परमोत्कृष्ट वैष्णव के रूप में समाज में प्रतिष्ठा का ही प्रभाव था कि उनके नाम मात्र से सभी ने अत्यधिक श्रद्धायुक्त होकर उत्सव में भाग लिया।

गुरुभ्राताओं का द्वेष-रहित सम्बन्ध

एक समय जब मैं श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, जगन्नाथ पुरी में था, उस समय कोलकाता बेहाला से डॉ॰ नारायण बन्दोपाध्याय, जो खदीरपुर यूनिवर्सिटी के उप-प्रधानाचार्य थे, वे कार्तिक मास में अपनी धर्मपत्नी के साथ श्रीजगन्नाथ पुरी मठ में रहने के लिये आये। उनकी पत्नी प्रतिदिन हरि-कथा श्रवण करती थी किन्तु वे स्वयं कभी कथा में नहीं बैठते थे।

एक दिन हरि-कथा के समय मैं भगवान् के चार मुख्य गुणों 'भक्त-वत्सल, कृतज्ञ, समर्थ, वदान्य' का वर्णन कर रहा था। जब मैं 'कृतज्ञ' शब्द का 'किये हुए कृत्य को जानने वाला' अर्थ कर रहा था उस समय डॉ॰ नारायण बन्दोपाध्याय वहीं पास से जा रहे थे तथा 'कृतज्ञ' शब्द का इससे पूर्व ऐसा अर्थ श्रवण न करने के कारण अत्यन्त प्रभावित हुए तथा वे हरि-कथा सुनने के लिये हॉल में पीछे खड़े हो गये।

मेरे हरि-कथा करने के उपरान्त मेरे निकट आकर उन्होंने मुझसे कहा, "आपकी कथा श्रवण करके मैं बहुत प्रभावित हुआ, मैं प्रतिदिन आपके जैसे भक्त की हरि-कथा

श्रवण करने की अभिलाषा करता हूँ। यदि सम्भवपर हो तो मुझे आश्रय प्रदान करके शिष्य के रूप में स्वीकार कीजिए।"

मैंने उन्हें कहा, "मैं तो किसी को मन्त्र-दीक्षा आदि प्रदान नहीं करता, आप किसी अन्य शुद्ध-भक्त से दीक्षा प्राप्त करके अपने जीवन को कृतार्थ कीजिए।"

एक मास तक कार्तिक व्रत का पालन करने के पश्चात् डॉ॰ नारायण बन्दोपाध्याय एवं उनकी पत्नी कोलकाता लौट गये तथा वे वहाँ पर बेहाला में स्थित श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीचैतन्य आश्रम में नित्यप्रति हरिकथा, कीर्त्तन श्रवण करने के उद्देश्य से जाने लगे। धीरे-धीरे उन्हें श्रील सन्त गोस्वामी महाराज से गौड़ीय-विचार-धारा की अधिक जानकारी प्राप्त हुई। गुरु का आश्रय ग्रहण करना चाहिये, इस विचार के पुनः पुनः मन में आने पर वे कोलकाता श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज के निकट दीक्षा-मन्त्र प्राप्ति हेतु आये।

जब श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने उनका परिचय जाना तब उनसे जिज्ञासा की, "जब आप बेहाला में श्रील सन्त गोस्वामी महाराज का सङ्ग कर ही रहे हैं तब फिर उनसे दीक्षा-मन्त्र आदि की प्रार्थना नहीं करके यहाँ पर क्यों आये हैं?"

डॉ॰ नारायण बन्दोपाध्याय ने उत्तर दिया, "महाराज, मेरी ब्राह्मण शरीर वाले वैष्णव से दीक्षा-ग्रहण करने की अभिलाषा है।"

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने उनसे कहा, "आपका विचार उचित नहीं है। वैष्णवता में ब्राह्मणता सन्निहित है। वैष्णव ब्राह्मणता को अपने में क्रोड़ीभूत कर लेता है। आत्म-धर्म में प्रतिष्ठित वैष्णव को जाति-वर्ण आदि अनात्म-धर्म अथवा शरीर-धर्म के अन्तर्गत मानने पर अपराध होता है।

"आप श्रील सन्त महाराज को अब्राह्मण मानकर भूल कर रहे हैं। निकट में गङ्गा के प्रवाहित होने पर क्या कोई बुद्धिमान व्यक्ति दूर स्थित किसी सरोवर में स्नान करने के उद्देश्य से जाता है? अतएव आप श्रील सन्त महाराज का चरणाश्रय करके अपने जीवन को सफल बनाओ। दूसरा, किसी वैष्णव के प्रति जाति-बुद्धि आदि करने के प्रायश्चित स्वरूप सात्वत्त शास्त्रों में शीघ्रताशीघ्र उनकी शरण, उनका आश्रय लेने का ही विधान दिया गया है।"

अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु
नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धि-
र्विष्णोर्वा वैष्णवानां कलिमल-
मथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः।
श्रीविष्णोर्नाम्नि मन्त्रे सकल-
कलुषहे शब्दसामान्यबुद्धि-
र्विष्णो-सर्वेश्वरेशे तदितरसम-
धीर्यस्य वा नारकी सः॥

(पद्मपुराण)

[जो व्यक्ति श्रीमूर्त्ति में शिला बुद्धि, गुरुदेव में मर्त्य बुद्धि, वैष्णवों में जाति बुद्धि, विष्णु एवं वैष्णवों के चरण धौतजल में सामान्य जल बुद्धि, सर्वपापनाशक विष्णुनाम, मन्त्र में सामान्य शब्द बुद्धि एवं सर्वेश्वर विष्णु एवं अन्य देवताओं में समान बुद्धि रखता है, वह नारकीय है।]

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के दिशा-निर्देशानुसार डॉ॰ नारायण बन्दोपाध्याय एवं उनकी धर्म-पत्नी ने श्रील सन्त गोस्वामी महाराज का चरणाश्रय किया।

उपरोक्त उपाख्यान के द्वारा श्रील पुरी गोस्वामी महाराज की वैष्णवोचित दीनता, उनके निकट आगत प्राणी के मङ्गल की कामना तथा अपने कनिष्ठ गुरुभ्राता श्रील सन्त गोस्वामी महाराज के प्रति स्नेहयुक्त विश्वास का इङ्गित प्राप्त होता है।

व्याधि में भी भजन-दृढ़ता

एक समय जब श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज श्रीजगन्नाथ पुरी में अपने नये स्थान श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ चक्रतीर्थ में ऐस्बेस्टस से बनी अस्थायी छत वाले घर में रह रहे थे, तब ठण्ड के कारण वे कुछ अस्वस्थ हो गये। उन्हें श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, ग्राण्ड रोड में लाया गया क्योंकि वहाँ उनके उपचार के अनुकूल समस्त सुविधाएँ उपलब्ध थीं। मैंने साथ-ही-साथ अस्पताल से एक विशेषज्ञ चिकित्सक को बुलवाया, उन्होंने परामर्श दिया कि महाराज को एक रात्रि के लिये अस्पताल में ले जाना पड़ेगा कारण, हम उन्हें वहाँ पर ऑक्सीजन तथा सेलाइन ड्रिप देंगे। हमारे गुरुभ्राता श्रीगौराङ्ग प्रसाद (श्रीभक्तिसौरभ आचार्य महाराज) ने कहा, "पुरी अस्पताल जाकर कोई लौटकर नहीं आता।"

उनकी बातें सुनकर श्रील पुरी गोस्वामी महाराज की कुछ शिष्याएँ क्रन्दन करने लगीं तथा बहुत से भक्तों ने श्रील महाराज को अस्पताल ले जाने हेतु निषेध किया। श्रील पुरी गोस्वामी महाराज का मेरे प्रति ऐसा विश्वास था, उन्होंने अपने सेवकों से कहा, "भारती महाराज जैसा करने के लिये कहें, वैसा करना।"

मैंने श्रील पुरी गोस्वामी महाराज से कहा, "महाराज, अस्पताल जाने से ही अच्छा है। कारण, वहाँ पर ऑक्सीजन की, सेलाइन ड्रिप आदि की व्यवस्था है तथा चिकित्सक मात्र एक रात के लिए ही जाने को कह रहा है।"

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने मेरी बात मान ली तथा हम उन्हें अस्पताल ले गये। उन्हें अस्पताल में गर्मी लग रही थी इसलिए मैं स्वयं उनके लिये मठ से दो स्टैण्ड वाले पंखे लेकर गया। रात्रि में उनके साथ रहा तथा प्रातः काल उन्हें चिकित्सक की अनुमति से स्वस्थ अवस्था में मठ में लेकर आया।

अस्पताल में भी उन्होंने अपना हरिनाम, स्तव-स्तुति इत्यादि उस प्रकार ही की, जिस प्रकार वे अन्य दिनों में मठ में करते थे। मैं यह देखकर आश्चर्यचकित हुआ कि उनकी शारीरिक अवस्था का उनके आचरण, उनके शान्त स्वभाव, उनकी सहिष्णुता एवं उनके भजन पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं था।

धन-सम्पत्ति से अप्रभावित रहने हेतु एक गम्भीर प्रार्थना

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज की शतवार्षिकी आविर्भाव-तिथि के उपलक्ष्य में श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ ने श्रीजगन्नाथ पुरी में एक विराट उत्सव का आयोजन किया

था। जब श्रील महाराज अपने कक्ष से सभा में उपस्थित हुए, तब उन्होंने श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज के साथ ही मेरे सतीर्थ श्रीभक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज तथा मुझे भी अपने साथ मञ्च पर बैठाया तथा अपने हाथों से हमें चन्दन तथा माला प्रदान की।

उस दिन उन्होंने अपने प्रवचन में जो सब कहा, उसमें से एक बात मुझे विशेष रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण लगी तथा पुनः पुनः स्मरण होती है। यथा, "आजकल हम लोग जिस प्रकार का जीवन-यापन कर रहे हैं, वह पूर्वकाल में व्यतीत किये गये जीवन से बहुत अधिक भिन्न है। पूर्वकाल में दो लाख, तीन लाख रुपये हमारे लिये बहुत बड़ी धनराशि थी, किन्तु आजकल हमारे पास श्रील प्रभुपाद की कृपा से देश-विदेश से आने वाले भक्तों के द्वारा जो प्रणामी आदि दी जा रही है, उससे दो अथवा तीन लाख रुपये हमारे लिये बहुत बड़ी राशि नहीं रह गयी है।

"ऐसी अवस्था में जब हमारे पास जन-बल, धन-बल आदि वर्धित हो रहा है, मैं श्रील प्रभुपाद एवं सपरिकर श्रीचैतन्य महाप्रभु के श्रीचरण-कमलों में प्रार्थना करता हूँ कि मेरे आश्रित भक्त धन एवं जन के मिथ्या मद में 'तृणादपि सुनीचेन अर्थात् स्वयं को तृण से भी तुच्छ समझना' श्लोक के वास्तविक व्यवहारिक प्रयोग को न भुला बैठें, इसके कारण उनके भजन के मार्ग में कोई बाधा न आये, वे भक्ति-मार्ग से च्युत न हो जायें। उनके जीवन का उद्देश्य कहीं परिवर्त्तित न हो जाये। मैं प्रार्थना करता हूँ कि उन पर इस ऐश्वर्य का कोई प्रभाव न पड़े एवं ये लोग श्रील रूप गोस्वामी द्वारा कथित शिक्षाओं के वास्तविक मर्मार्थ को जीवन में पालन कर पायें।"

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने तब निम्नलिखित दो श्लोक उच्चारित किये

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (१.२.१२६)

[मुमुक्षुगण शास्त्र, श्रीमूर्त्ति, नाम, महाप्रसाद, गुरु आदि हरि-सम्बन्धी वस्तुओं को भी प्राकृत समझकर उनका परित्याग कर देते हैं, इसी को फल्गु वैराग्य कहते हैं।]

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (१.२.१२५)

[कृष्णेतर विषयों में आसक्तिरहित होकर तथा कृष्ण के साथ सम्बन्ध स्थापितकर, उनके सेवानुकूल विषयमात्र ग्रहण करने को ही युक्त वैराग्य कहते हैं।]

ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ समस्त वैष्णवों का सम्मान करना

श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज की स्वाभाविक दीनता के फलस्वरूप उनके जीवन-चरित्र में श्रीदेवकीनन्दन दास रचित निम्नलिखित शब्दों की छाप स्पष्ट रूप से दिखलायी पड़ती है-

हैयाछेन हइबेन प्रभुर जत दास।
सबार चरण वन्दों दन्ते करि' घास॥

[प्रभु के जितने भी भक्त पूर्व में हो चुके हैं, अभी वर्तमान हैं या भविष्य में होंगे, मैं दाँतों में तृण धारणकर अत्यन्त दीनतापूर्वक सभी की चरण वन्दना करता हूँ।]

वह अपने से ज्येष्ठ गुरुभ्राताओं को ही नहीं अपितु जिन भक्तों को उन्होंने मठवास हेतु प्रेरित किया था यथा श्रील भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज, उनको भी प्रणाम करते थे। वह अपने शिष्य स्थानीय मुझ जैसे अत्यन्त कनिष्ठ तथा मेरे भी बाद में मठवास करने वाले भक्तों के समक्ष भी हाथ जोड़कर प्रार्थना करते थे, "कृपया मुझे वह उपाय बतलाइये जिससे कि मैं आपके स्नेह के ऋण से उऋण हो पाऊँ।"

एक गुरुभ्राता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना

अपने गुरुभ्राता श्रील भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज के विषय में लिखते हुए श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज कहते हैं, "श्रीसन्त महाराज का आन्तरिक भाव पूर्ण रूप से उनके बाहरी व्यवहार के समान था। उनका यह निष्कपटता रूपी गुण आनन्द प्रदान करने वाला एवं आदर्श स्वरूप ग्रहणीय है। इस अभागे पर उनकी प्रचुर करुणा दृष्टि रही है, अतएव यह सदैव उनका ऋणी रहेगा। उनकी सदैव जय हो।"

श्रील प्रभुपाद का अन्तिम निर्देश

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज प्रायः अपनी हरि-कथा में उल्लेख किया करते थे-

"यद्यपि श्रील प्रभुपाद के सम्पूर्ण निर्देश तथा स्वयं आचरण करके जो शिक्षाएँ उन्होनें जगत् में स्थापित की हैं वे समस्त ही निरन्तर अनुसन्धान के योग्य एवं पालनीय हैं तथापि 'पूर्वपरयोः पर विधि बलवान् अर्थात् अनुवर्त्ती निर्देशों का पूर्ववर्त्ती निर्देशों से अधिक महत्त्व है' सूत्र के अनुसार मैं आप सबको श्रील प्रभुपाद के द्वारा अप्रकट लीला प्रकाशित करने से ८-९ दिन पूर्व कुछ भक्तों को दिए गये निर्देशों को श्रवण कराता हूँ।

"उन्होंने कहा, 'इस जगत् में सर्वोच्च परमार्थ प्रदान करने वाली हरि-कथा का नितान्त अभाव है, श्रीमद्भागवतम् एवं श्रीभगवान् की सेवा का प्रचारकर इस अभाव को दूर करना ही हमारा एकमात्र धर्म एवं कर्त्तव्य है। जिस स्थान पर भी हरि-कथा विद्यमान है, वही स्थान धाम से अभिन्न है।

"हम इस जगत् में काठ-पत्थर के कारीगर होने नहीं आए हैं, हम तो श्रीचैतन्य देव की वाणी के वाहक मात्र हैं। श्रीचैतन्यदेव के मनोऽभीष्ट-संस्थापक श्रीरूप गोस्वामी के पादपद्म की धूल ही हमारे जीवन की एकमात्र वाञ्छनीय वस्तु है।

"श्रील प्रभुपाद की अप्रकट लीला से पूर्व दिये गए इन अन्तिम उपदेशों को पालन करने के प्रयासी हम लोगों को श्रीनरोत्तम दास ठाकुर के निम्न शब्दों को सदैव स्मरण रखना चाहिये -

गुरुमुखपद्म वाक्य, चित्तेते करिया ऐक्य
आर ना करिह मने आशा।

श्रीगुरुचरणे रति, एइ से उत्तमा गति
जे प्रसादे पूरे सर्व आशा॥

[श्रीगुरुदेव के मुख निःसृत उपदेशों को ही हृदय में धारण करना चाहिये, इसके अतिरिक्त अन्य कोई आशा नहीं करनी चाहिये। श्रीगुरु के चरणकमलों में रति के द्वारा ही उत्तम गति की प्राप्ति होती है, कारण, उनकी कृपा हो जाने पर समस्त प्रकार की कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।]

"हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य ग्रन्थ प्रकाशन तथा श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं पूर्व-पूर्व गौड़ीय वैष्णव आचार्यों की शिक्षाओं का प्रचार करना है।"

"श्रील प्रभुपाद का अनुसरण करने का निष्कपट प्रयास करने वाले एवं जिस किसी भी स्थान तथा रूप में भागवत की शिक्षाओं का प्रचार करने वाले भक्तों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।"

प्रकाशन सेवा का महत्त्व

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज प्रायः कहा करते थे, "मैंने अपने परमाराध्य गुरुपादपद्म श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद से श्रवण किया है कि हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य ग्रन्थ प्रकाशन तथा श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं पूर्व-पूर्व गौड़ीय वैष्णव आचार्यों की शिक्षाओं का प्रचार करना है। एकमात्र इस उपाय का अवलम्बन करने से ही बद्ध जीव, निज परम पुरुषार्थ, कृष्ण-प्रेम-प्राप्ति का कभी अधिकारी बन सकता है।"

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज ने इस निर्देश को हृदयङ्गम कर सदैव इस विचार का पोषण किया कि श्रीमन्महाप्रभु की उत्कृष्ट शिक्षाओं का वर्णन करने वाले ग्रन्थों एवं पत्रिकाओं का सम्पूर्ण जगत् में वितरण करना ही प्रत्येक सारस्वत गौड़ीय वैष्णव का कर्त्तव्य है। इस उद्देश्य की पूर्त्ति हेतु उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन प्रकाशन सेवाओं हेतु समर्पित कर दिया तथा वे भक्तों को भी यही कहकर प्रेरित करते थे, "इन शिक्षाओं का समस्त विश्व में प्रचार होना चाहिये।"

व्रज-वास एवं रागानुगा-भक्ति

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा श्रीधाम वृन्दावन में संग्रहीत प्राचीन दाऊजी मन्दिर में आयोजित उत्सव में उन्होंने मुझे श्रीवृन्दावन धाम का महिमा-कीर्त्तन करने का आदेश दिया। मेरे कथा करने के उपरान्त उन्होंने कहा-

"अब मैं अपने जीवन के अन्तिम पड़ाव में हूँ। मेरी एकमात्र इच्छा है कि मैं जीवन के अन्तिम दिनों को वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधारानी के श्रीचरण-कमलों में रहकर हरिनाम करते हुए व्यतीत करूँ। भक्तों की कृपा के बिना श्रीमती राधारानी की कृपा-प्राप्ति असम्भव है, इसलिये कहा गया है कि 'वैष्णवेर कृपा जाहे सर्व-सिद्धि



अर्थात् वैष्णवों की कृपा से सब प्रकार की सिद्धि होती है'।

"श्रील कविराज गोस्वामी ने व्यक्त किया है–

जगाइ माधाइ हैते मुइ से पापिष्ठ।
पुरीषेर कीट हैते मुइ से लघिष्ठ॥

[मैं जगाइ–माधाइ से भी बड़ा पापी हूँ तथा विष्ठा के कीड़े से भी नीच हूँ।]

"भक्तों की कृपा के बिना श्रीमती राधारानी की कृपा प्राप्ति असम्भव है।"

"यद्यपि महाजनों का अनुसरण करते हुए मैं इस प्रकार की दीनता व्यक्त कर सकता हूँ किन्तु मेरे हृदय में स्वाभाविक दीनता के अभाव के कारण मेरे शब्दों का कोई महत्त्व नहीं होगा अपितु वह मात्र कपटता ही होगी। अब जीवन के अन्तिम दिनों में दीनता का दिखावा करने की मेरी लेशमात्र भी इच्छा नहीं है। मैं अब कथा परिवेशन करने में समर्थ नहीं हूँ तथापि आप लोगों ने मुझे यहाँ लाने तथा मेरे लिये एक नये कक्ष का निर्माण करने में बहुत अधिक धन व्यय किया है। आप सबके मङ्गल के साथ–साथ मैं यह भी प्रार्थना करता हूँ

कि आप लोगों की सेवा ग्रहण करने के कारण मुझे अभिमान का एक कण भी स्पर्श न करे। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है –

'आमि त' वैष्णव', ए बुद्धि हइले,
अमानि ना ह'ब आमि।
प्रतिष्ठाशा आसि', हृदय दूषिबे,
हइब निरयगामी॥

कल्याण कल्पतरु उच्छ्वास २.८.२)

[यदि मेरी 'मैं वैष्णव हूँ' ऐसी बुद्धि हो जाएगी, तो मैं कदापि अमानी नहीं रह पाऊँगा तथा दूसरों से प्रतिष्ठा प्राप्ति की आशा से मेरा हृदय दूषित हो जाएगा, जिसके फलस्वरूप मैं नरकगामी होऊँगा।]

"वृन्दावन में वास करने का उद्देश्य वैष्णवों की पद-धूलि की प्राप्ति, उनका आनुगत्य करना एवं कृष्ण-नाम करना है।

"हमारे परमाराध्य गुरुदेव ने कृपा करके श्रीवार्षभानवी-दयित दास के रूप में अपने स्वरूप को प्रकाशित किया है। श्रील प्रभुपाद श्रीमती राधारानी के नित्य पार्षद हैं। उनकी एवं उनके पारमार्थिक-राज्य के गणों की कृपा के बिना हमारा वृन्दावन में वास करना सार्थक नहीं हो सकता। हमें अत्यधिक आग्रहपूर्वक सदैव उनके आनुगत्य करने की योग्यता-प्राप्ति तथा उनके चरण-कमलों के निरन्तर स्मरण हेतु प्रार्थना करनी चाहिये।

"हम मात्र विधि-मार्ग का पालन करते हुए वृन्दावन के भाव को प्राप्त नहीं कर सकते इसलिये हमारा रागानुगा-मार्ग को स्वीकार करना अत्यावश्यक है। श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है –

इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत्।
तन्मयी या भवेद्भक्तिः सात्र रागात्मिकोदिता॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (१.२.२७२)

[इष्ट वस्तु में स्वाभाविकी और परम-आविष्टतामयी जो सेवावृत्ति है, उसका नाम 'राग' है, कृष्णभक्ति तन्मयी होने पर 'रागात्मिका' नाम से उक्त होती है।]

"व्रजवासियों की 'रागात्मिका-भक्ति' की अनुगत भक्ति 'रागानुगा-भक्ति' कहलाती है। हम सबको इस प्रकार की भक्ति के लिये अथक प्रयास करना चाहिये।"

समाधि समारोह

१९९९ ई॰, कार्तिक मास में हमने श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ वृन्दावन में श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा पूर्ण करने के उपरान्त गुरु महाराज की आविर्भाव तिथि के उपलक्ष्य में उत्थान एकादशी तथा द्वादशी तिथि पर अत्यन्त विशाल उत्सव आयोजित किया। अभी उत्सव समाप्त हुआ ही था कि हमें श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ, पुरी के सेवकों की ओर से श्रील पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा अप्रकट लीला प्रकाश करने का सम्वाद प्राप्त हुआ। सम्वाद सुनकर मैंने श्रील महाराज के समाधि-उत्सव हेतु पुरी जाने का निश्चय किया।

श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के चरणाश्रित श्रीभक्तिविबुध बोधायन महाराज उस समय अपने प्रचार सेवा कार्य हेतु विदेश में थे, उन्होंने मेरे सतीर्थ श्रीभक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज से दूरभाष के माध्यम से वार्त्तालाप

किया। पूज्यपाद तीर्थ महाराज ने मुझे अपने कक्ष में बुलाया तथा श्रीबोधायन महाराज द्वारा कही गयी बात को दोहराया, "श्रीबोधायन महाराज ने श्रीधाम मायापुर में होने वाली अपने गुरुदेव की समाधि के समय में अपनी अनुपस्थिति की बात तथा अपने हृदय की वेदना को व्यक्त किया तथा साथ में हम दोनों की श्रीधाम मायापुर में उपस्थिति अथवा अन्ततः किसी एक की उपस्थिति के लिये निवेदन किया है।"

तब पूज्यपाद तीर्थ महाराज ने मुझे उनके बिना ही श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज के समाधि कृत्य हेतु श्रीधाम मायापुर जाने हेतु प्रार्थना की। उन्होंने स्वयं मेरे विमान से जाने की व्यवस्था के साथ-साथ श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के विरह-महोत्सव हेतु पाँच हज़ार रुपये भी दिये।

सन्ध्या के समय वृन्दावन से दिल्ली तथा वहाँ से अगले दिन प्रातः काल विमान से कोलकाता तथा फिर श्रीधाम मायापुर पहुँचते-पहुँचते मुझे लगभग दो बज गये। जब मैं श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ पहुँचा तो समाधि का कृत्य प्रायः समाप्त होने को था। मैंने वहाँ श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ में ही प्रसाद ग्रहण किया। एक दिन के पश्चात् श्रीबोधायन महाराज के श्रीधाम मायापुर आने पर श्रील पुरी गोस्वामी महाराज का विरह-महोत्सव आयोजित किया गया, सन्ध्या के समय आयोजित सभा में मुझे सभापति के पद पर नियुक्त किया गया। मैंने ही श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के अन्तिम आज्ञापत्र (Will) को सबके समक्ष पढ़ा, जिसमें श्रीबोधायन महाराज को श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ के आचार्य पद पर अधिष्ठित करने की बात कही गयी थी।

शरणागति के लिये प्रेरित करने वाले उनके आचरण एवं गुण

मुझे अपने गुरु महाराज श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज की कृपा से श्रील प्रभुपाद के अनेकानेक आश्रितजनों के सेवा रूपी सङ्ग का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रील पुरी गोस्वामी महाराज का सङ्ग तो अत्यधिक दीर्घ समय लगभग ४५ वर्ष तथा अत्यधिक निकट से प्राप्त हुआ था, उनके आदर्श सेवामय जीवन चरित्र एवं श्रीहरि, गुरु, वैष्णवों की अथक सेवा-समर्पण को देखकर बहुत बार आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता था। श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा, श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा आदि में उनकी इतनी अधिक निष्ठा थी कि अत्यन्त वृद्धावस्था में भी अन्य भक्तों के कन्धों पर हाथ रखकर पैदल ही चलते। बहुत बार बीच में बैठना पड़ता। धीरे-धीरे परिक्रमा कर पाते, किन्तु तब भी प्रत्येक स्थान पर स्थान की महिमा का कीर्त्तन करते, वहाँ की रज को मस्तक पर धारण करते, सरोवर, कुण्ड आदि के होने पर वहाँ के जल से आचमन आदि करते।

जब किसी लीलास्थली का माहात्म्य कीर्त्तन आरम्भ करते तो उसमें इतना अधिक आविष्ट हो जाते कि उन्हें बाहर की सुध-बुध ही न रहती। जब विग्रहों की सेवा करते तो उनकी सेवा की परिपाटी को देखकर ऐसा प्रतीत होता मानो कोई अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय किसी की सेवा में सर्वस्व उत्सर्ग करने के लिये लालायित



हो। जब श्रील प्रभुपाद के सम्बन्धयुक्त किसी भक्त की महिमा का गान करते तो उनका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता तथा नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगते। श्रील प्रभुपाद के प्रति उनके हृदय की भावना हजार छिपाने का प्रयास करने पर भी छिप नहीं पाती थी।

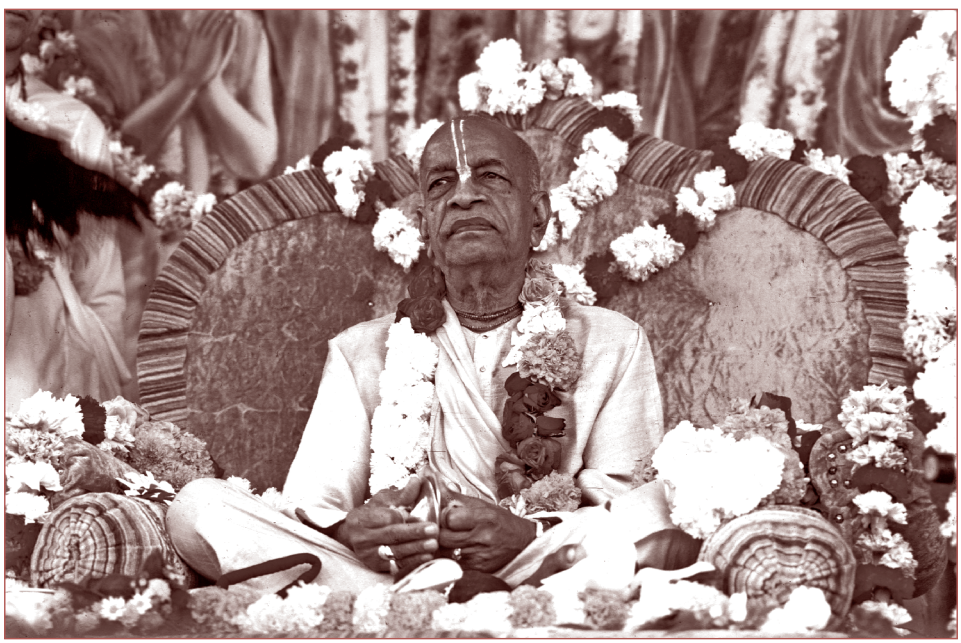
उनका वैष्णवों के साथ अति मृदु व्यवहार सभी को उनके चरणों में चिर-विक्रीत होने की ही प्रेरणा प्रदान करता। उनका कीर्त्तन विशेषतः कार्तिक मास में अष्टकालीय लीला कीर्त्तन आदि सुनकर ऐसा प्रतीत होता मानो कोई कर्णकुहरों में अमृत उड़ेलकर किसी अन्य राज्य में प्रवेश करा रहा हो।

उनकी 'बृहद् मृदङ्ग' की सेवा के प्रति समर्पण देखकर उनकी श्रील प्रभुपाद के द्वारा उन्हें स्वयं प्रदत्त सेवा के प्रति आदर्श-निष्ठा तथा गुरु-वचनों में सुदृढ़-आस्था देखकर वैसी ही निष्ठा को प्राप्त करने की प्रेरणा प्राप्त होती।

सारस्वत गौड़ीय विचारधारा के सिद्धान्तों में उनका प्रगाढ़ प्रवेश था। वह जो कुछ भी कहते वह शास्त्रों अथवा गुरुवर्गों की वाणी पर ही पूर्णतया आधारित होता। वह साधारण से दिखने वाले प्रश्नों को भी अत्यधिक गम्भीरतापूर्वक ध्यान से सुनने के पश्चात् ही उत्तर प्रदान करते थे।

कभी भी कोई अशिष्ट शब्द अपने मुख से नहीं निकालने चाहियें, यह मैंने उनसे ही सीखा। उन्होंने कभी भी किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के विषय में अमर्यादित भाषा का व्यवहार नहीं किया।

मैंने उनके जीवन चरित्र के माध्यम से यह भी अनुभव किया कि जब तक उन्होंने स्वेच्छापूर्वक सरल आनुगत्यमय जीवन यापन करते हुए कोई वैभव प्रकाशित नहीं किया, तब तक उनके पास उनकी सेवा के लिये बहुत कम लोग आते थे। किन्तु जब उन्होंने किञ्चित वैभव प्रदर्शित किया, तब बहुत से लोगों को मैंने स्वयं यह कहते हुए सुना, "हमने श्रीपुरी गोस्वामी महाराज की बहुत सेवा की थी, हमने उनका बहुत सङ्ग किया था इत्यादि।" इन सब काल्पनिक बातों को सुनकर मुझे श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के शब्दों 'केशव तुआ जगत् विचित्र' का साक्षात् अनुभव हुआ। लाभ-पूजा-प्रतिष्ठा प्राप्ति हेतु मिथ्या वचन कहना बद्ध जीव के स्वभाव में है।



श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज



पूर्ण शरणागति की शिक्षा देने वाला उनका जीवन

१९३३ ई॰ में श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने श्रीअभय चरण डे को दीक्षा-मन्त्र प्रदान करके उन्हें 'श्रीअभय चरणारविन्द दास' नाम दिया था। श्रील प्रभुपाद के प्रकट काल में श्रीअभय चरणारविन्द दास कुछ प्रबन्ध लिखकर गौड़ीय मठ की पत्रिकाओं में प्रकाशित करने के लिये प्रेरित करते थे।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीअभय चरणारविन्द प्रभु को विदेश में जाकर प्रचार सेवा कार्य करने का आदेश प्रदान किया था किन्तु उस समय अपने पारिवारिक दायित्वों के कारण उनके लिये श्रील प्रभुपाद के आदेश का पालन करना सम्भवपर न हो पाया। उन्होंने कोलकाता, मुम्बई, इलाहाबाद आदि अनेक स्थानों पर औषधि का व्यापार करने का प्रयास किया किन्तु उन्हें कहीं पर भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। परिवार का पालन करने के लिये उन्होंने यत्नपूर्वक बहुत परिश्रम किया किन्तु सफल नहीं हुए, इसी कारण उनका परिवार उनसे प्रायः असन्तुष्ट रहता था। यहाँ तक कि जब वे अस्वस्थ हुए तब उनके परिवार का एक भी सदस्य उनकी सेवा अथवा सहायता के लिये उपस्थित नहीं था। उस समय मेरे गुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने श्रीअभय चरणारविन्द प्रभु की चिकित्सा की समस्त व्यवस्था की थी।

श्रीअभय चरणारविन्द प्रभु ने श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज के अत्यधिक आग्रह करने पर संन्यास ग्रहण किया तथा उन्हें श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज नाम दिया गया। कुछ समय पश्चात् वह श्रीधाम वृन्दावन में वास करने लगे, तब वे पुनः-



पुनः एक बात बोलते थे, "मैंने गुरु वाक्य का पालन नहीं किया, मैंने श्रील प्रभुपाद की विदेश प्रचार वाली बात नहीं मानी, इसलिए मेरी दुर्गति हुयी है। मुझे किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिली। मेरे पास सब कुछ है क्योंकि मुझे श्रीगुरु एवं उनके वचनों में दृढ़ विश्वास है किन्तु कुछ भी नहीं क्योंकि मैंने उनके आदेश का पालन करने के लिये कुछ भी नहीं किया। यद्यपि मैं वृद्ध हो गया हूँ तथापि मैं विदेश में जाकर प्रचार करूँगा तथा इस प्रकार श्रील प्रभुपाद की आज्ञा की अवहेलना हेतु प्रार्यश्चित करूँगा।"

ऐसा विचार करके वे जल-जहाज में बैठकर अमेरिका गये। वहाँ पर कुछ समय तक प्रचार करने पर अस्वस्थ होने पर वे पुनः भारत लौट आये। किन्तु बाद में उसके लिये भी दुःख करते हुए कहने लगे, "मैं गुरु वचन पालन करने हेतु गया था, थोड़ा-सा अस्वस्थ होने पर भय से लौट आया। मुझमें पूर्ण शरणागति का अभाव है, किन्तु अब मैं पुनः विदेश जाऊँगा तथा मृत्यु का सङ्कट उपस्थित होने पर भी अपनी अन्तिम श्वास पर्यन्त वहीं रहकर प्रचार सेवा कार्य करूँगा।"

जब उन्होंने इस प्रकार की दृढ़ प्रतिज्ञा करके विदेश में प्रचार सेवा-कार्य किया तब उन्हें बहुत सफलता मिली, जिसे देखकर अन्यों का तो कहना ही क्या, वे स्वयं भी आश्चर्यचकित होते थे।

भगवान् समस्त ऐश्वर्यों के अधिपति हैं तथा उनके शुद्ध भक्त श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने उस सम्पत्ति

को उत्तराधिकार स्वरूप प्राप्त किया। उन श्रील प्रभुपाद के चरण कमलों में पूर्ण रूप से शरणागत भक्त को किसी प्रकार का कोई अभाव नहीं रह सकता। भगवान् अपने शरणागत भक्त का पालन करने की अपनी प्रतिज्ञा को अवश्य ही पूर्ण करते हैं –

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

श्रीमद्भगवद्गीता (९.२२)

[अन्य कामना रहित तथा मेरी चिन्ता में निरत जो व्यक्ति सर्वतोभावेन मेरी उपासना करते हैं, मैं नित्य मुझमें एकनिष्ठ उन व्यक्तियों का योग एवं क्षेम वहन करता हूँ।]

श्रील स्वामी महाराज जब घर छोड़कर वृन्दावन आ गये अथवा जब उन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया, तब उनके सम्बन्धियों ने उनके विषय में लेशमात्र भी चिन्ता नहीं की, किन्तु वही सम्बन्धी उन्हीं श्रील स्वामी महाराज के देह त्यागने के पश्चात् उनकी संस्था की सम्पत्ति पर यह कहकर अपना अधिकार प्रदर्शित करने लगे 'यह सब मेरे पति का है, मेरे पिता का है आदि-आदि।' इस जगत् के लोगों का व्यवहार कितना विचित्र है।

गौड़ीय मठ की समस्त शाखाओं को एकजुट करने की उनकी अभिलाषा

श्रील स्वामी महाराज ने अपने सन्यास ग्रहण करने से पूर्व तथा पश्चात् भी अपने गुरुभ्राताओं, श्रीचैतन्य मठ के आचार्य

"हम सभी को श्रील प्रभुपाद के उपदेशानुसार श्रीमन्महाप्रभु तथा श्रीरूप-रघुनाथ की वाणी का अत्यधिक उत्साहपूर्वक मिलजुलकर प्रचार करना चाहिये।"



श्रीमद्भक्तिविलास तीर्थ गोस्वामी महाराज तथा बागबाजार श्रीगौड़ीय मठ के आचार्य श्रीमद्भक्तिकेवल औडुलोमी महाराज से पुनः-पुनः जाकर प्रार्थना की, "हम सभी को अपने क्षुद्र स्वार्थों, आपसी मन-मुटाव, वाद-विवाद आदि को भुलाकर श्रील प्रभुपाद के उपदेशानुसार श्रीमन्महाप्रभु तथा श्रीरूप-रघुनाथ की वाणी का अत्यधिक उत्साहपूर्वक मिल-जुलकर प्रचार करना चाहिये।"

श्रील स्वामी महाराज के हृदय की ऐसी निष्कपट अभिलाषा एवं पवित्र भावना थी किन्तु दैववश वैसा सम्भवपर नहीं हुआ तथा उन्हें भी अपने अन्य-अन्य गुरुभ्राताओं के आदर्श का अनुसरण करते हुए एक स्वतन्त्र संस्था का गठन करने के लिये बाध्य होना पड़ा।

निर्भीकतापूर्वक सेवा करना

जब श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज श्रीधाम वृन्दावन में रहते थे तब वह समय-समय पर स्वसम्पादित 'Back To Godhead'

नामक पत्रिका के मुद्रण हेतु दिल्ली जाया करते थे। उन दिनों उनके पास अर्थ का बहुत अभाव था, जिस कारण वे गर्मी में जून-जुलाई की तपाने वाली धूप में भी भिक्षा करने के लिये जाते थे। वह बहुत बार श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय संघ की करोल बाग स्थित शाखा में रहते थे।

एक दिन भीषण धूप में वे जब भिक्षा करने के लिये बाहर निकल रहे थे, तब श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज के चरणाश्रित श्रीभक्तिवैभव माधव महाराज ने उनसे प्रार्थना करते हुए कहा, "महाराज, कृपा करके आप इतनी धूप में बाहर मत जाइये। आपकी इस आयु में आपको लू बहुत सहज रूप में लग सकती है।"

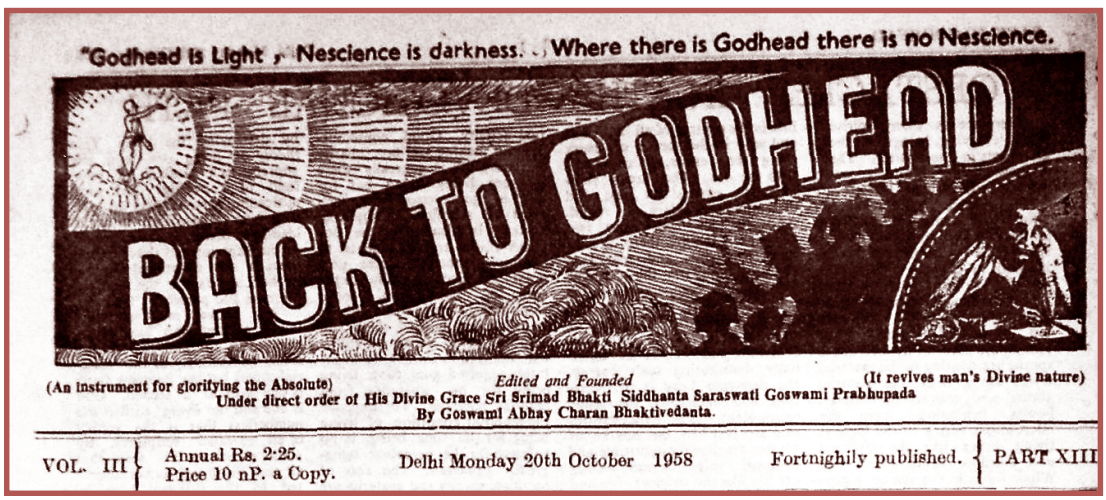
श्रील स्वामी महाराज ने उन्हें उत्तर दिया, "महाराज, मुझे किसी ने पाँच रुपये भिक्षा देने का वचन दिया है। अतएव मुझे अपनी पत्रिका के मुद्रण हेतु उसे संग्रह करने के लिये अवश्य ही जाना पड़ेगा।"

श्रीमाधव महाराज ने उनसे कहा, "महाराज, मैं आपको दस रुपये दे दूँगा, किन्तु आप कृपा करके इस समय बाहर मत जाइये।"

श्रील स्वामी महाराज ने उत्तर दिया, "तुम्हारी प्रीति के कारण मैं रुक जाता हूँ किन्तु मैं भगवान् के प्रति सम्पूर्ण निर्भर रहकर उनके प्रति निष्ठावान् होकर उनकी सेवा के उद्देश्य से किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं छोड़ना चाहता। मुझे दृढ़ विश्वास है कि जब तक वे मेरी इस देह से अपनी सेवा करवाना चाहेंगे, तब तक मुझे कुछ भी नहीं होगा।"

वृन्दावन में उनका समय

विदेश जाने से पूर्व श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज वृन्दावन में सर्वप्रथम छिपी-गली में तथा बाद में सेवा-कुञ्ज में स्थित श्रीश्रीराधा-दामोदर मन्दिर में वास करते थे। वे हमारे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में आकर अपने गुरुभ्राता श्रीराघव चैतन्य प्रभु एवं


"Godhead is Light, Nescience is darkness. Where there is Godhead there is no Nescience.

BACK TO GODHEAD

(An instrument for glorifying the Absolute) Edited and Founded (It revives man's Divine nature)
Under direct order of His Divine Grace Sri Srimad Bhakti Siddhanta Saraswati Goswami Prabhupada
By Goswami Abhay Charan Bhaktivedanta.

VOL. III | Annual Rs. 2-25. Price 10 nP. a Copy. | Delhi Monday 20th October 1958 | Fortnighily published. | PART XIII

पत्रिका का एक प्रारम्भिक अङ्क

श्रीगिरीन्द्र गोवर्धन प्रभु के साथ में बैठकर प्रतिदिन गौड़ीय कीर्त्तन करते थे और मैं तथा मेरे गुरुभ्राता श्रीभक्तिप्रसाद पुरी महाराज आदि कुछेक भक्त उनके पीछे दोहार देते थे।

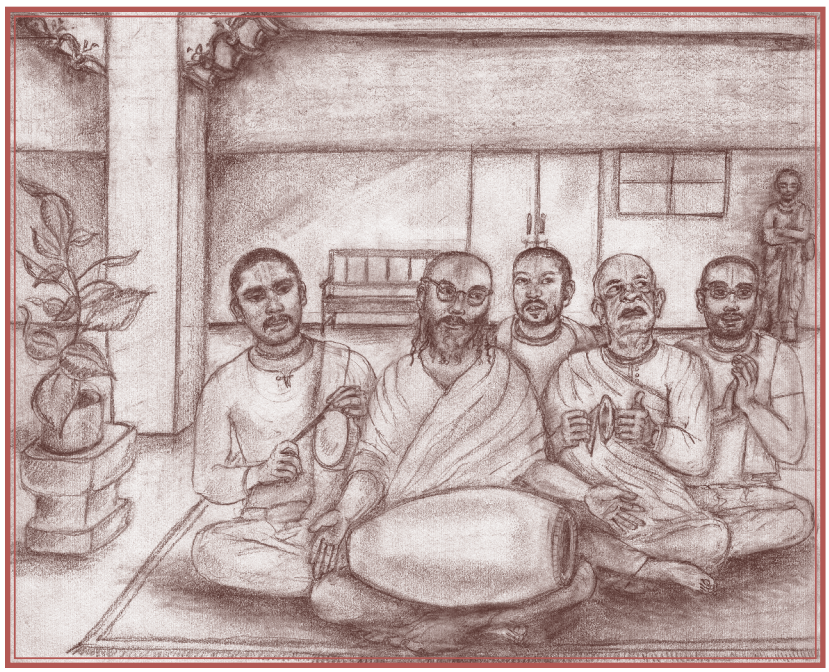
वृन्दावन में हमारे कीर्त्तन-हॉल को देखकर श्रील स्वामी महाराज कहते थे, "सारस्वत-गौड़ीय-वैष्णवों का इससे पहले वृन्दावन में बैठकर कथा-कीर्त्तन करने के लिये कोई स्थान नहीं था। श्रीपाद माधव महाराज ने इस अभाव को पूर्ण किया है।"

सर्वदा श्रीकृष्ण-नाम-सङ्कीर्त्तन

हमारे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ वृन्दावन के नाट्य मन्दिर का निर्माण १९६४ ई॰ में पूर्ण हुआ। मैंने उन दिनों सुना कि गवर्नर श्रीविश्वनाथ दास वृन्दावन में आ रहे हैं, मैंने भी श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ की ओर से उन्हें मठ में आने का पोस्टकार्ड के माध्यम से निमन्त्रण भेजा, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

गुरु महाराज उन दिनों श्रीधाम वृन्दावन में नहीं थे तथा मैं और मेरे सतीर्थ श्रीभक्तिप्रसाद पुरी महाराज स्वयं को आयु और भजन राज्य में अति कनिष्ठ अनुभव करने के कारण श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद के चरणाश्रित श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज और श्रीराघव चैतन्य प्रभु को प्रार्थना करके गवर्नर को स्वागत करने तथा उनके साथ वार्त्तालाप करने एवं उनके समक्ष गौड़ीय मठ के वैशिष्ट्य के विषय में कुछ कथा परिवेशन करने हेतु निमन्त्रित कर आये।

श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज ने हमसे कहा, "सङ्कीर्त्तन के माध्यम से स्वागत करने से श्रेष्ठ अन्य किसी भी प्रकार का स्वागत



"गौड़ीय मठ विपुल प्रचार कर रहा है कि श्रीकृष्ण नाम सङ्कीर्त्तन ही कलियुग के जीवों के उद्धार का एक मात्र उपाय है।"



नहीं हो सकता। सङ्कीर्त्तन करने वाले स्थान पर स्वयं भगवान् के आविर्भूत होने से गवर्नर के मङ्गल के उद्देश्य से इससे अधिक और क्या होगा? जब गवर्नर ने आना स्वीकार ही किया है तब हम उसके मङ्गल का पथ प्रशस्त करने में कोई कुण्ठा नहीं करेंगे।" श्रीकृष्ण नाम सङ्कीर्त्तन ही कलियुग के जीवों के उद्धार का एक मात्र उपाय है तथा गौड़ीय मठ ही इसका विपुल प्रचार कर रहा है। हमारे सङ्कीर्त्तन को सुनकर गवर्नर अवश्य ही यह जान पायेंगे।

हम सबने गवर्नर के आने पर श्रील स्वामी महाराज के आनुगत्य में उनके द्वारा दिये गये परामर्शानुसार सङ्कीर्त्तन के द्वारा ही गवर्नर का स्वागत किया। श्रील स्वामी महाराज ने ही गवर्नर के साथ वार्त्तालाप तथा गौड़ीय मठ के वैशिष्ट्य का उनके समक्ष कीर्त्तन किया। वार्त्तालाप के मध्य में गवर्नर के साथ आए जिलाधीश महोदय के द्वारा उनको पुनः पुनः हाथ के द्वारा चलने का इङ्गित करने पर भी उन्होंने उससे यही कहा, "थोड़ी देर रुक जाओ, ऐसा

सङ्कीर्त्तन अन्य कहाँ श्रवण करने के लिये मिलेगा।"

गवर्नर की प्रतिक्रिया को देखकर मुझे श्रील स्वामी महाराज के द्वारा प्रदत्त परामर्श की महिमा और भी अधिक अनुभव हुयी कि श्रीकृष्ण-नाम-सङ्कीर्त्तन ही समस्त स्थितियों में वास्तविक समाधान है।

'ISKCON' नाम की उत्पत्ति

श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज का अमेरिका जाने का एकमात्र उद्देश्य श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं का विदेश में प्रचारकर अपने गुरुपादपद्म श्रील प्रभुपाद के मनोभीष्ट को पूर्ण करना था। प्रारम्भ में श्रील स्वामी महाराज के हृदय में इसे सम्पादित करने हेतु अनेक विचार थे किन्तु अन्ततः स्थानीय लोगों की अवस्था को देखते हुए एवं श्रीगुरु तथा भगवान् की प्रेरणा से उन्होंने अमेरिका में एक पार्क में बैठकर 'श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द। श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द॥' तथा 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥' इस पञ्चतत्व तथा महामन्त्र का कीर्त्तन करना आरम्भ किया। श्रील प्रभुपाद के चरण-कमलों के प्रति सम्पूर्ण शरणागति तथा उनके श्रीमुख से निःसृत वाणी को पालन करने की प्रबल अभिलाषा के फलस्वरूप उनके कीर्त्तन ने अनेक निष्कपट लोगों को आकर्षित किया।

एक दिन किसी भक्त ने श्रील स्वामी महाराज से जिज्ञासा की, "आपके द्वारा प्रतिष्ठित संस्था के ISKCON नाम रखने के पीछे आपके मन की क्या भावना है?"



श्रील स्वामी महाराज ने उत्तर प्रदान किया, "मैं जब अमेरिका में पार्क में बैठकर पञ्चतत्व तथा महामन्त्र का कीर्त्तन करता था तब एक दिन किसी अनजान व्यक्ति ने मेरे पास आकर मुझसे पूछा कि आप जो कीर्त्तन कर रहे हैं इसके द्वारा किस प्रकार की चेतना (Consciousness) विकसित होती है?

"तब उस समय मेरे मुख से भगवद् प्रेरणा से 'Krsna Consciousness' शब्द उच्चारित हुए थे। बस उसी दिन ही मैंने अपनी संस्था का नाम International Society for Krsna Consciousness रखने का निर्णय किया।"

अन्यों की सेवा कर श्रीगुरु की सेवा करना

मैंने श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज के कुछ चरणाश्रित भक्तों के मुख से श्रवण किया कि श्रील स्वामी महाराज ने प्रचार के प्रारम्भिक दिनों में स्वयं आगन्तुकों के लिये प्रसाद रन्धन तथा परिवेशन तो किया ही, उन लोगों के प्रसाद ग्रहण के पश्चात् उनकी उच्छिष्ट पत्तलों तक को भी उठाया तथा स्वयं ही स्थान का तथा रन्धन के पात्रों को भी बहुत समय तक परिष्कार किया। उन्होंने किसी को भी कोई सेवा करने के लिये नहीं कहा बल्कि उन्हें शब्द-ब्रह्म के प्रति सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित करने के लिये प्रेरित किया। उसी हरि-कथा एवं कीर्त्तन रूपी शब्द-ब्रह्म के कान के माध्यम से हृदय में प्रवेश करने पर जब एक नियमित रूप से आने वाले आगन्तुक ने उन्हें सभी सेवाएँ करते देखकर उनसे कहा, "May I help you. अर्थात् क्या मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ?" तब उन्होंने साथ-ही-साथ उसका स्वागत किया तथा तभी से क्रमशः अनेक लोग विभिन्न सेवाएँ करने लगे।

मुझे यह सब सुनकर, इतनी वृद्धावस्था में भी अपने गुरुदेव के आदेश का पालन करने हेतु अत्यधिक समर्पण के साथ सेवा करने की उनके हृदय की भावना का अनुभव हुआ, वे निश्चित रूप से अप्राकृत व्यक्तित्व सम्पन्न एक महत् पुरुष थे।

ढोंगी 'भगवान्' से सबकी रक्षा करना

श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज के विदेश जाने से पूर्व तथा पश्चात् में जो व्यक्ति वहाँ पर अधिक सफल हुए उन्होंने शरणागत और निष्कपट नहीं होने के कारण स्वयं को ही भगवान् घोषित कर दिया जैसे कि कपटी 'भगवान्' रजनीश अथवा ओशो। किन्तु श्रील स्वामी महाराज ने ऐसे पाखण्डियों के विरुद्ध श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती के विचारों के तात्पर्य का ही दृढ़ रूप से प्रचार-प्रसार किया -

साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै-
रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य,
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

[निखिल शास्त्रों ने जिनका साक्षात् हरि के अभिन्न-विग्रहरूप से गान किया है एवं साधुजन भी जिनकी उसी प्रकार से चिन्ता किया करते हैं, तथापि जो भगवान् के एकान्त प्रिय हैं, मैं उन्हीं (भगवान् के अचिन्त्य-भेदाभेद-प्रकाश-विग्रह) श्रीगुरुदेव के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ।]

उन्होंने लोगों में 'जीवाधमे ईश्वर ज्ञान कभु ना करिबा अर्थात् अधम जीव को ईश्वर कभी मत समझना' इस वाणी का पुनः-पुनः कीर्त्तन करके सभी की इस भयङ्कर अनर्थ से रक्षा की।

सम्पूर्ण शरणागत व्यक्ति ऐश्वर्य के प्रलोभनों से कभी प्रभावित नहीं होता

एक समय ऐसा था जब श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज के पास अर्थ का बहुत अभाव था, फिर एक समय ऐसा भी आया

जब उनके पास जगत् के किसी भी प्रकार के ऐश्वर्य का अभाव नहीं था। किन्तु जो बात ध्यान देने योग्य है, वह यह कि दोनों ही परिस्थितियों में उनके हृदय की भावना, उनकी सेवा की प्रवृत्ति, उनकी गुरु–वैष्णव–भगवान् के चरणों में शरणागति, निष्ठा आदि में कोई परिवर्त्तन नहीं आया। सभी में ऐसी योग्यता नहीं होती कि ऐश्वर्य के उपस्थित होने पर वे उसे अपने भोग में लेशमात्र भी नहीं लगाकर सम्पूर्ण रूप से भगवद् सेवा में लगा दें। ऐश्वर्य आने पर किसी की बुद्धि एवं आचरण परिवर्त्तित न हो, ऐसा होना बहुत दुर्लभ है। इस विषय में राजा नहुष का प्रसङ्ग द्रष्टव्य है।

राजा नहुष बहुत श्रेष्ठ राजा थे किन्तु जब उन्हें इन्द्र की पदवी की प्राप्ति हुई, तब उन्होंने इन्द्र की पत्नी शची को भोग करने की इच्छा प्रकट की। जब शची को यह बात पता चली तो उन्होंने ऋषियों से इस विषय में परामर्श किया, ऋषियों ने शची से कहा, "आप नहुष के पास सम्वाद भिजवाओ कि यदि वह तुम्हें प्राप्त करना चाहता है तो ऋषियों के द्वारा अपने कन्धों पर वहन की गयी पालकी में बैठकर आये।" शची देवी ने वही सम्वाद भेजा।

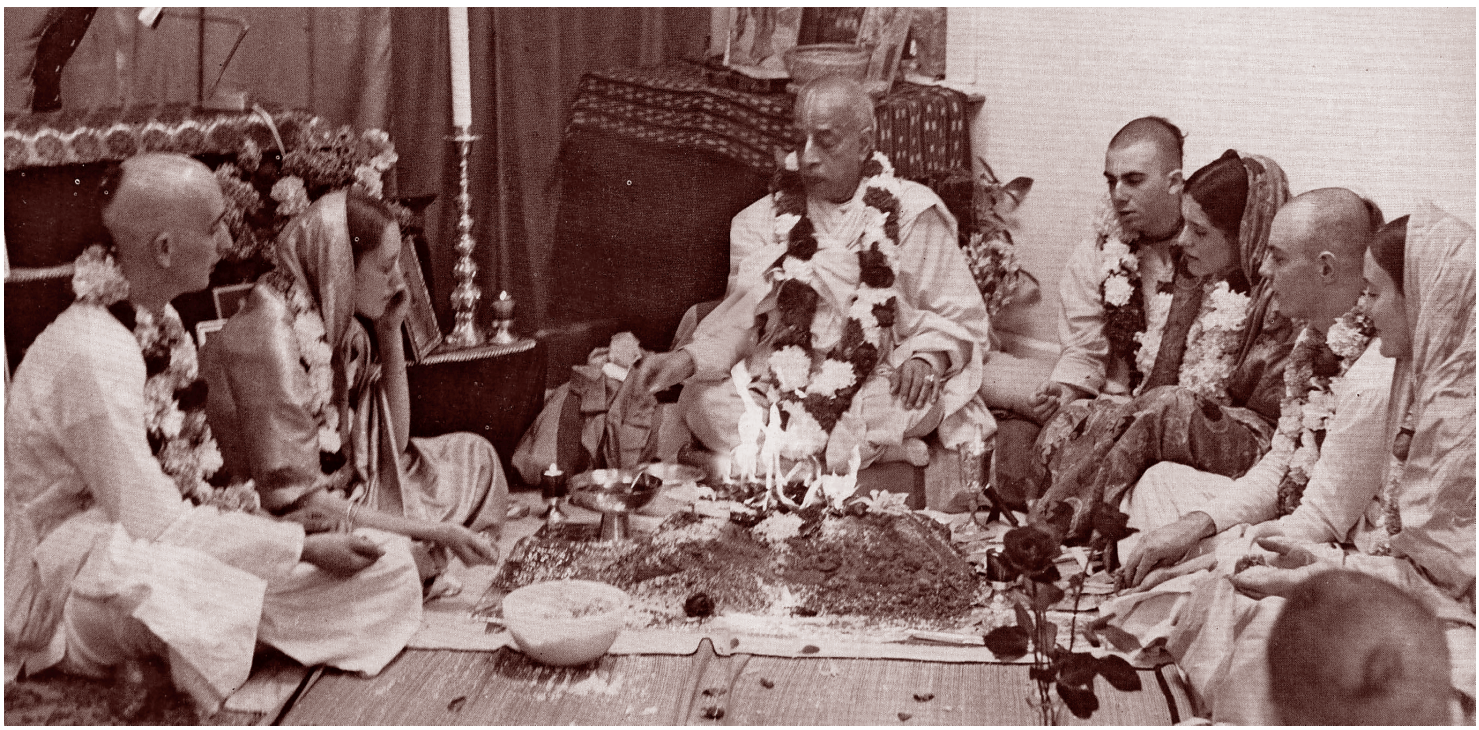
ऐश्वर्य भोग को प्राप्त करके अपनी मति को स्थिर रखने में असमर्थ होने के कारण नहुष इतना अधिक कामुक हो गया कि उसने ऋषियों को अपनी पालकी को ढोने में लगा दिया तथा उतने में ही सन्तुष्ट नहीं हुआ और ऋषियों से पुनः–पुनः कहने लगा, "साप, साप अर्थात् शीघ्र चलो, शीघ्र चलो।" उसकी ऐसी चित्तवृत्ति देखकर श्रीअगस्त्य ऋषि ने उसे श्राप दिया, "तू साँप बन जा।"

यद्यपि नहुष की ऐश्वर्य को प्राप्त करके ऐसी दुर्गति हुयी किन्तु श्रील स्वामी महाराज के भगवान् के चरणों में सम्पूर्ण शरणागत होने के कारण तथा अपने गुरुदेव के मनोऽभीष्ट को सदैव पूर्ण करने में दृढ़ प्रतिज्ञ होने के कारण उनमें कोई भी परिवर्त्तन नहीं हुआ।

वास्तविक भारतीय–राष्ट्रदूत

श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज जब विदेश में प्रचार–सेवा–कार्य के उद्देश्य से गये तब उन्होंने धीरे–धीरे विश्व की सर्वाधिक प्राचीन वैदिक संस्कृति के अधिकांश पहलुओं से पाश्चात्य देशवासियों को क्रमशः परिचित करवाया यथा भगवन्नाम का कीर्त्तन, श्रीमद्भागवतम् आदि ग्रन्थों का पठन–पाठन, भगवान् के विग्रहों का प्रकाश, उन विग्रहों की यथा–विधि सेवा पूजा, आरती आदि, सदाचार आदि का पालन, भारतीय वैदिक धोती–कुर्ता–उत्तरीय, साड़ी, घाघरा आदि परिधान धारण, तिलक–शिखा–सूत्र आदि का प्रवर्त्तन, भगवद् निवेदन योग्य दूध, दही, फल–कन्द–मूल–सब्जी आदि से बने अत्यधिक स्वादिष्ट तथा पुष्टिकारक व्यञ्जनों को बनाना, भगवान् को भोग अर्पित करना तथा उन्हें प्रसाद के रूप में आस्वादन की विधि को सीखना, गुरुकुल की स्थापना, गौ सेवा, कृषि आदि के द्वारा स्वावलम्बी बनना आदि अनेक रीतियों का प्रवर्त्तन किया।

श्रील स्वामी महाराज ने विदेश के लोगों के किसी आचार–विचार को ग्रहण करके



अपने जीवन में नहीं अपनाया, बल्कि उन्हें वैदिक संस्कृति को स्वीकारकर उसे अपने जीवन में पालन करने की शिक्षा प्रदान की तथा उन्हें उसी में प्रतिष्ठित किया। इसी कारण एक समय बङ्गाल की प्रसिद्ध आनन्द बाजार पत्रिका में छपा था –

'आजकल के राजनीतिक राष्ट्रदूत भारतवर्ष की संस्कृति को पालन करने में लज्जा का अनुभव करते हैं, वे बाहर जाकर वहाँ के परिधान (वेष), वहाँ का चाल-चलन, वहाँ का खान-पान आदि ग्रहण करके आते हैं। राष्ट्र की किसी बात को वहाँ पहुँचाकर नहीं आते बल्कि राष्ट्र के धन तथा मान को मिट्टी में मिलाकर आते हैं। दूसरी ओर, इस्कॉन के संस्थापक आचार्य श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराज ने वास्तव में भारत के सच्चे राष्ट्रदूत का कार्य किया है। यद्यपि उन्हें राष्ट्र की ओर से कोई आर्थिक सहायता तथा सम्मान आदि प्राप्त नहीं हुआ किन्तु तब भी उन्होंने जड़ीय किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं करके अपने निःस्वार्थ कार्य द्वारा सभी राजनेताओं को एक अच्छा आदर्श दिखलाया है।'

कृष्णभावनामृत के द्वारा समाज की समस्याओं को नियन्त्रित करना

एक समय मैंने श्रील स्वामी महाराज के मुख से श्रवण किया कि विदेश में कहीं

किसी व्यक्ति ने अपने पुत्र के द्वारा श्रील स्वामी महाराज के निकट रहने पर उनके द्वारा उसकी मति भ्रष्ट आदि करने का झूठा कोर्ट केस कर दिया तथा याचना की कि इस स्वामी को यहाँ पर आने अथवा प्रचार नहीं करने दिया जाये, किन्तु न्यायाधीश ने श्रील स्वामी महाराज की महिमा का गान करके उनका पक्ष लेते हुए कहा, "हमारी सरकार करोड़ों-करोड़ों डॉलर व्यय करके जिस नशे, अवैध स्त्री-सङ्ग आदि को रोक पाने की बात तो छोड़ो, नियन्त्रित कर पाने में भी सफल नहीं हो पा रही है, ऐसी बुरी आदतों को छुड़वाकर हजारों लोगों को आध्यात्मिकता की ओर ले जाने वाले व्यक्ति को तो इस अभूतपूर्व सेवा हेतु सरकार की ओर से पुरस्कार दिया जाना चाहिये।"

भजन में उन्नति ही सिद्धान्त

एक दिन मेरे एक गुरुभ्राता श्रीअनङ्ग-मोहन ब्रह्मचारी (अब श्रीभक्तिमयूख भिक्षु महाराज) ने श्रील स्वामी महाराज से पूछा, "महाराज, शास्त्रों में मस्तक पर तिलक केश के प्रारम्भ होने के स्थान तक लगाने की बात कही गयी है तब फिर आपके अधिकांश शिष्य मस्तक के तिलक को सिर पर बहुत दूर तक क्यों लेकर जाते हैं? तथा आप उन्हें इस विषय में कुछ कहते क्यों नहीं हैं?"

श्रील स्वामी महाराज ने उत्तर दिया, "प्रभु, मैंने अभी तक इनके समक्ष तिलक धारण करने के माहात्म्य का ही कीर्त्तन किया है, ये अभी वैष्णव-समाज में बहुत नवीन हैं, वैदिक रीति से सम्पूर्ण रूप में अनभिज्ञ हैं, बालक के विद्यालय में प्रथम, द्वितीय, तृतीय श्रेणी में क्रमशः प्रवेश करने की भाँति ये भी पारमार्थिक राज्य के प्रथम सोपान, द्वितीय सोपान, तृतीय सोपान आदि में क्रमशः उत्तरोत्तर आगे बढ़ेंगे। इनमें से अधिकांश गो-भक्षक अर्थात् गाय तक के मांस को भक्षण करने वाले थे, अब वह सबकुछ त्यागकर धीरे-धीरे सदाचार का पालन करने का भरसक प्रयास कर रहे हैं।

"मैं इनकी इस अवस्था को देखकर ही परमानन्दित हो रहा हूँ। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि ये इसी प्रकार निष्ठापूर्वक आगे बढ़ेंगे तो मैं रहूँ अथवा नहीं, श्रेष्ठ वैष्णवों की चरण धूलि को प्राप्त करके उनकी कृपा के फलस्वरूप ये लोग उत्तरोत्तर श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा वितरित प्रेम धर्म की सूक्ष्म विचारधारा में प्रविष्ट होने की योग्यता लाभ करेंगे तथा निज जीवन को कृतकृतार्थ करेंगे।"



"मैं अपने शिष्यों की प्रगति देखकर परमानन्दित हूँ तथा यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि ये इसी प्रकार निष्ठापूर्वक आगे बढ़ेंगे तो मैं रहूँ अथवा नहीं, श्रेष्ठ वैष्णवों की चरण धूलि को प्राप्त करके निज जीवन को कृतकृतार्थ करेंगे।"

एक निपुण एवं धीर शिक्षक

एक अन्य समय श्रीअनङ्ग-मोहन ब्रह्मचारी श्रील स्वामी महाराज के कक्ष के बाहर उनके दर्शन के लिये प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी समय उन्होंने देखा कि पास में ही बैठे हुए एक नवीन विदेशी भक्त ने तिलक लगाने हेतु उसके पास आचमन-पात्र अथवा जल के न होने पर हाथ में थूक कर गोपी-चन्दन को घिसना प्रारम्भ किया। श्रीअनङ्ग-मोहन ब्रह्मचारी यह देखकर आश्चर्यचकित हो गये तथा शीघ्र ही उस भक्त को बुलाकर अंग्रेजी भाषा में कहा, "यह सर्वथा अनुचित है। तुम ऐसा क्यों कर रहे हो?"

उस समय श्रील स्वामी महाराज अपने कक्ष से बाहर आये तथा श्रीअनङ्ग-मोहन ब्रह्मचारी को बहुत ही मृदुलता से समझाते हुए कहा, "इस भक्त को कुछ सिखाने की आवश्यकता नहीं है। किसी प्रकार से वह अपने संस्कारों के विपरीत तिलक लगाने के लिये प्रेरित हुआ है। यदि वह अभी सब विधि-नियम नहीं जानता है तो इसमें क्या असुविधा है? एक दिन वह भक्ति के सभी नियमों का पालन करने की उचित पद्धति को अवश्य ही जान जायेगा।"

यहाँ पर श्रील स्वामी महाराज ने अपने शिष्य के लिये सब समय पालन करने के लिये किसी नये सिद्धान्त की स्थापना नहीं की अपितु एक निपुण शिक्षक होने के कारण उस शिष्य को उसके स्तर, स्वभाव एवं योग्यता के अनुसार ही यह शिक्षा प्रदान की।

स्थानीय पण्डा के आदर के पात्र

एक समय जब श्रील स्वामी महाराज श्रीजगन्नाथपुरी में अपने शिष्यों के साथ आकर कुछ दिनों के लिये रहे थे तब पुरी में गौड़ीय मठ के पण्डा श्रीगोपीनाथ खुटिया उनसे भेंट करने के लिये गये थे। दैववश जिस कक्ष में श्रील स्वामी महाराज बैठे थे, उस समय उस कक्ष का पंखा नहीं चल पा रहा था। ऐसा देखकर श्रील स्वामी महाराज का एक विदेशी आश्रित भक्त निकट में रखे दो डिब्बों, जिनमें श्रीमद्भागवतम् की प्रतियाँ रखी थीं तथा जिनके ऊपर लिखा था, 'For free distribution-not for sale in India' के ऊपर चढ़कर पंखे को ठीक करने का प्रयास करने लगा।

उसे ऐसा करते देखकर श्रीगोपीनाथ खुटिया ने कहा, "भागवत ग्रन्थ के डिब्बों के ऊपर खड़े होने की अथवा पैर रखने की तो बात ही क्या, किसी साधारण पुस्तक की पेटी पर भी क्या ऐसा कोई हिन्दु भारतीय होगा, जो खड़े होने की कल्पना भी कर सके? इसी कारण तुम्हारे भक्त होने पर भी तुम्हें जगन्नाथ मन्दिर में जाने का अधिकार नहीं है। तुम्हारे संस्कार बनने में एक शतक लग जायेगा। तुम्हें अत्यधिक स्नेह-प्रीति के साथ में धैर्य धारण करके बालकवत् क्रमशः सब विषयों की शिक्षा प्रदान करने का अत्यधिक गुरुत्वपूर्ण दायित्व जिन्होंने अपने ऊपर लिया है वे तुम्हारे गुरुदेव अति उदार तथा धन्य हैं। मैं उनकी वन्दना करता हूँ, वन्दना करता हूँ।"

इस्कॉन एवं श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ का सम्बन्ध

जब श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज ने श्रीधाम मायापुर में इस्कॉन मन्दिर के निर्माण हेतु भूमि संग्रह की तब उनके आश्रितजनों ने हमारे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में मेरे पहले वाले स्थायी कमरे के सामने वाले हॉल में रहकर ही सारा प्रारम्भिक निर्माण का कार्य करवाया। श्रील स्वामी महाराज के आश्रित श्रीअच्युतानन्द प्रभु, श्रीभवानन्द प्रभु, श्रीजय-पताका प्रभु तथा अन्य अनेक भक्तों ने समय-समय पर वहाँ रहकर अपने सेवा-कार्य किये। जब वे लोग विदेश जाते थे तब भी अपने कुछ सामान को बाँधकर वहीं पर ही रखकर जाते थे तथा मैं उनके प्रसाद, उनके सामान आदि का दायित्व लेता था। मैं उनकी सहायता, श्रील स्वामी महाराज के प्रति मेरी सेवा मानकर अत्यधिक उत्साह तथा गुरुत्व देकर करता था।

एक समय श्रील स्वामी महाराज अपने आश्रित श्रीअच्युतानन्द प्रभु को बङ्गाली भाषा, बङ्गाली कीर्त्तन आदि सीखने के उद्देश्य से हमारे कोलकाता मठ में छोड़कर गये। श्रीअच्युतानन्द प्रभु हमारे मठ में लगभग तीन वर्ष तक रहे तथा उन्होंने अच्छे से बङ्गाली भाषा सीख ली। एक समय श्रील स्वामी महाराज ने उन्हें पत्र लिखा तथा उसमें कहा, "श्रीभवानन्द प्रभु एक इंग्लिश से बङ्गाली अभिधान मँगवा रहा है, यदि सम्भवपर हो तो उसे भेज देना।"

श्रीअच्युतानन्द प्रभु ने श्रील स्वामी महाराज को अपने हाथों से बङ्गाली भाषा में पत्र लिखकर कहा, "मैं पर्याप्त बङ्गला सीख गया हूँ। वह अभिधान लेकर क्या करेगा? आप मुझे क्यों नहीं सेवा में नियुक्त करते?"

श्रील स्वामी महाराज समय-समय पर श्रीअच्युतानन्द को पत्र लिखकर उससे सामान मँगवाते थे तथा मैं श्रीअच्युतानन्द की सामान खरीदने तथा उन्हें विदेश भेजने में सहायता करता था।

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट का पञ्जीकरण

जब श्रील स्वामी महाराज ने भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट को पञ्जीकृत कराया तो उन्होंने मेरे गुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज तथा श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज को भी ट्रस्टी रखा तथा उन्होंने उनके साथ परामर्श करके यह भी निर्णय लिया कि उससे प्राप्त लाभराशि को श्रीगौड़मण्डल के उत्थान एवं पुनरुद्धार हेतु व्यय किया जायेगा।

इस्कॉन मायापुर के निर्माण-कार्य के समय गुरुभ्राताओं के मठों में जाना

श्रीधाम मायापुर में इस्कॉन मन्दिर के निर्माण-कार्य के समय में श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज ने एक बांस की बनी कुटिया में रहना स्वीकार करके एक आदर्श की स्थापना की। भजन परायण भक्त, भगवान् की सेवा के उद्देश्य से किसी भी परिस्थिति तथा किसी भी स्थान में रहकर परम सन्तुष्ट, परम प्रसन्न रहता है।

उस भजन कुटीर के बनने से पूर्व श्रील स्वामी महाराज श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज के साथ उनके श्रीचैतन्य



श्रील स्वामी महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौराङ्ग श्रीश्रीराधा-माधव के मूल विग्रह, इस्कॉन मायापुर

सारस्वत मठ कोलेर डाङ्गा में रहते थे। वह प्रातःकाल गङ्गा पार करके मायापुर में आकर इस्कॉन मन्दिर के निर्माण कार्य का निरीक्षण करते थे तथा बहुत बार दोपहर के समय में हमारे यहाँ श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ मायापुर में आकर ही प्रसाद ग्रहण करते थे। उन दिनों मुझे कई बार उन्हें प्रसाद परिवेशन करने का सुयोग प्राप्त हुआ था।

'श्रील प्रभुपाद' उपाधि पर उनका विचार

जब श्रील स्वामी महाराज ने इस्कॉन मायापुर श्रीचैतन्य चन्द्रोदय मन्दिर में विग्रह-प्रतिष्ठा महोत्सव हेतु अपने समस्त गुरुभ्राताओं को निमन्त्रण दिया तब मेरे गुरुपादपद्म श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने उनसे कहा, "श्रीपाद स्वामी महाराज, आपके आश्रितजनों के द्वारा आपको श्रील प्रभुपाद कहते सुनकर अपने गुरु महाराज श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर को 'श्रील प्रभुपाद' के नाम से अभिहित करने वाले हम सभी गुरुभ्राताओं की भावनाओं को ठेस पहुँचती है। आप इनसे स्वयं को श्रील प्रभुपाद क्यों कहलवाते हो? कृपया यह समझने में हमारी सहायता करें।"

श्रील स्वामी महाराज ने उत्तर दिया, "महाराज! एक दिन इन्होंने मुझसे पूछा कि अपने गुरुदेव को किस-किस नाम से पुकारा जा सकता है तथा मैंने उसका सरलतापूर्वक उत्तर देते हुए कहा, गुरु को

विष्णुपाद, भगवद् पाद, श्रीपाद, प्रभुपाद आदि किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। इसके पश्चात् इन बहुत से लोगों ने परामर्श करके मुझे प्रभुपाद कहना प्रारम्भ कर दिया।"

तब गुरु महाराज ने श्रील स्वामी महाराज से कहा, "क्या आप इन्हें ऐसा कहने से निषेध नहीं कर सकते हैं? कारण, 'महाप्रभु' कहने से जैसे केवल श्रीचैतन्यदेव को ही समझा जाता है। रामकृष्ण मिशन में 'परमहंस' कहने से जैसे विवेकानन्द के गुरु केवल रामकृष्ण को ही समझा जाता है, उसी प्रकार श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के प्रकट काल से ही उनके आश्रित 'श्रील प्रभुपाद' सुनने मात्र से ही केवल उनको ही समझने के अभ्यस्त हैं।"

श्रील स्वामी महाराज ने उत्तर दिया, "महाराज! मैं भी अपने गुरुभ्राताओं की भाँति 'श्रील प्रभुपाद' शब्द से केवल अपने गुरुपादपद्म को ही समझने का अभ्यस्त हूँ। एक-के-पश्चात्-एक सबको समझा-समझाकर तथा पुनः-पुनः बोलकर मैं थक गया हूँ, किन्तु तब भी अब तक इसे रोक पाना मेरे लिए सम्भवपर नहीं हुआ है।"

श्रील स्वामी महाराज के अप्रकट लीला को प्रकाशित करने के अनेक वर्षों के उपरान्त भी विभिन्न स्थानों पर लोग 'श्रील प्रभुपाद' नाम को लेकर भ्रमित होते हैं कि यह श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के लिये प्रयुक्त हुआ है अथवा उन्हीं के आश्रित श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज के लिये। इसी कारण से कहा जाता है कि शिष्यों को गुरुदेव के मन के अभीष्ट को जानने-समझने में अत्यधिक सतर्क होना चाहिये। कभी-कभी शिष्य के द्वारा उचित प्रयोजन से अति सरलतापूर्वक की गयी कोई साधारण सी क्रिया भी श्रीगुरु को कठिनाई की स्थिति में खड़ा कर सकती है।

धैर्य एवं स्नेहपूर्वक उनके नवीन शिष्यों को शिक्षा प्रदान करना

मायापुर में इस्कॉन मन्दिर की स्थापना करने के उपरान्त शीघ्र ही श्रील स्वामी महाराज ने श्रीधाम नवद्वीप की परिक्रमा प्रारम्भ करायी तथा परिक्रमा के समय उन्होंने अपने आश्रितजनों को श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, ईशोद्यान के भी दर्शन करने के लिये भेजा। जब उनकी परिक्रमा पार्टी मठ के श्रीविग्रहों के दर्शन करने हेतु आयी, तब यात्रियों में से कुछे नये विदेशी लोगों ने अपने गले में जूतों को लेस से बाँधकर लटकाया हुआ था। उस समय गुरु महाराज भी नाट्य मंदिर में विराजमान थे। जब हमने उन लोगों से कहा कि जूते लेकर श्रीविग्रहों के दर्शन अथवा मन्दिर में प्रवेश नहीं करते हैं। तब उन्होंने उत्तर दिया, "हमें तो जूते को पैर में पहनकर जाने हेतु निषेध किया गया है, गले में लटकाकर भी नहीं ले जा सकते ऐसा तो किसी ने नहीं कहा।"

तब गुरु महाराज ने उन्हें अत्यधिक स्नेहपूर्वक समझाया, "जब शरीर के सबसे निम्न अङ्ग पैर में जूते पहनकर जाना निषेध है तब फिर शरीर के किसी उच्च अङ्ग पर जूते धारण करने का प्रश्न ही कहाँ? चरणों से ऊपर शरीर के किसी भी अङ्ग

के साथ जूते का स्पर्श होने पर स्वयं को पवित्र करने हेतु वस्त्र सहित गङ्गा स्नान करना चाहिये। यदि आपको कहा जाये कि अमुक व्यक्ति आपके साथ बात करने के योग्य नहीं है तब फिर क्या आपको यह भी बतलाना पड़ेगा कि अमुक व्यक्ति आपसे श्रेष्ठ अथवा आपके गुरुदेव के साथ भी वार्त्तालाप के अयोग्य है या फिर वह स्वतः ही समझ लेने की बात है?"

गुरु महाराज की बात सुनकर विदेशी भक्त बहुत सन्तुष्ट हुए तथा स्वयं ही कहने लगे, "कृष्ण भजन के राज्य में हम तो बहुत नवीन हैं, हमारे गुरुदेव अपना अधिकांश समय अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक हमें एक-के-पश्चात् एक अनेक बातें सिखाने में ही व्यतीत करते हैं। वे हमसे बहुत अधिक प्रीति करते हैं तथा हमारे द्वारा पुनः-पुनः भूल करने पर भी क्रोधित नहीं होते। आज आपने भी हमें एक शिक्षा प्रदान की है। हम इसका सदैव पालन करने का भरसक प्रयास करेंगे।"

उनके शिष्य को वाद-विवाद में मेरा परामर्श

श्रील स्वामी महाराज के प्रकट काल में एक समय उनके आश्रित श्रीतमालकृष्ण महाराज कुछ भक्तों को साथ में लेकर हैदराबाद में प्रचार करने के उद्देश्य से आये थे। एक दिन श्रीतमालकृष्ण महाराज ने अपने भाषण में कह दिया, "जो लोग भगवान् कृष्ण का भजन नहीं करते, वे सभी नरक में जायेंगे।"

उनकी उस बात को सुनकर बहुत से लोगों ने आपत्ति जताई, श्रीजगन्नाथ पुरी स्थित श्रीशङ्कराचार्य के भोग-वर्धन अथवा गोवर्धन मठ के शङ्कराचार्य श्रीनिरञ्जन देव तीर्थ ने तो उनके विरुद्ध बहुत कुछ बोला तथा तर्क करते हुए कहा, "जिस प्रकार हिन्दु के लिये वेद पढ़ना धर्म है, उसी प्रकार मुस्लिम के लिये कुरान तथा ईसाई के लिये बाइबल पढ़ना धर्म है, क्या वे लोग कुरान, बाइबल आदि पढ़कर अपने धर्म का पालन करने पर भी नरक में जायेंगे? भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है –

यान्ति देवव्रता देवान्
पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या
यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

श्रीमद्भगवद्गीता (९.२५)

[देवपूजकगण देवलोक को प्राप्त होते हैं, पितृपूजकगण पितृलोक को प्राप्त होते हैं, भूतपूजकगण भूतलोक को प्राप्त होते हैं तथा मेरी पूजा करने वाले मुझे ही प्राप्त होते हैं।]

"कृष्ण भजन नहीं करने वाले सभी के नरक में जाने की बात तो कृष्ण ने भी नहीं कही तो फिर तुम कैसे इस बात को बोल सकते हो?"

उस समय मैं हैदराबाद में ही वास कर रहा था तथा मैंने उपरोक्त सब बातों के अतिरिक्त समाचारपत्र में यह भी पढ़ा कि श्रीनिरञ्जन देव तीर्थ ने श्रीतमालकृष्ण महाराज के गुरुदेव श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी

महाराज को इस विषय पर वाद-विवाद हेतु खुली चुनौती दी है।

मैंने किसी प्रकार पता लगवाया कि श्रीतमालकृष्ण महाराज कुछ लोगों के साथ सरस्वती होटल में ठहरे हुए हैं। मैं हैदराबाद श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के मठ रक्षक अपने सतीर्थ श्रीधीर-कृष्ण प्रभु को साथ में ले जाकर श्रीतमालकृष्ण महाराज से मिला तथा उनसे पूछा कि आपको आपके तथा आपके गुरुदेव के विरुद्ध कही गयी तथा समाचारपत्र में छपी खबर की जानकारी है? उन्होंने कहा, "हाँ, मुझे पता है तथा मैं उसका उत्तर भी दे रहा हूँ।" उन्होंने मुझे श्रीसम्प्रदाय के एक भक्त श्रीहरिप्रसाद बुजुरका की सहायता से लिखे गये उत्तर को भी दिखलाया।

मुझे उत्तर ठीक ही लगा तथा मैंने भी अपनी ओर से उनसे उसमें लिखवाया कि यद्यपि शाब्दिक अर्थ के अनुसार श्रीकृष्ण का भजन नहीं करने वाले सभी नरक में नहीं जाते तथापि प्रतीकात्मक अर्थ के अनुसार वे अवश्य ही नरक में जाते हैं। श्रीमद्भागवतम् (११.१९.१८) में वर्णन है-

कर्मणां परिणामित्वादाविरिञ्चादमङ्गलम्।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत्॥

[विवेकी पुरुष कर्मों के परिणामों को नश्वर होने के कारण ब्रह्मलोकपर्यन्त स्वर्गादि सुख को भी विषय सुख के समान ही अमङ्गल, दुःखदायी एवं नाशवान् जानते हैं।]

इसलिये चतुर्दश लोकों में सर्वोच्च, ब्रह्मलोक की प्राप्ति भी अमङ्गलस्वरूप है। इसी कारण भक्त जड़-जगत के चतुर्दश भुवनों को अनित्य जानने के कारण सभी को नरक तुल्य ही मानते हैं।

दूसरा, हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई आदि तो परिवर्त्तनशील होने के कारण जीव की अनित्य उपाधि हैं, यह तो जीव का वास्तविक नित्य धर्म नहीं है। वैदिक शास्त्रों में तो जीव को 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो अर्थात् अजन्मा, नित्य, शाश्वत, प्राचीन' तथा 'अचलोऽयं सनातनः अर्थात् अपरिवर्त्तनशील, सनातन' कहा गया है। इसमें तो उसे हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई आदि नहीं कहा गया।

जब श्रीतमालकृष्ण महाराज का उत्तर श्रीनिरञ्जन देव तीर्थ ने पढ़ा तब उसने कहा, "यह तमालकृष्ण महाराज तो म्लेच्छ है, मैं इससे कोई तर्क-वितर्क नहीं करना चाहता। मैं इसके गुरु श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराज का शास्त्रार्थ के निमित्त आह्वान करता हूँ तथा उनके साथ ही वार्त्तालाप करूँगा।"

श्रीनिरञ्जन देव तीर्थ द्वारा लिखी गई बात को पढ़कर श्रीतमालकृष्ण महाराज ने मुझसे पूछा, "अब क्या उत्तर देना चाहिये।"

मैंने उनसे कहा तुम लिखो कि यह श्रीनिरञ्जन देव तीर्थ कौन से शङ्कराचार्य के अनुगामी हैं। लगता है जिन शङ्कराचार्य ने 'जीवो ब्रह्मैव न परः' के माध्यम से सभी जीवों को ब्रह्म कहा है, म्लेच्छ, ब्राह्मण आदि नहीं - ये उनके मतानुयायी नहीं हो सकते।

यह उत्तर सुनकर श्रीतमालकृष्ण महाराज को बहुत अच्छा लगा तथा उन्होंने वही उत्तर दिया। उस उत्तर के पश्चात् श्रीनिरञ्जनदेव तीर्थ की ओर से कोई भी प्रतिवाद नहीं आया।

जिस समय हैदराबाद में यह सब वाद-प्रतिवाद चल रहा था, उस समय श्रील स्वामी महाराज रूस में थे। जब उन्होंने श्रीतमालकृष्ण महाराज के पत्र के माध्यम से मेरे द्वारा दिये गये उत्तर के विषय में सुना, तब उन्होंने लिखकर भेजा, "उनके द्वारा दिये गये उत्तर यथार्थ हैं, मुझे उनके उत्तर पढ़कर बहुत आनन्द हुआ।"

उपरोक्त घटना के कुछ समय पश्चात् श्रील स्वामी महाराज अपने साथ बड़ी पार्टी लेकर हैदराबाद आये किन्तु श्रीनिरञ्जनदेव तीर्थ जिन्होंने उनका आह्वान किया था, सम्पूर्ण रूप से लुप्त हो गये। वे हैदराबाद में हैं भी या नहीं, इसका भी पता न चल पाया।

परस्पर निमन्त्रण

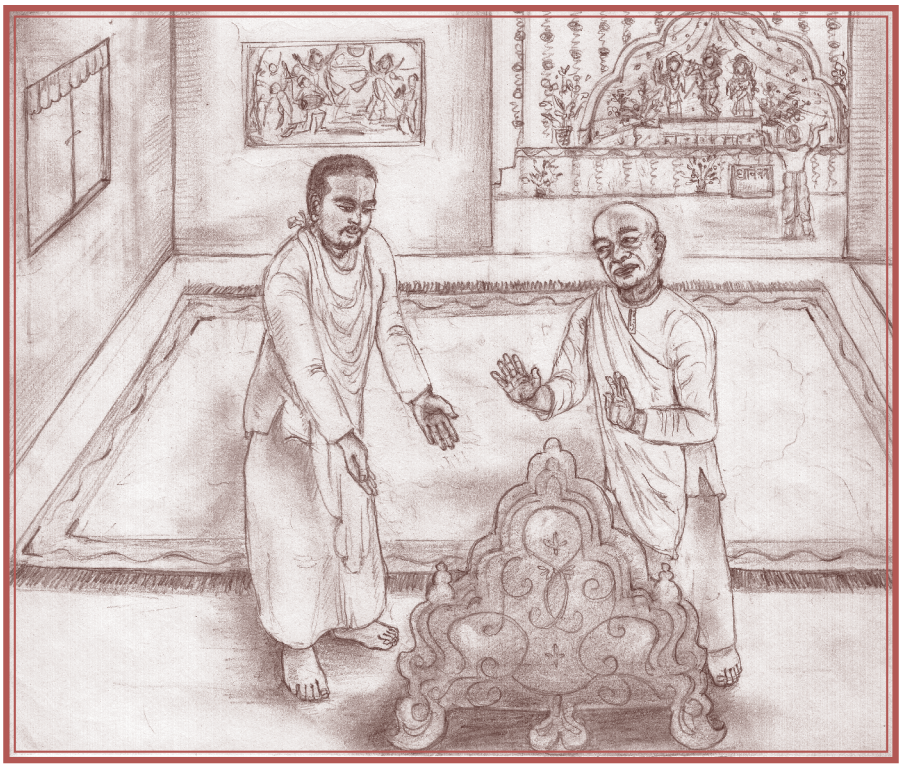
एक अन्य समय श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज जब हैदराबाद आये तब मैंने उनके निकट जाकर उन्हें मठ में आकर प्रसाद पाने हेतु निमन्त्रण दिया, उन्होंने कृपा करके उसे स्वीकार किया तथा निर्धारित तिथि पर वे मठ में आये तथा अत्यधिक आनन्द से प्रसाद पाया। जाते-जाते उन्होंने मुझे तथा मेरे सतीर्थ श्रीअनङ्ग मोहन ब्रह्मचारी (अब श्रीभक्तिमयूख भिक्षु महाराज) को अपने एक कार्यक्रम में आने का निमन्त्रण दिया। सौभाग्यवशतः हम दोनों उस कार्यक्रम में गये, श्रील स्वामी महाराज ने श्रीअनङ्ग मोहन को मृदङ्ग बजाने का आदेश दिया तथा कथा-कीर्त्तन के पश्चात् उन्होंने कृपापूर्वक अपने साथ प्रसाद पाने के लिये बैठाया।

आचार्य को सम्मान प्रदान करना

एक समय जब श्रील स्वामी महाराज चण्डीगढ़ इस्कॉन में आये, तब मैं उन्हें श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में आने हेतु निमन्त्रण देकर आया। उन्होंने मेरे निमन्त्रण को स्वीकार किया तथा निर्धारित तिथि को वे मठ में आये। मेरे सतीर्थ श्रीरामप्रसाद प्रभु ने उनके उद्देश्य से एक नूतन व्यास आसन अपने हाथ से बनाया किन्तु उन्होंने उस सिंहासन पर यह कहकर बैठने से मना कर दिया, "नये सिंहासन पर सर्वप्रथम मठ के आचार्य का ही बैठना उचित है।"

जब हमने श्रील स्वामी महाराज तथा उनके आश्रितजनों को प्रसाद परिवेशन किया तो उन्होंने बहुत प्रीति से भोजन किया तथा कहा, "आज बहुत दिनों के पश्चात् ऐसा प्रतीत हुआ मानो मैंने प्रसाद पाया है। कारण, मेरे शिष्य लोग अपनी ओर से तो मेरे लिये बहुत प्रकार की वस्तुएँ बनाते हैं, किन्तु इनके स्वाद और हमारे स्वाद में बहुत अधिक अन्तर है। ये लोग बहुत अधिक घी व्यवहार करते हैं, जो मुझे पचता नहीं। यदि कुछ समय मठ जैसा प्रसाद मिले तो शायद मैं कुछ अधिक समय इस जगत् में रह पाऊँगा।"

बाद में जब गुरु महाराज चण्डीगढ़ आये तो उन्होंने भी श्रीरामप्रसाद प्रभु द्वारा निर्मित व्यासासन पर यह कहकर बैठने से मना कर दिया, "जब मेरे गुरुभ्राता ने इस





सिंहासन को स्वीकार नहीं किया तब फिर मैं कैसे इस पर बैठ सकता हूँ। उन्हीं के वचनानुसार – 'इस पर इस मठ के आचार्य का बैठना ही उचित है' – मैं इस पर अपने गुरुदेव को विराजमान करा देता हूँ, वे ही इस मठ के वास्तविक आचार्य हैं।"

ऐसा कहकर श्रील गुरु महाराज ने श्रील प्रभुपाद के आलेख्य को ही वहाँ पर विराजमान करा दिया।

अर्थ स्वीकार करने में दायित्व अन्तर्निहित

श्रील स्वामी महाराज के अप्रकट लीला को प्रकाशित करने से कुछ समय पूर्व उन्हें हेनरी फोर्ड के पोते अल्फ्रेड फोर्ड ने जिसका दीक्षित नाम श्रीअम्बरीष दास है, उनके समक्ष अपनी इच्छा को प्रकाशित करते हुए कहा कि वह कुरुक्षेत्र में भगवद्गीता की शिक्षा हेतु विश्वविद्यालय बनाने के लिये सम्पूर्ण अर्थ व्यय करने के लिये प्रस्तुत हैं।

उसकी बात सुनकर श्रील स्वामी महाराज ने यह कहकर मना कर दिया, "मैं इस जगत् में अब और अधिक समय के लिये नहीं रहूँगा। यदि मैं तुमसे अर्थ ले लूँ तथा यदि उसे ठीक से भगवद् सेवा के उद्देश्य से व्यय न कर पाऊँ तो मुझे दोष लगेगा।"

अपने इस आचरण के द्वारा श्रील स्वामी महाराज ने हमें शिक्षा प्रदान की है कि हमें अन्यों के द्वारा प्रदत्त केवल मात्र उन्हीं वस्तुओं को ग्रहण करना चाहिये जिन्हें हम भगवद् सेवा में लगा सकें, अन्यथा उसमें दोष की आशङ्का है।

उनके अप्रकट के समय मेरी परिस्थिति

जिस समय श्रील स्वामी महाराज ने अपनी अप्रकट लीला प्रकाशित की, उस समय मैं श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ की ओर से कार्तिक मास में आयोजित की गयी उत्तर भारत परिक्रमा को सञ्चालित कर रहा था। मुझे उनके अप्रकट होने का सम्वाद समाचारपत्र के माध्यम से भगवान् कपिल देव तथा माता देवहूति के सम्वाद के स्थान सिद्धपुर, मातृ गया में प्राप्त हुआ। उस समाचारपत्र में लिखा था –

दस वर्ष के भीतर सम्पूर्ण विश्व को भलीभाँति हिलाकर रख देने वाले महापुरुष श्री ए॰ सी॰ भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज ने अप्रकट लीला प्रकाशित की है।

उनके समाधि कृत्य में उपस्थित होने की प्रबल इच्छा के रहने पर भी मैं अपने दायित्व के कारण वृन्दावन जाने में असमर्थ रहा किन्तु मेरे गुरुभ्राता मङ्गलनिलय ब्रह्मचारी (बाद में श्रीभक्तिहृदय मङ्गल महाराज) ने वृन्दावन जाने की इच्छा प्रकट की तो मैंने कोई आपत्ति नहीं की। उनकी सेवा को भी मैंने स्वयं ले लिया।

१९७८ ई॰ में श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज का विरह-महोत्सव इस्कॉन के भक्तों के द्वारा श्रीजगन्नाथ पुरी में आयोजित किया गया था। उसमें उन्होंने मेरे गुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज को सभापति बनाया था, गुरु महाराज ने अस्वस्थ होने पर भी अपने गुरुभ्राता के सम्बन्ध हेतु उस उत्सव में योगदान दिया था।



श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज की व्रजरज प्राप्ति

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित

बाल्यकाल में ही पारमार्थिक शिक्षाओं की प्राप्ति

श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज ने १८९६ ई॰ में कोलकाता के एक भक्त परिवार में जन्म ग्रहण किया था।

उनके पूर्वाश्रम के पिता ने, जिनका नाम श्रीगौर मोहन दे था, अपने बालक को श्रीअभय चरण दे नाम प्रदान किया था। उनके पिता गौड़ीय वैष्णव धर्म में दीक्षित थे। अभय चरण ने भी अपने पिता से श्रीगौर एवं श्रीकृष्ण-भक्ति के सम्बन्ध में अनेक शिक्षाएँ ग्रहण की। उन्होंने कोलकाता स्थित स्कॉटिश चर्च कॉलेज में दर्शनशास्त्र विषय में स्नातक की उपाधि अर्जित की। तत्पश्चात् अपने कर्मी जीवन में उन्होंने एक फार्मास्यूटिकल कम्पनी में डॉक्टर कार्तिक बसु की आमहर्स्ट स्ट्रीट में स्थित लेबोरेटरी में मैनेजर का पद ग्रहण किया। उस स्थान पर कुछ समय काम करने के पश्चात् उन्होंने स्वाधीन रूप से औषधि आदि बनाने का कार्य आरम्भ किया। १९२२ ई॰ में उनका विवाह हुआ। गृहस्थ आश्रम में रहते हुए १९३३ ई॰ में उन्होंने गौड़ीय वैष्णव आचार्य भास्कर जगद्गुरु परमाराध्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के श्रीचरणों का आश्रय ग्रहण किया। दीक्षा के उपरान्त उन्हें श्रील प्रभुपाद ने 'श्रीअभय चरणारविन्द दासाधिकारी' नाम प्रदान किया।

बृहद्-मृदङ्ग की सेवा का शुभारम्भ

१९४४ ई॰ में उन्होंने 'बैक टू गॉडहेड' नामक एक अंग्रेजी मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। यह पत्रिका वर्तमान समय में बहुत प्रचलित है। अनेक भाषाओं में लाखों प्रतियाँ प्रतिमाह विभिन्न देशों में भक्तों को प्रेरित होती हैं। इसके अतिरिक्त श्रीमद् स्वामी महाराज ने अंग्रेजी भाषा में अनेक ग्रन्थों को प्रकाशित किया है।

संन्यास ग्रहण

श्रीअभय चरणारविन्द दासाधिकारी ने १९५८ ई॰ में परमाराध्य प्रभुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के चरणाश्रित, श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के संस्थापकाचार्य नित्यलीला प्रविष्ट त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज के द्वारा त्रिदण्डि संन्यास ग्रहण किया तथा त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज के नाम से परिचित हुए। परवर्ती काल में उन्होंने अपना परिचय श्री ए॰सी॰ भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज के नाम से प्रदान किया।

वृन्दावन में वास

१९५९ ई॰ में श्रील स्वामी महाराज श्रीधाम वृन्दावन में श्रीराधा दामोदर मन्दिर में अवस्थान करने लगे। इस समय उन्होंने श्रीमद्भागवतम् के प्रथम दो स्कन्धों का

अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। गीता इत्यादि अन्य अनेक ग्रन्थों का अनुवाद भी साथ ही चल रहा था।

इस्कॉन की स्थापना

१९६५ ई॰ में ७० वर्ष की आयु में अति सामान्य धनराशि के साथ उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा की। सर्वप्रथम वे बॉस्टन शहर में रहे और फिर न्यूयॉर्क में आ गए। अमेरिका पहुँचने के एक वर्ष के पश्चात् मैनहटन में २६ सेकण्ड एवेन्यू के एक छोटे से किराए के घर में उन्होंने इस्कॉन की स्थापना की। टॉम्पकिन्स स्क्वेयर पॉर्क में जाकर, अपने हाथों से करताल बजाते हुए उन्होंने महामन्त्र का प्रचार आरम्भ किया। वहाँ दो युवक उनकी कथा के प्रति आकृष्ट होकर उनका शिष्यत्व ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हुए। यही दो युवक बाद में भवानन्द एवं जयपताका के नाम से परिचित हुए।

पृथ्वी पर सर्वत्र प्रचार

क्रमशः सज्जन वृन्द बड़ी संख्या में उनके प्रति आकृष्ट होने लगे। मात्र १२ वर्षों में ही पृथ्वी के प्रायः समस्त प्रान्तों में उनका प्रचार एवं प्रसार हो गया। अनेक शिक्षित एवं धनाढ्य नर-नारियों ने उनका आश्रय ग्रहण किया। एक के पश्चात् एक, पृथ्वी के विभिन्न प्रान्तों में अनेक प्रचार केन्द्रों, मठ-मन्दिरों की स्थापना हुई। वातावरण में सर्वत्र ही महामन्त्र की ध्वनि गुञ्जायमान होने लगी। कुछ समय पश्चात् अपने १२ शिष्यों के ऊपर उनके द्वारा स्थापित संस्था की परिचालना एवं धर्मप्रचार का दायित्व सौंपकर उन्होंने भगवान् के नित्य धाम की ओर प्रस्थान किया।

उनके अनुवादित संस्करण अति आनन्ददायक

श्रील स्वामी महाराज ने श्रीमद् कृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रभु द्वारा रचित श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ की प्रस्तुति में प्रथमतः बङ्गाली लिपि में मूल पयार, उसके पश्चात् अंग्रेजी भाषा में पयार का अक्षरान्तरण किया है। तत्पश्चात् पयार के प्रत्येक शब्द का अर्थ एवं अन्ततः पुनः सम्पूर्ण पयार का अंग्रेजी भाषा में जिस प्रकार निपुणतापूर्वक अनुवाद किया है वह गौड़ीय वैष्णव मात्र के लिए विशेष उल्लास का विषय हुआ है। अंग्रेजी भाषा भाषी समस्त भक्त इस ग्रन्थ को पाठ करने के साथ ही बङ्गाली भाषा की भी शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग प्राप्त कर रहे हैं तथा इसी कारण यह संस्करण अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है। यह ग्रन्थ अनेक खण्डों में प्रकाशित हुआ है।

उनके द्वारा श्रीगौर-लीला और श्रीकृष्ण-लीला के सम्बन्ध में लिखित समस्त ग्रन्थों को पाश्चात्य मनीषीवृन्द द्वारा प्रचुर स्वीकृति एवं सम्मान प्रदान किया गया है।

अत्यन्त गर्व का विषय

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारी के विग्रहों की सेवा अब सर्वत्र ही हो रही है तथा विभिन्न उत्सव यथा झूलन यात्रा, दोल-यात्रा एवं यहाँ तक कि श्रीजगन्नाथ, बलदेव एवं सुभद्राजी की रथयात्रा यूरोप

एवं अमेरिका जैसे देशों के विभिन्न प्रसिद्ध स्थानों में भी आयोजित हो रही है। यह हमारे लिए अत्यन्त गौरव का विषय है। हम भी अन्तःकरण से भगवत् चरणों में यही प्रार्थना करते हैं कि श्रीस्वामी महाराज के द्वारा प्रतिष्ठित समिति का सेवाकार्य और भी उत्साह के साथ सर्वाङ्ग सुन्दर रूप से परिचालित होता रहे।

श्रीवृन्दावनेश्वरी के चरणाश्रय की प्राप्ति का सौभाग्य

श्रील स्वामी महाराज (अपनी अप्रकट लीला से एक वर्ष पूर्व) पिछले वर्ष दोल पूर्णिमा के समय से ही अस्वस्थ लीला प्रकाश कर रहे थे किन्तु उस अवस्था में भी पाश्चात्य देशों में स्थापित अपने विभिन्न प्रचार केन्द्रों एवं मन्दिरों का परिदर्शन करने हेतु उन्होंने विदेश-यात्रा की, पिछले अगस्त मास में ही वह लन्दन गए थे। श्रीभगवत् इच्छा से सितम्बर मास के मध्य से ही उन्होंने श्रीवृन्दावन में वास करना आरम्भ किया था। वहीं पर उन्हें श्रीवृन्दावनेश्वरी की कृपा प्राप्त हुई।

श्रीपाद कृष्णदास बाबाजी महाराज, जो श्रील स्वामी महाराज के देहत्याग के समय वृन्दावन धाम में ही उपस्थित थे, २० नवम्बर को कोलकाता स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में आये थे। हमने उन्हीं के मुख से यह श्रवण किया कि श्रीपाद स्वामी महाराज के (अप्रकट होने के पूर्व बहुत समय तक) शिष्यगणों ने उनकी शैय्या के चारों ओर अवस्थित होकर अविश्रान्त भाव से हरिनाम का उच्चारण किया। यद्यपि श्रील स्वामी महाराज ने वार्त्ता करना बन्द कर दिया था परन्तु अन्तिम मुहूर्त्त तक उनका ओष्ठ स्पन्दन कर रहा था। श्रीपाद वन महाराज, श्रीकृष्ण दास बाबाजी महाराज इत्यादि प्रमुख वैष्णवगण जब उनके दर्शन करने के लिए गए तथा उनके शिष्यगणों ने उनके कानों के समीप ऊँचे स्वर में आगन्तुकों का परिचय प्रदान किया, उस समय श्रील स्वामी महाराज ने अपने हाथों को अपने मस्तक तक उठाकर उनके प्रति मर्यादा ज्ञापन की। अप्रकट काल के अन्तिम मुहूर्त्त तक उनकी चेतना लुप्त नहीं हुई थी।

उनकी अप्रकट लीला के पश्चात् भी उनके शिष्य उच्च स्वर में समस्त रात्रि नाम-कीर्त्तन करते रहे। मङ्गलवार शुक्ला पञ्चमी तिथि को प्रातः काल उनको सुसज्जित पालकी में बैठाकर उच्च नाम-सङ्कीर्त्तन के साथ श्रीधाम वृन्दावन के सुप्रसिद्ध सप्त देवालयों की प्रदक्षिणा कराई गई। प्रत्येक देवालय के अध्यक्ष गोस्वामी ने प्रसादी माला एवं चन्दन के द्वारा उनके प्रति वैष्णव आचार्योचित यथायोग्य मर्यादा प्रदर्शित की। इसके पश्चात् उन्हें उन्हीं के रमणरेती स्थित श्रीकृष्ण बलराम मन्दिर में लाकर शास्त्र विधि के अनुसार समाधि प्रदान की गई।

उनकी अद्वितीय उपलब्धि

अगले दिन सन्ध्या के समय श्रीमद्भागवतम् का पाठ करते हुए श्रीआचार्य देव श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने अपने सतीर्थ श्रीस्वामी महाराज के उपलक्ष्य में विरह वेदना ज्ञापन करते हुए उनके द्वारा अति अल्प समय में ही समस्त विश्व

में चैतन्य वाणी के विपुल प्रचार-प्रसार की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने यह भी वैशिष्ट्य प्रकाश किया कि श्रील स्वामी महाराज के विदेशी शिष्यगण अपनी जन्म से अभ्यस्त वेषभूषा, आहार इत्यादि की पद्धति, आचार-व्यवहार आदि समस्त स्वभावों का परिवर्त्तन कर गौड़ीय वैष्णवोचित दीन-वेष-धारण, भगवद्-प्रसादग्रहण, कण्ठ में तुलसी माला, हाथ में जप माला एवं शरीर के समस्त अङ्गों पर गोपीचन्दन-तिलक-धारण आदि जितने भी वैष्णव सदाचार हैं उनको ग्रहण कर, बिना किसी सङ्कोच के निरन्तर महामन्त्र के कीर्त्तन में रत रहते हैं तथा भक्ति-ग्रन्थों का अनुशीलन एवं श्रीविग्रहों के अर्चन आदि क्रियाओं में नियुक्त होते हैं, यह अत्यन्त आनन्द का विषय है।

श्रील प्रभुपाद के मनोऽभीष्ट को पूर्ण करने के लिए उनके अथक प्रयास

श्रीधाम मायापुर में उनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीमायापुर चन्द्रोदय मन्दिर में प्रायः २५० फीट ऊंचे मन्दिर के निर्माण की विशेष परिकल्पना हुई है। हम आशा करते हैं कि उनके सुयोग्य शिष्य अति अल्प समय में ही उनके गुरुदेव की इस इच्छा को पूर्ण करने में समस्त प्रकार से यत्नशील होंगे।

श्रीमन्महाप्रभु की भविष्यवाणी थी-

पृथ्वीते आछे जत नगरादि ग्राम
सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम

अर्थात् पृथ्वी पर सर्वत्र ही, प्रत्येक नगर एवं ग्राम में, श्रीमन्महाप्रभु के नामों का प्रचार होगा।

श्रीगौर के निजजन श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रील प्रभुपाद ने विदेशों में श्रीचैतन्य-वाणी के प्रचार के सम्बन्ध में विशेष आकांक्षा प्रस्तुत की थी एवं भविष्यवाणी भी की थी। श्रीस्वामी महाराज ने उनके उसी मनोऽभीष्ट को पूर्ण करने के लिए अतिविशिष्ट प्रयत्न किया है।

श्रीचैतन्यवाणी (वर्ष १७, संख्या १०) में प्रकाशित एक लेख से अनुवादित

श्रीमद् कृष्णदास बाबाजी महाराज



दीक्षा-मन्त्र प्राप्त करना

श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रायः किसी वरिष्ठ भक्त के द्वारा संस्तुति करने पर ही किसी नए साधक को दीक्षा-मन्त्र आदि प्रदान करते थे अन्यथा नहीं। दीक्षा-मन्त्र प्रदान करने से पूर्व दीक्षार्थी भक्तों के पूर्वाश्रम के नामों को एक रजिस्टर में लिखा जाता था तथा श्रील प्रभुपाद उन्हीं नामों के समक्ष ही दीक्षार्थी को दीक्षा-उपरान्त प्रदान किए जाने वाले नवीन वैष्णवोचित नाम को निज हस्त से लिख देते थे।

जिस दिन श्रील बाबाजी महाराज की दीक्षा होनी थी, श्रील प्रभुपाद ने उनके पूर्वाश्रम के नाम के समक्ष 'श्रीसर्वेश्वर दास ब्रह्मचारी' नाम लिखकर रखा था। जब वह मन्त्र दीक्षा के उद्देश्य से श्रील प्रभुपाद के कक्ष में उपस्थित हुए तब एक भक्त ने भूलवश उनसे कह दिया, "आपकी आज के दिन दीक्षा नहीं होगी।" तब उन्होंने उत्तर दिया, "मेरा जो अधिकार है, उसके अनुरूप ही सबकुछ होना उचित है। अत्यन्त कृपापूर्वक जो हरिनाम मुझे प्राप्त हुआ है, उसी को भलीभाँति धारण कर पाऊँ, मेरे लिये यही यथेष्ठ है।"

श्रील प्रभुपाद ने उनकी बात सुनकर उन्हें दीक्षा तो प्रदान की किन्तु उनके पूर्व लिखित श्रीसर्वेश्वर दास ब्रह्मचारी नाम को परिवर्त्तित करके उसे श्रीस्वाधिकारानन्द (अपने अधिकार में ही आनन्द का अनुभव करने वाले) ब्रह्मचारी कर दिया।



"मेरा जो अधिकार है,
उस के अनुरूप ही
सबकुछ होना उचित है।"

सादा जीवन, उच्च विचार

श्रील बाबाजी महाराज 'सादा जीवन, उच्च विचार' इस वाक्य के जीवन्त उदाहरण स्वरूप थे। वे अपने ऊपरी अङ्ग पर फतुवा (दो जेब वाली कपड़े की सिली हुई बनियान) तथा निम्न भाग में घुटने से ऊपर तक का एक छोटा कपड़ा पहनते थे। सर्दी के दिनों में एक साधारण कम्बल को ओढ़कर ही काम चला लेते थे। यदि उन्हें कभी कोई कुछ उपहार देता तो उसे कभी भी लौटाते नहीं, सब स्वीकार कर लेते किन्तु उसमें से अपने लिये कुछ भी व्यवहार नहीं करके सब वृन्दावन में वैष्णवों में वितरित कर देते।

श्रील बाबाजी महाराज कहते थे, "श्रीनारद ऋषि ने अपने व्याध शिष्य मृगारि को निर्देश दिया था कि तुम अपने धनुष-बाण को तोड़ दो, अपनी जीविका के उपार्जन की चिन्ता को त्याग दो, केवल भजन करो बाकि सब व्यवस्था मैं कर दूँगा।" श्रीनारद ऋषि यह कहकर उसे भजन का उपदेश देकर चले गये, किन्तु जब छह मास के उपरान्त वे अपने शिष्य मृगारि के निकट आये, तब मृगारि ने उनसे कहा, 'गुरुदेव! इतनी अधिक वस्तुएँ मत भेजा कीजिए।' उसके उत्तर में देवर्षि ने उनसे कहा था, 'तुम्हें जितनी आवश्यकता हो तुम उतनी वस्तुओं का व्यवहार करना तथा जो अधिक हो, उसे अन्यों में वितरित कर देना।'

"इसी उपाख्यान की शिक्षा को हृदय में धारण करते हुए मैं लोगों के द्वारा दी गयी वस्तुओं को मेरे गुरुपादपद्म की कृपास्वरूप उनके ही द्वारा भेजी गयी वस्तु के रूप में स्वीकार करता हूँ। मैं कभी भी यह नहीं मानता कि अमुक व्यक्ति मुझे कुछ दे रहे हैं, बल्कि मैं विचार करता हूँ कि मेरे गुरुदेव इनके माध्यम से अर्थात् इन्हें पोस्टमैन के रूप में स्वीकार करके इन्हें मेरे पास भेज रहे हैं। अतएव जिन वस्तुओं की मुझे आवश्यकता होती है, मैं उन्हें रख लेता हूँ तथा जिन वस्तुओं से मुझे कोई प्रयोजन नहीं, मैं उन्हें अन्य भक्तों में वितरित कर देता हूँ।"

उनकी स्वच्छन्द अनासक्ति

एक समय किसी एक व्रजवासी ने श्रील बाबाजी महाराज को रमणरेती, वृन्दावन में एक भूमि दान दी। बाबाजी महाराज ने कुछ भक्तों की सहायता से वहाँ पर निर्माण कार्य प्रारम्भ कराने के उद्देश्य से ईंट, रोड़ी, बालू, पत्थर, सीमेन्ट आदि की व्यवस्था की। भित्ति स्थापन करने से एक-दो दिन पूर्व जब वे उस स्थान पर गये तब दान करने वाले व्यक्ति के भाई ने बाबाजी महाराज से आकर कहा, "मेरे भाई ने आपको जो स्थान दान में दिया है, वह यह वाला नहीं, बल्कि इसके साथ वाला ही दूसरा स्थान है। आप अपनी भजन-कुटीर वहाँ पर बना लीजिए।"

उस व्यक्ति की बात सुनकर श्रील बाबाजी महाराज ने उनसे कहा, "भाई, मुझे भजन-कुटीर की कोई आवश्यकता नहीं है, मेरे गुरुभ्राताओं के पास बहुत से स्थान हैं तथा वे सभी अत्यधिक प्रीतिपूर्वक मुझे

"सांसारिक विषय का स्वभाव ही ऐसा है कि वह भाई-भाई में भी झगड़ा करा देता है।"



अपने श्रीचरणों में आश्रय प्रदान करते हैं। जब अपना स्थान निर्माण करने के प्रथम दिन से ही असुविधा दिखायी दे रही है तब भविष्य में होने वाले कष्टों का मैं भलीभाँति अनुमान लगा सकता हूँ। यह स्थान तुम ही रख लो। हरे कृष्ण!"

श्रील बाबाजी महाराज जब ऐसा कहकर वहाँ से चल दिये तब उस व्यक्ति ने कहा, "आप कम से कम अपनी एकत्रित निर्माण सामग्री यथा पत्थर, ईंट आदि को तो ले जाने की कोई व्यवस्था कर लीजिए, यह वस्तुएँ आपके अन्य किसी स्थान पर उपयोग में आ जायेंगी।"

श्रील बाबाजी महाराज ने उत्तर दिया, "उन्हें भी तुम ही रख लो। यह भी अब तुम्हारे हैं।"

उन्होंने जब मुझे उपरोक्त घटना के विषय में बताया तब कहा, "विषय का स्वभाव ही ऐसा है कि वह भाई-भाई में भी झगड़ा करा देता है।"

श्रील बाबाजी महाराज ऐसे अनासक्त थे कि एक बार भी दान देने वाले व्यक्ति से भेंट करना तक उचित नहीं समझा, उसे समय की व्यर्थता ही माना।

स्वयं निष्किञ्चन रहकर विराट सेवा-कार्य की प्रेरणा प्रदान करना

एक समय श्रील बाबाजी महाराज कोलकाता में श्रीबनवारी लाल सिंहानिया के घर पर रहे, उन्होंने वहाँ सम्पूर्ण रात्रि कीर्त्तन किया। प्रातःकाल सिंहानियाजी की भतीजी ने अपने पिता से कहा, "मैंने देखा जब बाबाजी महाराज भाव-विभोर होकर कीर्त्तन कर रहे थे तब श्रीमती राधारानी उनके कीर्त्तन की ताल पर निरन्तर नृत्य कर रही थी।"

प्रातःकाल जब श्रीबनवारी लाल सिंहानियाजी बाबाजी महाराज को सेवास्वरूप कुछ भेंट देना चाहते थे, तब श्रील बाबाजी महाराज ने उनसे कहा, "मुझे किसी वस्तु की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि तुम्हारी सचमुच में कुछ करने की अभिलाषा है तो श्रीजगन्नाथ पुरी स्थित मेरे गुरुपादपद्म की आविर्भाव-स्थली पर, जिसे कि श्रीमाधव महाराज ने संग्रह किया है, एक मन्दिर बनवा दो।"

श्रील बाबाजी महाराज के द्वारा कहे गये वचनों को सुनकर श्रीसिंहानियाजी क्रन्दन करने लगे। उनकी भाभी ने जब उनके क्रन्दन का कारण पूछा तब उन्होंने सब बात बतायी और कहा, "पिताजी और हम दो भाई, कुल मिलाकर तीन जन क्या एक मन्दिर को नहीं बनवा पायेंगे?" तब परस्पर परिवार के सदस्यों ने परामर्श करके स्थिर किया, "हम अवश्य ही मन्दिर बनवायेंगे।"

इस प्रकार सम्पूर्ण रूप से निष्किञ्चन रहने वाले, माधुकरी करने वाले श्रील बाबाजी

महाराज के उत्साह तथा प्रेरणा प्रदान करने मात्र से ही इतना विराट सेवा-कार्य पूर्ण हो गया।

गुरुभ्राता का हर्षोल्लास के साथ अभिवादन करना

१९५६ ई॰ में गुरु महाराज ने श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ की श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा का आयोजन किया था तथा वे स्वयं कोलकाता से अनेक भक्तों के साथ रिजर्व बोगी के द्वारा मथुरा पहुँचे थे। श्रील कृष्णदास बाबाजी महाराज नन्दग्राम पावन सरोवर पर श्रील सनातन गोस्वामी की भजन कुटी पर स्थित अपने वास स्थान से श्रीदीनबन्धुदास बाबाजी महाराज के साथ स्टेशन पर उपस्थित हुए थे। जब गुरु महाराज मथुरा रेलवे-स्टेशन पर भक्तों के साथ उतरे तब बाबाजी महाराज ने गुरु महाराज का अति सुन्दर मृदङ्ग बजाकर सङ्कीर्त्तन के माध्यम से अत्यधिक हर्षोल्लास के साथ में स्वागत किया था।

वे कहते थे, "श्रील प्रभुपाद के द्वारा पुनः प्रवर्त्तित श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा की परिपाटी को यत्नपूर्वक सरंक्षित रखने की अभिलाषा के कारण श्रीपाद माधव महाराज वन्दनीय हैं।"

हृदयस्पर्शी कीर्त्तन

१९६२ ई॰ में गुरु महाराज हरिद्वार कुम्भ मेले की समाप्ति पर सङ्कीर्त्तन पार्टी के साथ देहरादून में प्रचार के उद्देश्य से गये। उस समय श्रीचैतन्य मठ के तत्कालीन आचार्य भी प्रचार के उद्देश्य से वहाँ पधारे थे। वहीं देहरादून में ही श्रील कृष्णदास बाबाजी महाराज ने श्रीचैतन्य मठ की पार्टी को छोड़कर अपना छोटा-सा बिस्तर लेकर गुरु महाराज से गीता भवन में आकर भेंट की। जब श्रील बाबाजी महाराज वहाँ पहुँचे, गुरु महाराज ने उस समय ही अपना प्रातःकालीन प्रवचन समाप्त किया था, उन्हें आया देखकर गुरु महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुये एवं उनसे कहा, "बाबाजी महाराज! मधुरेण समापयेत्। आप अपने मधुर कीर्त्तन के द्वारा इस सभा को विश्राम दीजिए।" गुरु महाराज के कहने पर बाबाजी महाराज ने तब "सखे! कलय गौरमुदारम्" कीर्त्तन का गान प्रारम्भ किया।

उसी समय मेरे सतीर्थ श्रीभक्तिप्रसाद पुरी महाराज ने मुझसे कहा, "यहाँ पर सखे! कलय गौरमुदारम् जैसा संस्कृत कीर्त्तन नहीं चलेगा। बताओ, किसे समझ आयेगा ऐसे वाला कीर्त्तन? यहाँ पर तो 'राधे-राधे गोविन्द, गोविन्द राधे' आदि जैसे नाम-कीर्त्तन ही चलेंगे।"

मैंने उनकी बात सुनकर कोई प्रतिक्रिया नहीं की अपितु मौन धारण कर लिया। जब श्रील बाबाजी महाराज ने कीर्त्तन को हरे कृष्ण महामन्त्र के साथ समाप्त किया तब गीता भवन के प्रधान, कानों में बालियाँ पहनने वाले एक वृद्ध पञ्जाबी व्यक्ति ने खड़े होकर, "सोहणा, सोहणा!" कहकर उनका अभिवादन किया।

मैंने श्रीभक्तिप्रसाद पुरी महाराज से पूछा, "यह वृद्ध व्यक्ति क्या कह रहा है?"

उन्होंने उत्तर दिया, "सोहणा का अर्थ है- अति सुन्दर, अति सुन्दर।"

तब मैंने श्रीपुरी महाराज से पूछा, "आप



तो कह रहे थे कि यहाँ पर बाबाजी महाराज का कीर्त्तन नहीं चलेगा, उसे कोई नहीं समझेगा। यदि यही सत्य होता तो फिर यह वृद्ध व्यक्ति 'सोहणा, सोहणा' क्यों कहता, यह व्यक्ति पञ्जाबी है या नहीं?"

उन्होंने कहा, "यह व्यक्ति तो पञ्जाबी है किन्तु आपके प्रश्न का उत्तर मेरे पास नहीं है।"

अगले दिन गुरु महाराज की कथा के प्रारम्भ होने से पूर्व जब गुरु महाराज ने एक अन्य मधुर कीर्त्तन करने वाले व्यक्ति को कीर्त्तन करने के लिए कहा तो उसके कीर्त्तन आरम्भ करने के दो मिनट के पश्चात् ही वही वृद्ध पञ्जाबी व्यक्ति उठकर खड़ा हो गया तथा हाथ जोड़कर गुरु महाराज से प्रार्थना करने लगा, "बाबाजी महाराज को गाने के लिये कहिए, तभी अच्छा होगा। समझ नहीं आने पर भी उनका गान हृदय को स्पर्श करता है।"

उनकी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए गुरु महाराज ने श्रील बाबाजी महाराज को ही कीर्त्तन करने के लिये कहा। बाबाजी महाराज ने 'नमामि नन्दनन्दनम्', 'राधे जय जय माधव दयिते', 'कृष्ण देव भवन्तं वन्दे' आदि संस्कृत के कीर्त्तनों का गान किया। सभी श्रोतागण बहुत प्रसन्न हुए।

मैंने अपने गुरुभ्राता श्रीभक्तिप्रसाद पुरी महाराज से कहा, "बाबाजी महाराज के कीर्त्तन को सुनकर संस्कृत नहीं समझने वाले भक्तों के द्वारा भी उनके कीर्त्तन को पसन्द करने के मुझे तीन कारण समझ आते हैं। प्रथम, भगवान् ने स्वयं कहा है, 'मद् भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदः' अर्थात् मेरे भक्त जिस स्थान पर मेरा गुणगान करते हैं, मैं वहीं पर वास करता हूँ। बाबाजी महाराज अन्याभिलाषिता शून्यम् होकर अर्थात् अन्य समस्त अभिलाषाओं की गन्ध मात्र से भी रहित होकर आन्तरिक हृदय से सुमधुर कीर्त्तन का गान करते हैं तथा इस प्रकार आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन अर्थात् एकमात्र श्रीकृष्ण की प्रसन्नता हेतु एक अनुकूल क्रिया में प्रयुक्त होते हैं। उनका यह कीर्त्तन, आनन्दमय वस्तु भगवान् को इसी स्थान पर अवतीर्ण कराकर इसे ही उनका वास-स्थान श्रीगोलोक वृन्दावन बनाने में पूर्ण समर्थ है। आनन्दमय वस्तु के स्वयं उपस्थित होने पर सभी को उस आनन्द की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अनुभूति न हो, ऐसा कैसे सम्भवपर है?

"द्वितीय, शास्त्र में वर्णन आता है-

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम्।
भक्तया सञ्जातया भक्तया विभ्रत्युत्पुलकां तनुम्॥

श्रीमद्भागवतम् (११.३.३१)

[अघासुर का वध करने वाले श्रीहरि का परस्पर स्मरण करते हुये तथा स्मरण कराते हुये साधन भक्ति का आचरण करने से उनके हृदय में प्रेमाभक्ति का उदय होता है, जिससे वे पुलकित हो जाते हैं।]

"इस श्लोकानुसार भक्तिमय हृदय से ही अन्य के हृदय में भक्ति का सञ्चार हो सकता है। यद्यपि भाषा हृदय के भावों को व्यक्त करने हेतु आवश्यक है किन्तु जिसका हृदय भक्ति से रहित है, वह मात्र भाषा

के ज्ञान द्वारा दूसरों के हृदय में भक्ति का सञ्चार नहीं कर सकता। एकमात्र हृदय में स्थित शुद्ध भक्ति के द्वारा ही व्यक्ति के शब्द भी दिव्य शक्ति को प्राप्त करते हैं। तभी श्रोताओं के हृदय में भक्ति सञ्चारित होती है एवं तभी श्रोता भक्तिमयी सेवा को करने के लिये प्रेरित होता है।

"तृतीय, बाबाजी महाराज का कीर्त्तन श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के द्वारा रचित कीर्त्तन 'हृदय हइते बले, जिह्वार अग्रेते चले, शब्द रूपे करे नृत्य अर्थात् जब कोई हृदय से कीर्त्तन करता है तब कृष्ण शब्द के रूप में उसकी जिह्वा पर आविर्भूत होकर नृत्य करते हैं' का मूर्त्तिमान स्वरूप होने के कारण सभी के हृदय को स्पर्श करने वाला है।

मिथ्या-अभिमान से सर्वथा रहित

एक समय व्रजमण्डल परिक्रमा करते-करते जब हमारी यात्रा-पार्टी श्रीब्रह्माण्ड घाट पर उपस्थित थी तब श्रील बाबाजी महाराज ने वहीं पर आकर परिक्रमा में योगदान दिया। उस समय यात्रियों के रहने के लिये उचित व्यवस्था करने का सेवा-दायित्व मुझ पर था एवं मैं स्वयं साधारण सी कुटिया जैसे स्थान पर ठहरा था। मेरे साधारण से स्थान को देखकर बाबाजी महाराज ने उसे अपने भजन के अनुकूल जानकर वहीं पर मेरे बिस्तर के समीप ही अपना बिस्तर लगा दिया।

उन्हें ऐसा करते देख मुझे तो बहुत सङ्कोच का अनुभव हुआ। मैं मन में विचार करने लगा, "ये तो गुरुवर्ग हैं, सम्माननीय हैं, इनके साथ किसी सुपरिचित साथी के समान एक ही साथ रहना तो उचित नहीं होगा।" अपने हृदय की बात निष्कपट रूप से मैंने विनम्रतापूर्वक श्रील बाबाजी महाराज से कही, "मैं रात्रि के समय पहरा देने वालों के निरीक्षण हेतु बहुत बार उठता हूँ। आपको उसके द्वारा असुविधा हो सकती है। कृपया मुझे आपके ठहरने के लिये इससे उचित स्थान की व्यवस्था करने दीजिये।"

उन्होंने कहा, "नहीं, नहीं, मुझे कोई असुविधा नहीं होगी, तुम निःसङ्कोच होकर अपना सेवा-कार्य करना, मेरे लिये तनिक भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।"

उन दिनों उनके सङ्ग वास करते हुए मैंने देखा कि रात्रि में जितनी बार भी मैं आया-गया, श्रील बाबाजी महाराज सदैव अपनी मच्छरदानी में बैठे-बैठे सम्पूर्ण रात्रि हरिनाम महामन्त्र करते थे। किसी भी भक्त को उनके हरिनाम करने से किसी प्रकार की तनिक भी असुविधा न हो, इसलिए श्रील बाबाजी महाराज अत्यधिक मन्द स्वर से हरिनाम करते थे, वह सदैव सभी भक्तों की सुविधा-असुविधा की चिन्ता-भावना के विषय में अत्यन्त संवेदनशील थे।

उनका स्वाभाविक दैन्य एक आदर्श स्वरूप

श्रील बाबाजी महाराज समस्त परिस्थितियों में सदैव समभाव में रहते थे। वह किसी के मुख से अपनी प्रशंसा श्रवण करके उबलते हुए दूध की भाँति अथवा गुब्बारे की भाँति फूल नहीं जाते थे तथा किसी के द्वारा निन्दा करने पर आगबबूला अथवा उद्विग्न नहीं होते थे। दोनों ही अवस्थाओं

में अपने मुख से अन्य कोई भी शब्द उच्चारण नहीं करके केवल 'हरे कृष्ण' कहकर ही आगे बढ़ जाते थे।

एक समय उनके किसी एक गुरुभ्राता ने उन्हें एक पत्र द्वारा बहुत भला-बुरा लिखकर भेजा, भाषा भी अवैष्णवीय व्यवहार की। उस पत्र के उत्तर में श्रील बाबाजी महाराज ने लिखा, "वैष्णव ठाकुर! आपने जो लिखा है वह वास्तव सत्य है। इस पत्र के द्वारा मैं आपकी मेरी प्रति प्रीति का ही दर्शन कर रहा हूँ। आप पूर्व में मेरी जो प्रशंसा करते थे वह मुझे उत्साहित करने के लिये करते थे किन्तु इस पत्र के माध्यम से आपने मुझ पर निष्कपट कृपा की है।"

श्रील बाबाजी महाराज का स्वाभाविक दैन्य हम सबके लिए परम आदर्श स्वरूप है।

अजातशत्रु

श्रील बाबाजी महाराज अजातशत्रु थे अर्थात् उन्होंने कदापि किसी को भी अपना शत्रु नहीं माना। यद्यपि वे सबसे अधिक श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिविलास तीर्थ गोस्वामी महाराज तथा गुरु महाराज के निकट रहते थे तथापि वे अपने किसी भी गुरुभ्राता के निकट जाने में लेशमात्र भी सङ्कोच नहीं करते थे।

श्रील बाबाजी महाराज एवं गुरु महाराज का सम्बन्ध अत्यन्त प्रीतियुक्त तथा घनिष्ठ था। वे गुरु महाराज को पोस्टकार्ड के माध्यम से जब भी पत्र लिखते थे, सदैव प्रारम्भ में "परम कारुणिक श्रीपाद माधव महाराज" कहकर सम्बोधित करते थे। उनका सम्पूर्ण पत्र दो-तीन वाक्यों से अधिक नहीं होता था। उनके वार्त्तालाप तथा पत्र आदि को देखकर स्वतः यह दृढ़ातिदृढ़ भाव से स्फुरित होता था कि वे जागतिक किसी भी वार्त्तालाप को करने में सम्पूर्णतः उदासीन हैं।

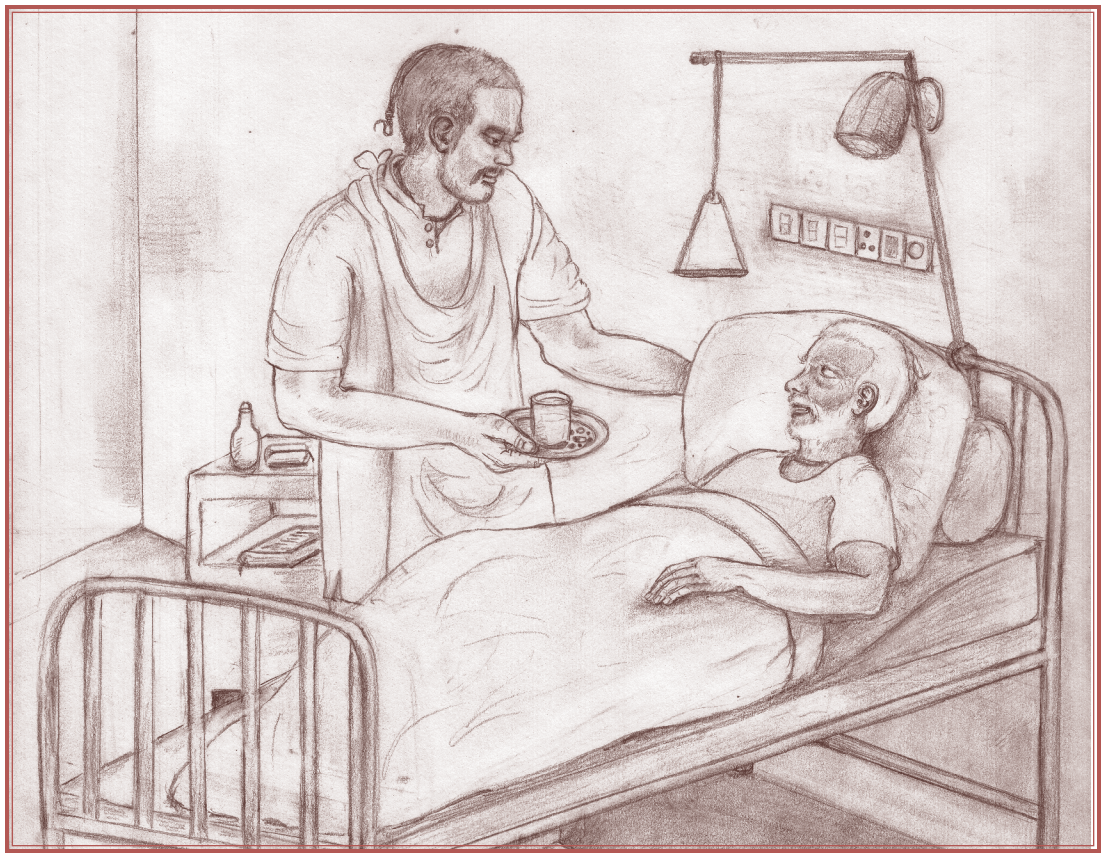
गुरु महाराज की अप्रकट लीला के समय कीर्त्तन करना

श्रील बाबाजी महाराज का सर्वत्र, सदैव कीर्त्तन करके कृष्ण-नाम-रस पान करना सुप्रसिद्ध था। उनका श्रीकृष्ण नाम महामन्त्र कीर्त्तन करने में अत्यधिक आग्रह था एवं किसी के द्वारा भी महामन्त्र का कीर्त्तन करने पर वे उल्लसित हो उठते थे, उनके नेत्र तथा मुख प्रफुल्लित हो जाते थे।

गुरु महाराज द्वारा अप्रकट लीला प्रकाशित करने के कुछ दिन पूर्व ही श्रील बाबाजी महाराज कोलकाता श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में आ गये थे तथा वे प्रतिदिन गुरु महाराज के निकट बैठकर भाव-विभोर होकर कीर्त्तन करते थे। गुरु महाराज के अप्रकट होने से पूर्व रात्रि में उन्होंने गुरु महाराज की भजन कुटीर से संलग्न गौड़ीय पुस्तकालय (लाइब्रेरी) वाले कक्ष में सम्पूर्ण रात्रि विरह विह्वल हरि-कीर्त्तन किया।

इस बात को श्रवण करके श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज ने कहा था, "मेरी भी अभिलाषा है कि जब मैं इस जगत् से जाऊँ तब नाम-सिद्ध महात्मा श्रीकृष्णदास बाबाजी महाराज का कीर्त्तन श्रवण करते-करते ही जाऊँ।"

गुरु महाराज के श्रीचरणाश्रित शिष्यों को



निराश्रित देखकर श्रील बाबाजी महाराज ने हमारे प्रति असीम स्नेह का प्रदर्शन किया तथा श्रीगुरु-गौराङ्ग की वाणी के प्रचार में हमें हृदय से उत्साह प्रदान किया था।

कृपापूर्वक मुझे अपनी सेवा प्रदान करना

एक समय श्रील बाबाजी महाराज ने अस्वस्थ लीला प्रकाश की। उन्हें दिल्ली के एक अस्पताल में भर्ती कराया गया। मैं उनकी सेवा करने के लिये कुछ दिन उनके निकट रहा। जब मुझे किसी अन्य आवश्यक सेवा के उद्देश्य से वहाँ से जाना था तब मैंने अपने सतीर्थ श्रीनवीनमदन ब्रह्मचारी को उनकी सेवा में नियुक्त किया।

जब मैं उस सेवा-कार्य को सम्पूर्णकर पुनः श्रील बाबाजी महाराज के निकट पहुँचा तब उन्होंने मुझसे अत्यधिक धीमे स्वर में कहा, "तुम्हारे द्वारा सेवा करने पर मुझे कोई सङ्कोच का अनुभव नहीं होता, मुझे अन्यों की अपेक्षा तुम्हारे द्वारा की गयी सेवा की परिपाटी ही पसन्द है।"

इस प्रकार किसी से भी अपनी सेवा नहीं करवाने वाले श्रील बाबाजी महाराज ने अस्वस्थ लीला का अभिनय कर मुझे अपनी सेवा प्रदान करके मेरा अत्यधिक उपकार किया।



श्रीमद् कृष्णदास बाबाजी महाराज का महिमामृत

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित

नाम-सिद्ध

श्रीमद् कृष्णदास बाबाजी महाराज का आविर्भाव एक उच्च शिक्षित सम्भ्रान्त वैद्यकुल में हुआ था। उन्होंने ढाका विश्वविद्यालय से कला-स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त प्रायः १९२५ ई॰ अथवा १९२६ ई॰ में परमाराध्य श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय ग्रहण किया। उनका श्रीगुरु द्वारा प्रदत्त नाम था- श्रीस्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी।

मठ में दिवा-रात्रि नाम-भजन में नियुक्त रहने के प्रति उनका प्रगाढ़ अनुराग आरम्भ से ही सर्वविदित है। वे अपूर्व स्मरणशक्ति के धनी थे। जितनी स्तव-स्तुतियों का वे उच्चारण करते थे, उन्हें सुनकर हम आश्चर्यचकित रह जाते थे, ऐसा प्रतीत होता था मानो एक मास पर्यन्त बिना रुके दिवा-रात्रि उच्चारण करने से भी वे स्तव-स्तुतियाँ पूर्ण नहीं होंगी। उनको श्रीकृष्णकर्णामृत, श्रीमद्भावतम् में से रासपञ्चाध्याय, ब्रह्माजी का स्तव, स्तवावली, स्तवमाला के अनेक स्तव, विरुदावली, विलाप-कुसुमाञ्जलि इत्यादि स्तुतियाँ कण्ठस्थ थीं। वे प्रतिदिन नियमपूर्वक इन स्तुतियों का पाठ करते थे एवं एक लाख हरिनाम करते थे। पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिहृदय वन महाराज कहते थे कि वे 'नाम-सिद्ध' हैं। उनका संस्कृत उच्चारण भी अत्यन्त सुन्दर एवं सुस्पष्ट था। उनके कण्ठ का स्वर भी अति मनोरम था। वे मृदङ्ग-वादन में भी सुनिपुण थे।

तर्क करने में सर्वथा उदासीन

श्रील बाबाजी महाराज का वैष्णवोचित दैन्य एवं वैराग्य एक आदर्श स्वरूप था। परम पवित्र चरित्र के धनी श्रील महाराज क्रोध, हिंसा, द्वेष आदि से पूर्णतया रहित थे। उनके प्रति क्रोध प्रकाशित करते हुए यदि उनसे कोई कुछ कहता तब उसे सुनकर वे 'हरे कृष्ण' कहते हुए हँस पड़ते। किसी

के साथ तर्क करने में वे कभी भी प्रवृत्त नहीं होते थे।

भक्तिदेवी की कृपा के पात्र

शास्त्र कहते हैं, "कृष्णभक्ते कृष्णगुण सकलि सञ्चरे अर्थात् श्रीकृष्ण अपने भक्त में अपने समस्त गुणों का सञ्चार कर देते हैं।" यह श्रील बाबाजी महाराज के चरित्र में सर्वदा ही दृश्यमान था। वे समस्त गुणों की साम्राज्ञी भक्तिदेवी के परम कृपापात्र थे। सर्वसद्गुण सम्पन्न उनमें समस्त देवताओं का निवास था। उनके श्रीमुख से सदा ही हरिनाम उच्चारित होता था।

अजातशत्रु

प्रायः समस्त मठवासी ही श्रील बाबाजी महाराज से प्रीति करते थे। श्रील भक्तिदयित माधव महाराज का उनके प्रति विशेष अनुराग था। श्रील बाबाजी महाराज भी उनके स्नेह से आकृष्ट होकर उनके विभिन्न मठों में अवस्थान करते थे तथा विभिन्न उत्सवों एवं परिक्रमा आदि में योगदान देकर उनको सुख प्रदान करते थे।

नन्दग्राम में अपनी भजनकुटीर में निवास करते हुए अपनी अप्रकटलीला प्रकाशित करने के पूर्व भी वे हमारे श्रीवृन्दावनस्थ मठ में ही अवस्थान कर रहे थे। श्रीधाम-मायापुर स्थित आकर मठराज श्रीचैतन्य मठ में परमाराध्य प्रभुपाद की भजनकुटीर भक्तिविजय भवन तीसरे तल पर स्थित एक छोटा सा प्रकोष्ठ ही उनका अत्यन्त प्रिय निर्जन भजन-स्थल था। उसके अतिरिक्त समस्त भारतव्यापी विभिन्न मठों में से वे



जिस किसी भी मठ में गमन करते, तो उस मठ में ही एक निर्जन भजन-स्थल को ढूँढ लेते थे। 'देखो भाई, नाम बिना दिन नाहि जाए अर्थात् देखो भाई, (यह ध्यान रखना कि) कोई एक दिन भी कृष्णनाम ग्रहण किये बिना व्यतीत न हो'- वे इस महाजन-वाक्य के आदर्श पालनकर्त्ता थे। वे कदापि व्यर्थ वार्त्तालाप में समय का अपव्यय नहीं करते थे। वे अजातशत्रु थे, अर्थात् वे कभी किसी को अपना शत्रु नहीं मानते थे। आज उनके विषय में जितना स्मरण करता हूँ उतना ही उनके अभाव

का अन्तरहृदय में अनुभव होता है जो हृदय को अत्यन्त उद्वेलित कर देता है।

परिक्रमा के समय अनेक बार मुझे उनके साथ निवास करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उस समय मैंने देखा था कि वे समस्त रात्रि ही बैठकर श्लोकों का उच्चारण करते हुए नाम कीर्त्तन करते थे। परिक्रमा के समय मृदङ्गवादन करते हुए पूरी यात्रा में ही वे नाम-कीर्त्तन करते थे तथा वे कभी तनिक भी क्लान्त दिखायी नहीं देते थे। उनके मुख पर सदा मुस्कुराहट रहती थी।

भगवद्-स्मरण में सर्वदा निमग्न

श्रील बाबाजी महाराज को अनेक धनाढ्य व्यक्ति धन अथवा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ देते थे किन्तु बाबाजी महाराज उन समस्त वस्तुओं में से कुछ भी अपने लिए व्यवहार न करके सभी को भगवद्-सेवा अथवा वैष्णव-सेवा के उद्देश्य से वितरित कर देते थे। वे अपने लिए घुटनों तक आने वाले मात्र एक छोटे से वस्त्र का व्यवहार करते थे। वे बिस्तर एवं चादर भी अत्यन्त सामान्य ही व्यवहार करते थे। अत्यधिक शीत के समय भी वे अति सामान्य शीत वस्त्र धारण कर प्रसन्न मुख से अति सन्तोषपूर्वक जीवनयापन करते थे। जिनका चित्त निरन्तर ही भगवद्-चिन्ता में निमग्न रहता है, वे कभी भी बाहरी विषयों के प्रति सचेष्ट नहीं होते।

तृणादपि सुनीचता की प्रतिमूर्त्ति

श्रील बाबाजी महाराज को सांसारिक लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा के लिए कदापि कोई आग्रह नहीं था। वे श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुखनिःसृत 'तृणादपि सुनीचेन' श्लोक के मूर्त्तिमान स्वरूप थे। हाय! उनके समान नाम-भजनानन्दी आदर्श वैष्णव के सङ्ग से च्युत होकर यह अधन्य जीवन और कितने दिन तक इस धराधाम पर नरक-यन्त्रणा का भोग करेगा, यह मैं नहीं जानता।

महा-मन्त्र के प्रचारक

श्रीव्रजमण्डल के प्रायः समस्त स्थानों पर एवं श्रीगौड़मण्डल तथा श्रीक्षेत्रमण्डल के अनेक स्थानों पर तथा इनके अतिरिक्त हमारे प्रायः समस्त मठों में ही श्रील बाबाजी महाराज द्वारा प्रदत्त 'कीर्त्तनीयः सदा हरिः' एवं महामन्त्र, हिन्दी एवं बाङ्गला भाषा में मुद्रित विज्ञापन आदि अपनी उपस्थिति द्वारा सर्वक्षण श्रील महाराज की मधुर स्मृति को जागृत करते हैं। श्रील बाबाजी महाराज ने व्रज के अनेक स्थानों पर पत्थरों पर अङ्कित सन्देशों के माध्यम से भी इस समस्त वाणी का प्रचार किया है।

उनके प्रिय कीर्त्तन

श्रीनवद्वीपधाम स्थित श्रीचैतन्य सारस्वत मठ के अध्यक्ष आचार्य परमपूजनीय त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज विरचित श्रीश्रीप्रभुपादपद्मस्तवकः, श्रीमद्भक्तिविनोदविरहदशकम्, श्रीदयितदासदशकम्, श्रीमद् गौरकिशोर नमस्कार दशकम्, सत्तर श्लोक युक्त श्रीश्रीप्रेमधामदेवस्तोत्रम् आदि स्तोत्र श्रील महाराज को अत्यन्त प्रिय थे। प्रेमधामदेवस्तोत्रम् का निम्नलिखित स्तोत्र उनको विशेष प्रिय था-

"कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्णनाम कीर्त्तनम्
राम राम गानरम्य दिव्यछन्द नर्त्तनम्।
यत्र तत्र कृष्णनामदानलोकनिस्तरम्
प्रेमधाम देवमेव नौमि गौरसुन्दरम्॥"

[मैं प्रेम के धाम स्वरूप उन भगवान् श्रीगौरसुन्दर को प्रणाम करता हूँ जो सर्वदा भगवन्नामों "कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण" एवं "राम राम" का दिव्य छन्दयुक्त शैली में गान करते हुए नृत्य करते हैं। वे जहाँ भी गये, वहाँ उन्होंने कृष्णनाम का दानकर समस्त लोगों का उद्धार किया।]

श्रील बाबाजी महाराज उपरोक्त २२ वें श्लोक का एवं परमाराध्य श्रील प्रभुपाद रचित 'दुष्ट मन तुमि किसेर वैष्णव' इस कीर्त्तन के मध्यस्थ "सेई दुटिकथा भुलना सर्वथा, कर उच्चैःस्वरे हरिनाम रव" इत्यादि पदावलियों का विशेष रूप से प्रायः कीर्त्तन किया करते थे।

हरिनाम कीर्त्तन एवं प्रचार के प्रति अदम्य उत्साह

श्रील बाबाजी महाराज ने श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके प्रिय पार्षद गोस्वामी गणों की नामभजन सम्बन्धित उपदेशावली को एक छोटी पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया तथा निःशुल्क उसका सर्वत्र वितरण किया एवं अन्यों से भी करवाया। श्रीनाम के आचार एवं प्रचार में उनका अदम्य उत्साह था। श्रीकृष्ण ने अतिकृपापूर्वक उनके समान नाम में प्रगाढ़ निष्ठा सम्पन्न एक वैष्णव के सङ्ग का सौभाग्य प्रदान किया था, परन्तु आज हमारे दुर्भाग्यवशतः हम उनके उस सङ्ग से वञ्चित हो गये– 'स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा हैल सङ्ग भङ्ग – कृष्ण की स्वतन्त्र इच्छा के फलस्वरूप ही हम उनके सङ्ग से वञ्चित हो गये।'

उनसे अन्तिम साक्षात्कार

मैंने पिछले वर्ष कार्तिक मास में व्रजमण्डल परिक्रमा के समय उनकी भजनकुटीर में उनके दर्शन किये थे। उस समय वे पुनः पुनः ऐसा कह रहे थे, "मैं इस स्थान से और कहीं नहीं जाऊँगा।" श्रील महाराज ने प्रायः नन्दग्राम को ही अपने भजन के अनुकूल प्रिय स्थान के रूप में वरण किया था। इसीलिए वाञ्छाकल्पतरु श्रीहरि ने श्रील बाबाजी महाराज को उस स्थान पर ही अपने श्रीचरणों का नित्य आश्रय प्रदान किया।

श्रील बाबाजी महाराज वैष्णवोचित अदोषदर्शी गुण से सम्पन्न थे, वे मुझ द्वारा उनके श्रीचरणों में जानबूझकर अथवा अज्ञानतावश की गयी समस्त त्रुटियों-विच्युतियों को निजगुणों से क्षमा कर संशोधित करें, यही प्रार्थना है।

उनके चरणों में हमारी प्रार्थना

यह हमारा परम दुर्भाग्य है कि परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के निजजनगण एक-एक करके सभी नित्यधाम में उनके श्रीचरणों की नित्यसेवा का अधिकार प्राप्तकर हमको उनके प्रकट सङ्ग के सौभाग्य से वञ्चित कर रहे हैं। वे अपनी अलौकिक कृपा के द्वारा मुझे भी शीघ्र ही उन्हीं नित्याराध्य

गुरुपादपद्म की नित्यसेवा के लिये उपयोगी बना दें, मेरी यही नित्यलीलाप्रविष्ट श्रील बाबाजी महाराज के श्रीचरणों में एकान्त प्रार्थना है।

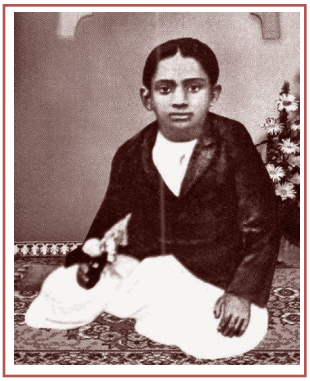
उनका हमें शिक्षित करने का प्रयास

इस संसार का परित्याग कर श्रील प्रभुपाद के शिष्यगण हमें यही शिक्षा प्रदान करने का प्रयास कर रहे हैं, यथा "शेषाः स्थावरम् इच्छन्ति किम् आश्चर्यम् अतः परम् – यह सबसे बड़ा आश्चर्य है कि जीव सर्वदा के लिये जीवित रहने की इच्छा करता है, जबकि मृत्यु एक अटल सत्य है।" अथवा जैसा कि लक्ष्मण ने कहा है– "निःश्वासे नैव विश्वासः कदा रुद्धो भविष्यति – हमारी श्वासें कभी भी रुक सकती हैं, उनका विश्वास नहीं किया जा सकता!" परन्तु हमारा यह अत्यन्त दुर्भाग्य है कि इन शिक्षाओं को सुनकर एवं साक्षात् अनुभव करने पर भी हम उन्हें ग्रहण नहीं करते तथा अज्ञानता के वशीभूत होकर ही आचरण करते रहते हैं।

श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज

प्रारम्भिक जीवन एवं मठवास

श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज पश्चिम बङ्गाल के नारमा नामक ग्राम में आविर्भूत हुए तथा उनके परिवार द्वारा घर में सेवित श्रीविग्रह श्रीराधारमणजी के नाम पर ही उन्हें श्रीराधारमण दास नाम दिया गया। उनके पिता श्रीवैकुण्ठनाथ राय जमींदार थे तथा ज्योतिषी एवं आयुर्वेदिक वैद्य का कार्य करते थे। गौड़ीय मठ के भक्तों से प्रथम भेंट में ही वह इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने उन्हें कुछ दिनों के लिये अपने घर में रहने हेतु निमन्त्रित किया। इस प्रकार नियमित रूप से भक्तों को निमन्त्रित करने से श्रीवैकुण्ठ राय का गौड़ीय मठ से घनिष्ठ परिचय हो गया।



श्रीवैकुण्ठ राय की सेवा-परिचर्या एवं आतिथ्य-सत्कार से श्रीगौड़ीय मठ के प्रचारक इतने अधिक प्रसन्न थे कि जब भी वे प्रचार सेवा कार्य के लिये उनके नगर में जाते तो सदैव उनके घर में ही ठहरते थे। उस समय के अन्य जमींदारों की भाँति श्रीवैकुण्ठ राय ऐश्वर्यगत भोग-विलास में लिप्त नहीं थे तथा अपना अधिकांश समय रोगियों की चिकित्सा करने एवं ज्योतिष कुण्डलियों की गणना करने में ही व्यतीत करते थे। उन्होंने श्रीचैतन्य मठ से निकलने वाली श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा के सञ्चालन के लिये भिक्षा द्वारा धन संग्रह करने में ब्रह्मचारियों एवं संन्यासियों की प्रचुर सहायता की। उनकी अपने पारमार्थिक कल्याण की प्रबल आकांक्षा थी इसलिये जागतिक ऐश्वर्य एवं समृद्ध जमींदार कुल

के होने पर भी वह स्वयं भिक्षा संग्रह करने में सङ्कोच नहीं करते थे। उनका दृढ़ विश्वास था की साधुसङ्ग ही मनुष्य जीवन को सार्थक करने का एकमात्र उपाय है।

एक समय श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज एवं श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी (बाद में श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज) आगामी श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा के लिये भिक्षा संग्रह करने के उद्देश्य से श्रीवैकुण्ठनाथ राय के घर में गये। श्रीवैकुण्ठनाथ राय ने उन्हें एक सौ आठ रुपये मूल्य की चाँदी की मुद्राएँ भेंट की तथा श्रीराधारमण दास एवं उनके भ्राता श्रीकृष्ण दास को उनकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

उनके घर अपने पाँच दिन के वास में श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी ने देखा कि श्रीराधारमण दास अपना अधिकांश समय मन्दिर-गृह में शान्तिपूर्वक बैठ कर हरि-कथा श्रवण करने अथवा कीर्त्तन करने में व्यतीत करते हैं।

एक दिन श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी ने 'जीव जागो जीव जागो' कीर्त्तन करने के पश्चात् श्रीराधारमण दास के साथ उस कीर्त्तन के अर्थ पर आलोचना की। श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी एक बालक में कथा एवं कीर्त्तन के प्रति प्रबल प्रेम देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने श्रीवैकुण्ठनाथ राय से कहा, "आपके पुत्र का व्यवहार एक सामान्य बालक की अपेक्षा असाधारण है। उसका पारमार्थिक विषयों के प्रति स्वाभाविक प्रेम मुझे आचम्भित करता है। उसके हमारे मठ में वास करने से हमें अत्यधिक प्रसन्नता होगी। वहाँ पर वह अपने नियमित विद्या-अध्ययन के साथ-साथ पारमार्थिक ज्ञान भी लाभ कर सकता है। क्या आप उसे हमारे साथ आने की अनुमति प्रदान करेंगे?"

श्रीवैकुण्ठनाथ राय ने उत्तर दिया, "यदि वह आपके प्रस्ताव को स्वीकार करता है तो आप उसे अवश्य ही अपने साथ ले जाइये। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी ने श्रीराधारमण दास से पूछा, "क्या तुम हमारे साथ कोलकाता मठ में संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियों के साथ वास करने के लिये आओगे जहाँ पर तुम पारमार्थिक एवं जागतिक दोनों प्रकार की शिक्षाएँ प्राप्त कर सकते हो?"

श्रीराधारमण दास ने तुरन्त उत्तर दिया, "हाँ।"

श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी ने कहा, "वहाँ पर तुम्हें यहाँ की ही भाँति सब समय साधुओं की सेवा करनी पड़ेगी।"

श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने एक युवा की भाँति अत्यधिक उत्साहपूर्वक उत्तर प्रदान करते हुए कहा, "इससे मेरा सौभाग्य ही वर्धित होगा।" इस प्रकार श्रीराधारमण दास ने अपनी स्वीकृति प्रदान की तथा उनके घर पर आये दो वैष्णवों के साथ १ नं०, उल्टाडाङ्गा मार्ग, कोलकाता में किराये के स्थान में स्थित मठ में आ गये।

श्रीराधारमण दास की माता श्रीमतीरत्नमयी देवी अत्यधिक भक्तिमती स्त्री थीं। श्रीराधारमण उनके तीसरे एवं सबसे कनिष्ठ पुत्र थे तथा धन-ऐश्वर्य में पले-बड़े थे। उनके मठ जाने से पूर्व उनकी माता ने उन्हें गुरु-गृह के संयमी वातावरण में वास करने सम्बन्धित उचित निर्देश प्रदान किये। उनकी

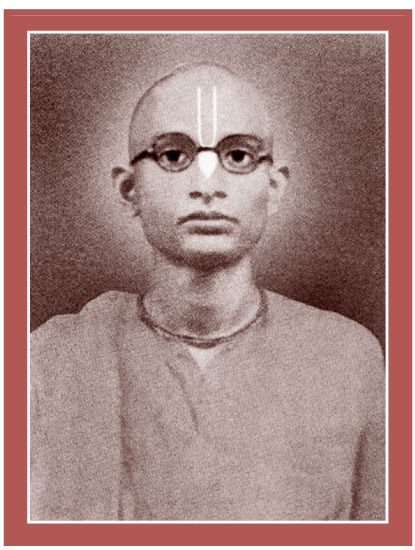
माता ने उन्हें आलिङ्गन किया, उनके माथे पर चुम्बन किया तथा अश्रुपूरित नेत्रों से कहा, "बाबा! तुम्हारा उद्देश्य महान है। इस उद्देश्य की परिपूर्णता को ही अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य बनाना।"

श्रीवैकुण्ठनाथ राय अपने पुत्र के साथ कोलकाता गये तथा वहाँ उन्होंने श्रील प्रभुपाद के दर्शन किये तथा उनसे बालक के सम्बन्ध में वार्त्तालाप किया।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीराधारमण दास से पूछा, "तो, खोका (बालक), क्या तुम यहाँ रह पाओगे?"

बालक ने उत्तर दिया, "हाँ, हाँ, मैं निश्चित रूप से यहाँ पर रह पाऊँगा।"

मठ में आने के पश्चात् बालक ने पास के ही 'न्यू इन्डियन हाई स्कूल' नामक विद्यालय में दाखिला लिया तथा अपना समय मठ की सेवाओं एवं अध्ययन में व्यतीत करने लगे। कभी-कभी श्रीराधारमण ब्रह्मचारी संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियों के वस्त्र धो देते एवं कभी वह उनके कक्ष का मार्जन कर देते। किसी अन्य समय में वह अत्यधिक उल्लास से नाट्य मन्दिर का मार्जन कर देते। मठवासी भक्तवृन्द बालक के उत्साह एवं निष्कपट सेवा वृत्ति को देखकर मुग्ध हो गये। श्रीराधारमण ब्रह्मचारी का कण्ठ भी अत्यधिक मधुर था। वह भक्तों के साथ बैठकर कीर्त्तन करते तथा उनके आनन्द का वर्धन करते।



श्रीराधारमण ब्रह्मचारी की विद्यालय में शिक्षा सम्पूर्ण होने के पश्चात् एक दिन श्रील प्रभुपाद ने अपने पास एकत्रित संन्यासी एवं ब्रह्मचारी शिष्यों से कहा, "जब मैं इस बालक को अत्यधिक निष्कपटता एवं तीव्रता से सेवा करते देखता हूँ तो यह विचार आता है कि यदि वह मठवास करे तो मैं निश्चिन्त होकर कई सेवाओं का दायित्व इसे सौंप सकता हूँ। किन्तु क्योंकि वह अभी तरुण है तथा अभी-अभी विद्या अध्ययन समाप्त किया है, इसके पश्चात् उसके यहाँ वास करने का निर्णय उसके माता-पिता पर निर्भर करता है।"

कुछ समय के पश्चात् श्रीवैकुण्ठनाथ राय कोलकाता मठ में आये तथा अपने पुत्र से जिज्ञासा की, "क्या तुम अपना विद्या-अध्ययन जारी रखना चाहते हो? यदि तुम उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हो तो मैं प्रसन्नतापूर्वक श्रील प्रभुपाद से वार्त्तालाप कर इसकी व्यवस्था कर दूँगा।"

श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने कहा, "मैंने श्रील प्रभुपाद से श्रवण किया है, 'जड़ विद्या जत मायार वैभव अर्थात् जड़विद्या मात्र भगवान् की मायाशक्ति का प्रकाश है'

तथा श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने 'शरणागति' में कहा है, 'विद्यार गौरवे भ्रमि' देशे देशे धन उपार्जन करि अर्थात् जड़-विद्या अर्जित करने पर उसके मद में मैंने देश-देश में धन-उपार्जन करने के लिये भ्रमण किया।' इसके अतिरिक्त श्रीचैतन्यभागवत (आदिखण्ड १२.४९) में उल्लेख है–

पड़े केने लोक? कृष्णभक्ति जानिवारे।
से यदि नहिल, तबे विद्याय कि करे?॥

[लोग किसलिये पढ़ते हैं? कृष्ण-भक्ति को जानने के लिये। यदि पढ़कर कृष्ण-भक्ति ही नहीं हुई, तो विद्या अर्जित करने का क्या लाभ?]

श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने आगे कहा, "मैंने यह सब श्रवणकर इन सब वाक्यों एवं शास्त्रों के अन्य वचनों के वास्तविक अर्थ को अपने हृदय में धारण कर लिया है तथा मैंने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया है कि मैं अपने इस मनुष्य जीवन के बहुमूल्य समय को उच्च शिक्षा, जागतिक सुख-सुविधाएँ अथवा जीविका अर्जित करने में व्यर्थ नहीं करूँगा। मैं पारमार्थिक शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूँ जिससे कि मठवास करने का वास्तविक उद्देश्य पूर्ण होगा।"

श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी से अपने भविष्य के सम्बन्ध में विचार विमर्श किया तो उन्होंने निर्णय दिया कि उनकी तत्कालीन रुचि एवं प्रवृत्ति के अनुसार गौड़ीय वैष्णव धर्म शास्त्र के सिद्धान्तों को समझने हेतु श्रील प्रभुपाद के शिष्य 'काव्य-व्याकरण तीर्थ' श्रीगौरदास पण्डित

"मैं पारमार्थिक शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूँ जिससे कि मठवास करने का वास्तविक उद्देश्य पूर्ण होगा।"

के आनुगत्य में संस्कृत अध्ययन करना सबसे उत्तम होगा। श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने यह प्रस्ताव श्रील प्रभुपाद के समक्ष रखा तो उन्होंने अपनी अनुमति प्रदान कर दी। अतएव श्रीराधारमण ब्रह्मचारी को कोलकाता से श्रीधाम मायापुर स्थित श्रीचैतन्य मठ में भेज दिया गया।

कुछ समय पश्चात् १९३० ई॰ में जब श्रील प्रभुपाद ने श्रीधाम मायापुर में विराट सत्-शिक्षा-प्रदर्शनी का आयोजन किया तो उन्होंने संस्कृत व्याकरण का अध्ययन करने में निमग्न श्रीराधारमण ब्रह्मचारी को प्रदर्शनी की सेवाओं में नियुक्त होने का आदेश दिया। श्रील प्रभुपाद के निर्देशानुसार श्रीराधारमण ब्रह्मचारी प्रदर्शनी में लगाए गए पारमार्थिक चित्रों के सम्बन्ध में आगन्तुकों को शास्त्रीय युक्तिसङ्गत व्याख्या करते। श्रीराधारमण ब्रह्मचारी की जानकारी के बिना श्रील प्रभुपाद ने उनके मुख से उच्चारित वह सब व्याख्याएँ श्रवण की तथा उनके माता-पिता एवं दोनों ज्येष्ठ भ्राताओं के प्रदर्शनी को देखने के लिये आने पर श्रील प्रभुपाद ने श्रीराधारमण ब्रह्मचारी की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीवैकुण्ठनाथ राय एवं श्रीमतीरत्नमयी देवी से कहा, "आपके सबसे कनिष्ठ पुत्र ने अपनी आयु के अनुसार प्रचुर योग्यता अर्जित कर ली है। इस समय वह संस्कृत व्याकरण का अध्ययन कर रहा है तथा निष्कपट रूप से धामवासी भक्तवृन्द की सेवा कर रहा है।"

प्रदर्शनी के समय श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने अपने परिवार के सदस्यों को श्रील प्रभुपाद की महिमा, श्रील प्रभुपाद की शिक्षा-सम्पदा, गौड़ीय मठ का वैशिष्ट्य एवं प्रदर्शनी में दिखाए गए विषयों के गहन उद्देश्य के सम्बन्ध में बताया। तब उन्होंने उनसे श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय ग्रहणकर अपने जीवन को सौभाग्यवान बनाने हेतु प्रार्थना की। श्रीवैकुण्ठनाथ राय एवं श्रीमतीरत्नमयी देवी अपने कनिष्ठ पुत्र को देखकर अवाक् रह गये। तब उन्होंने अपने तीनों पुत्रों सहित श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय करने का निश्चय किया।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीवैकुण्ठनाथ राय, उनकी धर्म-पत्नी श्रीमतीरत्नमयी देवी तथा उनके पुत्रों श्रीराधाश्याम राय, श्रीराधाविनोद राय एवं श्रीराधारमण राय को हरिनाम प्रदान कर उन पर अपनी कृपा का वर्षण किया। उन्होंने श्रीराधारमण ब्रह्मचारी के माता-पिता से पूछा, "क्या आपको राधारमण के आगे भी मठ में रहने पर कोई आपत्ति है?"

श्रीवैकुण्ठनाथ राय एवं श्रीमतीरत्नमयी देवी ने उत्तर देते हुए कहा, "हम इस बालक को आपके चरण-कमलों की सेवा हेतु समर्पित कर चुके हैं, कृपया इसे सेवा में नियुक्त रखें।"

सेवा में निपुणता

श्रील प्रभुपाद की इच्छानुसार 'दैनिक नदिया प्रकाश' नामक पारमार्थिक पत्रिका का प्रतिदिन मायापुर से प्रकाशन होता था। एक समय अगले दिन की पत्रिका के प्रकाशन के लिये भण्डार में कागज समाप्त हो गये थे एवं वर्षा-ऋतु के कारण नये कागजों की आपूर्ति भी सम्भव नहीं हो पा रही थी। उस समय पत्रिका के सम्पादक श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी ने श्रील प्रभुपाद को परिस्थिति से अवगत कराया एवं उनसे जिज्ञासा की कि



ऐसे में हमें क्या करना चाहिये?

श्रील प्रभुपाद ने पूछा, "क्या कोई हमारी कृष्णनगर स्थित भागवत प्रेस से कागज लेकर आ सकता है?"

श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी ने कहा, "राधारमण ब्रह्मचारी यहीं है। मुझे विश्वास है यदि आप कहेंगे तो वह अवश्य ही जायेगा।"

श्रील प्रभुपाद ने तब श्रीराधारमण ब्रह्मचारी को जाने का आदेश दिया एवं वह उसी समय साइकिल से कृष्णनगर के लिये निकल पड़े। मूसलाधार वर्षा में बहुत दूरी तक साइकिल चलाने के उपरान्त श्रीराधारमण ब्रह्मचारी अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचे। भागवत प्रेस के भक्तों ने कागज की गठरी को साइकिल के पीछे बाँध दिया। मायापुर वापिस लौटते समय कागज की सम्पूर्ण गठरी ढीली बँधी होने के कारण गीली भूमि पर गिर गयी। श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने उसी समय अपनी लगभग ५ मीटर लम्बी धोती को उतारा तथा उसके स्थान पर अपना मात्र २ मीटर लम्बा उत्तरीय वस्त्र पहन लिया। धोती में कागजों को भलीभाँति सुरक्षित कर पुनः साइकिल के पीछे बाँध दिया तथा सावधानीपूर्वक मायापुर में ले आये। जब श्रील प्रभुपाद को यह सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उन्होंने श्रीराधारमण ब्रह्मचारी की प्रशंसा करते हुए कहा कि अति अल्प आयु में भी उसने कठिन समय में अत्यन्त निपुणता का प्रदर्शन किया है।

मन्त्र दीक्षा प्राप्त करना

जब श्रील प्रभुपाद ने मायापुर में आयोजित सत्-शिक्षा-प्रदर्शनी के समय श्रीराधारमण को अत्यधिक कुशलतापूर्वक सेवा कार्य करते देखा तो उन्होंने ढाका में प्रदर्शनी आयोजित करने के लिये जाने वाले भक्तों की सूची में श्रीराधारमण का नाम भी लिख दिया। जब श्रीराधारमण ब्रह्मचारी को इस विषय में पता चला तो उन्होंने श्रीमद्भक्तिविवेक भारती गोस्वामी महाराज से प्रार्थना करते हुए कहा, "श्रीधाम मायापुर में आयोजित प्रदर्शनी के समय ही मेरी व्याकरण की पढ़ाई रुक गयी थी। यदि मैं ढाका जाता हूँ तो वह सम्पूर्णतया बन्द ही हो जायेगी।"

जब श्रील भारती गोस्वामी महाराज ने यह विषय श्रील प्रभुपाद के समक्ष रखा तो श्रील प्रभुपाद ने श्रीराधारमण ब्रह्मचारी को बुलवाकर कहा, "श्रीहरि की सेवा के लिये प्रयास करने से पूर्व हमें पहले कुछ योग्यता अर्जित कर लेनी चाहिये, इस प्रकार का विचार हमारे जीवन में मात्र बाधाएँ ही उत्पन्न करता है। कौन जानता है कि योग्यता अर्जन में व्यतीत किए जा रहे समय में क्या हो जाये? हमारे मनुष्य जीवन की अवधि क्षणिक है। हम अपनी श्वासों पर विश्वास नहीं कर सकते, वह कभी भी रुक सकती हैं।

"खेतों में धान को सूर्य की उपस्थिति रहते-रहते ही सुखा लेना चाहिये। हरि-सेवा का जब भी सुयोग उपस्थित हो, उसे ग्रहणकर लाभ उठा लेना चाहिये। स्वतन्त्र रूप से व्याकरण का ज्ञान अर्जित करने की अपेक्षा हरिसेवा में नियुक्त होने से तुम्हारी योग्यता में अधिक वृद्धि होगी। आश्रम में वास कर रहे पारमार्थिक साधक

द्वारा आनुगत्यमय जीवन व्यतीत करने में ही उसका परम मङ्गल है।"

श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने श्रील प्रभुपाद के इन कृपापूर्ण निर्देशों को अपने पारमार्थिक जीवन का मार्ग प्रशस्त करने वाली मूल शिक्षाओं के रूप में हृदय में धारण कर लिया। इस प्रकार श्रीराधारमण ब्रह्मचारी निष्ठापूर्वक सदैव विभिन्न सेवाओं में निमग्न रहते तथा १९३४ ई॰ में कोलकाता स्थित श्रीबागबाजार गौड़ीय मठ में श्रील प्रभुपाद ने श्रीराधारमण ब्रह्मचारी को मन्त्र-दीक्षा प्रदान की।

जनसाधारण द्वारा की गई निन्दा तथा स्तुति दोनों एकमात्र उनके निज इन्द्रियतर्पण का ही साधन

एक बार ढाका स्थित श्रीमाधव गौड़ीय मठ के भक्तों ने श्रील प्रभुपाद से पत्र लिखकर एक मधुर कीर्त्तन करने वाले भक्त को भेजने के लिए आग्रह किया। श्रीराधारमण ब्रह्मचारी एक अभूतपूर्व कीर्त्तनीया थे। श्रील प्रभुपाद ने उनसे जिज्ञासा की कि क्या वह अकेले ही यात्रा कर पाएँगे। श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया कि निश्चित रूप से वे अकेले ही जा सकते हैं। गुरुदेव की आज्ञा प्राप्तकर उन्होंने ढाका की यात्रा आरम्भ की जिसके लिए उन्हें पहले एक समुद्री जहाज तत्पश्चात् सड़क द्वारा यात्रा करनी थी।

जहाज पर सर्वप्रथम पहुँचकर वे खिड़की के पास वाली एक सीट पर बैठ गए। परन्तु जैसे-जैसे जहाज में अन्य यात्री सवार होने लगे, एक-एक करके उन्हें उस सीट से यह कहकर उठा दिया गया, "यहाँ से अपनी सीट बदलो। तुम खिड़की के समीप क्यों बैठे हो? तुम तो एक छोटे बालक हो, कहीं पर भी बैठ सकते हो? वृद्ध व्यक्तियों को स्वच्छ वायु की अधिक आवश्यकता होती है। तो तुम इस सीट पर क्यों बैठे हो? यहाँ से उठो तथा किसी अन्य स्थान पर जाकर बैठो।"

एक दूसरे व्यक्ति ने कहा, "आजकल माता-पिता अपने पुत्रों को जन्म देने के पश्चात् उनके पालन-पोषण के दायित्व निर्वाह करने की अपेक्षा उन्हें मठ में छोड़ देते हैं। ऐसे बालक अपने आलस्य तथा परिश्रम करने की अनिच्छा के फलस्वरूप साधु बन जाते हैं।" यात्रियों द्वारा इस प्रकार की टिप्पणियों को सुनकर श्रीराधारमण ब्रह्मचारी शान्तिपूर्वक अपनी सीट से उठ गए तथा जहाज के प्रवेश द्वार के समीप जाकर खड़े हो गए जिससे कि किसी भी व्यक्ति को कोई असुविधा न हो। यह देखकर अन्य यात्री अत्यन्त सन्तुष्ट तथा शान्त हो गए।

लगभग दस मिनट के पश्चात् लाउडस्पीकर के माध्यम से वहाँ पर यह घोषणा हुई, "प्रत्येक यात्री ध्यानपूर्वक सुने। समुद्र आज अति उग्र है तथा हम जहाज का नियन्त्रण खो चुके हैं। हम अत्यन्त विपत्ति की स्थिति में हैं। कुछ भी हो सकता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति कृपापूर्वक भगवान् का स्मरण करे तथा उनसे रक्षा हेतु प्रार्थना करे।"

यह सुनकर एक वृद्ध व्यक्ति, जो पहले श्रीराधारमण ब्रह्मचारी के विषय में शिकायत कर रहा था, क्रन्दन करते हुए कहने लगा,

"मेरी पुत्री का विवाह निश्चित हुआ है तथा मैं उसके विवाह हेतु भेंट-सामग्री तथा आभूषण लेकर जा रहा हूँ। यदि हमारा जहाज क्षतिग्रस्त होता है तो मेरी पुत्री के विवाह का क्या होगा? सब कुछ ही नष्ट हो जाएगा!"

दूसरे यात्री ने कहा, "क्या तुमने घोषणा नहीं सुनी? वह कह रहे हैं कि हम भगवान् का स्मरण करें, अतएव इन सब कथनों का अभी कोई औचित्य नहीं है।"

उस वृद्ध व्यक्ति ने कहा, "भगवान् हमारी प्रार्थना नहीं सुनेंगे, कारण, हमने कभी उनका भजन ही नहीं किया। परन्तु वह इस युवा साधु की प्रार्थना को अवश्य ही सुनेंगे। यद्यपि वह बहुत अल्पायु है परन्तु उसने जीवन के वास्तविक मूल्य का अनुभव किया है।"

उसके पश्चात् उन सभी यात्रियों ने, जिन्होंने कुछ समय पूर्व ही श्रीराधारमण ब्रह्मचारी की निन्दा की थी, उसे बलपूर्वक अपने बीच बैठा लिया तथा भगवान् से उनकी रक्षा हेतु प्रार्थना करने के लिए उससे आग्रह किया। श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, "मैंने अपने गुरु महाराज से यह श्रवण किया है कि भगवान् एकमात्र अपने शरणागत भक्तों की प्रार्थना को ही श्रवण करते हैं। मैं अभी उनके प्रति पूर्ण शरणागत नहीं हुआ हूँ, अतः वह मेरी प्रार्थना को भी कदापि श्रवण नहीं करेंगे, तब उसे स्वीकारकर पूर्ण करने का तो प्रश्न ही नहीं। तथापि मेरे गुरु महाराज ने यह भी कहा है कि हमें निरन्तर नाम-सङ्कीर्त्तन करना चाहिये। मैं 'हरे कृष्ण' महामन्त्र का कीर्त्तन कर सकता हूँ, तथा आप सभी उसे मेरे पीछे दोहराइए, परन्तु यह मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि भगवान् हमें श्रवण करेंगे अथवा हमें बचा लेंगे।" सभी यात्रियों ने एक मत से उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तथा सभी कीर्त्तन करने लगे। कुछ समय के पश्चात् जहाज सुरक्षापूर्वक अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच गया।

इस प्रसङ्ग का अनेक बार वर्णन करने के पश्चात् श्रील सन्त गोस्वामी महाराज यह शिक्षा देते हुए कहते थे कि सामान्य व्यक्तियों द्वारा की गई निन्दा एवं स्तुति, दोनों का कोई वास्तविक गुरुत्व नहीं है। अतः उनके कथनों से किसी भी प्रकार प्रभावित हुए बिना हमें निरपेक्ष भाव से एकमात्र हरि, गुरु, वैष्णवों की सेवा में नियुक्त होना चाहिये। ऐसे व्यक्तियों की निन्दा तथा स्तुति दोनों केवल उनके निज-इन्द्रियतर्पण के लिए ही होती हैं।

प्रभुपाद द्वारा गुरुभ्राताओं एवं समस्त वैष्णवों को 'प्रभु' सम्बोधन का रहस्योद्घाटन

एक समय श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने श्रील प्रभुपाद से गुरुभ्राताओं का परस्पर एक दूसरे को 'प्रभु' कहकर सम्बोधन करने के कारण के विषय में जिज्ञासा की तथा श्रील प्रभुपाद ने निम्नलिखित उत्तर प्रदान किया -

"ऐसा कहा गया है- 'गुरुर सेवक हय मान्य आपनार अर्थात् गुरु-सेवक विशेष सम्मान के पात्र होते हैं।' इस विचार के अनुसार हम अपने समस्त कनिष्ठ एवं ज्येष्ठ

> "यदि कोई व्यक्ति स्वयं को वैष्णव एवं अन्यों को कनिष्ठ अथवा स्वयं से कम उन्नत समझता है तो वह मात्र जड़ अभिमान को ही पुष्ट करता है।"

गुरुभ्राताओं को 'प्रभु' कहकर सम्बोधित करते हैं जिससे कि हममें तृण से भी अधिक सुनीचता का भाव विकसित हो सके। यदि कोई व्यक्ति स्वयं को वैष्णव एवं अन्यों को कनिष्ठ अथवा स्वयं से कम उन्नत समझता है तो वह मात्र जड़ अभिमान को ही पुष्ट करता है। पारमार्थिक राज्य में यदि हम एक-दूसरे को अपने गुरु के सेवक के रूप में देखते हैं तो अन्य हमसे कनिष्ठ अथवा कम उन्नत हैं, यह विचार हृदय को स्पर्श भी नहीं करेगा। तब हमारे पास अन्यों के प्रति द्वेष अथवा असम्मान की भावना का अवसर नहीं होगा।

"यही अन्यों को 'प्रभु' कहकर सम्बोधन करने का रहस्य है। यदि कोई स्थूल अभिमान को त्यागकर श्रीगुरुदेव का दास बनना चाहता है तो उसे श्रीगुरु के सेवकों में कनिष्ठ एवं वरिष्ठ का भेद नहीं करना चाहिये। शास्त्र कहते हैं, 'तद् भृत्य भृत्य भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ अर्थात् हे लोकनाथ! आप मुझे अपने दासों के दासानुदास के दास के रूप में स्मरण करें।' हमें यह विचार भलीभाँति हृदयङ्गम कर लेना चाहिये। इस प्रकार शास्त्र निश्चितकर कहते हैं कि श्रीगुरु के सेवक को तथा वास्तव में समस्त वैष्णवों को ही 'प्रभु' कहकर सम्बोधित करना चाहिये।"

उनकी दूरदर्शिता एवं मठवासियों के मङ्गल की चिन्ता

यह उस समय की बात है जब श्रीराधारमण ब्रह्मचारी एवं मेरे गुरु महाराज श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज (उस समय श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी) मद्रास गौड़ीय मठ में रहते थे। यद्यपि उस समय वे दोनों ब्रह्मचारी थे, परन्तु श्रील प्रभुपाद के एकनिष्ठ शिष्य होने के कारण मठ में उनकी अनुभवशाली वरिष्ठ गणों के रूप में मान्यता थी।

वहाँ वास करते समय श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने देखा कि एक ब्रह्मचारी अन्य मठवासियों से प्रायः अलग-अलग रहता था, उनसे घुलता-मिलता नहीं था, किसी से बातचीत भी बहुत ही कम करता था तथा यथासम्भव एकान्त में रहकर हरिनाम एवं ग्रन्थ-अध्ययन में अपना ध्यान केन्द्रित करता था। उसकी इन गतिविधियों को देखकर श्रीराधारमण ब्रह्मचारी को कुछ संशय हुआ एवं उन्होंने श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी से अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा, "प्रभु, यद्यपि

यह ब्रह्मचारी हरिनाम करने एवं ग्रन्थ-अध्ययन करने में अत्यधिक समय व्यतीत करता है तथा व्यर्थ वार्त्तालाप में भी लिप्त नहीं होता, परन्तु मुझे संशय है कि कुछ गड़बड़ है। क्या आप कृपया इस विषय में कुछ अन्वेषण कर सकते हैं?"

श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी श्रीराधारमण ब्रह्मचारी की चिन्ता की सार्थकता को समझ गये तथा बाद में उस ब्रह्मचारी को अपने पास बुलाकर उससे पूछा, "मैंने सुना है कि तुम अन्य मठवासियों से अधिक वार्त्तालाप नहीं करते, उनके साथ हास-परिहास अथवा एक सङ्ग प्रसाद ग्रहण करने का तो प्रश्न ही नहीं। इसका क्या कारण है?"

उस ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, "मैं वृथा वार्त्तालाप में संलिप्त नहीं होना चाहता, यही कारण है कि मुझे एकान्त अतिप्रिय है।"

श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी ने कहा, "मेरे विचार से यह अच्छा होगा यदि तुम उनके साथ कुछ समय व्यतीत करो एवं उनसे सम्बन्ध स्थापित करो। इस प्रकार अन्य मठवासियों की भाँति एक सामान्य जीवन व्यतीत करो। यदि कभी-कभी उनके साथ हास-परिहास अथवा ग्राम्य-वार्त्ता भी करनी पड़े तो इसमें कोई हानि नहीं है, कारण, भक्तों की प्रत्येक क्रिया से ही कुछ-न-कुछ सीखने को मिलता है।"

उनके वचनों को सुनकर वह ब्रह्मचारी अत्यन्त विस्मय का अनुभव करते हुए बोला, "प्रभु, यद्यपि आप मुझसे बहुत वरिष्ठ हैं, परन्तु आप मुझसे जैसा करने के लिए कह रहे हैं वह उसके सर्वथा विपरीत है जो मैंने अन्य वैष्णवों के मुख से श्रवण किया है। कृपया यह मत समझें कि मैं आपका विरोध कर रहा हूँ परन्तु स्वयं श्रीमन्महाप्रभु ने भी ग्राम्य-वार्त्ता कहने अथवा सुनने के लिए निषेध ही किया है। परन्तु आप मुझे अन्य ब्रह्मचारियों के साथ आवश्यकतानुसार (कभी-कभी) ग्राम्य-वार्त्ता में प्रवृत्त होने का सुझाव दे रहे हैं। यह अत्यन्त विस्मयपूर्ण है।"

श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी ने तब उसे समझाते हुए कहा, "ध्यानपूर्वक सुनो। अभी तुम इस मठ में मात्र शरीर से ही वास कर रहे हो, मन से नहीं। यदि तुम मेरे वचनानुसार आचरण नहीं करोगे तो कुछ समय पश्चात् तुम्हारा शरीर भी यहाँ वास नहीं करेगा, तुम अवश्य ही अपने घर लौट जाओगे। परन्तु यदि तुम मेरे सुझाव के अनुसार आचरण करोगे तो, कम-से-कम तुम शरीर से तो मठ में वास करते ही रहोगे एवं क्रमशः तुम्हारा मन भी मठवास हेतु स्थिर हो जाएगा। इसलिए धैर्य रखो एवं मेरे वचनों को पालन करने का प्रयास करो।"

यह दृष्टान्त प्रदर्शित करता है कि यद्यपि श्रीराधारमण ब्रह्मचारी अभी युवावस्था में ही थे, तथापि अत्यन्त दूरदर्शी थे तथा वर्तमान परिस्थितियों से परे सुदूरवर्त्ती भविष्य का दर्शन करने में पूर्णतया सक्षम थे।

यद्यपि सामान्य व्यक्ति उचित एवं अनुचित व्यवहार की बाह्य अभिव्यक्ति को ही लक्षित करते हैं परन्तु दूरदर्शी व्यक्तियों की दृष्टि बाह्य व्यवहारिक क्रियाओं के परे भी दर्शन करती है। ऐसे व्यक्ति यह स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि दूसरे व्यक्ति की हृदयगत अवस्था क्या है एवं भविष्य में उसकी

क्या स्थिति होने वाली है। मेरे गुरु महाराज एवं श्रीराधारमण ब्रह्मचारी दोनों को ही यह अनुमान हो गया था कि इस ब्रह्मचारी का मन श्रीहरि, गुरु एवं वैष्णवों की सेवा में स्थिर नहीं है, वह अपनी कठोर साधना से शीघ्र ही थक जाएगा एवं मठ से चला जाएगा।

कुछ समय पश्चात् उस ब्रह्मचारी के नाम एक पत्र आया। परन्तु उस ब्रह्मचारी ने प्रेषक को पत्र भेजने के लिए मठ की अपेक्षा निकटवर्ती एक गृहस्थ का पता दिया था। एक मठवासी के नाम का पत्र प्राप्तकर उस गृहस्थ ने श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी को सम्वाद दिया एवं पत्र उनके हाथ में लाकर दे दिया। पत्र पढ़कर श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी को ज्ञात हुआ कि कुछ समय पूर्व उस ब्रह्मचारी ने अपनी माता को एक पत्र लिखा था एवं कहा था कि वह शीघ्र ही घर लौट आएगा तथा माता उसके लिए एक नौकरी एवं विवाह हेतु कन्या देखकर व्यवस्था कर ले। जो पत्र श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी को प्राप्त हुआ, वह उसकी माता का प्रत्युत्तर था, जिसमें उन्होंने यह दायित्व स्वीकार करते हुए उसे शीघ्र घर लौट आने के लिए आग्रह किया था। उस पत्र के आने के कुछ दिन पश्चात् ही वह ब्रह्मचारी मठ से चला गया।

यद्यपि मठवास के समय उसकी मानसिक व्याकुलता के कोई भी लक्षण बाह्यतः दृश्य नहीं थे, किन्तु श्रीराधारमण ब्रह्मचारी एवं मेरे गुरु महाराज, दोनों ने ही उसकी मनःस्थिति को भलीभाँति जान लिया था। अपने कुछ समय के मठवास के कारण उस ब्रह्मचारी ने जो सुसंस्कार अर्जित किए, उनके फलस्वरूप बाद में उसने वास्तविक सत्य को स्वीकार किया एवं लगभग पैंसठ वर्ष की आयु में मठ में पुनरागमन किया तथा श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज की दूरदर्शिता को स्मरणकर परवर्ती काल में उन्हीं से संन्यास ग्रहण किया।

सत्य स्वीकार करने का साहस

श्रीराधारमण ब्रह्मचारी की बाल्यावस्था समाप्त होने के कुछ समय पश्चात् ही श्रील प्रभुपाद ने अप्रकट लीला

श्रीराधारमण ब्रह्मचारी की बाल्यावस्था समाप्त होने के कुछ समय पश्चात् ही श्रील प्रभुपाद ने अप्रकट-लीला प्रकाशित कर दी। श्रील प्रभुपाद के जाने के पश्चात् गौड़ीय मठ के अन्धकार-युग को देखकर श्रीराधारमण ब्रह्मचारी का हृदय दुःखी होता था। युवा होने के कारण उन्होंने विचार किया कि तत्कालीन खेदजनक अवस्था को सहन करने की अपेक्षा अपने परिवार के पास लौटना अच्छा होगा। ऐसा विचार कर श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने अपनी इच्छा को अपने पिता श्रीवैकुण्ठनाथ प्रभु के समक्ष रखा, जिन्होंने उनके प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए उनका घर लौटने पर स्वागत किया।

श्रीराधारमण प्रभु का मठ से चले जाने का सम्वाद सुनकर गुरु महाराज उनके पूर्वाश्रम में पहुँचे तथा श्रीवैकुण्ठनाथ प्रभु को पूछा, "आप श्रील प्रभुपाद के आश्रित हैं। यद्यपि आपका पुत्र स्वयं अपनी इच्छा से घर में आने के लिये कह रहा था

तथापि आप अपने पुत्र के पुनः संसार में प्रवेश का अनुमोदन कैसे कर सकते हैं?"

श्रीवैकुण्ठनाथ प्रभु ने उत्तर दिया, "वास्तव में मैं नहीं चाहता कि वह मठ को छोड़ दे किन्तु साथ-ही-साथ मैं यह भी नहीं चाहता कि वह निरुत्साहित हो जाये तथा यह विचार करे कि कोई भी उसका साथ देने वाला नहीं है क्योंकि उसने अपने लिये एक अलग पथ का चयन किया है। मैं नहीं चाहता कि वह अपने आपको निष्कासित अनुभव करे अथवा यह समझे कि उसे उसके उत्तराधिकार से वञ्चित कर दिया गया है। इसी कारण मैंने उसे घर आने की अनुमति प्रदान की है। यदि आप चाहते हैं कि वह ब्रह्मचारी ही बना रहे एवं पुनः मठ में लौट जाये तो वह अपनी इच्छा से आपके साथ जा सकता है। मुझे कोई आपत्ति नहीं है तथा यह मेरे लिये प्रसन्नता का ही विषय होगा।"

गुरु महाराज ने श्रीराधारमण ब्रह्मचारी के साथ वार्त्तालाप किया तो उन्होंने कहा, "श्रीहयग्रीव प्रभु, आपने मेरे लिये अत्यधिक कष्ट सहन किया है। मुझे पुनः मठ लौटा ले जाने के लिये यहाँ आने पर आपने मेरे वास्तव बन्धु का कार्य किया है। इसके लिये मैं सदैव आपके श्रीचरण-कमलों का ऋणी हूँ। यदि मैं पुनः मठवास करना स्वीकार करता हूँ तथा हरिसेवा के उद्देश्य से वर्तमान मामला-मुकद्दमों में सम्मिलित भी हो जाता हूँ तब भी मठ के भविष्य के विषय में सामञ्जस्य कर पाऊँगा, मुझे इसमें संशय है। श्रील प्रभुपाद के अप्रकट के पश्चात् मठवासियों के परस्पर व्यवहार का अनुभव कर मेरे हृदय पर जो छाप पड़ी है उससे मैं पुनः मठ जाने हेतु उत्सुक नहीं हूँ। कृपया मुझे इसके लिये क्षमा कीजिये। मैं आपको वचन देता हूँ कि शीघ्र ही इन विषयों पर गहन विचार करूँगा।"

गुरु महाराज के चले जाने के पश्चात् श्रीराधारमण ब्रह्मचारी ने विचार किया, "मैंने यह क्या कर दिया? मैंने अपने मङ्गलाकांक्षी वैष्णव के प्रयासों को विफल कर दिया एवं उन्हें वापस लौटने हेतु विवश कर उनका अपमान कर दिया।" यह जानकर कि यह उनके भजन में बाधा बन जायेगा, वह पश्चाताप् करते हुए दिन व्यतीत करते तथा भोजन एवं शयन भी मात्र अभ्यासवशतः ही करते।

कुछ दिनों के पश्चात् एक विशेष शास्त्रीय उक्ति उनके विचार में आयी- "शुभस्य शीघ्रम् अशुभस्य काल हरणम् अर्थात् शुभ कार्य शीघ्रताशीघ्र करने चाहियें तथा अशुभ कार्य को करने में जितना अधिक से अधिक हो विलम्ब करना चाहिये।" यह विचार कर वह गुरु महाराज के समक्ष प्रस्तुत हुए जो



"मैं किसी भी वस्तु तथा व्यक्ति का स्वामी नहीं हूँ। मैं मात्र दास हूँ।"



कि उस समय मेदिनीपुर में प्रचार कर रहे थे। गुरु महाराज उन्हें देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुए तथा श्रीराधारमण ब्रह्मचारी के श्रीहरि, गुरु, वैष्णव की सेवा हेतु अपना जीवन समर्पित करने के दृढ़ निश्चय को देखकर अवाक् रह गये तथा उन्होंने विचार किया कि इन्हें सन्यास प्रदान कर देना चाहिये। गुरु महाराज का उस समय सन्यास नहीं हुआ था अतः उन्होंने श्रीमद्भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज से श्रीराधारमण ब्रह्मचारी को संन्यास देने हेतु प्रार्थना की। श्रील यायावर गोस्वामी महाराज ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए रेमुणा स्थित श्रीक्षीरचोरा गोपीनाथ मन्दिर में श्रीराधारमण ब्रह्मचारी को संन्यास प्रदान किया। उसके पश्चात् वह श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज के नाम से सुविख्यात हुए।

हमने इस प्रसङ्ग के विषय में किसी से भी श्रवण नहीं किया था, यहाँ तक कि गुरु महाराज से भी नहीं। हमें इस सम्बन्ध में तब ज्ञात हुआ जब श्रील सन्त गोस्वामी महाराज ने स्वयं इस विषय में व्रजमण्डल परिक्रमा के समय वृन्दावन में तथा पुनः चण्डीगढ़ स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में बताया था। श्रील महाराज अनेक बार कहते थे, "मैं पूज्यपाद माधव महाराज के स्नेहपूर्ण पथप्रदर्शन से अत्यधिक लाभान्वित हुआ हूँ। उन्होंने मेरे जीवन की रक्षा की है। यदि मैं घर में ही रह जाता तो न जाने मेरा क्या होता? उन्होंने भयानक विपत्ति से मेरा उद्धार किया है।"

श्रील प्रभुपाद के अनेक शिष्यों में से श्रील सन्त गोस्वामी महाराज एवं गुरु महाराज ने पश्चिम बङ्गाल के मेदिनीपुर स्थित श्रीश्यामानन्द गौड़ीय मठ में वास किया था। यद्यपि गुरु महाराज ने बहुत सी भिक्षा संग्रह की थी तथा मठ के निर्माण के लिये भूमि भी खरीदी थी, तब भी वह सब कुछ स्वयं के नाम पर नहीं करके श्रील सन्त गोस्वामी महाराज के नाम पर ही करते थे। गुरु महाराज की उनके प्रति इस प्रकार की प्रीति थी। श्रील सन्त गोस्वामी महाराज कहते थे, "मैं किसी भी वस्तु तथा व्यक्ति का स्वामी नहीं हूँ। मैं मात्र दास हूँ। जब तक मेरे गुरुभ्राता मेरी सेवा स्वीकार करते रहेंगे मैं सेवा करता रहूँगा। यदि वे मेरी सेवा स्वीकार नहीं करेंगे तो मैं वहाँ रहूँगा जो मुझे आश्रय प्रदान करेंगे।"

उनकी सर्वाकर्षणकारी हरि-कथा एवं कीर्त्तन

अनेक लोग श्रील सन्त गोस्वामी महाराज की मधुर हरि-कथा एवं कीर्त्तन को श्रवण करने हेतु ही मठ में आते थे। एक समय वह गुरु महाराज के साथ प्रचार दल में जम्मू में प्रचार सेवा कार्य के लिये गये। यद्यपि उन्होंने बङ्गला भाषा में कीर्त्तनों का गान किया जिसे कि जम्मूवासियों के लिये समझना सम्भव नहीं था तथापि बहुत से लोग उनके सुमधुर कीर्त्तन से आकर्षित हुए।

वहाँ उपस्थित समस्त लोग उनके कीर्त्तन से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे उन्हें पुनः-पुनः कीर्त्तन करने के लिये प्रार्थना करने लगे तथा इसलिये उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभु से सम्बन्धित एक कीर्त्तन का गान किया- "वर्ण-चोर, कोथा माताई चलवे





रे– हे श्रीमती राधारानी की अङ्गकान्ति को चुराने वाले! हमें प्रमत्त करके अब कहाँ लेकर जाना चाहते हो?"

प्रतिदिन नगर-सङ्कीर्त्तन से लौटने के उपरान्त उनके अधर-कमलों से बरसने वाले रसमय निम्नलिखित कीर्त्तनों का वह गान करते थे –

नगर भ्रमिया आमार गौर एलो घरे।
गौर एलो घरे आमार निताइ एलो घरे॥

[नगर में भ्रमण करने के उपरान्त मेरे गौर घर लौट आये हैं। गौर घर लौट आये हैं तथा निताई घर लौट आये हैं।]

धूल झरि' शचीमाता गौर कोले करे।
धूल झरि' पद्मावती निताई कोले करे॥

[(उनके शरीर से) धूल को झाड़कर शचीमाता ने गौर को अपनी गोद में ले लिया। (उनके शरीर से) धूल को झाड़कर पद्मावती माता ने निताई को अपनी गोद में ले लिया।]

जम्मू में आयोजित कार्यक्रम में परिक्रमा दल के अत्यधिक विशाल होने के कारण प्रतिदिन दो कार्यक्रम होते थे। यद्यपि श्रील महाराज हिन्दी भाषा बोलने में निपुण नहीं थे तब भी उनकी हरिकथा अत्यधिक सरल, स्पष्ट तथा समझने में सहज होने के कारण अनेक श्रोताओं को आकृष्ट करती थी। जम्मूवासियों की प्रार्थना का सम्मान करते हुए वह प्रतिदिन दो बार कीर्त्तन करते एवं हरि-कथा का परिवेशन करते थे।

उनकी नियमनिष्ठा एवं गाम्भीर्य

श्रील सन्त गोस्वामी महाराज को किसी सभा में भाग लेना हो अथवा किसी उत्सव का आयोजन करना हो अथवा किसी सभा में सभापति का दायित्व सम्भालना हो वह प्रत्येक कार्य में ही अत्यन्त समयनिष्ठ थे। हमने देखा कि यदि श्रील महाराज किसी सभा का सभापतित्व करते एवं कोई वक्ता नियत समय से अधिक वक्तृत्व प्रस्तुत करता तो श्रील महाराज साथ-ही-साथ उन्हें कथा करने से रोक देते। यदि कथा-वाचक श्रील महाराज से ज्येष्ठ होते तो वे नम्रतापूर्वक किन्तु दृढ़ता से उन्हें कथा शेष करने हेतु प्रार्थना करते परन्तु यदि कोई उनसे कनिष्ठ भक्त कथा परिवेशन कर रहा होता तो उसके कानों को पकड़कर उन्हें बैठने का आदेश प्रदान करते।

श्रील सन्त गोस्वामी महाराज किञ्चित मात्र भी अशिष्टता सहन नहीं करते थे। यदि वह देखते कि कोई भी ब्रह्मचारी, संन्यासी, स्त्री अथवा बालक हरि-कथा के समय ध्यानपूर्वक कथा श्रवण करने के अतिरिक्त अन्य कुछ कर रहा है तो वे उन्हें कुछ बोलने का अवसर दिये बिना ही डाँट लगाते हुए कहते, "कृपया यहाँ से चले जाइये। आपको वैष्णव-सभा में बैठने का शिष्टाचार नहीं है।"

एक समय एक माताजी अपने लगभग डेढ़ वर्ष के पौत्र को साथ लेकर हरिकथा श्रवण करने के लिये आयी। जब शिशु ने हरि कथा के समय जोर-जोर से क्रन्दन करना प्रारम्भ किया तो वह उसे शान्त कराने का प्रयास करने लगी। यह देखकर श्रील सन्त गोस्वामी महाराज ने उससे कहा, "इस सभा में और अधिक न रुकें। यह सभा मात्र हरिकथा को प्राथमिकता देने वाले सतर्क श्रोताओं के लिये ही है, अन्य किसी के लिये नहीं। आपकी दृष्टि में अपने पौत्र की देखभाल अधिक महत्वपूर्ण है एवं हरिकथा गौण है। आपके विचार में क्या यह ऐसा स्थान है जहाँ लोग आकर अपनी इच्छानुसार कुछ भी करते रहें? हमारा समय अत्यन्त मूल्यवान है एवं हम इसे व्यर्थ के कार्यों में नष्ट नहीं करना चाहते। कृपया शीघ्र ही यहाँ से चली जाइये।"

यदि श्रील सन्त गोस्वामी महाराज किसी ब्रह्मचारी को आवश्यक नियमों यथा पूर्णिमा को मुण्डन करना इत्यादि का उल्लङ्घन करते हुए देखते तो उसे डाँट लगाते हुए कहते, "तुमने ब्रह्मचारी का वेष क्यों धारण कर रखा है? तुम मात्र स्वयं के साथ छल कर रहे हो। अपने जीवन को नष्ट मत करो। हमारे गुरु-वर्गों की शिक्षाओं का पालन करो। भले ही तुम प्रत्येक सिद्धान्त का उद्देश्य न समझ पाओ तब भी उनका पालन करने से तुम्हारा मङ्गल ही होगा।"



"हमारा समय अत्यन्त मूल्यवान है एवं हम इसे व्यर्थ के कार्यों में नष्ट नहीं करना चाहते।"

अल्प शब्दों में सिद्धान्त स्थापित करना

एक समय श्रील सन्त गोस्वामी महाराज ने कोलकाता स्थित बेहाला मठ में एक कार्यक्रम का आयोजन किया तथा विभिन्न अतिथियों को वक्तृत्व प्रस्तुत करने हेतु निमन्त्रित किया। उनमें श्रील प्रभुपाद के कई शिष्य जैसे कि श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती गोस्वामी महाराज एवं विभिन्न मठों से श्रील प्रभुपाद के प्रशिष्य जैसे कि पूज्यपाद भक्तिवेदान्त नारायण महाराज एवं मैं उपस्थित थे। उस सभा में एक वृद्ध ब्राह्मण भी उपस्थित थे जो कि वहाँ के स्थानीय महाविद्यालय में प्राध्यापक थे। उनके मुखमण्डल के भावों को देखकर जान पड़ता था कि वह सभा से अप्रसन्न हैं एवं जब उनके वक्तृत्व प्रस्तुत करने का समय आया तो उन्होंने मायावादी सिद्धान्त कहे तथा उद्घोषणा करते हुए कहा, "अहम् ब्रह्मास्मि – मैं ब्रह्म हूँ।" साथ ही कई अन्य मायावादी विचार प्रस्तुत किए। अपने वक्तृत्व को समाप्त करने के उपरान्त वह प्राध्यापक अपने स्थान पर मञ्च पर जाकर बैठ गये तथा उनके बाद के वक्ताओं के वक्तृत्व को श्रवण करने में भी पूर्व की ही भाँति उनकी अरुचि स्पष्ट रूप से प्रकटित हो रही थी।

जब श्रील सन्त गोस्वामी महाराज का कथा बोलने का समय आया तो उन्होंने पूछा, "क्या आप ब्रह्म हैं?"

प्राध्यापक ने कहा, "हाँ, मैं ब्रह्म हूँ।"

श्रील महाराज ने पूछा, "तो क्या यह सत्य है कि आपमें कोई विकार नहीं होता?"

प्राध्यापक ने कहा, "सत्य है, नहीं होता।"

तब श्रील सन्त गोस्वामी महाराज एक हाथ में अपना संन्यास दण्ड लेकर तथा दूसरी मुट्ठी को कसकर बाँधते हुए अकस्मात्



अपने आसन से उठे एवं उस मायावादी प्राध्यापक पर प्रहार करने के लिये तत्पर हुए। ऐसे अचानक स्वयं पर प्रहार होने की आशङ्का से अतिविस्मित हुआ वह वृद्ध व्यक्ति भय से घबरा गया। श्रील महाराज ने पुनः दो बार उसे इस प्रकार से भयभीत करने का अभिनय किया तथा दोनों ही बार वह भय से पीछे हट गया।

श्रील महाराज ने कहा, "आप ब्रह्म नहीं हैं। ब्रह्म निर्विकार है, उसमें कोई विकार नहीं होता तथा वह कोई प्रतिक्रिया नहीं करता। ब्रह्म को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता इसलिये ब्रह्म किसी भी परिस्थिति में प्रतिक्रिया नहीं करता। किन्तु आपने भयभीत होकर समस्त श्रोतामण्डली के समक्ष यह सिद्ध कर दिया है कि आप ब्रह्म नहीं हैं।"

कुछेक शब्दों में ही श्रील सन्त गोस्वामी महाराज ने वृद्ध ब्राह्मण के सिद्धान्तों को असत्य सिद्ध कर दिया। तब बच्चों सहित सम्पूर्ण सभा के ठहाके लगाकर हँसने पर वह वृद्ध प्राध्यापक अत्यधिक लज्जा का अनुभव करने लगा तथा उसने श्रील महाराज से क्षमा-प्रार्थना की।

'कृष्णेर नित्य दास' का विशेष अर्थ

श्रीचैतन्य देव द्वारा श्रील सनातन गोस्वामीपाद को "जीवेर स्वरूप हय-कृष्णेर नित्यदास" (चै॰च॰ मध्य-लीला २०.१०८) रूपी प्रदत्त शिक्षा के सम्बन्ध में श्रील सन्त गोस्वामी महाराज वर्णन करते हुए कहते, "इस पद्य का सरल अर्थ है कि जीव स्वरूप से कृष्ण का नित्यदास है। यद्यपि यह पूर्णतः सत्य है तथापि मैं इसकी थोड़ी-सी भिन्न प्रकार से व्याख्या करूँगा। मेरे विचार में 'कृष्ण' शब्द का तात्पर्य गोलोक वृन्दावन में लीला कर रहे कृष्ण से नहीं है। उसके स्थान पर मेरे लिये इसका अर्थ उस कृष्ण से है जो गुरु रूप में इस जगत् में आकर माया के जाल से निष्कपट जीवों का उद्धार करके उन्हें श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में समर्पित करके उन्हें स्नेहमयी सेवा में नियुक्त करते हैं। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी के वाक्य मेरे इस विचार को पुष्ट करते हैं–

गुरुरूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे।

चै॰च॰ (आदि-लीला १.४५)

[गुरु रूप से ही श्रीकृष्ण भक्तों पर कृपा करते हैं।]

"अतएव यह कहना गलत नहीं होगा, 'जीवेर स्वरूप हय गुरुर नित्यदास'।

"मैंने इस विचार को ग्रहण क्यों किया? क्योंकि अनादि काल से मैं चौरासी लाख योनियों के विभिन्न शरीर धारण करके विभिन्न रूपों से ब्रह्माण्डों में भ्रमण कर रहा हूँ तथा एकमात्र इसी जन्म में श्रीकृष्ण कृपा करके गुरु रूप में मेरे समक्ष प्रकट हुए हैं। अतएव मैं उनके इस रूप, श्रीगुरु रूप को नित्य पूजनीय मानता हूँ।

"जब मैं रङ्गून में प्रचार सेवा कार्य कर रहा था तब मैंने 'भृत्येर परिचय अर्थात् सेवक का परिचय' नामक एक प्रबन्ध लिखा, जिसमें मैंने एक स्वरचित कविता के माध्यम से निम्नलिखित विचारों को व्यक्त किया–

श्रीगुरुपादपद्म की सेवा की महिमा श्रीकृष्ण की सेवा से भी अधिक है। क्यों? यद्यपि यह सत्य है कि जीव स्वरूपतः कृष्ण का नित्य दास है तथा बद्ध जीव अनादि काल से कृष्ण से बहिर्मुख होने के कारण इस सम्बन्ध को भूल गया है। श्रीगुरुदेव जीव के भगवान् के साथ नित्य सम्बन्ध रूपी सम्बन्ध ज्ञान को प्रदान करते हैं। जब कोई काय, मन एवं वाक्य को उनकी सेवा में नियुक्त करता है तो वह गुरुदेवतात्मा बन जाता है। तब साधक श्रीगुरुदेव की कृपा से धीरे-धीरे श्रीचैतन्यचरितामृत (आदि-लीला १.४५) की शिक्षा- 'गुरुरूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे अर्थात् गुरु रूप से ही श्रीकृष्ण भक्तों पर कृपा करते हैं' के तात्पर्य को अनुभव कर पाता है।

साधन भक्ति की अवस्था में ही नहीं अपितु मुक्त अवस्था प्राप्त करने पर, जब जीव स्वरूप-सिद्धि की अवस्था में अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है, तब भी श्रीगुरुदेव के आनुगत्य के बिना उसके सभी प्रयास निष्फल ही होते हैं। वस्तुसिद्धि की अवस्था में भी जीव द्वारा श्रीश्रीराधा-कृष्ण-युगल की सेवा-प्राप्ति, गुरु-आनुगत्य पर ही निर्भर करती है। अतएव श्रीगुरुदेव भगवान् की कृपामूर्त्ति हैं तथा उनकी कृपा इस जगत् तक ही सीमित नहीं है।

ऐसा कहा गया है, "श्रीगुरु चरण सत्य, ताहार सेवक नित्य अर्थात् श्रीगुरु के चरण-कमल सत्य हैं तथा मैं उनका नित्य सेवक हूँ।" दीक्षा के समय में शिष्य श्रीगुरुपादपद्म के साथ जो दासता का सम्बन्ध स्थापित करता है वह नित्य है। सिद्ध अवस्था में भी श्रीकृष्ण की नित्य-लीलाओं में यह सम्बन्ध एक विशेष रूप में विद्यमान रहता है। अतएव अपने स्वरूप 'श्रीकृष्ण का नित्य-दास' को अनुभव करने के लिये जीव को श्रीगुरुपादपद्म की सेवा करना परम आवश्यक है। इसी कारण श्रील रूप गोस्वामी ने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु में कहा है, "विश्रम्भेन गुरोः सेवा साधु-वर्तमानु-वर्त्तनम अर्थात् श्रीगुरु की अन्तरङ्ग सेवा करनी चाहिये एवं साधुओं के दिखलाये मार्ग पर चलना चाहिये।"

श्रीगुरुदेव भगवान् की कृपामूर्त्ति हैं। कृपा शक्ति की दृष्टि से श्रीगुरु एवं भगवान् एक ही हैं। भगवान् की अनन्त शक्तियाँ हैं। उनकी समस्त शक्तियों में कृपाशक्ति प्रधान है, अन्य-अन्य शक्तियाँ कृपाशक्ति के अधीन हैं। यद्यपि श्रीगुरुदेव सर्वशक्तिमान् नहीं हैं, किन्तु सर्वशक्तिमान् भगवान् उनके प्रेम के अधीन हैं। अतएव गुरु की कृपा ही सब कुछ है।

"मेरे द्वारा इस प्रबन्ध को सम्पूर्ण करने पर मैंने इसे अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्रीभक्तिसुधीर याचक महाराज को दिया जिन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक इसे श्रीधाम मायापुर भेज दिया जहाँ पर यह क्रमशः श्रील प्रभुपाद के श्रीहस्तकमलों में पहुँच गया। जब श्रील प्रभुपाद ने इसे पढ़ा तो

उन्होंने इसे श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी को पढ़ने के लिये दिया तथा कहा, 'राधारमण ने जो भी लिखा है वह सत्य है। यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि उसने इतनी अल्प आयु में इस प्रकार की पारमार्थिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर ली है। इस प्रबन्ध में उसके विचार उत्तम एवं सत्य हैं तथा यह प्रबन्ध समस्त पाठकों के पढ़ने हेतु हमारी 'दैनिक नदिया प्रकाश' पत्रिका में प्रकाशित होना चाहिये।' बाद में श्रील प्रभुपाद ने स्वयं एक पत्र के माध्यम से मुझे आशीर्वाद भेजा।"

श्रील सन्त गोस्वामी महाराज एवं श्रील प्रभुपाद के कई अन्य शिष्यगण महान वैष्णव विभूतियाँ हैं। उनका जीवन, आचरण, विचार, दृष्टिकोण एवं उनसे सम्बन्धित सब कुछ ही ऐसा है कि जितना अधिक हम उनके विषय में श्रवण एवं कीर्त्तन करते हैं उतना ही अधिक उनके दिव्य गुण हमें विस्मित करते हैं।

एक स्नेहमयी अस्वीकृति

मेरे प्रति अत्यधिक कृपा वर्षण करते हुए श्रील सन्त गोस्वामी महाराज ने मुझे विभिन्न प्रकार से उनकी सेवा करने का सुयोग प्रदान किया। एक समय गुरु महाराज ने मुझे श्रीयशोदाजीवन ब्रह्मचारी, श्रीभक्तिसौरभ आचार्य महाराज (उस समय श्रीगौराङ्ग प्रसाद ब्रह्मचारी) एवं अन्य भक्तों के साथ श्रील प्रभुपाद के जन्म-स्थान संग्रह रूपी महत्त्वपूर्ण कार्य करने हेतु पुरी भेजा। वहाँ हम श्रील सन्त गोस्वामी महाराज के द्वारा मठ बनाने के उद्देश्य से खरीदे गये एक छोटे से घर में उनके साथ ही रहे। जब रथ-यात्रा का समय उपस्थित हुआ तब मैंने श्रीगौराङ्ग प्रसाद ब्रह्मचारी को श्रील सन्त गोस्वामी महाराज के समक्ष विनयपूर्वक प्रार्थना करने हेतु भेजा कि हमें वहाँ से जाने एवं निकट किसी धर्मशाला में रुकने हेतु आज्ञा प्रदान करें, कारण, रथयात्रा के समय श्रील महाराज के बहुत से शिष्य उनके साथ उस छोटे से घर में रहने के लिये आयेंगे। हम उत्सव के पश्चात् पुनः लौट आयेंगे, किन्तु हम श्रील महाराज एवं उनके आश्रितों को किसी प्रकार की असुविधा नहीं देना चाहते।

हमारी प्रार्थना को श्रवणकर श्रील महाराज ने स्नेहपूर्वक किन्तु आश्चर्यचकित होकर दृढ़ता से कहा, "ऐसा कैसे सम्भव है कि मैं इस बात को स्वीकार कर लूँ? 'हाँ, आप लोग अन्य किसी स्थान पर रुक जाओ' ये शब्द मेरे मुख से कभी नहीं निकल सकते। कारण, श्रील प्रभुपाद के जन्म-स्थान संग्रह रूपी जिस कार्य को करने के लिये आप लोग आये हैं वह श्रील प्रभुपाद के शिष्य होने के कारण वास्तव में हमारा कर्त्तव्य था। हमने जिस कार्य के लिये तनिक भी चेष्टा नहीं की, हम देखते हैं कि आप लोग अत्यन्त उत्साहपूर्वक उस कार्य में लगे हो। इसलिये आप लोगों के प्रस्ताव को स्वीकार करना मेरे लिये सम्भवपर नहीं है तथा मैं आप सब से प्रार्थना करता हूँ कि यद्यपि हम आप लोगों को पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान करने में असमर्थ हैं तथापि आप कुछ ऐसी व्यवस्था कर लें कि इन सुविधाओं के साथ आप सब हमारे साथ शान्तिपूर्वक निवास कर सकें।"

एक वैष्णव कभी यह विचार नहीं करता,


हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे


DAKE

"यह हमारा स्थान है तथा हम सब प्रकार की व्यवस्था कर सकते हैं। सब कुछ हमारी इच्छानुसार होना चाहिये।" इसके स्थान पर वे विचार करते हैं, "नहीं, यह हमारा स्थान नहीं है। यह वैष्णवों का स्थान है तथा हम इसके सदस्य हैं, स्वामी नहीं। जो कोई भी आयेगा हम सहयोग प्रदान करेंगे तथा उपलब्ध सुविधाओं के अनुसार रहने का स्थान देंगे।"

श्रील सन्त गोस्वामी महाराज ने बाद में मुझे उस घर के स्थान पर मठ निर्माण करने का सुअवसर प्रदान किया। उन्होंने मुझसे कहा, "यह स्थान छोटा है किन्तु मेरे शिष्यों ने बताया कि तुम मठ के निर्माण के लिये एक उचित योजना एवं नक्शा बना सकते हो।"

मैंने कहा, "हाँ, किन्तु यह स्थान छोटा होने के कारण समकोणीय रूप में निर्माण नहीं हो सकता। इसे समानान्तर शैली से बनाना होगा। एक ओर आश्रम हो सकता है तथा मन्दिर दूसरी ओर हो सकता है।"

उन्होंने कहा, "मैं समकोणीय संरचना, समानान्तर संरचना अथवा अन्य किसी संरचना के विषय में नहीं जानता। कृपया ऐसा करें कि सब कुछ सुष्ठु रूप से हो जाए।" उसके पश्चात् मैंने नक्शा बनाया, सब कुछ निरीक्षण किया तथा सम्पूर्ण निर्माण कार्य अपनी देखरेख में करवाया।

उनकी ओर से राजा को निमन्त्रण देना

एक अन्य समय में श्रील सन्त गोस्वामी महाराज उनके पश्चिम बङ्गाल के वर्धमान जिले में केशियाड़ी में नूतन मठ की स्थापना हेतु एक विराट उत्सव का आयोजन करना चाहते थे। यद्यपि पुरी के राजा को उत्सव में मुख्य अतिथि के रूप में निमन्त्रित किया गया था किन्तु उन्होंने उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। जब श्रील सन्त गोस्वामी महाराज को यह ज्ञात हुआ कि मेरा राजा के साथ मित्रवत् सम्बन्ध है तो उन्होंने मुझे राजा को उत्सव में उपस्थित होने के लिये मनाने हेतु एक पत्र के माध्यम से आदेश प्रदान किया।

श्रील महाराज के आदेश पर मैं राजा से मिलने गया, जिन्होंने कहा, "मैं उन्हें पहले ही बता चुका हूँ कि मेरे लिये उत्सव में उपस्थित होना सम्भवपर नहीं है।"

मैंने परिहास करते हुए कहा, "इस वाक्य में से 'नहीं' शब्द हटा दीजिये तब यह सम्भवपर होगा।" राजा ने तब बताया कि यद्यपि उनकी उत्सव में भाग लेने की अभिलाषा है किन्तु उत्सव वाले दिन ही उनका किसी अन्य कार्यक्रम में उपस्थित होना पूर्व निर्धारित है। कुछ और अन्वेषण करने पर ज्ञात हुआ कि मठ उनके अन्य कार्यक्रम वाले स्थान के मार्ग में ही था। मैंने उन्हें निश्चिन्त करते हुए कहा कि यदि वे अल्प समय के लिये मार्ग में स्थित मठ में आ जायें तो मैं उनकी यात्रा सम्बन्धी समस्त व्यवस्था कर दूँगा। यह श्रवणकर राजा ने मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा मैं स्वयं राजा को उत्सव वाले दिन श्रील सन्त गोस्वामी महाराज के मठ में ले कर गया।

उस दिन श्रील सन्त गोस्वामी महाराज ने मुझे हरिकथा के परिवेशन हेतु कहा। मैंने अनेक मन्दिरों की उपस्थिति के लिये प्रसिद्ध केशियाड़ी में एक नवीन मठ के निर्माण की आवश्यकता के विषय में अपना वक्तृत्व प्रस्तुत किया। मैंने कहा कि यद्यपि नगर में बहुत से मन्दिर हैं तथापि यहाँ पर गौड़ीय मठ की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि लोगों के पास इनमें से प्रत्येक मन्दिर में जाने का अवसर होने पर भी उनका हृदय कभी परिवर्त्तित नहीं होगा। किन्तु मठ एक ऐसा स्थान है जहाँ पर लोग अपनी सम्पूर्ण देह को शुद्ध भक्तों की चरण धूलि से अभिषिक्त कर अपने जीवन को सार्थक कर सकते हैं। मठ में पारमार्थिक शिक्षक होता है तथा जो वास्तविक रूप से निष्कपट पारमार्थिक छात्र बनना चाहते हैं उनका सदैव यहाँ पर आने, शिक्षा ग्रहण एवं साधन करने के लिये स्वागत है। मठ ऐसे व्यक्तियों के मङ्गल के उद्देश्य से ही है तथा यह यहाँ आने वाले व्यक्तियों को मठवासी भक्तों की कृपा प्राप्त कर सौभाग्यशाली होने का महान सुयोग उपलब्ध करवाता है। ऐसे भक्तों के सङ्ग में शास्त्रों के वास्तविक, गूढ़ विचारों में प्रवेश सुनिश्चित है।

तत्पश्चात् श्रील सन्त गोस्वामी महाराज ने मुझसे कहा, "भक्तों ने आपके वक्तृत्व की अत्यधिक प्रशंसा की है तथा वे चाहते हैं जब तक आपके कार्यक्रमानुसार सम्भवपर हो तब तक आप यहाँ रहकर उन्हें अपना सङ्ग प्रदान करें।"

नम्रतापूर्वक गुरुवर्गों के दासानुदास रूप में अपनी स्थिति को स्वीकार करना

केशियाड़ी में हमारे एक साथ रहने के समय श्रील सन्त गोस्वामी महाराज एवं मुझे श्रीश्यामानन्द प्रभु के आश्रित श्रीरसिकानन्द देव के आविर्भाव स्थान के दर्शन का सुयोग प्राप्त हुआ। वहाँ के निवासी भक्तगण श्रील सन्त गोस्वामी महाराज को प्रणामी देना चाहते थे किन्तु उन्होंने स्पष्ट रूप से अस्वीकार करते हुए कहा, "यह हमारे गुरुवर्ग का स्थान है। मैं यहाँ पर प्रणामी कैसे स्वीकार कर सकता हूँ?" श्रील सन्त गोस्वामी महाराज ने भक्तों से प्रणामी स्वीकार तो की ही नहीं, बल्कि उन्हें ही प्रणामी दी।

लज्जा का अनुभव करने पर भी उनके निर्देश का पालन करना

मैं श्रील सन्त गोस्वामी महाराज की कृपा से विभिन्न प्रकार से उनकी सेवा करने में समर्थ हो पाया। इन सेवाओं के परिणामस्वरूप वह मुझसे अत्यधिक प्रसन्न हो गये, हमारा सम्बन्ध और अधिक गहरा हो गया तथा उनकी मेरे प्रति इस प्रकार की प्रगाढ़ प्रीति हो गयी कि यदि हम एक ही स्थान पर होते तो वे मुझे उनके बिना प्रसाद ग्रहण करने अथवा अपने कक्ष के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान में रुकने की अनुमति नहीं देते थे।

उत्सवों अथवा अन्य कार्यक्रमों के समय जहाँ पर गुरु महाराज अथवा उनके गुरुभ्रातागण उपस्थित होते थे मैं सदैव भूमि पर ही बैठता था जबकि वे मञ्च पर

बैठते थे। किन्तु एक समय श्रील सन्त गोस्वामी महाराज ने मुझे उनके साथ मञ्च पर बैठने का आदेश दिया। गुरुवर्गों के समान स्तर पर मञ्च पर बैठने में लज्जा का अनुभव करते हुए मैंने उन्हें मना कर दिया। किन्तु गुरु महाराज ने मुझसे कहा, "पूज्यपाद सन्त गोस्वामी महाराज ने आदेश प्रदान किया है, तुम्हें अवश्य ही हमारे साथ बैठना चाहिये, न मत कहो।"

वे श्रील प्रभुपाद के प्रथम शिष्य थे जिन्होंने मुझे मञ्च पर बैठने के लिये कहा था। तब से मैंने मञ्च पर बैठना प्रारम्भ किया था, उससे पूर्व मैंने ऐसा कभी नहीं किया था।

एक प्रिय गुरुभ्राता की प्रशंसा करना

एक समय श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज ने श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज की आविर्भाव-तिथि के उपलक्ष्य में निम्नलिखित वक्तृत्व प्रस्तुत किया–

"हमारे दो परमाराध्य वैष्णव श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज एवं श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज कृपा करके इस अयोग्य जीव को श्रील प्रभुपाद के निकट लेकर आये जिससे कि मैंने उनके चरणकमलों में आश्रय प्राप्त किया। मेरे प्रति की गयी उनकी इस असीम करुणा से उऋण हो पाना मेरे लिये असम्भव है। मैं मात्र उनके प्रति अपने सम्पूर्ण हृदय से कृतज्ञता ही प्रकट कर सकता हूँ। चौरासी वर्ष की आयु में भी मैं जो भक्ति के मार्ग पर अग्रसर होने में समर्थ हो पाया हूँ, वह एकमात्र श्रील पुरी गोस्वामी महाराज के निरन्तर मार्गदर्शन से ही सम्भव हुआ है तथा मैं इसके लिये उनका चिरऋणी हूँ।

"श्रील पुरी गोस्वामी महाराज शास्त्रों में अत्यन्त निपुण एवं सुप्रवीण हैं। विद्वान लोग बहुत हैं किन्तु एक वास्तविक विद्वान व्यक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। उनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान कोई शुष्क पाण्डित्यपूर्ण अथवा मनोकल्पित रचना नहीं है, अपितु अप्राकृत सुन्दरता विशिष्ट एवं परम दिव्य होने के कारण यह अत्यन्त रुचिकर एवं शिक्षाप्रद है। श्रीगुरुदेव की कृपा से प्रामाणिक आचार्य के समस्त दिव्य गुण उनके पारमार्थिक जीवन की प्रारम्भिक क्रियाओं में ही सुस्पष्ट थे। वह अपने व्यवहार में सदैव गम्भीर थे तथा उन्होंने कभी किसी का अनादर नहीं किया।

"भगवद्भक्ति प्राप्त करने के लिये साधक को
नम्रतापूर्वक कृष्णतत्त्वविद् अनुभूति सम्पन्न
श्रीगुरु के पास काय, मन एवं वाक्य से
पूर्ण समर्पित भाव से जाना चाहिये।"

उन्होंने कभी किसी को धोखा नहीं दिया तथा कपट आचरण नहीं किया। उनका आदर्श जीवन एवं शिक्षामूलक आचरण मुण्डक उपनिषद् के निम्नलिखित श्लोक के माध्यम से उपयुक्त रूप से व्यक्त किया जा सकता है –

तद् विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित् पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

"इसका अर्थ है कि भगवद्भक्ति प्राप्त करने के लिये साधक को नम्रतापूर्वक कृष्णतत्त्वविद् अनुभूति सम्पन्न श्रीगुरु के पास काय, मन एवं वाक्य से पूर्ण समर्पित भाव से जाना चाहिये। दूसरे शब्दों में, उसे सम्पूर्ण रूप से श्रीगुरु के शरणागत होना चाहिये।

"मैं श्रील पुरी महाराज का कनिष्ठ गुरुभ्राता हूँ एवं वह मेरे शिक्षा गुरु भी हैं जिनसे मैंने वैदिक शास्त्रों के सूक्ष्म विचारों को जाना है।"

कुछेक महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ

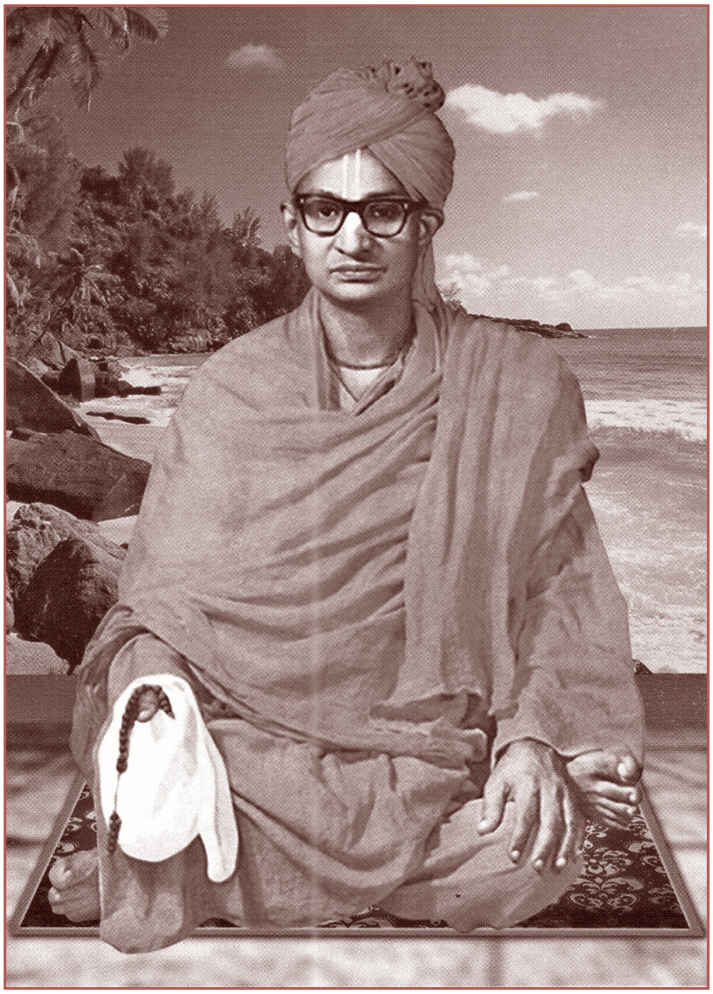
श्रील सन्त गोस्वामी महाराज की निम्नलिखित कुछ शिक्षाओं ने मेरे हृदय पर अमिट छाप अङ्कित की–

भक्ति–रस का आस्वादन करने के लिये दो वस्तुओं का होना अनिवार्य है– एक सिद्ध वक्ता एवं एक निष्कपट जिज्ञासु श्रोता। हमारी इस रस को अनुभव करने की असमर्थता का एकमात्र कारण इन दोनों में किसी एक वस्तु का अभाव है। इस प्रकार की वास्तविक, अप्राकृत अनुभूति मात्र कृत्रिम अनुकरण के द्वारा कदापि प्राप्त नहीं हो सकती।

"इस अपार दुःख सागर को पार करने का एकमात्र उपाय सम्पूर्ण रूप से श्रीगुरु के चरण–कमलों में शरणागत होना है।"

श्रीगुरु करुणा के सागर हैं तथा यह जड़ जगत् जन्म–मृत्यु का सागर है। इस अपार दुःख सागर को पार करने का एकमात्र उपाय सम्पूर्ण रूप से श्रीगुरु के चरण–कमलों में शरणागत होना है। श्रीगुरु का भगवद्–भक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं है तथा अपने गुरु की असीम

"जब विद्या अर्जित करने का उद्देश्य श्रीहरि की सेवा हो तब वास्तविक शिक्षा प्रारम्भ होती है।"



कृपा से वह अप्राकृत जगत् के प्रत्येक विषय में प्रवीण हैं। पूर्ववर्ती आचार्यों की कृपा से पूर्व से ही अभिषिक्त उनमें भी वास्तविक आचार्य के समस्त गुण विद्यमान होते हैं। इस प्रकार श्रीगुरु अन्यों के प्रति कृपा वर्षण करने तथा पतित जीवों का उद्धार करने में समर्थ होते हैं।



यदि हम गहन रूप से श्रीगुरु के तत्त्व की विवेचना करें तो संस्कृत में मूल शब्द 'गु' एवं 'रु' के क्रमशः अर्थ हैं– 'अन्धकार' एवं 'जो नष्ट अथवा दूर करता है।' अतएव यह स्पष्ट है कि जो जीवों के हृदय के अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने में असमर्थ है वह वास्तविक गुरु नहीं है।

इस जड़ जगत् में जीवन व्यतीत करना तलवार की तेज धार पर चलने के समान दुष्कर एवं भयानक है। प्रत्येक पग पर दुःख एवं कष्ट उपस्थित हैं। इसके अतिरिक्त पारमार्थिक ज्ञान का अभाव महान दुःख का स्रोत है।

तोते की भाँति प्रचार करने अथवा कल्पित ज्ञान अनुसन्धान से अद्वयज्ञान–परतत्त्व की अनुभूति सर्वथा असम्भव है। भगवान् से अभिन्न मानकर उनके समान ही गुरु की निर्मल एवं विशुद्ध सेवा करने वाले शरणागत भक्त के हृदय में श्रीगुरु के माध्यम से शास्त्रों के समस्त मर्मार्थ प्रकाशित होते हैं।



जब विद्या अर्जित करने का उद्देश्य श्रीहरि की सेवा हो तब वास्तविक शिक्षा प्रारम्भ होती है। अनेक व्यक्ति शास्त्रों का अध्ययन मात्र अपने असम्पूर्ण ज्ञान का प्रदर्शन करने के लिये करते हैं किन्तु इस प्रकार की अभिलाषाएँ सम्पूर्ण रूप से वर्जित हैं। जो भगवान् की सेवा करने के लिये प्रेरित करे वही वास्तविक विद्या है।

श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज



श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय ग्रहण करना

श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज ब्राह्मण कुल में आविर्भूत हुए थे तथा उनके पूर्वाश्रम का नाम श्रीनृपेन्द्र सन्याल था। श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय ग्रहण करने से पूर्व श्रीनृपेन्द्र सन्याल बङ्गाल के प्रसिद्ध समाचारपत्र अमृत बाजार पत्रिका के सम्वाददाता (रिपोर्टर) के पद पर नियुक्त थे। एक समय वे कुछेक अन्य सम्वाददाताओं के साथ बागबाजार गौड़ीय मठ में श्रील प्रभुपाद द्वारा आयोजित सत्-शिक्षा-प्रदर्शनी का दर्शन करने तथा रिपोर्ट लिखने के उद्देश्य से गये थे।

प्रदर्शनी के अन्तर्गत वर्त्तमान गौड़ीय-वैष्णव-समाज में प्रचलित कुरीतियों- यथा 'शालिग्राम के द्वारा मूँगफली तोड़ना', 'पैसे लेकर श्रीविग्रह के दर्शन करने देना', 'भागवत-जीवी तथा मन्त्र-जीवी (श्रीमद्भागवतम् का पाठ एवं दीक्षा-मन्त्र प्रदान करने के विनिमय में धन संग्रह कर जीविका उपार्जन करने वाले व्यक्ति) की दैनिक क्रिया', 'ब्राह्मण होने पर भी माँस-मदिरा आदि का सेवन करना', 'बाबाजी का वेष लेने पर भी स्त्री को निर्लज्जतापूर्वक अपने साथ में रखने' जैसे विभिन्न दृश्यों को प्रदर्शित किया गया था। उन सब दृश्यों को देखकर तथा स्वाभाविक रूप में उनके विषय में अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करने की आकांक्षा से जब श्रीनृपेन्द्र सन्याल ने वहाँ उपस्थित भक्तों से बहुत से प्रश्न किये तब उसी के फलस्वरूप भक्त उन्हें अपने गुरुदेव श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के निकट ले गये।

वहीं पर श्रीनृपेन्द्र सन्याल को श्रील प्रभुपाद के सर्वप्रथम दर्शन करने तथा उनके

मुख से भागवत-धर्म, भागवत-परम्परा तथा ब्राह्मण और वैष्णव के अविच्छेद्य सम्बन्ध के विषय में विशुद्ध गौड़ीय विचार श्रवण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रेरित जन किस-किस प्रकार से श्रील प्रभुपाद के निकट पहुँचे, यह भी अपने आप में एक अद्भुत व्यापार है। श्रील प्रभुपाद की वीर्यवती कथा का उन पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि जब भी अवसर प्राप्त होता, वे मठ में हरिकथा-कीर्त्तन श्रवण के उद्देश्य से आ जाते। उन्होंने साधु-सङ्ग, मनुष्य जीवन की सार्थकता, सत्-सम्प्रदाय के माहात्म्य जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर गूढ़ चिन्तन किया।

अत्यधिक सावधानीपूर्वक आत्मविश्लेषण कर श्रीनृपेन्द्र सन्याल ने निर्णय लिया, "मैं इन महापुरुष का चरणाश्रय करके, उनका नगण्य दास बनकर इनके मन के भावों को भली-भाँति जानकर इनके द्वारा प्रारम्भ किये गये मङ्गलमय कार्य में प्राणपर योगदान करूँगा।" वह श्रील प्रभुपाद के द्वारा स्वयं पर अत्यधिक गुरुत्वपूर्ण दायित्व लेकर जीवन यापन करने से अत्यधिक प्रभावित हुए। कुछ समय के पश्चात् उन्होंने श्रील प्रभुपाद को अपने हृदय के भावों से अवगत कराया एवं श्रील प्रभुपाद से हरिनाम तथा दीक्षा प्राप्त की। श्रील प्रभुपाद ने उन्हें श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी नाम प्रदान किया।

विरह में सेवा

श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी के अंग्रेजी भाषा में विशेष अधिकार तथा सम्वाददाता के कार्य में दक्ष होने के कारण श्रवण किये गये विषय को कीर्त्तन करने में नैपुण्य को देखकर श्रील प्रभुपाद ने उन्हें श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज तथा अन्य संन्यासी-ब्रह्मचारियों के साथ मुम्बई में प्रचार-सेवा कार्य हेतु भेजा। मुम्बई में श्री एम॰ पी॰ इन्जीनियर ने, जो उस समय थिओसोफिकल सोसायटी के अध्यक्ष थे तथा बाद में स्वतन्त्र भारत के प्रथम महाधिवक्ता (Advocate General) बने, गौड़ीय मठ के प्रचारकों को सोसायटी की सभा में प्रवचन देने हेतु निमन्त्रण किया। श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज के प्रवचन तथा भक्तों के कीर्त्तन और उनके आचार-विचार को देख-सुनकर श्री एम॰ पी॰ इन्जीनियर अत्यन्त प्रभावित हुए।

बाद में, श्रील प्रभुपाद के मुम्बई आने पर श्री एम॰ पी॰ इन्जीनियर ने उनसे वहाँ पर गौड़ीय मठ की एक शाखा स्थापित करने हेतु प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना का उत्तर प्रदान करने से पूर्व श्रील प्रभुपाद ने श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी से पूछा, "यदि आपको मुम्बई में प्रचार-सेवा-कार्य हेतु नियुक्त किया जाये तो आपको कोई असुविधा तो नहीं होगी?"

श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी ने उत्तर में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर रचित कीर्त्तन के पद का गान किया-

तोमार सेवाय, दुःख हय जत,
सेओ त' परम सुख।
सेवा-सुख-दुःख, परम सम्पद,
नाशये अविद्या-दुःख॥

शरणागति (आत्मनिवेदन ८.४)



[आपकी सेवा करते हुए यदि दुःख भी होता है, तो वास्तव में वही मेरे लिये परम सुख है। सेवा में प्राप्त होने वाले सुख एवं दुःख ही सर्वोच्च सम्पत्ति हैं, कारण, उनके द्वारा अविद्या रूपी दुःख का नाश होता है।]

"यद्यपि मुझ जैसे नवीन साधक के लिये श्रीगुरु के साक्षात् सङ्ग में रहने से अधिक पारमार्थिक लाभ होता किन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपके आदेश का पालन करने हेतु दूर से भी आपकी सेवा करने से मैं उस पारमार्थिक लाभ से वञ्चित नहीं होऊँगा।"

श्रील प्रभुपाद के आदेश-निर्देशानुसार श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी ने मुम्बई के अनेक स्थानों पर प्रचार कार्य किया। श्रील प्रभुपाद ने द्वादश स्कन्धयुक्त श्रीमद्भागवतम् पर उनका नाम अङ्कित कराकर मुम्बई में उनके निकट कृपा-आशीर्वाद स्वरूप भिजवाया था। श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज इस बात

को स्मरण करके कहा करते थे, "जब मुझे श्रील प्रभुपाद द्वारा भेजा गया सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतम् ग्रन्थ प्राप्त हुआ तब मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो श्रील प्रभुपाद मुझे श्रीभागवत-धर्म के आचार और प्रचार में नियुक्त होने का निर्देश प्रदान कर रहे हैं।"

भक्ति-कमल

श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी श्रीमद्भागवतम् की अत्यधिक मधुर तथा सुन्दर स्पष्ट रूप से व्याख्या करते थे तथा प्रत्येक विषय-वस्तु को युक्ति एवं तर्क देकर समझाते थे।

श्रील प्रभुपाद स्वाश्रित ब्रह्मचारी-संन्यासियों आदि के द्वारा किये जा रहे प्रचार-सेवा कार्य की सम्पूर्ण रिपोर्ट रखते थे। जब श्रील प्रभुपाद ने श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी द्वारा उत्साह तथा दक्षतापूर्वक भागवत-धर्म के प्रचार के विषय में श्रवण किया तब उन्होंने उनसे सन्तुष्ट होकर उन्हें श्रीगौर-आशीर्वाद प्रदान करके 'भक्ति-कमल' उपाधि से विभूषित किया। इसी कारण परवर्ती काल में श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज ने उन्हें संन्यास प्रदान करके 'श्रीभक्तिकमल मधुसूदन महाराज' नाम प्रदान किया।

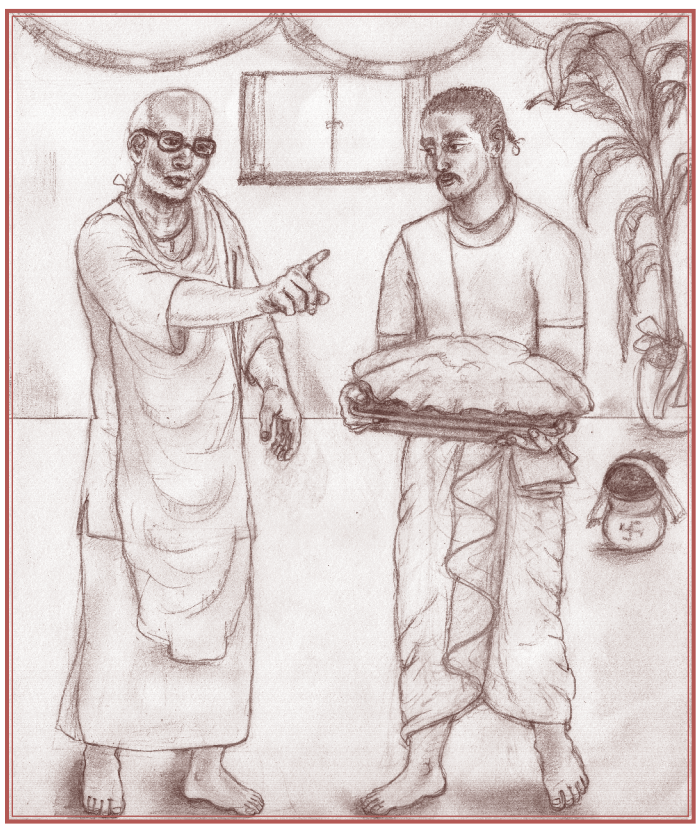
उनकी बहुमूल्य प्रचार-सेवा का सुफल

श्रील प्रभुपाद की अप्रकट लीला के पश्चात्, प्रारम्भ में श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज, श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज तथा श्रीमद्भक्त्यालोक परमहंस महाराज एक साथ रहकर उनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के ध्वज तले श्रील प्रभुपाद की विचारधारा का प्रचार करते थे। श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज शिष्य ग्रहण करते थे तथा श्रील भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज एवं श्रील भक्त्यालोक परमहंस महाराज उनके आनुगत्य में प्रचार सेवा कार्य करते थे। श्रील भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज के प्रचार एवं सङ्ग के प्रभाव से ही श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज को दो मुख्य बहुमूल्य रत्नस्वरूप श्रीराधानाथ वनचारी (श्रीभक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज) तथा श्रीगौरनारायण वनचारी (श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज) की प्राप्ति हुई थी। गौड़ीय-सारस्वत-वैष्णव समाज में उनका यह योगदान सदैव स्वर्णाक्षरों में संरक्षित रहेगा।

मायापुर मठ के लिये भूमि-संग्रह

जब किन्हीं कारणों से श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के मुख्य सदस्यों में मतभेद हुआ, तब मेरे गुरु महाराज श्रीमद्भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज को समाधान करने के लिये बुलाया गया। उन सबके विचारों को श्रवण कर गुरु महाराज ने कहा, "श्रीकेशव महाराज के बहुत से त्यागी शिष्य हैं, अतएव श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ उनके पास रहने से ही अच्छा होगा। श्रीमधुसूदन महाराज अभी वर्धमान में स्थित मठ से ही अपना प्रचार कार्य करें तथा बाद में मैं स्वयं श्रीमायापुर में उनका अलग से स्थान लेकर मठ बनवाने में सहायता करूँगा। श्रीपरमहंस महाराज को धन-भण्डार में से इतने पैसे दे दीजिए, जिससे कि वे अन्ततः मायापुर में एक स्थान लेकर अपना सेवाकार्य सुष्ठु रूप से चला सकें।"

जब गुरु महाराज ने उन सबकी बात सुनकर ऐसा समाधान दिया तो सभी ने सहर्ष उसे स्वीकार कर लिया। गुरु महाराज ने अपने वचनानुसार श्रीभक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज के प्रचार से श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज का चरणाश्रय करने वाली श्रीपन्ना माँ के नाम से प्रसिद्ध एक माता को प्रेरणा देकर श्रीभक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज के मठ हेतु श्रीधाम मायापुर में जमीन संग्रह करायी तथा उनका मठ बनवाने में यथासम्भव सहायता की।



प्रसाद के विषय में उनका अद्वितीय दृष्टिकोण

जब श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीकृष्ण चैतन्य मठ, मायापुर में श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज के आनुगत्य में मैं उनके सहायक के रूप में विग्रह-प्रतिष्ठा सेवा कार्य में नियुक्त हुआ था, तब मैंने श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज का प्रसाद सम्बन्धित एक वैशिष्ट्य लक्षित किया था।

श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज की वृद्धावस्था तथा प्रत्येक कार्य को अत्यधिक प्रवीणता के साथ करने की उनकी प्रबल आकांक्षा के कारण विग्रहों को भोग-निवेदन करने में होती देरी को देखकर श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज ने मुझसे कहा, "तुम ठाकुरजी के भोग हेतु पारस सजाकर मन्दिर में रख लो, श्रीपुरी महाराज अपनी सुविधानुसार जब भोग लगायेंगे वे अपने आप देख लेंगे। आज यहाँ पर उपस्थित वैष्णव विभिन्न स्थानों से आये हैं तथा जो वैष्णव शीघ्र अपने-अपने स्थान पर जाकर अन्य सेवा-कार्य करना चाहते हैं, मैं उन्हें प्रतीक्षा नहीं कराना चाहता। मुझे विश्वास है कि वे अपने-अपने आश्रमों में समय पर पहुँचना चाहते हैं। इधर अग्रभाग ठाकुरजी के लिये अलग से

"वैष्णव हमारे सेव्य हैं, हम उन्हें प्रतीक्षा नहीं करायेंगे।"

निकाल लेने पर मैं वैष्णवों में प्रसाद का वितरण करा दूँगा।"

श्रील महाराज ने कहा, "मेरा ऐसा विचार नहीं है कि जब तक पारस वाले प्रसाद को अन्य पात्रों में मिश्रित नहीं कर दूँगा तब तक वह प्रसाद नहीं बनेगा। मेरा विचार है कि अग्रभाग ठाकुरजी के उद्देश्य से मन्दिर में जाने पर विशेष परिस्थिति में भोग के बाहर आने से पूर्व यदि पश्चात् भाग अथवा अवशिष्ट को वैष्णवों में वितरित कर दिया जाये तो उसमें कोई दोष नहीं होता। विग्रह प्रतिष्ठा के शुभ-अवसर पर विशेष आयोजन में थोड़ी-सी देरी होना अवश्यम्भावी है किन्तु वैष्णव हमारे सेव्य हैं, हम उन्हें प्रतीक्षा नहीं करायेंगे। इसलिये श्रीविग्रहों के भोग-राग, राज-भोग-आरती के दर्शन करने के अभिलाषी व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य भक्तों में यथासमय प्रसाद वितरण करना ही अच्छा है।"

ठाकुरजी के उद्देश्य से भोग के मन्दिर में ले जाने के पश्चात् श्रील महाराज ने कुछ भक्तों के द्वारा प्रसाद का वितरण कराना प्रारम्भ किया। मेरे जीवन का वही सर्वप्रथम दिन था जब मैंने देखा कि ठाकुरजी के लिए अग्रभाग निकालकर प्रसाद वितरण होता है।

वैष्णव-आनुगत्य में दृढ़ आग्रह

श्रील प्रभुपाद के प्रकट काल में श्रील भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज साक्षात् अपने गुरुपादपद्म के आनुगत्य में रहे। श्रील प्रभुपाद की अप्रकट लीला प्रकाशित करने पर उन्होंने अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज तथा परवर्ती काल में अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता तथा संन्यास गुरु श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज का ऐकान्तिक आनुगत्य किया। अपने द्वारा किये जाने वाले समस्त सेवा-कार्यों में वे अपने गुरुभ्राताओं का परामर्श तथा उनका अनुमोदन होने पर ही अग्रसर होते थे। इस प्रकार अपने आचरण के द्वारा उन्होंने इस वैष्णव-सिद्धान्त को ही सुदृढ़ किया कि आनुगत्यमय धर्म ही वैष्णव-धर्म है, स्वतन्त्रता-उच्छृंखलता रहने पर वास्तविक वैष्णव-धर्म में निष्णात नहीं हुआ जा सकता।

अपने गुरुभ्राता को श्रीगुरु का प्रकाश जानना

कुछ सारस्वत-गौड़ीय-वैष्णव भक्तजन कहते हैं कि जयध्वनि देते समय अथवा अन्य किसी प्रयोजन के समय दीक्षा गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी के नाम के समक्ष ॐ विष्णुपाद शब्द का संयोग नहीं करना चाहिये, भले ही वे आपके शिक्षा गुरु भी क्यों न हो, किन्तु मैंने स्वयं अपने प्रमाणिक गुरुवर्ग श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज को उनके ज्येष्ठ गुरुभ्राता तथा संन्यास-मन्त्र-प्रदाता श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज



श्रीराधा–दामोदर मन्दिर, वृन्दावन स्थित
श्रील महाराज की पुष्प–समाधि

के नाम के समक्ष सदैव ॐ विष्णुपाद का संयोग करते देखा-सुना है।

श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज कहते थे, "दीक्षा-गुरु तथा शिक्षा-गुरु के अभिन्न होने के कारण 'ॐ विष्णुपाद' का प्रयोग दोनों के नाम के समक्ष करना ही उचित है, प्रयोग नहीं करना ही दोषावह है। श्रील प्रभुपाद के आदर्श, उनकी आचार-प्रचार-विचार-भाव-धारा को सम्पूर्ण रूप से आत्मसात करने वाले श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज मेरे लिये उन्हीं के द्वितीय स्वरूप होने के कारण 'ॐ विष्णुपाद' पदवाची हैं।"

इतनी अगाध शरणागति गुरुभ्राता के प्रति होना विलक्षण है, इसके द्वारा श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज की अत्यधिक विकसित चित्तवृत्ति तथा वैष्णवोचित दीनता स्वतः प्रस्फुटित होती है।

विनम्र एवं संवेदनशील स्वभाव

गुरु महाराज ने कोलकाता श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में श्रीकृष्ण पुष्याभिषेक तिथि को उपलक्ष्य करके श्रीविग्रहों के गृहप्रवेश के समय अपने प्रायः समस्त गुरुभ्राताओं को पञ्चदिवस-व्यापी उत्सव में योगदान देने के लिये निमन्त्रित किया था। श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज ने भी उस महोत्सव में योगदान दिया था। मठ में आने के पश्चात् मुझे अपने कक्ष में बुलाकर उन्होंने अत्यन्त मृदुलता से कहा, "यदि मैं तुम्हें तुम्हारी कोई भूल निकालकर दिखाऊँ तो तुम्हें अप्रसन्नता तो नहीं होगी?"

मैंने कहा, "नहीं महाराज, यह तो मेरा सौभाग्य ही होगा तथा मैं अपनी भूल को सुधारने का प्रयास भी करूँगा। कृपया मेरी भूल बताइये।"

तब उन्होंने कक्ष की दीवारों की ओर इङ्गित करते हुए कहा, "कहीं पर भी मच्छरदानी आदि को बाँधने के लिये हुक (hook) नहीं लगाया।"

मैंने कहा, "महाराज, प्लास्टर करने में आने वाली असुविधा से बचने के लिये पहले हुक नहीं लगवाये, किन्तु अब प्लास्टर का कार्य पूर्ण हो गया है, अतः मैं शीघ्र ही प्रत्येक कक्ष में हुक लगाने की व्यवस्था कर देता हूँ।"

श्रील महाराज अत्यधिक श्रेष्ठ होने पर भी कभी किसी से ऊँचे स्वर में बात नहीं करते थे तथा अपने से छोटे को कुछ कहने पर दुःख न लगे, इस विषय में बहुत संवेदनशील थे।

गुरु महाराज के प्रति अगाध श्रद्धा

एक समय श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज हैदराबाद स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में उत्सव में योगदान देने हेतु आये थे, उस समय वहाँ पर श्रील प्रभुपाद के अन्यान्य आश्रितजनों के साथ श्रीमद्भक्तिविकास हृषीकेश गोस्वामी महाराज ने भी उत्सव में अंश ग्रहण किया था। एक दिन मैंने देखा कि श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज एवं श्रील हृषीकेश गोस्वामी महाराज परस्पर में मित्रवत् हास-परिहास करते हुए श्रील प्रभुपाद के समय की बात करते हुए एक-दूसरे से कह रहे थे, "तुम्हारे कारण मेरी व्रजमण्डल परिक्रमा नहीं हो पायी, तुमने उस समय ऐसे किया था, वैसे किया था इत्यादि।" किन्तु आश्चर्य

की बात, जैसे ही गुरु महाराज ने कक्ष में प्रवेश किया, साथ-ही-साथ वे पूर्ण रूप से शान्त हो गये तथा गुरु महाराज के साथ और आपस में भी अत्यधिक मर्यादापूर्वक वार्त्तालाप करने लगे। जैसे ही गुरु महाराज वहाँ से गये, उन्होंने पुनः पूर्व की भाँति वार्त्तालाप करना प्रारम्भ कर दिया।

इससे मैंने समझ लिया कि श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज एवं श्रील हृषीकेश गोस्वामी महाराज का परस्पर मित्रवत् सम्बन्ध था तथा गुरु महाराज को आदर देकर चलते थे, उनके प्रति इनकी मर्यादा बुद्धि थी।

सेवा निष्पादन की आवश्यकता के अनुरूप व्यवहार

मैंने श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज को गुरु महाराज के साथ विभिन्न स्थानों पर विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यवहार करते हुए देखा है। श्रीगौरपूर्णिमा के उपरान्त श्रीजगन्नाथ मिश्र महोत्सव के समय श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज के नवद्वीपस्थ मठ में उन्होंने गुरु महाराज से शिकायत करते हुए कहा था, "महाराज आपने आने में इतनी अधिक देरी कर दी। क्या यह अच्छी बात है कि आप के कारण सभी प्रतीक्षा कर रहे हैं? ऐसा भविष्य में नहीं करना ही अच्छा।"

एक अन्य समय, श्रीजगन्नाथ पुरी में उन्होंने गुरु महाराज की प्रशंसा करते हुए कहा था, "जो सेवा कार्य आपने किया है, वह किसी ने नहीं किया। आपकी कृपा से हमें श्रील प्रभुपाद की आविर्भाव-स्थली पर बैठने का अधिकार प्राप्त हुआ है।"

एक अन्य समय में श्रीमद्भागवतम् की व्याख्या करते हुए उन्होंने गुरु महाराज से कहा, "ग्रन्थ-भागवत के प्रत्येक उपदेश को अपने जीवन में पालन करने से ही भक्त-भागवत बना जा सकता है।"

कहने का तात्पर्य यह है कि श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित कीर्त्तन में वर्णित वैष्णवों के एक विशेष गुण, "अन्तर-बाहिरे, सम व्यवहार, अमानी मानद ह'बो अर्थात् अन्दर तथा बाहर में मेरा व्यवहार एक समान होगा तथा मैं अपने सम्मान की इच्छा न कर दूसरों को सम्मान प्रदान करूँगा" में श्रील महाराज सम्पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित थे। दूसरे शब्दों में श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज सेवा की आवश्यकता अनुसार ही व्यवहार करते थे अर्थात् हरि-गुरु-वैष्णव की सेवा को सुष्ठु रूप से करने के लिये जब जिस प्रकार के उपदेश, आदेश, प्रशंसा, शासन आदि जिस किसी की भी आवश्यकता पड़ती, वे उसे बिना किसी सङ्कोच के कहते।

मेरे द्वारा सुष्ठु गो-सेवा की सराहना

एक बार श्रील भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज ने हमारे मायापुर स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ की गैयाओं के प्रसन्न वदन को देखकर मुझसे पूछा, "इनकी सेवा कौन करता है?"

मैंने कहा, "महाराज, मैं करता हूँ।"

उन्होंने पुनः पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

मैंने कहा, "नरोत्तम ब्रह्मचारी।"

उन्होंने कहा, "ऐसा नाम बताने से

नहीं चलेगा। अपने पूर्वाश्रम का पूरा नाम बताओ।"

जब मैंने अपना नाम नरोत्तम चक्रवर्ती बताया, तब उन्होंने कहा, "तुम ब्राह्मण कुल के हो, वैष्णव ही वास्तविक ब्राह्मण हैं, तुम अवश्य ही वैष्णवोचित गुण-सम्पन्न हो इसलिए भली-भाँति इन गैयाओं की सेवा कर रहे हो। अन्यथा मेरा एक आश्रित गैयाओं की सेवा हीनभावना के कारण नहीं करता, कहता है- मैं ब्रह्मचारी हूँ, गैयाओं की सेवा क्यों करूँगा, ठाकुरजी की सेवा करूँगा। जो हो, माधव महाराज भली-भाँति जानते हैं कि किस व्यक्ति से क्या सेवा करवानी चाहिये।"

ज्येष्ठ गुरुभ्राता द्वारा प्रशंसा

श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज के आदेश-निर्देशानुसार श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज ने श्रीचैतन्य सारस्वत मठ द्वारा आयोजित श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा का अनेक वर्षों तक नेतृत्व किया। श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज ने श्रीचैतन्य सारस्वत मठ से बङ्गला भाषा में प्रकाशित होने वाली श्रीगौड़ीय दर्शन के सम्पादन का सेवा-कार्य भी किया। श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज कहते थे, "सेवक बहुत मिल जाते हैं, किन्तु सम्पूर्ण रूप से दायित्व लेकर उसे सुष्ठु रूप से निर्वाह करने वाले श्रीमधुसूदन महाराज जैसे भक्तों का मिलना अत्यधिक सौभाग्य से ही होता है। इन्हीं के कारण मैं अनेक विषयों में सम्पूर्ण रूप से निश्चिन्त होकर अपना भजन करता हूँ।"

गुरु महाराज की दृढ़-निष्ठा की सराहना

गुरु महाराज ने जब श्रील प्रभुपाद की आविर्भाव-स्थली पुरी में १९७८ ई॰ में श्रील प्रभुपाद की व्यास-पूजा का विराट आयोजन किया था, तब श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाराज ने अपने प्रवचन में कहा था, "हम श्रील प्रभुपाद के अनेक शिष्य हैं, किन्तु श्रीपाद माधव महाराज के अतिरिक्त अन्य किसी ने श्रील प्रभुपाद की आविर्भाव-स्थली की गरिमा के संरक्षण हेतु कोई भी प्रयास नहीं किया। श्रील प्रभुपाद के जिन आश्रितों के पास प्रचुर साधन था, उन्होंने कुछ नहीं किया और यद्यपि श्रीमाधव महाराज के पास साधन का अभाव था, अपनी अत्यधिक निष्ठा-वशतः उन्होंने सब कर दिखाया। वास्तव में उनकी निष्ठा के कारण असम्भव भी सम्भवपर हो गया।"

श्रील गुरु महाराज के अप्रकट-लीला को प्रकाशित करने के पश्चात् जब श्रील प्रभुपाद की आविर्भाव-स्थली पर नवनिर्मित मन्दिर में श्रील प्रभुपाद, श्रीमन्महाप्रभु तथा श्रीश्रीराधा-नयनमणि के श्रीविग्रहों की प्रतिष्ठा की गयी, उस समय भी हमारे उत्साह को वर्धित करने हेतु श्रील महाराज वहाँ पर विराजित हुए थे।

वैष्णवेर गुणगान करिले जीवेर त्राण

"वैष्णवों की महिमा का गान करने से जीवों का कल्याण सम्भव होता है।"



पूज्यपाद मधुसूदन महाराज का महिमा-कीर्त्तन

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित

उनका अदम्य उत्साह एवं दक्षता

परमाराध्य पूज्यपाद श्रील प्रभुपाद ने श्रीनरोत्तमानन्द प्रभु की श्रीहरि-गुरु-वैष्णव सेवा और विशेषतः उनके श्रीहरि-कथा के श्रवण-कीर्त्तन में सविशेष अनुराग को लक्ष्य करके उन्हें प्रवीण त्रिदण्डि संन्यासियों के साथ भारत के विभिन्न स्थानों पर श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुखनिःसृत शुद्ध भक्तिसिद्धान्त वाणी के प्रचार-सेवा कार्य में नियुक्त किया था। श्रील प्रभुपाद ने श्रीनरोत्तमानन्द प्रभु के विभिन्न स्थानों पर अनेक विशिष्ट बुद्धिजीवियों से सुशोभित सभाओं में पाठ-कीर्त्तन-वक्तृता प्रदान, मठ-मन्दिरों आदि की प्रतिष्ठा सम्बन्धित नानाविध दायित्वपूर्ण सेवा कार्यों में अदम्य उत्साह और दक्षता का श्रवण करके तथा स्वनेत्रों से देखकर एवं अम्लान वदन और प्रसन्नचित्त से मुस्कुराते हुए सब प्रकार के सेवा-कार्यों में तत्परता से सन्तुष्ट होकर उन्हें श्रीनवद्वीप धाम प्रचारिणी सभा की ओर से 'भक्ति कमल' भक्ति सूचक उपाधि भूषण में भूषित करके प्रचुर स्नेहाशीर्वाद वितरण किया था।

गुरुभ्राताओं के आनन्द का कारण

नित्यलीला प्रविष्ट पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज, पूज्यपाद नामभजनानन्दी श्रील कृष्णदास बाबाजी महाराज, पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराज आदि प्रमुख श्रील प्रभुपाद के निजजनगण पूज्यपाद श्रीमधुसूदन महाराज के श्रीमद्भागवतम् पाठ और वक्तृता आदि को श्रवण कर अत्यधिक आनन्द प्रकाशित करते थे।

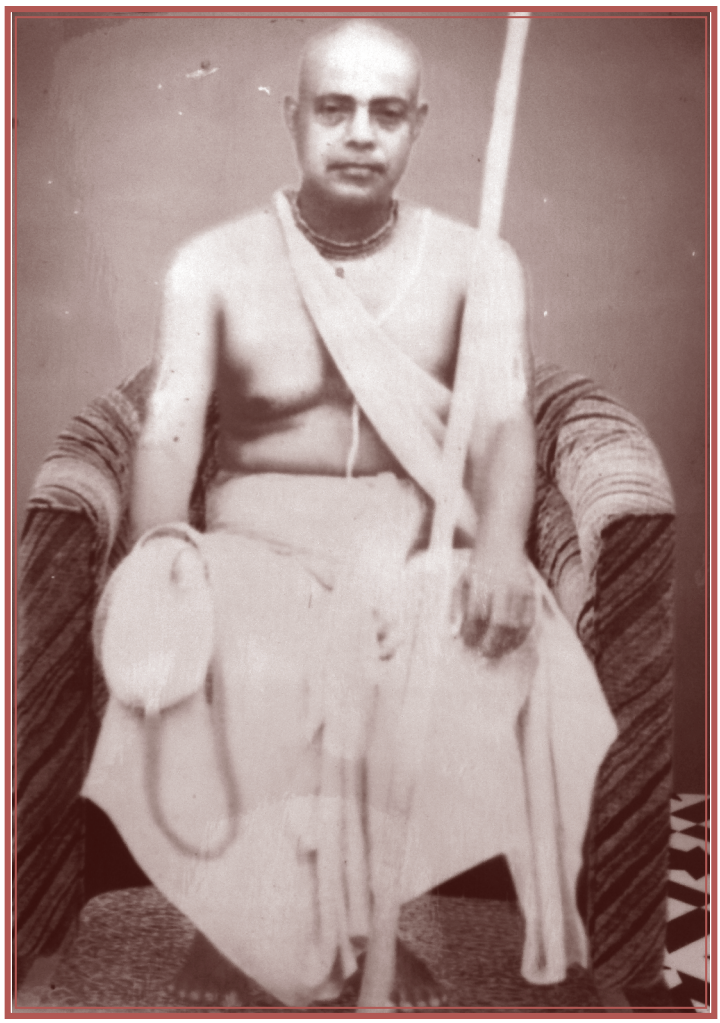
समस्त गुणों के भण्डार

कृष्णभक्त में कृष्ण के सभी गुण ही सञ्चारित होते हैं। वैष्णवोचित अशेष गुणों से श्रीपाद मधुसूदन महाराज अलंकृत थे। आज हम उनके जैसे एक समस्त गुणों के भण्डार वैष्णव संन्यासी का अभाव अनुभव कर रहे हैं। उनका अदर्शन जनित दुःख हमारे लिये अत्यधिक असहनीय है।

गभीरतम हृदय-पीड़ा

वास्तव में श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-मुख-निःसृत शुद्धभक्ति सिद्धान्तवाणी कीर्त्तनपरायण भक्त जगत् में बहुत विरले हैं। वैसे भक्त का अदर्शन कितना गभीरतम हृदय पीड़ा पहुँचाने वाला है, उसे भाषा द्वारा व्यक्त करना कदापि सम्भवपर नहीं हो सकता। किन्तु सर्वतन्त्र स्वतन्त्र स्वराट पुरुषोत्तम कृष्ण की इच्छा सम्पूर्ण स्वतन्त्रा और तर्क से परे है। वे अपनी प्रिय वस्तु को अपने चरणों में स्थान देकर हमें विरह समुद्र में निमज्जित करके -'वैष्णवेर गुणगान करिले जीवेर त्राण' इस वचन को स्मरण कराकर अपने भक्त के भजन-आदर्श का अनुसरण करने का उपदेश प्रदान करते हैं, यही हमारे विच्छेद रूपी अग्नि से तप्त हृदय के लिये सान्त्वना रूपी जलराशि है।

श्रीचैतन्यवाणी (वर्ष ३१, संख्या ८) में प्रकाशित एक लेख से अनुवादित



श्रीमद्भक्तिसौरभ भक्तिसार गोस्वामी महाराज



श्रील प्रभुपाद के चरण कमलों का आश्रय ग्रहण करना

श्रीमद्भक्तिसौरभ भक्तिसार गोस्वामी महाराज का आविर्भाव पूर्व बङ्गाल (अधुना बङ्गलादेश) के खुलना जिले के अन्तर्गत हुआ था एवं उनका मातृ-पितृ प्रदत्त नाम नन्ददुलाल था। जब वे कटक में रावेनशॉ महाविद्यालय में यन्त्रशास्त्र (इंजीनियर) की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे तब वहीं उनका श्रील प्रभुपाद के द्वारा संस्थापित मठ के मठरक्षक श्रीव्रजविहारी दास बाबाजी महाराज से सम्पर्क हुआ था।

यद्यपि श्रील बाबाजी महाराज अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे तब भी श्रील प्रभुपाद के आदेशानुसार नित्यप्रति श्रीचैतन्यचरितामृत का पाठ करते थे। वे पाठ भी ठीक से नहीं कर पाते थे किन्तु उनकी सरलता से ही प्रभावित होकर बड़े-बड़े विद्वानों तथा अंग्रेजी के प्राध्यापकों तक ने गौड़ीय मठ के शिष्यत्व को स्वीकार किया था। बाबाजी महाराज पुनः-पुनः कहते थे, "मैं अपने गुरुदेव का, श्रीचैतन्यदेव का सन्देशवाहक मात्र हूँ। मैं जानता हूँ कि उनकी वस्तु का मैं ठीक से वितरण तक भी नहीं कर पा रहा, तब भी अपनी ओर से भरसक प्रयास करता हूँ कि उनकी वाणी आपके कानों तक पहुँच जाए। उसमें जो त्रुटियाँ हैं, आप लोग अपनी विद्वत्ता से उनमें सुधार कर लेना।"

श्रीव्रजविहारी दास बाबाजी महाराज की सरलता से प्रभावित होकर श्रीनन्ददुलाल नित्यप्रति उनका सङ्ग करते तथा उसी के फलस्वरूप उनमें श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय करने की प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हुई। श्रीनन्ददुलाल ने अपने आदर्श जीवन की इस घटना से हमें शिक्षा प्रदान की है कि

केवल मात्र किसी की जागतिक विद्वत्ता, कथा को रटकर 'प्लेटफार्म स्पीकर' की भाँति बोलने की योग्यता ही किसी अन्य के हृदय में भक्ति का सञ्चार नहीं कर सकती। यद्यपि एक अनुभवी राजनेता भी आधे घण्टे में ही अति दक्षतापूर्वक एक प्रभावी वक्तृता तैयार कर सकता है तथापि उसकी वाकपटुता का प्रभाव अस्थायी मात्र है। दूसरी ओर, एक शरणागत, निष्कपट भक्त के जागतिक दृष्टिकोण से निरक्षर होने पर भी उनके द्वारा प्रदत्त कुछ अस्पष्ट एवं शास्त्रीय श्लोक इत्यादि के उच्चारण से रहित साधारण सी कथा भी अत्यधिक वीर्यवती होने के कारण किसी के भी हृदय में भक्ति का सञ्चार करने में परम समर्थ होती है। श्रील प्रभुपाद ने ऐसे शरणागत भक्तों को उपलक्ष्य करके ही अपनी रचना 'वैष्णव के?' (पयार संख्या १७) में लिखा है, "प्राण आछे तार, से हेतु प्रचार – एकमात्र ऐसे शुद्ध भक्त ही वास्तव में प्राणयुक्त हैं तथा वे ही जगत् के अन्य (मृत-सदृश) जीवों में प्रचार कर उनमें प्राणों का सञ्चार करते हैं।"

जब श्रीनन्ददुलाल ने अपने धर्मपरायण माता-पिता के समक्ष श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय ग्रहण करने की अपनी अभिलाषा व्यक्त की तो उनके पिता ने उन्हें मठवास हेतु प्रोत्साहन प्रदान किया। उन्होंने अपने पुत्र से कहा, "यदि तुम हरिभजन करने के दृढ़ इच्छुक हो तो मैं स्वयं तुम्हें ले जाकर श्रील प्रभुपाद के श्रीचरणकमलों में समर्पित करूँगा।" श्रीनन्ददुलाल ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया एवं अपने माता-पिता सहित उन्होंने एक ही साथ श्रीधाम मायापुर जाकर श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय किया। श्रील प्रभुपाद ने तीनों को ही हरिनाम तथा दीक्षा मन्त्र प्रदान किये। इसके पश्चात् श्रीनन्ददुलाल श्रीननीगोपाल ब्रह्मचारी नाम से प्रसिद्ध हुए।

अपने पुत्र को श्रील प्रभुपाद के चरण-कमलों में समर्पित करने के पश्चात् श्रीनन्ददुलाल के पिता ने अपने पुत्र से कहा, "मैं अत्यधिक प्रसन्न हूँ कि तुमने अपने आप को श्रील प्रभुपाद को समर्पित करने का निश्चय किया है। तुम सदैव हमारे गुरुदेव के चरण-कमलों की सेवा करो। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ – कृपया मुझे भूल जाओ एवं कभी लौटकर घर मत आना। यदि तुम मेरे इस निर्देश का पालन करोगे तो मैं अत्यधिक गौरवान्वित अनुभव करूँगा।"

इस प्रकार श्रीनन्ददुलाल के पिता ने अपने आप को अपने पुत्र के वास्तविक संरक्षक के रूप में प्रमाणित किया।

सेइ से परम-बन्धु से पिता-माता।
श्री-कृष्ण-चरणे जेइ प्रेम-भक्ति-दाता॥

श्रीचैतन्य मङ्गल (मध्य-खण्ड)

जो श्रीकृष्ण के चरण-कमलों के प्रति प्रेम-भक्ति प्रदान करे, वही वास्तविक परम बन्धु, पिता एवं माता है।

उसी वर्ष १९३० ई॰ में श्रीननीगोपाल ब्रह्मचारी को श्रीधाम मायापुर के ठाकुर भक्तिविनोद संस्थान में अध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया एवं गौड़ीय मठ से

प्रतिदिन प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'दैनिक नदिया प्रकाश' के सम्पादकीय विभाग में भी उनको सम्मिलित किया गया। अन्ततः श्रील प्रभुपाद के आदेश पर वह भारत के कई नगरों में प्रचार पर गये।

श्रील प्रभुपाद के अप्रकट के पश्चात् श्रीननीगोपाल ब्रह्मचारी श्रील भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज के आनुगत्य में रहे जिन्होंने उनको संन्यास प्रदान कर उन्हें श्रील भक्तिसौरभ भक्तिसार गोस्वामी महाराज नाम प्रदान किया। वह श्रील भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज द्वारा संस्थापित श्रीगौड़ीय संघ नामक संस्थान से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'श्रीसारस्वत गौड़ीय' के सम्पादक बने। गौड़ीय मठ से प्रकाशित विभिन्न पत्रिकाओं में प्रबंध लेखन कार्य कर श्रील महाराज ने श्रील प्रभुपाद के बृहद्-मृदङ्ग, अर्थात् प्रकाशन की सेवा में योगदान किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने वृन्दावन में इमलीतला मठ का बहुत समय तक प्रबन्धन कार्य किया एवं इसकी असाधारण सुन्दरता के संरक्षण के लिये मुख्य रूप से उनका ही योगदान था।

जब भी मेरे परमाराध्य गुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज वृन्दावन जाते तो श्रील भक्तिसार गोस्वामी महाराज उनसे अवश्य भेंट करते। उनका सम्बन्ध अत्यन्त ही मधुर एवं सम्मानपूर्ण था। श्रील महाराज सदैव गुरु महाराज को इमलीतला में आने के लिए अतिविशिष्ट आग्रह करते, जहाँ पर वह गुरु महाराज एवं समस्त भक्तों की प्रसाद द्वारा सेवा करते।

श्रील भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज की अप्रकट लीला के पश्चात् श्रील भक्तिसार गोस्वामी महाराज को श्रीगौड़ीय संघ के आचार्य पद पर नियुक्त किया गया किन्तु बहुत-सी असुविधाओं का सामना करने के कारण उन्होंने आचार्य पद पर अपनी नियुक्ति को भजन-साधन के प्रतिकूल जानकर शीघ्र ही पदत्याग कर दिया। उन्होंने स्वयं जाकर अपना पदत्याग-पत्र सम्बद्ध व्यक्तियों के समक्ष प्रस्तुत किया तथा इस प्रकार अपनी निराभिमानता एवं निःस्वार्थता का परिचय प्रदान किया। उनकी सरलता असीम थी, एवं वह सम्पूर्ण रूप से निष्किञ्चन थे अर्थात् उन्होंने कृष्ण को ही अपनी एकमात्र सम्पत्ति के रूप में स्वीकार किया था।

निज आचरण द्वारा श्रील महाराज ने यह स्थापित किया कि साधक को भजन के प्रतिकूल समस्त वस्तुओं का ही परित्याग करना चाहिये। वह उच्च पद से प्राप्त होने वाली प्रतिष्ठा से आसक्त नहीं थे। बल्कि, उनकी एकमात्र हरि, गुरु, वैष्णवों की सेवा करने में ही रुचि थी।

परन्तु इससे हमें यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिये कि श्रील भक्तिसार गोस्वामी महाराज ने अपनी सेवा का त्याग कर दिया। उन्होंने मात्र उस सेवा को ऐसी अवस्था में निष्पादित करने का निश्चय किया जो भक्ति साधन के अधिक अनुकूल हो। श्रीगौड़ीय संघ के आचार्य पद का परित्याग करने के पश्चात् उन्होंने सिउड़ि, पश्चिम बङ्गाल में एक मठ की स्थापना की, जहाँ पर एक समय उन्होंने गुरु महाराज को कई दिनों के लिये हरि-कथा परिवेशन करने हेतु निमन्त्रित किया।

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव की यथासम्भव समस्त सेवा करना

श्रील भक्तिसौरभ भक्तिसार गोस्वामी महाराज को उनके गुरुभ्राता श्रील भक्त्यालोक परमहंस गोस्वामी महाराज ने श्रीधाम मायापुर में अपना आधा स्थान मठ बनाने के लिये दे दिया। परन्तु जब श्रील भक्तिसार गोस्वामी महाराज ने वहाँ पर मठ हेतु निर्माण कार्य आरम्भ किया तभी कुछ बङ्गलादेशी शरणार्थियों ने एक पुलिस अधिकारी के बल पर वहाँ अपनी झोपड़ियाँ बना लीं तथा अवैध रूप से निवास करने लगे। श्रील भक्तिसार गोस्वामी महाराज उस परिस्थिति में भी पूर्णतया चिन्तारहित थे तथा उन्होंने अपने गुरुभ्राता श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी से कहा, "मैं उस स्थान पर कुछ भी नहीं बनाऊँगा। कौन इन सब झमेलों में पड़े? मैं अपने किसी गुरुभ्राता के साथ ही रह जाऊँगा।"



मैं एक दिन जब श्रीधाम मायापुर से कृष्णनगर जाने के लिये घाट की ओर जा रहा था, तब श्रीपाद कृष्णकेशव ब्रह्मचारी भी मेरे साथ-साथ सड़क पर चलने लगे तथा श्रील भक्तिसार गोस्वामी महाराज के स्थान को दिखलाकर मुझे कहने लगे, "देखो! कुछ लोगों ने पुलिस की सहायता से यहाँ पर झोपड़े बना लिये हैं तथा श्रील भक्तिसार महाराज इस विषय के समाधान हेतु अधिक उत्साहित नहीं हैं। क्या तुम इसमें उनकी कुछ सहायता कर सकते हो?"

मैंने कहा, "अवश्य ही। इन सभी को यहाँ से हटाने में मुझे आधा घण्टा भी नहीं लगेगा। उस पुलिस अधिकारी के पिताजी तक आप केवल मेरा यह एक सम्वाद पहुँचा दीजिए कि भारती महाराज ने कहा है- यदि तुम्हारे पुत्र को अपनी नौकरी बचानी है तो उससे कहना, मेरे कल पुनः

"गुरु-वैष्णव-भगवान् की सेवा के उद्देश्य से अपनी क्षमता के अनुसार यथासम्भव प्रयास करना ही कर्त्तव्य है।"

मायापुर लौटने तक स्थान खाली हो जाना चाहिये, अन्यथा कानून एवं व्यवस्था के संरक्षण का दायित्व वहन करके उसके विपरीत कार्य करने वाले की शिकायत करके मुझे उसे सबक सिखाना भी अच्छी तरह से आता है।"

श्रीपाद कृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने मेरे द्वारा कही गयी बात जाकर उस पुलिस वाले के पिता से कही तथा अगले दिन वे सब लोग झोपड़ों को बनाने में लगने वाले सामान्य मूल्य को लेकर वहाँ से चले गये।

श्रील भक्तिसार गोस्वामी महाराज ने बङ्गलादेशी शरणार्थियों के उनके स्थान से चले जाने पर मुझसे कहा, "मेरे गुरुभ्राता श्रीकृष्णकेशव ब्रह्मचारी के मेरे प्रति चिन्तित होने के कारण तुमने जो सम्वाद पुलिस वाले के पिता के पास भिजवाया था, बाहरी रूप से साधु-संन्यासी वेषधारी व्यक्ति के लिये वैसा कहना शोभा नहीं देता, किन्तु गुरु-वैष्णव-भगवान् की सेवा के उद्देश्य से अपनी क्षमता के अनुसार यथासम्भव प्रयास करना ही कर्त्तव्य है। सेवा हेतु यदि दाम्भिक-सदृश व्यवहार कर अपर विद्वेषी व्यक्ति को भय प्रदर्शित करना पड़े तो उसमें भी कोई दोष नहीं है।"

उनकी स्पष्टवादिता

गुरु महाराज कोलकाता, पुरी, वृन्दावन आदि अनेक स्थानों पर धर्मसभाओं का आयोजन करते थे तथा उसके लिये अपने समस्त निमन्त्रित गुरुभ्राताओं का नाम तथा उनका संक्षिप्त परिचय प्रदान करके निमन्त्रण-पत्र छपवाते थे। एक समय गुरु

"क्षुद्र-क्षुद्र बातों की ओर ध्यान देकर मुख्य उद्देश्य साधु-सङ्ग, साधु-सेवा से स्वयं को वञ्चित मत करो।"



महाराज के किसी एक गुरुभ्राता ने यह देखकर कि गुरु महाराज ने उनके नाम के साथ उनका संक्षिप्त परिचय प्रदान नहीं किया है, अपने कुछेक गुरुभ्राताओं के समक्ष क्षुब्ध होकर कहा, "माधव महाराज ने निमन्त्रण पत्र में सभी के नाम के साथ उनका संक्षिप्त परिचय यथा अमुक मठ के प्रतिष्ठाता अथवा आचार्य आदि लिखा है, किन्तु मेरे नाम के साथ कोई भी परिचय नहीं लिखा। उनके द्वारा ऐसा करना उचित नहीं हुआ है।"

उनके मुख से ऐसी बातें सुनते ही अत्यधिक स्पष्टवादी, निर्मत्सर श्रील भक्तिसार गोस्वामी महाराज ने उनसे कहा, "आपने अभी-अभी दो कक्ष वाला छोटा-सा स्थान लिया है। आपने कोई विशेष उत्सव भी नहीं किया, इसलिये श्रीपाद माधव महाराज को आपके स्थान की उचित जानकारी तक भी नहीं है। यदि आप साधु हैं तो आपको सदैव विनम्र रहना चाहिये। क्या आपके स्वभाव में तृणादपि सुनीचता अर्थात् स्वयं को तृण से भी अधिक दीन-हीन समझने का परिचय प्राप्त होता है? आपके उनसे कनिष्ठ होने पर भी पूर्व में, श्रीपाद माधव

महाराज ने आपको इतनी अधिक मर्यादा प्रदान की है, तब आप इस प्रकार क्षुब्ध क्यों हो रहे हैं? श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी श्रील प्रभुपाद के अन्तरहृदय में जहाँ तक प्रविष्ट हुए हैं, आप वहाँ तक जाने के विषय में चिन्ता भी नहीं कर सकते। अतएव क्षुद्र-क्षुद्र बातों की ओर ध्यान देकर मुख्य उद्देश्य साधु-सङ्ग, साधु-सेवा से स्वयं को वञ्चित करने से क्या लाभ?"

किसकी सेवा सर्वश्रेष्ठ

मैंने एक समय श्रील भक्तिसार गोस्वामी महाराज के मुख से श्रवण किया कि एक बार उन्होंने अपने अनेक गुरुभ्राताओं के समक्ष प्रश्न रखा, "मठ में अनेक संन्यासी तथा ब्रह्मचारी हैं, वे सभी अपने-अपने सामर्थ्यानुसार प्रातः से लेकर रात्रि तक कोई-न-कोई सेवा-कार्य करते रहते हैं। श्रील प्रभुपाद के आश्रित अनेक गृहस्थ तथा वानप्रस्थी भी सदैव विभिन्न सेवा-कार्य करते हैं। क्या सेवा-कार्य में भी उत्तम तथा निम्न श्रेणी का विचार होता है? यदि होता है, तब कौन-सी तथा किसकी सेवा सर्वोत्तम कही जायेगी?"

परस्पर इष्ट-गोष्ठी करते-करते जब वे सभी किसी स्पष्ट निर्णय पर नहीं पहुँचे तब उन्होंने श्रीपरमानन्द प्रभु को आगे करके उनके माध्यम से श्रील प्रभुपाद के निकट प्रश्न पहुँचवाया, जिसके उत्तर में श्रील प्रभुपाद ने एक ही वाक्य में उत्तर दिया, "जिसकी वैष्णवों में जितनी अधिक मात्रा में प्रीति उत्पन्न हुयी है, उसकी सेवा उतनी मात्रा में उत्तम है।" अर्थात् सेवा कोई छोटी अथवा बड़ी नहीं होती, किन्तु उसे करने वाले की चित्तवृत्ति ही सेवा कार्य को उत्तम, मध्यम अथवा कनिष्ठ बनाती है।

पञ्च निर्देश

एक समय अपने शिष्यों को दर्शन देते समय, श्रील भक्तिसार गोस्वामी महाराज ने कहा, "मैंने बहुत-सी बातें कही हैं एवं आप सब ने बहुत कुछ श्रवण किया है। सर्वदा पारमार्थिक कृत्यों में नियुक्त रहना। तभी तुम कहीं पहुँच पाओगे तथा एक दिन निज मनोवाञ्छित लक्ष्य को प्राप्त करोगे।"

इतना कहकर वे मौन हो गये। कुछ क्षणों के पश्चात्, वे अपनी कुर्सी से उठे एवं अपने कक्ष की ओर जाते समय अपने एक शिष्य को हरि-कथा के परिवेशन हेतु आज्ञा प्रदान की। उनके शिष्य ने अपने श्रीगुरुदेव के द्वारा एक अति विस्तृत विषय पर संक्षेप में कहे शब्दों के गुह्य अर्थों को प्रकाश करते हुए कहा-

"*मैंने बहुत-सी बातें कही हैं* - वृद्धावस्था के उपस्थित होने पर भी, श्रील गुरु महाराज ने निरन्तर, बिना रुके हमें भजन-साधन सम्बन्धित शास्त्र वचनों एवं श्रीहरि के चरण-कमलों की प्राप्ति के उपायों की पुनः-पुनः विस्तार से एवं अति सरल शब्दों में शिक्षा प्रदान की है।

"*आप सब ने बहुत कुछ श्रवण किया है* - यहाँ, श्रील गुरु महाराज कह रहे हैं, 'दिन-प्रतिदिन, प्रातः, मध्याह्न एवं रात्रि के समय मैंने निरन्तर कभी सरल तो कभी कठिन गम्भीर विषयों पर हरि-कथा का



परिवेशन किया है। आप सब ने बहुत कुछ श्रवण किया है एवं न्यूनाधिक, कुछ-न-कुछ ग्रहण भी किया है। अपने इस अतिव्यापक श्रवण के फलस्वरूप, आपने निज जीवन के परम-लक्ष्य-प्राप्ति के मार्ग को सहज रूप से प्रशस्त कर लिया है।

"*सर्वदा पारमार्थिक कृत्यों में नियुक्त रहना* - अब जब कि आप सब ने पारमार्थिक जीवन सम्बन्धी अनेक गुह्यतम विचारों को हृदयङ्गम कर लिया है, तब आगे बढ़ो तथा इन समस्त शिक्षाओं का शास्त्रोक्त निर्देशानुसार दृढ़ विश्वास के साथ पालन करो।

"*तभी तुम कहीं पहुँच पाओगे* - यदि आप प्रतिदिन सावधानीपूर्वक श्रीगुरु एवं वैष्णवों के आनुगत्य में सेवा करते हो अर्थात् श्रीविग्रहों की पूजा, उनके दर्शन, शास्त्र-अध्ययन, कीर्त्तन, जप एवं ध्यान में नियुक्त होते हो, तब निश्चित रूप से एक दिन आप अपने जीवन के सर्वोत्तम लक्ष्य को प्राप्त कर लोगे।

"एक दिन निज मनोवाञ्छित लक्ष्य को प्राप्त करोगे - यदि आप पूर्व कथित चारों निर्देशों का पालन करते हो तब इस पञ्चम् अवस्था में आप उन सुदुर्लभ परमाराध्य श्रीयुगल श्रीश्रीराधाकृष्ण को प्राप्त कर लोगे। आप इस अनित्य निकृष्ट भौतिक जगत् को त्याग कर श्रीगोलोक-वृन्दावन धाम को प्राप्त करोगे जहाँ सभी चिरस्थायी, आनन्दमय स्वरूप में निवास करते हैं। तब आपका जीवन सफल हो जाएगा। आप प्रसन्नता, शान्ति एवं चिरमुक्ति लाभ कर नित्यकाल के लिये माधुर्य एवं आनन्दयुक्त जीवन यापन करोगे।"

श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज



श्रीचैतन्य महाप्रभु की वाणी के सन्देशवाहक

एक बार मेरे परमाराध्य गुरुदेव श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज (उस समय श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी), श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज तथा श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज (उस समय श्रीसिद्धस्वरूप ब्रह्मचारी) पूर्वीबङ्गाल (अब बङ्गलादेश) स्थित सिलेट नामक स्थान पर प्रचार करने के लिये गये। वहाँ पर ३ दिन की धर्म-सभा का आयोजन किया गया था। प्रथम दिन श्रीसिद्धस्वरूप ब्रह्मचारी ने मायावादियों के मत की अपेक्षा श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं का श्रेष्ठत्व स्थापित करने के लिये अत्यधिक स्पष्ट किन्तु कठोर एवं अमर्यादित शब्दों में विवेकानन्द को बि-बेकानन्द (मूर्खानन्द) तथा उनके गुरु रामकृष्ण परमहंस को रामहंस, बड़ाहंस (बड़ा किन्तु अयोग्य हंस) इत्यादि कह दिया जिसके फलस्वरूप बहुत से सिलेट निवासी अत्यधिक असन्तुष्ट तथा क्रोधित हो गये। उन्होंने रात में ही पर्चे बँटवाकर पूरे शहर में गौड़ीय मठ के विरुद्ध प्रचार किया तथा धर्मसभा को रद्द करने का आह्वान किया।

अगले दिन श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी जिला न्यायाधीश से जाकर मिले जिन्होंने कहा कि ऐसी परिस्थिति में अन्य दो दिन धर्मसभा में किसी अप्रिय घटना की सम्भावना को देखते हुए सभा नहीं करना ही बुद्धिमानी है। श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी ने उनसे कहा, "मैं आपको प्रतिज्ञा करके कह सकता हूँ कि जिन्होंने कल कथा बोली थी वह अब कथा नहीं बोलेंगे, हम लोग (श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी एवं श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज) बोलेंगे।" जिला न्यायाधीश ने कहा, "आपके कहने

पर मैं सुरक्षा की सब व्यवस्था कर देता हूँ किन्तु आप लोग थोड़ा सावधानीपूर्वक ही कथा का परिवेशन करना।"

सन्ध्या को सभा के समय हॉल कलहप्रिय लोगों से भर गया। सर्वप्रथम श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी ने अपने प्रवचन में सिलेट वासी लोगों के आतिथ्य की प्रशंसा की तथा फिर विषय वस्तु का स्थापन किया। श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी के पश्चात् श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने अपने भाषण में कहा, "हमारे गुरु महाराज श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने हमें शिक्षा दी है कि हम श्रीचैतन्य महाप्रभु की वाणी के संदेशवाहक हैं। हम निर्भीक कण्ठ से उन्हीं श्रीचैतन्य महाप्रभु के हृद्गत विचारों को भूतल पर स्थापित करने वाले श्रील रूप गोस्वामी एवं उनके अनुगत श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी आदि भागवत् परम्परा के गुरुवर्गों के द्वारा वेदान्त-सूत्र के अकृत्रिम भाष्य श्रीमद्भागवतम् की विचार-धारा के प्रवाह को ही वितरण करने के उद्देश्य से आये हैं। हम लोग यहाँ पर घूँघट ओढ़कर प्रचार करने के लिये नहीं आये हैं।

"स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की वह विचार-धारा जो न केवल श्रीशङ्कराचार्य, जैमिनि, पतञ्जलि, कणाद आदि बल्कि चार वैष्णव सम्प्रदायों के आचार्य श्रीमध्वाचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीनिम्बादित्य एवं श्रीविष्णुस्वामी के द्वारा स्थापित विचारधारा से भी अधिक उन्नत एवं अभूतपूर्व है, ऐसी विचारधारा के माध्यम से पूर्व-पूर्व आचार्यों के विचारों की असम्पूर्णता को प्रकाशित किया जा रहा है। जगत् की प्रायः समस्त अप-उप-छल-धाराओं को स्तब्ध किया जा रहा है तब फिर विवेकानन्द, रामकृष्ण, भण्डारकर आदि के विषय में ऐसा ना हो, क्या यह विचार उचित है?

"दूसरी बात हम लोग तो संदेशवाहक हैं, हमारा काम तो शिक्षाओं का वितरण करना है, आप लोगों को यदि कोई प्रतिवाद करना है तो श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीवेदव्यास, श्रीरूप गोस्वामी से कीजिए। यद्यपि हम उनकी विचारधारा के प्रति अटूट श्रद्धा रखने वाले हैं किन्तु यदि कोई उनसे उन्नत विचारधारा को प्रस्तुत कर दे तो हम उनके शरणागत हो जायेंगे, यदि नहीं तो फिर श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके अनुगतजनों के द्वारा प्रचारित श्रेष्ठ विचारधारा को, मङ्गलमय पथ को जान-सुन-समझ लेने पर भी कौन-सा बुद्धिमान व्यक्ति उसे स्वीकार करके उसका अनुसरण नहीं करेगा।

"श्रीमद्भागवत् में स्पष्ट रूप से श्रीकृष्ण के स्वयं भगवान् होने का स्थापन किया गया है –

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

श्रीमद्भागवतम् (१.३.२८)

[पहले जिन अवतारों का वर्णन किया गया है, उनमें कोई अंश तथा कोई कला हैं किन्तु कृष्ण स्वयं भगवान् हैं।]

"इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण ने निम्नलिखित श्लोकों के माध्यम से स्वयं श्रीमद्भगवद्गीता में बताया है कि वही जीवों के एकमात्र चरम लक्ष्य हैं –

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

श्रीमद्भगवद्गीता (१८.६६)

[वर्ण, आश्रम आदि समस्त शारीरिक तथा मानसिक धर्मों का परित्यागकर एकमात्र मेरी शरण ग्रहण करो। मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूँगा।]

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

श्रीमद्भगवद्गीता (१८.६५)

[तुम मुझे चित्त समर्पण करो, मेरे नाम-रूप-गुण-लीला आदि के श्रवण-कीर्त्तन आदि परायण होकर मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो तथा मुझे नमस्कार करो। इस प्रकार तुम मुझे ही प्राप्त करोगे। मैं तुमसे यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो।]

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

श्रीमद्भगवद्गीता (९.२२)

[अन्य कामनारहित तथा मेरी चिन्ता में रत जो व्यक्तिगण सर्वतोभावेन मेरी उपासना करते हैं, मैं नित्य मुझमें एकनिष्ठ उन व्यक्तियों का योग एवं क्षेम वहन करता हूँ।]

"इसलिये किसी भी देवी-देवता की आराधना करने वाले रामकृष्ण परमहंस को कैसे स्वीकार किया जा सकता है? उनके मत को स्वीकार करने से क्या लाभ? अपितु ऐसी उपासना श्रीमद्भागवतम् के विपरीत है जिसमें कि दृढ़तापूर्वक कृष्ण की उपासना का ही स्थापन किया गया है -

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति
तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव
सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

श्रीमद्भागवतम् (४.३१.१४)

[जिस प्रकार वृक्षकी जड़ सींचने से उसके तने, शाखा, उपशाखा, आदि सभी का पोषण हो जाता है तथा जैसे भोजन द्वारा प्राणों को तृप्त करने से समस्त इन्द्रियाँ पुष्ट होती हैं उसी प्रकार एकमात्र श्रीकृष्ण की पूजा द्वारा ही निखिल देव-पितृ आदि की पूजा हो जाती है।]

"विवेकानन्द के द्वारा कहा गया विचार है कि 'जीवे प्रेम करे जेइ जन सेइ जन सेविछे ईश्वर अर्थात् जीव से जो व्यक्ति प्रेम करता है वास्तव में वही व्यक्ति ईश्वर की सेवा कर रहा है।' परन्तु हम देखते हैं कि उनके अनुगतजन अन्य-अन्य प्राणियों का वध कर के उनके माँस को खाते हैं, अतएव इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि उनके द्वारा प्रचारित वाक्यों में प्रयुक्त जीव शब्द का अर्थ केवल मनुष्य ही है किन्तु जीव शब्द का वास्तविक अर्थ समस्त प्राणियों से है।

"अतएव आप स्वयं ही इन सब विषयों पर विचार कीजिये। हम इससे अधिक अन्य कुछ भी नहीं कहेंगे। अन्त में एक बात

कहना चाहता हूँ कि हाँ, प्रस्तुत करने की पद्धति में जो कमी हुई है, आप उसके लिये हमसे शिकायत कर सकते हैं, किन्तु यह निश्चित जानिये कि विषय-वस्तु आपके निकट शुद्ध ही प्रस्तुत की गयी थी, उसमें कोई मिश्रण नहीं है।"

श्रील महाराज की कथा के समाप्त होने पर बहुत अधिक तालियाँ बजी। स्थानीय लोग वास्तविक रूप में प्रसन्न थे तथा उन्होंने प्रार्थना करके कथा की अवधि को ३ दिन के स्थान पर १५ दिन कर दिया। इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु की वाणी का सिलेट में बहुत अधिक प्रचार हुआ। सिलेट उचित गुणवत्ता वाले चूने के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध था इसलिये वहाँ के निवासियों ने गाड़ी भरकर चूना भेजा जिससे श्रीमन्महाप्रभु के धाम में स्थित श्रीचैतन्य मठ तथा श्रीयोगपीठ मन्दिर आदि में सर्वत्र पुताई की गयी।

श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज का स्पष्ट बोलने का अभ्यास था जिसे कुछ लोग स्वीकार नहीं कर पाते थे किन्तु उन्होंने कभी भी श्रौत-वाणी अर्थात् भागवत् परम्परा के माध्यम से प्राप्त शिक्षाओं के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु का परिवेशन नहीं किया, श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज जैसे श्रेष्ठ प्रमाणिक व्यक्ति के द्वारा उस दिन सिलेट में अपने कनिष्ठ गुरुभ्राता के द्वारा परिवेशित विषय वस्तु की प्रशंसाकर उसका संरक्षण करना इस वस्तु को ही लक्ष्य करता है।

सत्य की घोषणा करना

श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज बहुत स्पष्ट वक्ता थे, किसी के भी मत का खण्डन करते समय वे सब बातों को खोलकर रख देते थे, किसी बात को घुमा-फिराकर अथवा सामने कुछ तथा पीठ पीछे कुछ और, ऐसा उनके स्वभाव में नहीं था।

एक समय श्रील महाराज (उस समय श्रीसिद्धस्वरूप ब्रह्मचारी) श्रीमद्भक्तिविवेक भारती गोस्वामी महाराज के साथ प्रचार सेवा-कार्य में गये तथा उनके द्वारा शुद्ध-भक्ति की विचारधारा के साथ मिश्रित-भक्ति 'जत मत तत पथ अर्थात् भगवद् प्राप्ति के जितने मत हैं उतने ही पथ हैं' का स्पष्ट रूप से अन्तर प्रस्तुत करने से कुछ लोगों को असुविधा हुई तथा उन लोगों ने गौड़ीय मठ के प्रचार का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया।

जब उपरोक्त घटना तथा श्रीसिद्धस्वरूप ब्रह्मचारी के द्वारा भाषण में बोली गयी बात मठ के सेक्रेटरी श्रीकुञ्जविहारी विद्याभूषण के द्वारा श्रील प्रभुपाद को बतायी गयी तब श्रील प्रभुपाद ने कहा, "सिद्धस्वरूप प्रभु ने जो बात बोली है, वह तो सत्य है तथा शास्त्रानुमोदित है। किन्तु हाँ, यह बात भी



"श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज बहुत स्पष्ट वक्ता थे, किसी के भी मत का खण्डन करते समय किसी बात को सामने कुछ तथा पीठ पीछे कुछ और कहना, ऐसा उनके स्वभाव में नहीं था।"

सत्य है कि वैसी कठोर भाषा हमारे मुख से कदापि उच्चारित नहीं होनी चाहिये। जो हो, सिद्धस्वरूप प्रभु ने इतना बड़ा प्रचार कर एक लाख रुपये का कार्य कर दिया है। अतएव इस बार उन्हें गौर पूर्णिमा के समय गौर-आशीर्वाद के माध्यम से 'विद्या-वागीश अर्थात् वास्तविक ज्ञान के सर्वश्रेष्ठ वक्ता' उपाधि प्रदान करेंगे, आप उनके उद्देश्य से इस 'विद्या-वागीश' उपाधि को लिखकर रख लो।

मेरी दृढ़ता की प्रशंसा करना

एक समय मैंने जयपुर से कृष्णनगर मठ में प्रतिष्ठित कराने हेतु श्रीराधा-कृष्ण की मूर्त्ति को बनवाकर रेल के माध्यम से कृष्णनगर भिजवाया था। मार्ग में रेल-कर्मचारियों की असावधानी के कारण मूर्त्ति के हस्त की अङ्गहानि हो गयी। जब मुझे यह सम्वाद मिला, उस समय श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज भी वहीं पर उपस्थित थे तथा उन्होंने मुझसे पूछा, "अब क्या करोगे?"

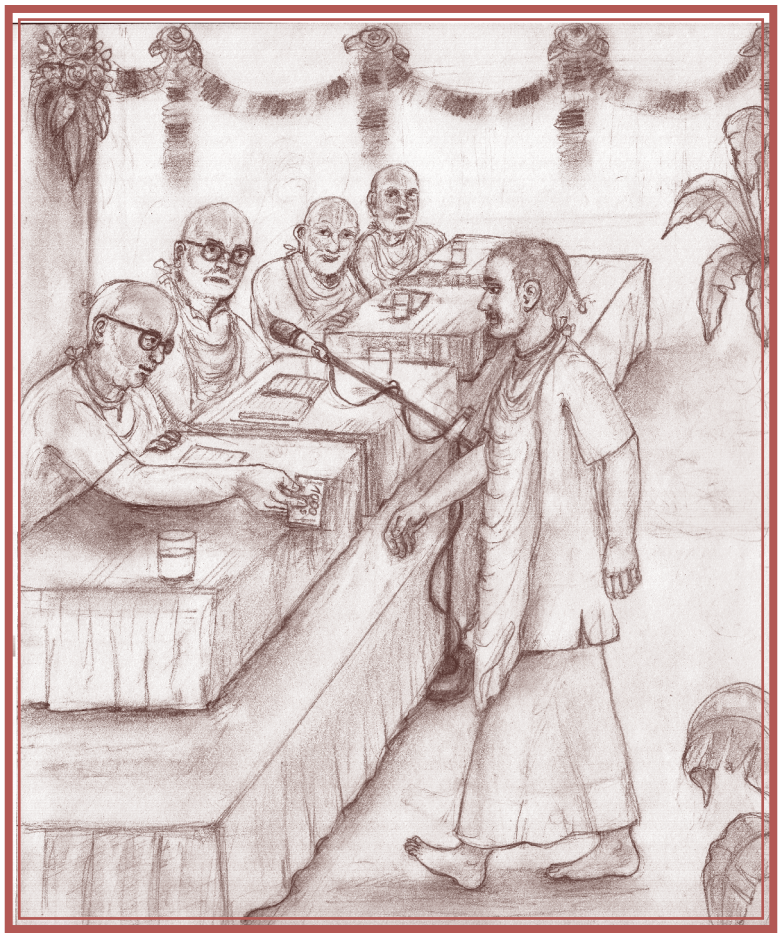
मैंने उत्तर दिया, "महाराज, रेलवे से मुआवजा लूँगा तथा फिर देखूँगा, कैसे अग्रसर होना है।"

उन्होंने मुझसे कहा, "रेलवे से मुआवजा लेने की आशा त्याग दो, वह बहुत कठिन है।" तब उन्होंने अपनी दोनों भुजाओं को सम्पूर्ण रूप में खोलकर दिखाते हुए मुझसे कहा, "रेलवे से आदायी करवाना, मानो मेरी इन दोनों बाहों को खोलने पर ओर-से-छोर तक जो लम्बाई है, उससे भी ७ गुणा अधिक गहरे गड्ढे में से धन निकाल पाने के समान दुष्कर है। मेरी बात मानो, किसी अन्य भक्त को मूर्त्ति का आनुकूल्य प्रदान करने हेतु मनाकर शीघ्र अन्य मूर्त्ति बनाने का निर्देश दे दो।"

अन्त में मैंने निश्चय किया कि मुझे मुआवजा प्राप्त करने के लिये प्रयास तो करना ही चाहिये। मेरे रेलवे से मुआवजा लेने के लिये भरसक प्रयास करने के पश्चात् जैसे-तैसे रेलवे से मुआवजा मिल गया। जब मैंने श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज को यह बात बतायी तो उन्होंने मुझसे कहा, "तुम तो यमराज के घर जाकर पैसे लौटाकर ले आये। तुम्हारे जैसे व्यक्ति के द्वारा ही भगवद्-सेवा-उपयोगी अर्थ की रक्षा हो सकती है।"

मुझे एक नृसिंह कवच उपहार स्वरूप प्रदान करना

जब श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर की आविर्भाव स्थली से किरायेदारों को हटाने के लिये मेरे द्वारा मठ की ओर से मामला मुकद्दमा आदि किया गया, तब एक दिन मेरे मङ्गल की चिन्ता-भावना करते हुए श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज ने अत्यधिक स्नेहयुक्त अभिभावक की भाँति मुझसे कहा, "मैं तुम्हारी सुरक्षा के लिये एक नृसिंह कवच बनवा दूँगा, तुम उसे धारण करके रखना। ये लोग न जाने तुम्हारे विरुद्ध क्या-क्या कर सकते हैं?" कुछ दिनों के पश्चात् उन्होंने अपने गुरुभ्राता श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी के माध्यम से नृसिंह कवच को तैयार करवाकर मुझे दिया। साथ ही अपना हाथ दिखाते हुए कहा, "देखो, मैंने भी नृसिंह कवच धारण



किया हुआ है।"

मैंने श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज से नृसिंह कवच तो ले लिया किन्तु उसे धारण करने के विषय में दुविधा युक्त था। विचार करते-करते एक बात मन में आयी कि यदि मैं शरणागत हूँ तथा मेरी चेष्टा यदि भगवान् की सेवा के उद्देश्य से है, तब जब तक वे मेरी सेवा ग्रहण करने की अभिलाषा करेंगे तब तक कोई मेरा बाल भी बाँका नहीं कर पायेगा। दूसरा, वे जब मेरी सेवा ग्रहण करेंगे तो मेरी रक्षा भी वही करेंगे। मैं स्वयं की रक्षा के लिये अन्य कोई स्वतन्त्र प्रयास क्यों करूँ? अतएव मैं नृसिंह कवच को धारण करने में उत्साहित नहीं हुआ किन्तु श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज के स्नेहवशतः मैंने आज तक भी उनके द्वारा प्रदत्त नृसिंह कवच को अपनी अलमारी में सम्भालकर रखा हुआ है।

जब हमें मुकद्दमे में विजय प्राप्त हुयी, तब श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज ने मुझसे कहा, "तुम लोग शेर के मुख से भोजन निकालकर ले आये हो।"

मैंने कहा, "महाराज हमारा शेर के मुख से भोजन निकालने का क्या सामर्थ्य!

आप जैसे श्रील प्रभुपाद के आश्रितजनों की शुभेच्छा तथा कृपा के प्रभाव से ही हम अपने गुरुपादपद्म की अभिलाषा को पूर्ण करने के निमित्त मात्र बने हैं।"

मेरी बात सुनकर श्रील महाराज ने कहा, "सदैव इस प्रकार की चित्तवृत्ति ही वैष्णव-धर्म में प्रवेश की कुञ्जी है।"

जब १९७८ ई॰ में गुरु महाराज के आनुगत्य में श्रील प्रभुपाद की आविर्भाव-स्थली पर उनकी व्यास-पूजा का प्रथम विराट उत्सव सम्पन्न हुआ था, तब श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज ने ही सर्वप्रथम मुझे अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक मन्दिर के निर्माण कार्य के लिए एक हज़ार रुपये तथा अनेक उपदेश मूलक आशीर्वाद-वचन प्रदान किये थे।

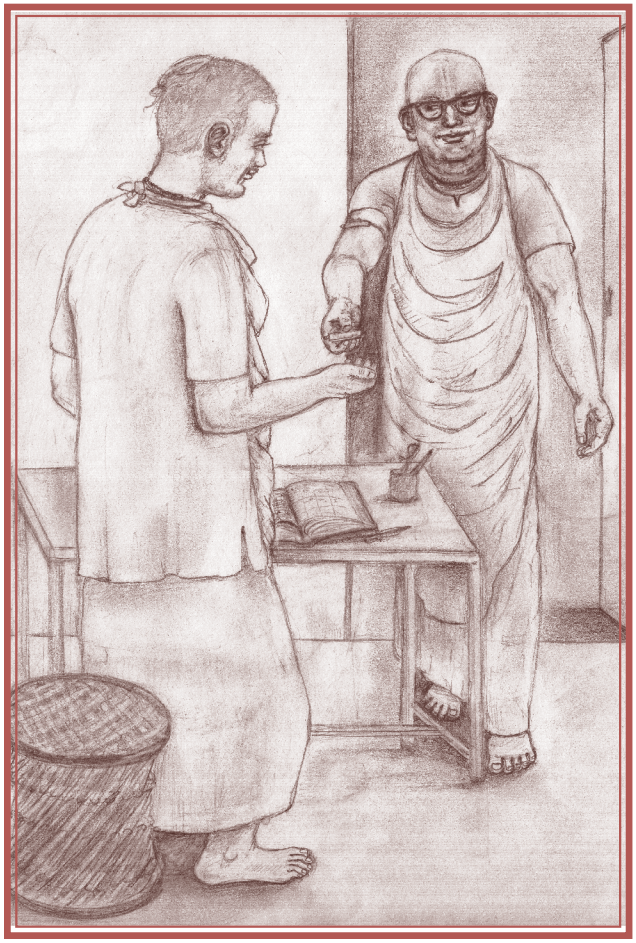
शिव की श्रेष्ठ वैष्णव के रूप में समालोचना करना

मुझे अनेक बार अपने गुरु महाराज के साथ श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज के विभिन्न मठों में उत्सव के समय जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज उत्सव में बहुत अधिक भक्तों को एक साथ निमन्त्रण नहीं करते थे, कम को करते थे किन्तु प्रसाद में जो भी बनाते सब उत्तम द्रव्यों से निर्मित होता था।

एक समय श्रीजगन्नाथ पुरी में अपने मठ में स्थापित शिवजी के विग्रह को दिखाकर वे गुरु महाराज से कहने लगे, "यद्यपि मेरा पूर्वाश्रम का नाम शिव शङ्कर दे था तथापि मैं सदैव शिवजी को तामसिक कहकर उनकी पूजा इत्यादि का खण्डन करता था किन्तु अब मैंने भी श्रील प्रभुपाद की कृपा से यह अनुभव किया है कि वैष्णव-कृपा बिना विष्णु-कृपा की प्राप्ति सम्भवपर नहीं है। इसी कारण मैंने भी वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ शिवजी का मन्दिर बनाया है।"

कार्य का निष्पादन करो अथवा विनष्ट हो जाओ

गुरु महाराज ने कोलकाता श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के लिए जो स्थान संग्रह किया था वहाँ पर एक पुरानी इमारत थी, जिसे मठ निर्माण के लिए गिराना आवश्यक था।



हम लोग जब उसे सम्पूर्ण रूप से गिरा रहे थे तब एक दिन वहाँ पर श्रीभक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज आए तथा हमें कार्य करता देख उन्होंने मुझसे कहा, "क्या तुम लोग पागल हो गए हो! यह घर इतना सुन्दर है, फर्श इटालियन मोज़ैक का बना है, खिड़कियों और जँगलों के शीशे बेल्जियम के हैं, दरवाजे, खिड़कियाँ तथा जँगले के फ्रेम आदि बर्मा की सागुन लकड़ी के बने हैं और तुम हो कि उन्हें तोड़कर नया बनाना चाहते हो! तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं है? तुम इस स्थान को ऐसे ही व्यवहार करते हुए इसके ऊपर आवश्यकता के अनुसार अन्य तलों का निर्माण क्यों नहीं कर लेते? माधव महाराज के आने पर उनसे कहना –सिद्धान्ती महाराज आया था तथा इसे तोड़ने हेतु निषेध करके गया है।"

जब मैंने गुरु महाराज को श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज की बात बताई तब गुरु महाराज ने मुझसे कहा, "यदि तुम्हारा लक्ष्य निकट स्थित दरवाजे पर पत्थर मारने का हो तो कैसे मारोगे?" मैंने इङ्गित करते हुए कहा, "धीरे से, ऐसे।"

फिर गुरु महाराज ने पूछा, "यदि तुम्हारा लक्ष्य किसी दूर स्थित स्थान पर पत्थर मारने का हो तो फिर क्या करोगे?" मैंने पुनः इङ्गित करते हुए कहा, "अत्यधिक बल का उपयोग करूँगा, ऐसे।"

मेरी बात सुनकर गुरु महाराज ने कहा, "इसी प्रकार हम लक्ष्य को जब तक बड़ा नहीं रखेंगे तब बहुत अधिक प्रयास कैसे करेंगे? नेपोलियन जब किसी स्थान पर आक्रमण करने हेतु जाता था तो वहाँ पहुँचकर अपने सेनानियों के साथ जहाज से उतरकर जहाज को या तो जला देता था या फिर डुबा देता था और सेनानियों से कहता था, 'अब हमारे लौटकर जाने का कोई अन्य उपाय नहीं है, करो या मरो।' जब नेपोलियन ने अपने सेनानियों को आल्प्स पर्वत को पार करने के लिए कहा, तब उनमें से अधिकांश हतप्रभ हो गए एवं उन्होंने कहा – यह असम्भव है। उस समय नेपोलियन ने कहा था, 'The word impossible exists only in a fool's dictionary.' (असम्भव शब्द एकमात्र मूर्ख व्यक्ति के शब्दकोश में ही होता है।)

जब कार्य निष्पादन के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं रहता तब मनुष्य लक्ष्य साधन के लिए सर्वाधिक प्रयास करता है, अन्यथा थोड़ी-सी भी ढील देने पर, न जाने क्या सोचता रहता है तथा अधिक कुछ कर नहीं पाता। यह ठीक ही कहा गया है- आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। इसलिए पहले सम्पूर्णतया तोड़ दो, तब फिर ठहरने के लिए कुछ-ना-कुछ तो करना ही पड़ेगा। साथ ही, हमें हरिकथा-कीर्त्तन के लिए बड़े हाल की आवश्यकता है, चाहे वह ऐश्वर्यपूर्ण अलङ्कारों से रहित एक टीन का शेड ही क्यों न हो।"

इस प्रकार कहकर गुरु महाराज ने मुझे बहुत अधिक उत्साह प्रदान किया तथा साथ-ही-साथ मैं किसी सुन्दर वस्तु को कृष्ण-सेवा हेतु सरंक्षण करने की श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज की भावना भी समझ गया। यद्यपि बाह्य दृष्टि से इन दोनों गुरुभ्राताओं के विचारों में भिन्नता दिखलायी

पड़ती है तब भी मैं इनके प्रगाढ़-सम्बन्ध की गहराई को समझने में सक्षम हुआ तथा मैं भली-भाँति जानता था कि श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज गुरु महाराज द्वारा उनके परामर्श का पालन नहीं करने पर तनिक भी असन्तुष्ट नहीं होंगे।

कोलकाता स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ का निर्माण-कार्य सम्पूर्ण होने पर आयोजित उद्घाटन उत्सव में श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज ने जब कीर्त्तन हाल तथा इसके निर्माण-कार्य की गुणवत्ता को देखा तो प्रशंसा करते हुए कहा, "तुमने बहुत सुन्दर कार्य किया है। इसका निर्माण कार्य अद्भुत हुआ है। मैंने तुम्हें पुरानी इमारत गिराने हेतु इसलिये निषेध किया था क्योंकि मुझे लगा कि तुम लोगों के पास इतना सुन्दर मठ बनाने हेतु पर्याप्त धन-राशि नहीं होगी।"

गौड़ीय वैष्णव ग्रन्थों का प्रकाशन

श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज ने श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित 'विद्वत्-रञ्जन' तथा श्रील बलदेव विद्याभूषण द्वारा रचित 'गीताभूषण' और स्वरचित 'अनुभूषण' नामक टीका सहित श्रीमद्भगवद्गीता के अभूतपूर्व संस्करण, ईश-कठ-माण्डुक्य, गोपाल-तापनी आदि कुछ उपनिषदों की 'तत्त्वकणा' नामक टीका तथा किरण-बिन्दु-कणा अर्थात् श्रीउज्ज्वल-नीलमणि-किरण, भक्ति-रसामृत-सिन्धु-बिन्दु तथा भागवतामृत-कणा आदि के संस्करणों का सम्पादन एवं प्रकाशन किया।

इसके अतिरिक्त उन्होंने वेदान्त सूत्र के श्रील बलदेव विद्याभूषण द्वारा रचित 'गोविन्द भाष्य' और सूक्ष्मा-टीका के साथ स्वरचित 'सिद्धान्त-कणा' नामक अनुव्याख्या को बङ्गला भाषा में प्रस्तुत करके गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय का एक महान् कार्य किया है। 'सिद्धान्त-कणा' को उन्होंने श्रीमद्भागवतम् तथा श्रीचैतन्यचरितामृत के प्रमाणों के द्वारा पुष्ट किया है। इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने के लिये श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज ने अथक परिश्रम किया है, उस ग्रन्थ के प्रूफ-संशोधन में श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती गोस्वामी महाराज ने बहुत सहायता की थी।

किसी भी ग्रन्थ के प्रकाशित होने पर श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज उत्सव का आयोजन करते तथा कहते, "श्रीमद्भागवतम् जिस प्रकार भगवान् का दिव्य कलेवर हैं, उसी प्रकार ये ग्रन्थ श्रीमद्भागवतम् के आनुगत्य में रचित, उसी की विचारधारा को पुष्ट करने वाले होने के कारण श्रीमद्भागवतम् से अभिन्न तथा भगवान् के श्रीविग्रह ही हैं, अतएव उनका इस जगत् में प्राकट्य होने पर उत्सव का आयोजन करना उचित ही है।"

भगवत्-लीलायुक्त चित्रावलियों के माध्यम से भगवत्-शिक्षाओं का प्रचार

श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर अपने आश्रितजनों को ग्रन्थ-पत्र-पत्रिका के प्रकाशन एवं वितरण में नियुक्त कर, हरि-कथा के माध्यम से तथा अनेकानेक निष्किञ्चन[१] प्रचारकों

[१]जो श्रीकृष्ण को ही अपनी एकमात्र सम्पत्ति मानते हैं।

को विभिन्न स्थानों पर भेजकर विशुद्ध चैतन्य-वाणी का कीर्त्तन कराते थे। यद्यपि अधिकांश लोग इन विचारों को धारण कर पाते थे तथापि ऐसे लोगों की श्रेणी भी थी जो ग्रन्थों अथवा वैष्णवों के द्वारा परिवेशित हरि-कथा को ठीक से समझ पाने में असमर्थ थे।

ऐसे लोगों के परम मङ्गल की कामना करते हुए दयार्द्रचित्त श्रील प्रभुपाद ने विभिन्न स्थानों पर श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज, श्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज तथा गुरु महाराज आदि के द्वारा सत्-शिक्षा-प्रदर्शनी तथा श्रीमद्भक्तिप्रसून बोधायन गोस्वामी महाराज के द्वारा 'magic lantern' चलचित्र के माध्यम से उन्हें विशुद्ध चैतन्य-वाणी को समझने का सुअवसर प्रदान किया था। इन प्रदर्शनियों में भगवद्-लीला सम्बन्धी सुन्दर चित्रावलियों को प्रस्तुत कर भक्तों द्वारा उस लीला पर आधारित पारमार्थिक शिक्षाओं का आगन्तुक दर्शनार्थियों के समक्ष विस्तृत वर्णन किया जाता था।

श्रील प्रभुपाद की इसी विचारधारा को स्थायी स्वरूप प्रदान करते हुए श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज ने साधारण लोगों के लिये श्रीकृष्ण, श्रीराम एवं श्रीमन्महाप्रभु की अनेक शिक्षाप्रद लीलाओं को चित्रावलियों के रूप में अपने द्वारा स्थापित मठों में प्रकाशित किया है। ये सब चित्रावलियाँ साधारण लोगों के लिये तो गूढ़ विषय जानने हेतु लाभप्रद हैं ही, साथ ही विज्ञ भक्तों को भी अनेक लीलाओं का स्मरण कराती हैं।

समाधि-लीला

श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के कुछेक आश्रित संन्यासी भक्त यथा श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज, श्रीमद्भक्तिविवेक भारती गोस्वामी महाराज, श्रीमद्भक्तिसुहृत परमार्थी गोस्वामी महाराज तथा श्रीमद्भक्तिप्रपन्न दण्डी गोस्वामी महाराज की मूल समाधि नहीं है तथा कुछेक विशेष कारणों से उन्होंने अपने शिष्यों को उनकी दिव्यदेह का दाह-संस्कार करने का ही निर्देश दिया था। बाद में श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज के आश्रितजनों ने श्रीजगन्नाथ पुरी में उन्हीं के द्वारा प्रतिष्ठित मठ में उनकी पुष्प समाधि की स्थापना की है।

गम्भीर रूप से विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलेगा कि वैष्णवों की मूल समाधि एवं पुष्प समाधि में कुछ भी अन्तर नहीं है। कारण, वैष्णवों की देह तथा उनसे सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु ही अप्राकृत, अभिन्न तथा पूजनीय है।

जब श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीमन्महाप्रभु को प्रतापरुद्र महाराज को दर्शन देने के लिये पुनः-पुनः निवेदन कर रहे थे, तब श्रीमन्महाप्रभु के नहीं मानने पर उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को अपने व्यवहृत वस्त्र महाराज प्रतापरुद्र को देने हेतु मना लिया था तथा महाराज प्रतापरुद्र ने उन वस्त्रों को प्राप्त करके श्रीमन्महाप्रभु से अभिन्न जानकर उनका आदर-सत्कार आदि किया था।

अतएव जिस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु और उनके वस्त्र अभिन्न हैं उसी प्रकार उनके

भक्तों, उनके आश्रितजनों के दिव्य कलेवर तथा उनके द्वारा उपभोग किये गये वस्त्र इत्यादि उनसे अभिन्न हैं। उनके नित्यलीला में प्रविष्ट होने के उपरान्त भी ऐसी वस्तुएँ उनके समान ही पूजनीय हैं।

गुरुवर्ग की किसी भी क्रिया पर कोई संशय नहीं करना

श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज की अप्रकट-लीला के पश्चात् किसी उत्सव के उपलक्ष्य में मैं उनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीचैतन्य सारस्वत मठ और आसन, पुरी में गया था। वहीं पर श्रीमद्भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज के आश्रित श्रीमुकुन्द पण्डित ने श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज के किसी एक आश्रित से वहाँ निर्मित श्रीवृन्दा देवी के विग्रह की नासिका में नथ आदि आभूषणों को देखकर जिज्ञासा की, "इस विग्रह को किसने बनाया है?"

उन भक्त ने कहा, "हमारे गुरुदेव ने बनाया है।"

श्रीमुकुन्द पण्डित ने कहा, "वृन्दा देवी के इस विग्रह को शास्त्रीय वचनानुसार प्रस्तुत किया गया है अथवा कल्पनापूर्वक?"

श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज के शिष्य ने तो सरलतापूर्वक कह दिया, "गुरु महाराज जी बोल सकते थे, मुझे तो पता नहीं है।"

मैंने उस समय विचार किया कि यद्यपि जबतक मुझसे पूछा न जाये, अपनी ओर से मैं किसी को कोई परामर्श देने नहीं जाता हूँ किन्तु गुरुवर्ग श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज द्वारा प्रस्तुत किये गये विग्रह को देखकर किसी प्रकार के संशय की बात को सुनकर प्रतिवाद नहीं करने पर अपराध होगा, अतएव मैंने उनके वार्त्तालाप में स्वयं हस्तक्षेप करते हुए कहा, "पण्डित जी, किसी प्रमाणिक गुरुवर्ग का नाम सुनने के पश्चात् भी क्या उनके द्वारा की गयी किसी क्रिया के प्रति संशयान्वित होना उचित है? श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज जैसे प्रमाणिक व्यक्ति क्या कभी कोई अप्रमाणिक क्रिया कर सकते हैं? श्रील महाराज ने श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित श्रीवृन्दादेव्याष्टक के आधार पर ही इस श्रीविग्रह को प्रकाशित किया है-

बिंबाधरोदित्वर-मन्दहास्य,
नासाग्र-मुक्ताद्युति-दीपितास्ये!
विचित्र-रत्नाभरणश्रियाढ्ये!,
वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥

[रत्नमय आभरणों की विचित्र शोभा से युक्त हे वृन्दे! देवि! हम तुम्हारे चरणारविन्दों को नमस्कार करते हैं, क्योंकि तुम्हारा श्रीमुख बिम्बफल के समान रक्तवर्णवाले ओष्ठों से निकलने वाले मन्दहास्य से युक्त है एवं नासिका के अग्रभाग में विराजमान कान्ति से प्रकाशमान है।]

अन्त में मैंने कहा, "लगता है आपने कभी उस अष्टक को ध्यान से नहीं पढ़ा।"

इस प्रकार का उत्तर देने के पश्चात् मुझे अनुभव हुआ कि पण्डित का मुख बन्द कराकर मैंने श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज की सेवा की है।



त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती महाराज का नित्यलीला में प्रवेश

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज
द्वारा सम्पादित

एक उज्ज्वल रत्न

एक–एक करके प्रायः हमारे सभी गुरुभ्राता नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीगुरुपादपद्म के सान्निध्य में महाप्रयाण कर रहे हैं। सभी अतिविशिष्ट दिव्य गुणों से सम्पन्न अतिमर्त्य पुरुष हैं। उनकी अनुपस्थिति के कारण रिक्त हुआ स्थान किसी भी अन्य व्यक्ति के द्वारा पूरित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार, वर्त्तमान समय में गौड़ीय वैष्णव जगत् क्रमशः रत्नसारशून्य हो रहा है। हमारे पूज्यपाद सिद्धान्ती महाराज पृथ्वी देवी के एक परमोज्ज्वल रत्नस्वरूप थे।

गौड़ीय वैष्णव समाज के प्रति उनकी महान् सेवा

परमाराध्यतम श्रील प्रभुपाद की एक विशेष इच्छा थी— गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीमद् बलदेव विद्याभूषण के श्रीगोविन्द भाष्य सहित वेदान्तदर्शन एवं ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, श्वेताश्वतर तथा गोपालतापनी उपनिषदों का अन्वय, बङ्गानुवाद एवं गौड़ीय भाष्य के साथ प्रकाशन एवं प्रचार करना। पूज्यपाद सिद्धान्ती महाराज ने परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के इस मनोऽभीष्ट कार्य को पूर्ण करने का व्रत ग्रहण किया एवं इस प्रकार गौड़ीय वैष्णव समाज की महती सेवा सम्पादित कर वे श्रील प्रभुपाद के प्रचुर कृपाभाजन हुए हैं।

श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय ग्रहण

पूज्यपाद महाराज २२ अक्टूबर, १९०६ में कार्तिक मास की शुक्ला पञ्चमी तिथि के दिन पूर्वबङ्ग [अधुना बाङ्गलादेश] के वरिशाल जिले में एक सम्भ्रान्त भक्त परिवार में आविर्भूत हुये थे। श्रील महाराज ने जनवरी, १९२४ में कोलकाता स्थित श्रीगौड़ीय मठ में सर्वप्रथम परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के श्रीचरणों में शुभागमन किया था। उसी वर्ष मार्च मास में उन्होंने श्रीगौर पूर्णिमा के शुभदिन पर श्रील प्रभुपाद से महामन्त्र एवं दीक्षा प्राप्त की। दीक्षा–उपरान्त उनका नाम श्रीसिद्धस्वरूप दास हुआ।

पूर्णतया समर्पित जीवन

हृदय में कृष्ण के प्रति विशेष अनुराग उदित होने के कारण अति अल्प आयु में, विद्यालय में अध्ययन करते समय ही वे मठ में चले आये थे। परन्तु उनके माता–पिता एवं अन्य वरिष्ठ सम्बन्धियों की इच्छा एवं आग्रह के फलस्वरूप अपने शेष अध्ययन को पूर्ण करने के लिये उन्हें कुछ दिनों के लिये पुनः गृह में लौटना पड़ा। शीघ्र ही अध्ययन आदि कार्य सम्पूर्ण करके वह पुनः प्रायः फरवरी मास, १९२८ ई॰ को मठ में लौट आये एवं उन्होंने पूर्ण उद्यम के साथ श्रीगुरुपादपद्म की सेवा में आत्मनियोग कर दिया।



एक प्रतिभासम्पन्न वक्ता

श्रील महाराज की निष्कपट सेवाचेष्टाओं से श्रीगुरुपादपद्म एवं उनके अनुगत वैष्णवगण अत्यन्त प्रसन्न थे। श्रीगुरुपादपद्म ने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें श्रीनवद्वीपधाम प्रचारिणी सभा की ओर से 'उपदेशक', 'महोपदेशक'

एवं 'विद्यावागीश (विद्या एवं वक्तृता में सुनिपुण)'— श्रीगौराशीर्वाद स्वरूप इन उपाधियों से विभूषित किया। ब्रह्मचारी अवस्था में वे प्रवीण एवं प्राचीन त्रिदण्डि संन्यासियों यथा— त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रदीप तीर्थ महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविवेक भारती महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज एवं त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिहृदय वन महाराज के साथ बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा, मद्रास, आन्ध्रप्रदेश एवं पश्चिम भारत के विभिन्न स्थानों पर प्रचार कार्य में गये। नित्यलीलाप्रविष्ट परमपूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराज, श्रील प्रभुपाद के प्रकटकाल में जिनका ब्रह्मचारी नाम 'वाग्मीप्रवर' श्रीपाद हयग्रीव ब्रह्मचारी था, के साथ भी उन्होंने बहुत से स्थानों पर प्रचारकार्य किया। क्रमशः श्रीहरि–गुरु–वैष्णवों की कृपा से उनकी एक विशिष्ट वक्ता के रूप में ख्याति हुई। उनके द्वारा निर्भीक चित्त से ओजस्विनी भाषा में सत्–शास्त्र सिद्धान्तों का कीर्त्तन करने पर गुणग्राही–सारग्राही सज्जन श्रोतृवृन्द उनकी वक्तृताओं से अत्यधिक आकृष्ट होते थे। कुछ अश्रौतपन्थी [गुरुपरम्परा के विपरीत] असारग्राही व्यक्तियों के द्वारा अपने अपस्वार्थ में आघात होने के कारण उनके विरुद्ध प्रचार में रत होने पर भी उन्होंने सर्वदा श्रौतपन्थ का अनुसरण किया एवं समस्त भ्राँतियों का निस्तार करने वाले वास्तव सत्य का कीर्त्तन करने से कदापि पश्चात्–पद नहीं हुए। इसीलिये वह प्रचुर परिमाण में परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के कृपाशीष–भाजन हुए थे।

शास्त्रीय शिक्षाओं के सार प्रस्तुतकर्त्ता

१९४१ ई॰ में पूज्यपाद सिद्धस्वरूप ब्रह्मचारी प्रभु ने हमारे एक सतीर्थ गुरुभ्राता श्रीमद्भक्तिविज्ञान आश्रम महाराज से त्रिदण्ड संन्यास वेष ग्रहण कर त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती महाराज नाम धारण किया।

उनके द्वारा प्रतिष्ठित तीनों मठों में ही श्रीश्रीगुरु–गौराङ्ग–राधागोविन्द के अपूर्व श्रीविग्रह विराजित हैं एवं मठ की दीवारों पर श्रीगौरलीला, श्रीकृष्णलीला एवं श्रीरामलीला से सम्बन्धित अनेक अपूर्व चित्र अङ्कित हैं जिनमें शास्त्रीय शिक्षाओं का सार प्रकाशित होता है। उन चित्रावलियों का दर्शन करने मात्र से सारग्राही प्रत्येक दर्शक को अनेक सत्–शास्त्रीय सिद्धान्तों का ज्ञान अर्जन करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। वर्त्तमान समय में भी वह सभी चित्रावलियाँ यथायथ देदीप्यमान हैं किन्तु उन सभी के दर्शनमात्र से ही पूज्यपाद श्रील महाराज का अदर्शन हृदय में अत्यन्त कातर होकर जाग्रत हो उठता है।

"कृपा करि' कृष्ण मोरे दियाछिल सङ्ग।
स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा, हइल सङ्ग–भङ्ग॥"

चै॰च॰ (अन्त्य–लीला ११.९४)

[श्रीकृष्ण ने अतिकृपापूर्वक मुझे वैष्णव सङ्ग प्रदान किया था। आज श्रीकृष्ण की स्वतन्त्र इच्छा से ही मेरा सङ्ग भङ्ग हो गया।]

श्रीचैतन्यवाणी (वर्ष २५, संख्या ११) में प्रकाशित एक लेख से अनुवादित

श्रील भक्त्यालोक परमहंस महाराज

ग्रन्थ भागवत और भक्त भागवत दोनों की सेवा

संन्यास ग्रहण करने से पूर्व श्रील भक्त्यालोक परमहंस महाराज का नाम श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी था। श्रील प्रभुपाद के प्रकट काल में श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी कृष्णानगर में भागवत प्रेस के 'मैनेजर' (प्रबन्धक) थे, जहाँ पर श्रील प्रभुपाद के श्रीमद्भागवतम् ग्रन्थ का मुद्रण कार्य होता था। वास्तव में 'मैनेजर' (प्रबन्धक) उपाधि भक्तों के लिए उपयुक्त नहीं है, कारण, एक भक्त सदैव अपने आपको एक सेवक ही समझता है। परन्तु, श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी की समस्त सेवाएँ एक मैनेजर की ही भाँति थीं इसलिए उनका इस प्रकार से उल्लेख किया गया है। वे श्रील प्रभुपाद के श्रीमद्भागवतम् तथा अन्य समस्त ग्रन्थों के प्रेस में मुद्रण के लिये सम्पूर्ण व्यवस्था करते थे।

ग्रन्थों की प्रकाशन सेवा के लिए श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी ने एक स्टेनोग्राफर एवं एक टाइपिस्ट को नियुक्त किया था। एक समय नदिया के राजा को प्रशासनिक कार्य सम्बन्धित कुछ प्रकाशित करने की आवश्यकता उपस्थित हुई किन्तु उनके पास डिक्टेशन लेने (सुनकर लिखने) तथा टाइपिङ्ग के लिये कोई भी व्यक्ति सेवा में नहीं था। राजा की आवश्यकता के अनुरूप श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी ने भागवत प्रेस के स्टेनोग्राफर एवं टाइपिस्ट की सेवाएँ उन्हें प्रदान की तथा उनकी प्रतिलिपि को प्रकाशित करने के लिए भी प्रस्तुति व्यक्त की। भागवत प्रेस प्रायः बाहर के ग्राहकों के लिये भी मुद्रण कार्य करती थी।

उन्होंने राजा के समक्ष एक उत्तम कोटि की मुद्रित पुस्तिका प्रस्तुत की, जो पूर्णतया मुद्रण सम्बन्धी किसी दोष-त्रुटि

से रहित थी। पुस्तिका की उच्च गुणवत्ता और भागवत प्रेस के भक्तों द्वारा विशेष सावधानीपूर्वक उसे मुद्रित करने की शैली से राजा अत्यन्त प्रभावित हुए तथा यह निर्णय लिया कि भविष्य में मुद्रण के लिये किसी भी पुस्तक को कोलकाता नहीं भेजेंगे बल्कि एकमात्र भागवत प्रेस की सेवाओं का ही उपयोग करेंगे। इस प्रकार श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी के प्रयासों के फलस्वरूप प्रेस ने प्रचुर ख्याति लाभ कर ली। आसपास के समस्त नगरवासी यह जान गए कि वे भागवत प्रेस के भक्तों की योग्यता पर सम्पूर्ण विश्वास कर सकते हैं और यदि दैववश कभी कोई त्रुटि हो भी जाती है तो प्रेस तत्काल उसका संशोधन कर देगी।

एक अन्य सेवा जिसे श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी सम्पादित करते थे वह थी मठ के लिये भूमि संग्रह करना। चूँकि वे गौड़ीय मठ के लिये विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ क्रय करने की सेवा करते थे इसलिए उन्हें 'केनाराम' नाम प्रदान किया गया अर्थात् ऐसा व्यक्ति जो सब कुछ खरीदता है। इस विषय में 'केनाराम' उपाधि उनके लिये प्रयुक्त हुई है, जो भक्त-भागवत की सेवा के लिये सब कुछ खरीदता है, निज इन्द्रिय तृप्ति के लिये नहीं।

सूक्ष्म संकेत, विशाल सेवा

नवद्वीप स्थित चम्पक-हट्ट ग्रामवासियों की श्रील प्रभुपाद के प्रति अगाध श्रद्धा थी और उनमें से कुछ लोगों ने उनका शिष्यत्व भी ग्रहण किया। श्रील प्रभुपाद के प्रति विशेष श्रद्धायुक्त होने के कारण ग्रामवासियों ने उन्हें वह भूमिखण्ड प्रदान कर दिया जिसमें श्रीजयदेव गोस्वामी का पूर्व निवास स्थान भी सम्मिलित था। इसी स्थान पर वर्त्तमान में श्रीगौर-गदाधर गौड़ीय मठ स्थापित है।

उस गाँव में एक सम्मानित व्यक्ति था जिसकी दो कन्याएँ हाल ही में विधवा हुई थीं। दुर्भाग्यवशतः, कन्याओं के ससुराल वाले उनकी निजी पैतृक सम्पत्ति को हस्तान्तरित करने के अनिच्छुक थे, इसलिए दोनों स्त्रियाँ अपना जीवन निर्वाह करने में असमर्थ थीं। जब श्रील प्रभुपाद को इन स्त्रियों की दुर्दशा के बारे में पता चला तो उन्होंने साधारण तौर पर ही कहा, "वे अपना जीवन निर्वाह कैसे करेंगी?" अपने गुरु महाराज के साधारण जिज्ञासा रूपी शब्दों को आदेश मानते हुए श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी ने रानाघाट के स्थानीय न्यायालय में स्त्रियों के ससुराल वालों के विरुद्ध अभियोग दाखिल कर दिया और अन्ततः उनकी पैतृक सम्पत्ति का उनके लिए संरक्षण करने में सफलता प्राप्त की।

बुद्धिमत्तापूर्वक सेवा

श्रील प्रभुपाद के निशिकान्त सन्याल नामक एक शिष्य थे, जो कटक के रॉवेनशॉ महाविद्यालय में प्राध्यापक थे। अपने पूरे परिवार की देखरेख की जिम्मेदारी श्रीसन्याल पर ही थी। तब भी वे अपना सम्पूर्ण मासिक वेतन श्रील प्रभुपाद को समर्पित कर देते थे, जबकि श्रील प्रभुपाद ने उनसे कहा था- "यदि तुम इस प्रकार से अपना पूरा वेतन मुझे प्रदान करते रहोगे तब तुम्हारे परिवार का निर्वाह कैसे होगा? अपने परिवार के

भरण-पोषण के लिये कुछ बचाकर रखने से अच्छा है।"

श्रीसन्याल के परिवार के प्रति अकृत्रिम चिन्ताविशिष्ट श्रील प्रभुपाद ने श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी को कहा, "चूँकि निशिकान्त सन्याल अपना समस्त वेतन हमें समर्पित कर रहा है, इसलिये उसके परिवार की देखरेख का दायित्व हमारा है। मैं चाहता हूँ कि आप उनके परिवार के निर्वाह का सम्पूर्ण प्रबन्ध कर दिया करें।" श्रील प्रभुपाद के आदेश पर श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी ने कई वर्षों तक श्रीसन्याल के परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यवस्था की। उन्हें जिस किसी भी वस्तु की आवश्यकता थी जैसे कि शिक्षा, उनकी सन्तानों के विवाह इत्यादि, सब कुछ उनके द्वारा व्यवस्थित किया गया।

बाह्यदृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब व्यवस्थाएँ करना असङ्गत है। एक गृहस्थ परिवार की आवश्यकताओं को देखना त्यागी व्यक्ति का कर्त्तव्य नहीं है तथा उसे सदैव श्रीहरि-गुरु-वैष्णव की सेवा में नियुक्त रहना चाहिये। तथापि इस परिस्थिति में दो विचार हैं। प्रथम, श्रील प्रभुपाद की ओर से उन्हें उस परिवार की देखरेख का प्रत्यक्ष आदेश था और गुरु के आदेश का पालन करने में कोई दोष नहीं होता, बल्कि गुरु का आदेश पालन करना ही शिष्य का कर्त्तव्य है। द्वितीय, श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी ने बुद्धिमत्तापूर्वक सब कुछ इस प्रकार से व्यवस्थित किया कि उन्हें इन सेवाओं के लिये कभी भी व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उन्होंने सेवाओं के दायित्व को भिन्न-भिन्न लोगों में कुछ इस प्रकार से विभाजित कर दिया कि उन्हें एक बार भी परिवार को देखने नहीं जाना पड़ा।

मेरे द्वारा उनकी सेवा

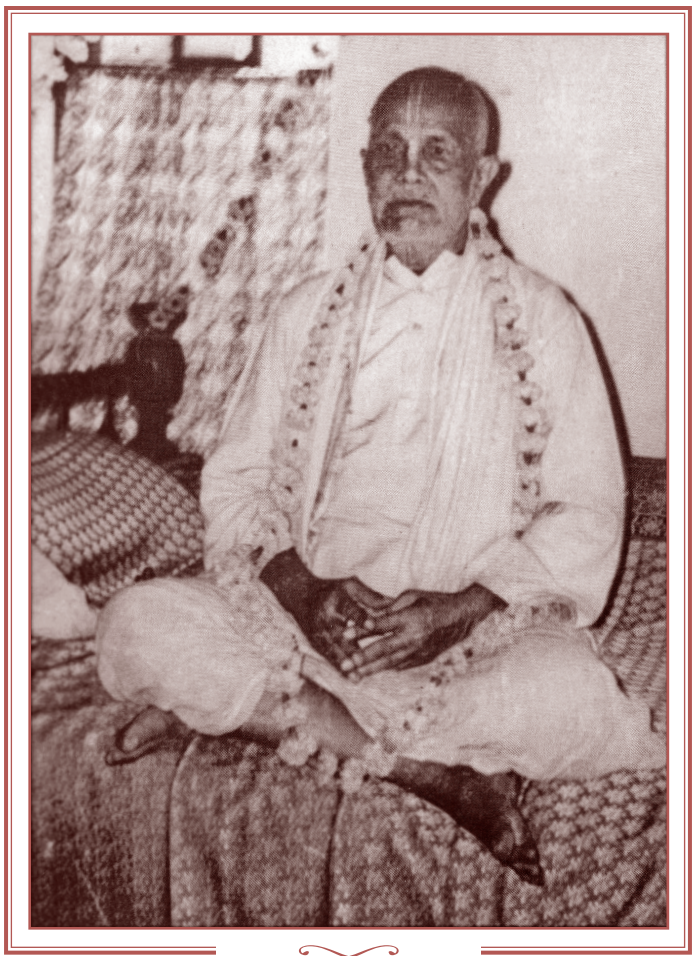
श्रील प्रभुपाद के अप्रकट होने के कुछ समय पश्चात् श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी ने मायापुर में गङ्गा घाट से थोड़ी सी दूरी पर क्षेत्रपाल शिव के निकट में कुछ भूमि संग्रह की। अन्ततः बङ्गलादेश से आये कुछ शरणार्थियों ने उस भूमि पर आधिपत्य करना प्रारम्भ कर दिया और उसे छोड़ने से मना कर दिया। उनकी सेना की तरह कार्य करते हुये, बहुत से भक्तों और मैंने मिलकर उन शरणार्थियों को उस भूमि से भगा दिया।

श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी के गुरुभ्राता श्रील भक्तिसौरभ भक्तिसार गोस्वामी महाराज मायापुर आये और मायापुर में ठहरने के लिये अपना एक स्थान होने सम्बन्धी इच्छा प्रकट की, तो श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी ने उन्हें अपनी आधी भूमि दे दी।

संन्यास ग्रहण करना

श्रील प्रभुपाद आश्रित श्रील भक्तिस्वरूप पर्वत गोस्वामी महाराज का खीरचोरा गोपीनाथ के निकट, उदाला, उड़ीसा में 'वार्षभानवी-दयित गौड़ीय मठ' नाम से एक मठ था। उनके अप्रकट के पश्चात् कई भक्त चाहते थे कि वह मठ मेरे गुरु महाराज श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज को दिया जाये और वह श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ का ही शाखामठ बन जाये।

उस समय श्रील प्रभुपाद के शिष्यों ने



विचार-विमर्श किया और निर्णय लिया कि क्योंकि श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी का अपना कोई स्थान नहीं है इसलिये श्रीवार्षभानवी-दयित गौड़ीय मठ उनको दिया जाना चाहिये और उन्हें श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज से संन्यास ले लेना चाहिये। उन्होंने अपने गुरुभ्राताओं का प्रस्ताव स्वीकार किया और इसके बाद से वे श्रीवार्षभानवी-दयित गौड़ीय मठ, उदाला के आचार्य श्रीभक्त्यालोक परमहंस महाराज, के रूप में प्रसिद्ध हुए।

उनकी सेवा प्रवृत्ति

जब गुरु महाराज ने पुरी में श्रील प्रभुपाद की आविर्भाव स्थली को संग्रह करने का दायित्व स्वीकार किया, तब बहुत से आवश्यक प्रपत्र (documents) उड़िया भाषा में थे। उस समय एक उड़िया भक्त, श्रीपाद भक्तिसुन्दर सागर महाराज श्रीवार्षभानवी-दयित गौड़ीय मठ में रह रहे थे। गुरु महाराज ने श्रील परमहंस महाराज से पूछा, "महाराज,

"श्रील प्रभुपाद के लिये कोई छोटी सी सेवा करना भी बहुत आनन्द और सम्मान का विषय होगा।"



यदि आपके लिये कोई असुविधा न हो तो, हम आपसे प्रार्थना करना चाहते हैं कि सागर महाराज कुछ समय के लिये हमारे साथ रहें और श्रील प्रभुपाद की आविर्भाव स्थली को ग्रहण करने में हमारी सहायता करें।"

परमहंस महाराज ने उत्तर दिया, "मैं इतना अधिक स्वार्थी नहीं हूँ कि इतनी महत्त्वपूर्ण सेवा में बाधा डालूँ। मेरे स्वयं के लिये असुविधा होने पर भी मैं श्रीसागर महाराज को आपके साथ अवश्य भेजूँगा। श्रील प्रभुपाद के लिये कोई छोटी सी सेवा करना भी बहुत आनन्द और सम्मान का विषय होगा।"

हमने व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया है कि श्रील परमहंस महाराज परम स्नेही और सरल थे। जब भी मेरी उनसे भेंट होती, मैं उन्हें पूर्ण साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करता। यद्यपि मैं उनके शिष्यतुल्य था, तब भी वे मुझे सदैव आलिङ्गन करते। उनका स्वभाव ऐसा था कि वे किसी को भी अपने से कनिष्ठ नहीं समझते थे, अपितु सभी भक्तों का इस विचार से सम्मान करते थे कि वे सभी भक्ति-मार्ग के पथ पर चल रहे हैं।



त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्त्यालोक परमहंस महाराज का नित्यलीला में प्रवेश

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित

उनका शुभाविर्भाव

पूज्यपाद श्रील महाराज का आविर्भाव १८९३ ई॰ में रविवार, वैशाख मास की शुक्ला प्रतिपदा तिथि के दिन अश्विनी नक्षत्र में हुआ। अर्थात् उनके आविर्भाव काल सम्बन्धित मास, वार, तिथि एवं नक्षत्र— सभी प्रथम हैं।

पृथ्वी के अमूल्य रत्नस्वरूप

श्रील महाराज एक अत्यन्त नामभजन-परायण वैष्णव थे। प्रायः समस्त वैष्णवोचित सद्गुण ही उनमें विराजमान थे। वस्तुतः सभी भुवनपावन वैष्णव ही पृथ्वी पर महामूल्य रत्नस्वरूप हैं। "ताँहा बिना रत्न शून्या हइल मेदिनी – उनके अभाव में मेदिनी अर्थात् पृथ्वी रत्न से शून्य हो गई है'।"

'भक्त्यालोक'

परमाराध्य श्रील प्रभुपाद ने अपने चरणाश्रित श्रील महाराज के पूर्वाश्रम का 'महेन्द्र' नाम परिवर्त्तन करके उनका दीक्षा-उपरान्त नाम रखा था 'श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी'। क'छ समय पश्चात् श्रील प्रभुपाद ने उन्हें 'भक्त्यालोक अर्थात् भक्ति की आभा से

देदीप्यमान'— इस भक्तिसूचक उपाधि से भूषित किया था। श्रील प्रभुपाद के अप्रकट के पश्चात् उन्होंने पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज से संन्यास ग्रहण किया था। उनका संन्यास उपरान्त नाम हुआ— त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्त्यालोक परमहंस महाराज।

श्रील प्रभुपाद की महती कृपा के पात्र

परमाराध्य श्रील प्रभुपाद ने पूज्यपाद महाराज को उनकी ब्रह्मचारी अवस्था में कृष्णनगर स्थित भागवत प्रेस एवं उसके पश्चात् श्रीधाम मायापुर में स्थित श्रीचैतन्य मठ के प्रबन्धन का भार प्रदान किया था। वे उन सभी सेवाओं को विशेष कृतित्व के साथ सम्पादनपूर्वक श्रील प्रभुपाद के प्रचुर कृपाशीष-भाजन हुए हैं। उनके समान एक शुद्ध भजनपरायण आदर्श वैष्णव के अभाव की पूर्त्ति असम्भव है।

आचार्य के रूप में नियुक्ति

उड़ीसा प्रदेश के अन्तर्गत मयूरभञ्ज जिले के उदाला उपमण्डल में स्थित श्रीवार्षभानवी-दयित गौड़ीय मठ के प्रतिष्ठाता श्रील भक्तिस्वरूप पर्वत गोस्वामी महाराज के नित्यलीला में प्रवेश करने के पश्चात् पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस महाराज, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराज, पूज्यपाद श्रीमद् महानन्द ब्रह्मचारी आदि श्रीमद्भक्तिस्वरूप पर्वत महाराज के सतीर्थगण एवं उनके अनुगत शिष्यों और सदस्यों की उपस्थिति में पूज्यपाद श्रीमद् वैखानस महाराज के प्रस्ताव के अनुसार सर्वसम्मति से पूज्यपाद श्रीमद् महानन्द ब्रह्मचारी उदाला मठ के आचार्यपद पर अधिष्ठित हुए। अगले वर्ष, १९५८ ई॰ में वह संन्यास ग्रहण करने के उपरान्त त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् परमहंस महाराज के नाम से परिचित हुए।

उनके अन्तिम वचन

पूज्यपाद महाराज ने अपनी अप्रकटलीला की पूर्व सन्ध्या में अनेक बार बहुत उच्च स्वर से श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट परमपूजनीय श्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराज एवं उनके शिष्य वर्त्तमान मठाध्यक्ष आचार्य श्रीमद्भक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज का नाम उच्चारण किया था। इससे पूर्व भी समय-समय पर उनके श्रीमुख से इनका नाम श्रवण किया जाता था क्योंकि उनका हृदय उन दोनों के ही प्रति विशिष्ट प्रीतियुक्त था।

श्रीचैतन्यवाणी (वर्ष २३, संख्या १०
एवं वर्ष २४, संख्या १) में
प्रकाशित एक लेख से अनुवादित

श्रीपाद
कृष्ण केशव ब्रह्मचारी



पैतृक दृढ़ता

श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी अपने श्रीधाम मायापुर आने तथा उनके पिता श्रीदीपराम दास गाँउबुड़ा के द्वारा उन्हें लौटा ले जाने के लिये श्रीधाम मायापुर आने के विषय में बताते हुए कहते थे, "जब मैं सप्तम श्रेणी का छात्र था तब मेरी आयु लगभग ग्यारह वर्ष थी, मैं अपने गाँव के कुछेक लोगों के साथ श्रीनवद्वीप धाम के दर्शन के लिये आया था। वहाँ पर मेरी श्रील प्रभुपाद से भेंट हुई। उनके दर्शन कर मैं इस प्रकार मोहित हो गया कि मैंने वहाँ से लौटने हेतु मना कर दिया तथा मायापुर में ही रह गया एवं मठवास करने लगा। मेरी अल्प आयु होने पर भी श्रील प्रभुपाद ने मुझे हरिनाम तथा मन्त्र दीक्षा प्रदान की।

"मैं अपने पिता की सबसे छोटी दसवीं सन्तान था। जब गाँव में मेरे मायापुर में रह जाने की बात पहुँची, तब तत्काल मेरे पिता मुझे घर पर लौटा ले जाने के लिये श्रीधाम मायापुर आये। उन दिनों नवद्वीप धाम की परिक्रमा चल रही थी, हजारों लोगों का समावेश था। 'कृष्णकेशव ब्रह्मचारी के पिता आये हैं' ऐसा जानकर श्रीचैतन्य मठ के व्यवस्थापक ने उनका अत्यधिक आदर किया तथा मठ में ही उनके रहने की व्यवस्था कर दी।

"मठ में श्रील प्रभुपाद के दर्शन, तेजवान, सम्भ्रान्त कुल में उत्पन्न, विद्वता से सुशोभित तथा अमानी-मानद धर्म में प्रतिष्ठित उनके चरणाश्रित संन्यासी-ब्रह्मचारी आदि के व्यवहार तथा उनके मुख से उद्गीर्ण वीर्यवती हरि-कथा का श्रवण करके मेरे पिता इतना अधिक आश्चर्यचकित हुए कि उन्होंने मुझसे कहा, 'मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि पृथ्वी पर ऐसा भी कोई

स्थान है, जहाँ पर जगत् की कोई बात नहीं होकर सदैव परजगत् की बात होती है, जहाँ पर विषय-भोग की चिन्ता-भावना नहीं करके सेवा-भावना होती है, जहाँ पर जगत् के विषय-भोगों को तिलाञ्जलि देकर कोई अत्यधिक साधारण किन्तु उच्च विचार-धारा को लेकर जीवन-यापन करता है। जहाँ पर सदैव एक-के-पश्चात्-एक आत्म-तत्त्व से सम्बन्धित रहस्यों का उद्घाटन होता है।

"उनका हृदय कृतज्ञता से गद्गद हो गया। उन्होंने कहा, 'केशव! तुमने जिस किसी प्रकार से क्यों न हो, मुझे इस स्थान के दर्शन कराकर मुझे धन्य कर दिया। मैंने अभी तक जानने की तो बात ही क्या, एक बार भी सुना नहीं था कि मनुष्य जीवन भगवान् का भजन करने के लिये प्राप्त हुआ है। अब इस वृद्धावस्था में जानने का अवसर प्राप्त होने पर मैं अपने जीवन का सम्पूर्ण शेष समय भजन करने में ही नियुक्त करूँगा। मैं भी तुम्हारे गुरुदेव से मन्त्र-दीक्षा लूँगा, उनका चरणाश्रय करूँगा, देरी नहीं करके जितना शीघ्र वह कृपा करेंगे, मैं मन्त्र लूँगा। तुम मेरी बात उन तक पहुँचा दो।'

"जब मैंने उनसे कहा, 'आपको तो मांस-मत्स्य आदि खाने का अभ्यास है, आप तम्बाकु आदि भी ग्रहण करते हैं, इन सब वस्तुओं का तो कहना ही क्या, दीक्षा-हरिनाम के लिये आपको प्याज-लहसुन-चाय तक भी त्यागनी पड़ेगी।'

"तब उन्होंने उत्तर दिया, 'मैं आज से इन सब वस्तुओं को त्याग दूँगा, इसमें क्या बड़ी बात है! श्रेष्ठ वस्तु को प्राप्त करने के लिये क्या निम्न वस्तु को त्यागने में कोई असुविधा होती है?'

"मैंने कहा, 'हो सकता है कि आज आप भावुकतावश मन्त्र-दीक्षा ले लें और बाद में यदि अपने अभ्यासवशतः आप उन वस्तुओं को पुनः ग्रहण करेंगे, तब आपको दोष लगेगा।'

"उन्होंने मुझसे कहा, 'केशव! मैं जानता हूँ, महापुरुष के निकट मैं अपने वचन दे रहा हूँ, मेरा विश्वास कर मैं अपने पूरे होश-हवास में, सोच समझकर ऐसा बोल रहा हूँ, भावुक होकर नहीं।'

"मैंने जब उनकी बात, उनका पूर्व इतिहास तथा उनकी मनः स्थिति के विषय में श्रील प्रभुपाद के चरणों में निवेदन करने हेतु उचित समय की प्रतीक्षा की, उतने में ही अन्य भक्तों को मुण्डन कराकर दीक्षा हेतु प्रतीक्षा करते देखकर वे भी अपने आप से मुण्डन करा आये तथा उन्हीं के साथ बैठ भी गये। जब श्रील प्रभुपाद को उनके किसी एक सेवक के द्वारा यह सब बात बतायी गयी तब उन्होंने कहा, 'जब



वह हरिनाम-दीक्षा ग्रहण करने के लिये इतने दृढ़प्रतिज्ञ हैं, तब मैं अवश्य ही उन्हें हरिनाम-दीक्षा प्रदान करूँगा। दीक्षा ग्रहण करने का सर्वप्रधान लक्षण ऐसी दृढ़ता ही है।'

"श्रील प्रभुपाद ने उसी दिन उन्हें दीक्षा-मन्त्र प्रदान किये। श्रीधाम मायापुर से जाते समय उन्होंने मुझसे कहा, 'केशव, मैं लेने तो तुम्हें आया था किन्तु हो गया इसके विपरीत, मैं ही स्वयं को यहाँ पर समर्पित करके जा रहा हूँ। मेरा शरीर भले ही जा रहा है किन्तु मैं हृदय से सदैव यहाँ पर ही वास करूँगा।"

"आश्चर्य की बात है कि मेरे पिता ने उस दिन के पश्चात् किसी भी निषिद्ध वस्तु को ग्रहण नहीं किया तथा सदैव हरिनाम, दीक्षामन्त्र, स्तव-स्तुति आदि भक्ति-अनुकूल क्रियाओं में जीवन को व्यतीत किया।"

श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी के जीवन में भी अपने पिता के समान ऐसी ही दृढ़ता की छाप सदैव देखी जाती थी।

सेवा में ध्यान केन्द्रित करना सफलता की कुँजी

श्रीपाद कृष्ण केशव ब्रह्मचारी श्रील प्रभुपाद से हरिनाम-दीक्षा आदि प्राप्त करके मठ की विभिन्न सेवाओं में योगदान देने के साथ-साथ श्रील प्रभुपाद का रन्धन करने वाले भक्त के साथ मिलकर सब्जी अमनिया करना, रन्धन में प्रयुक्त होने वाली सामग्री को बाजार से संग्रह करना, रन्धन के पात्र, रसोईघर आदि की सफाई जैसे सेवा-कार्यों में अत्यधिक आग्रहपूर्वक आविष्ट रहते थे।

एक समय जब श्रील प्रभुपाद को प्रचार पार्टी के साथ, जिसमें कि उनका रन्धन करने वाला सेवक भी सम्मिलित था, मुम्बई से कोलकाता आना था, तब उनके रन्धन करने वाले सेवक को मार्ग में अत्यधिक चिन्ता हुई कि आज उन्हें श्रील प्रभुपाद को समय पर प्रसाद देने में बहुत असुविधा का सामना करना पड़ेगा।

जब श्रील प्रभुपाद एवं उनके आश्रित कोलकाता मठ में पहुँचे, तब उनहोंने देखा कि श्रीपाद कृष्ण केशव प्रभु ने श्रील प्रभुपाद के लिये पहले से ही रन्धन करके रख दिया है तथा वह प्रसाद परिवेशन के लिये प्रस्तुत थे। जब श्रील प्रभुपाद के रन्धन करने वाले सेवक ने उनके द्वारा रन्धन किये गये सब खाद्य-द्रव्यों को देखा तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही, कारण, श्रीपाद कृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने जो भी रन्धन किया था वह सब प्रायः उनके रन्धन जैसा ही था। श्रील प्रभुपाद के प्रसाद पाने के उपरान्त उनके सेवक ने उन्हें बताया कि यह रन्धन श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने किया है, तब श्रील प्रभुपाद ने कहा, "क्या वास्तव में? मुझे तो आपके तथा उनके द्वारा किये गये रन्धन में कोई अन्तर नहीं लगा, क्या आपने उन्हें रन्धन करना सिखाया था।"

सेवक ने उत्तर दिया, "नहीं, रन्धन तो मैंने उन्हें कभी नहीं सिखाया किन्तु हाँ, वे रसोई में मेरी सहायता अवश्य ही करते रहे हैं।"

श्रील प्रभुपाद ने श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी को अपने निकट बुलाकर उनसे पूछा,

"आपने रन्धन करना कैसे सीखा?"

श्रीपाद कृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, "प्रभु को नित्यप्रति ध्यानपूर्वक बनाते देखकर।"

श्रील प्रभुपाद ने कहा, "किसी भी वस्तु को ठीक से सीखने के लिये उस पर अपना ध्यान केन्द्रित करने से सफलता अवश्य ही प्राप्त होती है। आप भजन राज्य की सभी मुख्य वस्तुओं को इसी प्रकार से सीखते जाना, आपका अवश्य मङ्गल होगा।"

तब से वे भी समय-समय पर श्रील प्रभुपाद के लिये रन्धन करते तथा जो भी भक्त उनसे श्रील प्रभुपाद का उच्छिष्ट माँगते, अत्यधिक प्रीतिपूर्वक उन्हें प्रदान करते। वे कहा करते थे, "श्रील प्रभुपाद बहुत अल्प भोजी थे। मैंने देखा कि उनके लिये जब भी मैं प्रसाद परिवेशन करता था, उनके ग्रहण कर लेने के पश्चात् बाहर आने पर भी उतना ही प्रतीत होता था, जितना उनके लिये लेकर जाता था।"

गुरु महाराज के दाहिने हाथ

श्रील प्रभुपाद की अप्रकट लीला के पश्चात् जब गौड़ीय मठ में बहुत अधिक असुविधाएँ उपस्थित हुई तथा पूरा मिशन दो भागों में विभक्त हो गया, तब गुरु महाराज ने ही श्रीकुञ्जविहारी विद्याभूषण प्रभु की ओर से चैतन्य मठ का आधिपत्य स्वीकार किया था। उनके विभिन्न गुरुभ्राता उन्हें पुनः-पुनः संन्यास तथा शिष्य ग्रहण करने हेतु अनुरोध करने लगे किन्तु गुरु महाराज उनकी बात को बहुत बार टाल देते थे।

गुरु महाराज के संन्यास ग्रहण और शिष्य स्वीकार करने के पीछे जिन महापुरुष का सबसे बड़ा हाथ है वह हैं श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी। उन्होंने जब गुरु महाराज से कहा, "श्रील प्रभुपाद इतने बड़े मिशन को छोड़कर गये हैं, आपके जैसे योग्य व्यक्ति यदि शिष्य स्वीकार नहीं करेंगे तब सब प्रकार की सेवाएँ सुष्ठु रूप से कैसे चलेंगी? यदि आप दीक्षा-मन्त्र देना प्रारम्भ करेंगे तो लोगों को आपके निकट लाने का दायित्व मैं अपने कन्धे पर लेता हूँ।" अपने प्रिय गुरुभ्राता का सहयोग प्राप्त कर गुरु महाराज शिष्य स्वीकार करने के लिये मान गये।

कुछ समय के पश्चात् श्रीपाद कृष्ण केशव प्रभु ही गुरु महाराज को आसाम में प्रचार कराने हेतु लेकर गये तथा उन्हीं के अथक प्रयास से गुरु महाराज का प्रचार साफल्य मण्डित हुआ और उन्हीं के द्वारा किये गये श्रील प्रभुपाद की विशुद्ध वाणी के कीर्त्तन से आकर्षित होकर बहुत से भक्तों ने गुरु महाराज का चरणाश्रय किया। उनमें से अनेक भक्तों ने त्यागी वेष धारण करके मठ में वास किया, गुरु महाराज ने परवर्ती काल में उनमें से कुछ भक्तों को संन्यास भी प्रदान किया।

गुरु महाराज श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी को अपना दाहिना हाथ मानते थे तथा उनकी उनसे आन्तरिक प्रीति थी। श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के आश्रित भक्तजन श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी के चिरऋणी रहेंगे।

वैष्णव-निन्दा पर उपयुक्त प्रतिक्रिया

एक बार कोलकाता के सियालदह स्टेशन

पर श्रील भक्तिविलास तीर्थ गोस्वामी महाराज श्रीकृष्णदास बाबाजी महाराज, प्रभुपाद-आश्रित श्रीसुन्दरगोपाल प्रभु, श्रीअतुलानन्द ब्रह्मचारी आदि के साथ उपस्थित थे। उन्होंने वहीं स्टेशन पर दूर खड़े श्रील प्रभुपाद आश्रित तथा श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में निवास कर रहे श्रीकृष्णकेशव ब्रह्मचारी को अपने निकट बुलाया। उन्होंने श्रीकृष्ण केशव प्रभु से पूछा, "केशव, कैसे हो?"

श्रीकृष्णकेशव प्रभु ने उत्तर दिया, "बहुत अच्छा हूँ।"

उन्होंने फिर से पूछा, "केशव, कैसे हो?"

श्रीकृष्णकेशव प्रभु ने कहा, "बहुत अधिक अच्छा हूँ।"

यह सुनकर उन्होंने अपने साथ खड़े भक्तों से कहा, "देखो, प्रभुपाद के मठ को छोड़कर चला गया और फिर भी कहता है- बहुत अधिक अच्छा है।"

उनकी इस बात को सुनकर श्रीकृष्णकेशव प्रभु ने उन्हें सहज भाव में उत्तर दिया, "आपके साथ रहने से केवल यही सर्वदा सुनना पड़ता कि आप ही केवल भजन कर रहे हैं, अन्य कोई भी भजन नहीं कर रहा। आपके साथ रहने से सबको अवैष्णव कहना पड़ता, वैष्णव निन्दा करनी सीखनी पड़ती।

"किन्तु माधव महाराज के साथ रहने से मैं वैष्णव निन्दा करने से बच गया। सभी को मानद तथा स्वयं को अमानी मानने की शिक्षा पद्धति में निष्णात हो रहा हूँ तो फिर बहुत अच्छे से नहीं हूँ तो फिर कैसा हूँ?"

उनमें से किसी ने कहा, "देखो, श्रीभक्तिविलास तीर्थ महाराज के प्रति श्रील प्रभुपाद का आशीर्वाद है कि 'तुम्हारा प्रचुर मङ्गल हो', क्या माधव महाराज को श्रील प्रभुपाद ने ऐसा आशीर्वाद दिया था?"

श्रीकृष्णकेशव प्रभु ने कहा, "जिसने एम॰ ए॰ पास कर ली हो, क्या उसे कोई कहता है कि जाओ मैं तुम्हें एम॰ ए॰ पास होने का आशीर्वाद देता हूँ या फिर जिसकी अभी एम॰ ए॰ नहीं हुई हो, उसे ऐसा आशीर्वाद देता है। अतएव माधव महाराज के प्रति श्रील प्रभुपाद ने ऐसा आशीर्वाद इसलिए नहीं किया क्योंकि उनका प्रचुर मङ्गल पहले से ही हो चुका है। अब इस विषय में आप स्वयं ही विचार कीजिए कि प्रभुपाद ने किसी को 'तुम्हारा प्रचुर मङ्गल हो' ऐसा आशीर्वाद क्यों दिया?"

अधूरा वक्तव्य भ्रम का कारण

किसी एक समय कोलकाता स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के वार्षिक उत्सव के समय गुरु महाराज के निमन्त्रण से श्रील प्रभुपाद के अनेक आश्रित-जन उपस्थित हुए थे। एक दिन सभा के अन्त में गुरु महाराज ने श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी को कुछ कथा परिवेशन करने के लिये कहा। श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने अपने भाषण में कह दिया, "जो लोग वक्ता के रूप में मञ्च के ऊपर बैठे हैं तथा जो लोग श्रोता के रूप में नीचे बैठे हैं उन दोनों को ही भगवान् की प्राप्ति नहीं हुई है। कारण, शास्त्रों में उल्लेख है:-

'यदि हय तार योग, ना हये तबे वियोग,
वियोग हैले केह ना जीयय।'

चै॰च॰ (मध्य-लीला २.४३)

[यदि चित्त के साथ कृष्णप्रेम का संयोग होता है, तब उसका चित्त से वियोग नहीं होता। यदि उसका चित्त से वियोग हो तो जीवन नहीं रहता।]

अतएव जिस-जिस के प्राण दिखायी दे रहे हैं, उनका वियोग में भी प्राण धारण करना यह प्रमाणित करता है कि उनका भगवान् से कभी संयोग ही नहीं हुआ।"

रात्रि के प्रसाद के पश्चात् श्रील प्रभुपाद के आश्रित श्रील भक्तिविकास हृषीकेश गोस्वामी महाराज ने अपने गुरुभ्राताओं के समक्ष श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी पर अभियोग करते हुए कहा, "केशव प्रभु ने अपनी कथा में स्टेज के ऊपर बैठे हुए व्यक्तियों की भगवद्-प्राप्ति में संशय की बात कहकर अच्छा नहीं किया। कारण, अभी हम सभी शिष्य ग्रहण करते हैं, उन्हीं शिष्यों के समक्ष इस प्रकार के विचारों का परिवेशन उचित नहीं हुआ।"

श्रीपाद कृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, "आप सभी लोगों को कथा के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण करने में ही जितना समय लग जाता है, मात्र उतना ही समय मुझे सम्पूर्ण कथा कहने के लिये प्रदान किया गया, इसी के कारण ऐसा हुआ है। अभी तो मैंने अपने प्रसङ्ग का एक दृष्टिकोण ही प्रस्तुत किया था कि मुझे कथा समाप्ति हेतु करताल बजाकर इङ्गित दिया गया, जिससे मैं अपना सम्पूर्ण वक्तव्य रख ही नहीं पाया। यदि मुझे पुनः समय मिलेगा तो मैं अन्य दृष्टिकोण भी प्रस्तुतकर विषयवस्तु को स्पष्ट करूँगा।"

अगले दिन गुरु महाराज ने जब श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी को कथा परिवेशन करने के लिये कहा तब उन्होंने सर्वप्रथम एक कथा सुनायी, "एक समय एक पेंटर को किसी दीवार पर 'एखाने पेशाब करिबेन ना' लिखने के लिये कहा गया। अभी जब तक उसने 'एखाने पेशाब करिबेन' ही लिखा था तब तक सन्ध्या हो गयी और अन्धकार के कारण उसने लिखना बन्द कर दिया तथा अगले दिन प्रातः लोगों को स्वाभाविक रूप में प्रतीत हुआ कि यहाँ पर उन्हें पेशाब करने की अनुमति प्रदान की गयी है, अतएव उन सबने पेशाब करना

"भगवान् स्वयं अपने भक्तों के प्राणों की रक्षा करते हैं जिससे कि इस जगत् में भगवद्-सेवा में नियुक्त रह कर वे निरन्तर भगवान् को आनन्द प्रदान कर सकें।"

प्रारम्भ कर दिया। ऐसा देखकर मालिक ने पेंटर को डाँटना प्रारम्भ कर दिया। पेंटर ने मालिक से कहा, 'हुजूर! इसमें मेरा क्या दोष? सन्ध्या का दोष है जो लिखने के पूर्ण होने से पूर्व ही आकर उपस्थित हो गयी। जो हो, आप चिन्ता न करें, मैं अभी अन्तिम शब्द 'न' लिखकर अभिप्रेत विषय-वस्तु को पूर्ण कर देता हूँ।'

"उसी प्रकार मेरी कल की कथा में भी कुछ ऐसा ही हुआ है। जो हो, मैं आज अपनी शेष बात को पूर्ण करता हूँ। वह है कि स्टेज के ऊपर बैठे हुए भक्त धनी व्यक्ति की भाँति दीनता करते हुए 'मेरे पास धन नहीं है' अर्थात् न प्रेम गन्धोऽस्ति कहते हैं तब इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि उन्हें भगवद् प्रेम की प्राप्ति नहीं हुई है। दूसरी ओर, निर्धन जब कहता है 'मेरे पास धन नहीं है' तो उसकी उक्ति को केवल दीनता नहीं, बल्कि सत्य के रूप में ग्रहण करके उसकी सहायता का भरसक प्रयास करना चाहिये। स्टेज पर बैठे हुए व्यक्तियों का भगवान् से संयोग भी हुआ है तथा युगपत् भगवान् की अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से बाहरी रूप से वियोग में भी प्राणों को धारण किये हुए हैं। भगवान् स्वयं उनके प्राणों की रक्षा करते हैं जिससे कि इस जगत् में भगवद्-सेवा में नियुक्त रह कर वे भगवान् को निरन्तर आनन्द प्रदान कर सकें। यह सिद्धान्त कि 'प्राण धारण करना यह प्रमाणित करता है कि भगवान् से कभी संयोग ही नहीं हुआ' यह अनुभूति सम्पन्न महापुरुषों पर नहीं लगेगा, यह तो हम जैसे बद्ध-जीवों के लिये ही है जिनका वियोग में प्राणों को धारण करने से यही प्रमाणित होता है कि हमारा कभी संयोग हुआ ही नहीं था।"

शुद्ध भक्त पिता का परलोक गमन

मैंने १९५५ ई॰ में गुरुदेव का आश्रय ग्रहण करके श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में योगदान दिया। गुरु महाराज मुझे १९५६ ई॰ में श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा के उद्देश्य से व्रज में ले गये। वहीं मैंने श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी से सुना कि उनके पिता परलोक सिधार गये हैं तथा उनके भ्राता ने उसी के उपलक्ष्य में वैष्णव-सेवा के लिये पचास रुपये भेजे हैं। श्रीपाद कृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने उन पचास रुपयों की एक मन रबड़ी मँगाकर वितरण करायी थी।

उस दिन मैंने देखा कि ऐसे-ऐसे भक्त लोग जो किसी के परलोक सिधार जाने के उपलक्ष्य में कुछ देने पर नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं, उन्होंने भी अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक आग्रह के साथ उस रबड़ी को ग्रहण किया तथा कहा, "अवैष्णव के परलोक सिधारने पर उसके उपलक्ष्य में वितरित की गयी किसी वस्तु को ग्रहण करने से उसके पापों का भागीदार बनना पड़ता है किन्तु श्रीमन्महाप्रभु के श्रील हरिदास ठाकुर के निर्याण के उपलक्ष्य में किये गये महोत्सव के उपरान्त दिये गये वरदान के अनुसार किसी शुद्ध वैष्णव के परलोक सिधारने पर उसके उपलक्ष्य में वितरित किसी वस्तु को ग्रहण नहीं करने से दोष लगता है तथा आग्रहपूर्वक ग्रहण करने से भक्ति की वृद्धि होती है।"

श्रील प्रभुपाद के चरणाश्रित ब्रह्मचारी-संन्यासियों को मैंने जिस प्रकार अत्यधिक प्रेमपूर्वक रबड़ी प्रसाद पाते देखा, उससे यह सिद्ध होता है कि श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी के पूर्वाश्रम के पिता के प्रति उनमें एक शुद्ध भक्त के रूप में ख्याति थी।

मठवासी के संशयों का छेदन

जिस समय मेरे सतीर्थ श्रीभक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज ने अपने दो सहपाठियों के साथ श्रील गुरु महाराज का चरणाश्रय करके मठ में रहना प्रारम्भ किया था, उन दिनों श्रील भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज के मुख से उच्चारित स्वाभाविक वैष्णवोचित इन दीनतापूर्ण वचनों को उन्होंने श्रवण किया- "मेरा साधुसङ्ग, धाम-वास, नाम-सङ्कीर्त्तन, गुरु- पदाश्रय, प्रचार इत्यादि अनेक भक्ति-अनुकूल क्रियाएँ करने पर भी कुछ लाभ नहीं हुआ।"

पूज्यपाद तीर्थ महाराज (उस समय श्रीकृष्णवल्लभ ब्रह्मचारी) एवं उनके दो सहपाठी उक्त वचनों को श्रवण कर अत्यधिक निराश हो गये। तीनों ने परस्पर मठवास करने की आवश्यकता के विषय में विचार किया कि यदि श्रील भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज जैसे श्रेष्ठ वैष्णव का इतना सब कुछ भक्ति-अनुकूल क्रियाएँ करके, देश-विदेश में प्रचार करके, इतनी शक्ति व्यय करने के उपरान्त भी जब कुछ नहीं हुआ, तब फिर हमें वैसा करके बाद में पछताने की क्या आवश्यकता है? उनके दो हतोत्साहित सहपाठी तो अपना सामान लेकर मठ से चले गये किन्तु श्रीकृष्णवल्लभ ब्रह्मचारी ने यह विश्वास बनाए रखा कि श्रील वन गोस्वामी महाराज के वचनों का उनके द्वारा समझे गये दृष्टिकोण के अतिरिक्त कुछ अन्य दृष्टिकोण भी अवश्य ही है।

श्रील वन गोस्वामी महाराज द्वारा कही गयी बात का सामञ्जस्य करने हेतु श्रीकृष्णवल्लभ ब्रह्मचारी ने श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी से प्रार्थना की। तब श्रील कृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने कृपापूर्वक उन्हें बतलाया, "जिनके पास बहुत अधिक धन होता है, क्या वह उसकी घोषणा करते रहते हैं? अथवा किसी के पूछने पर या फिर किसी प्रसङ्गवशतः उसे बतलाने की अति आवश्यकता पड़ने पर भी उसे अधिक-से-अधिक गुप्त रखने का प्रयास करते हैं? इसी प्रकार वैष्णव जो प्रेम-धन के धनी हैं वे प्रायः अपने को भक्तिहीन बतलाकर अपने सौभाग्य को गुप्त रखते हैं। यदि श्रील वन गोस्वामी महाराज के द्वारा कही गयी बात वास्तव में सत्य होती तो क्या वे इतने भी बुद्धिमान नहीं हैं कि वे स्वयं सभी पारमार्थिक चेष्टाओं को

"वरिष्ठ वैष्णवों से वार्त्तालाप करके अपने संशय का निवारण करने की पद्धति पारमार्थिक राज्य में प्रवेश प्राप्त करने के लिये महाजनों के द्वारा सर्वथा अनुमोदित एवं निज-आचरित पद्धति है।"

त्यागकर अन्य किसी कार्य में ही अपनी ऊर्जा को लगाते?

"अभी तुम नये हो, जैसे-जैसे अधिकाधिक श्रेष्ठ वैष्णवों का सङ्ग करोगे, तुम्हें वैष्णव जगत् की भाव-धारा की अधिक-से-अधिक उपलब्धि होगी। अतएव क्रमशः उनके हृदय के भावों को जानने, समझने, अनुभव करने से ही श्रीमन्महाप्रभु द्वारा उच्चारित बहुत से शब्दों के यथार्थ रहस्य की उपलब्धि होगी, यथा-

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ
क्रन्दामि सौभाग्यभरं प्रकाशितुम्।
वंशीविलास्याननलोकनं विना
विभर्मि यत् प्राणपतङ्कान् वृथा॥

चै॰च॰ (मध्य-लीला २.४५)

[कृष्ण के प्रति मुझमें सामान्य प्रेम की गन्ध भी नहीं है। तब मैं जो क्रन्दन करता हूँ, वह मात्र अपने अधिक सौभाग्य को प्रकाशित करने के लिये। वंशी-वदन श्रीकृष्ण के दर्शन के बिना मैं जिस प्राण पतङ्ग को धारण करता हूँ, वह वृथा है।]

प्रभु कहेन, -"कृष्णकथा आमि नाहि जानि।
सबे रामानन्द जाने, ताँर मुखे शुनि॥

चै॰च॰ (अन्त्य-लीला ५.७)

[श्रीमन्महाप्रभु ने कहा, -"मैं कृष्णकथा के विषय में कुछ भी नहीं जानता हूँ, उसे एकमात्र रामानन्द राय ही जानता है, मैं स्वयं भी उसी के मुख से कृष्णकथा श्रवण करता हूँ।]

"आमि त' संन्यासी, आपनारे विरक्त करि' मानि।
दर्शन रहु दूरे, 'प्रकृतिर' नाम यदि शुनि॥
तबहिं विकार पाय मोर तनु-मन।
प्रकृतिर-दर्शने स्थिर हय कोन् जन?"

चै॰च॰ (अन्त्य-लीला ५.३५-३६)

["मैं तो संन्यासी हूँ एवं स्वयं को वैरागी मानता हूँ। दर्शन की तो बात ही दूर, स्त्री का नाम श्रवण करने के साथ-ही-साथ मेरा तन तथा मन विकृत हो जाता है। स्त्री के दर्शन से कौन-सा व्यक्ति स्थिर रह सकता है?"]

श्रीमन्महाप्रभु के नित्य परिकरों ने इसी रूप में अपनी दीनता प्रकाशित की है-

आधारोऽप्यपराधानामविवेक- हतोऽप्यहम्।
त्वत्कारुण्य- प्रतीक्ष्योऽस्मि प्रसीद मयि माधव॥

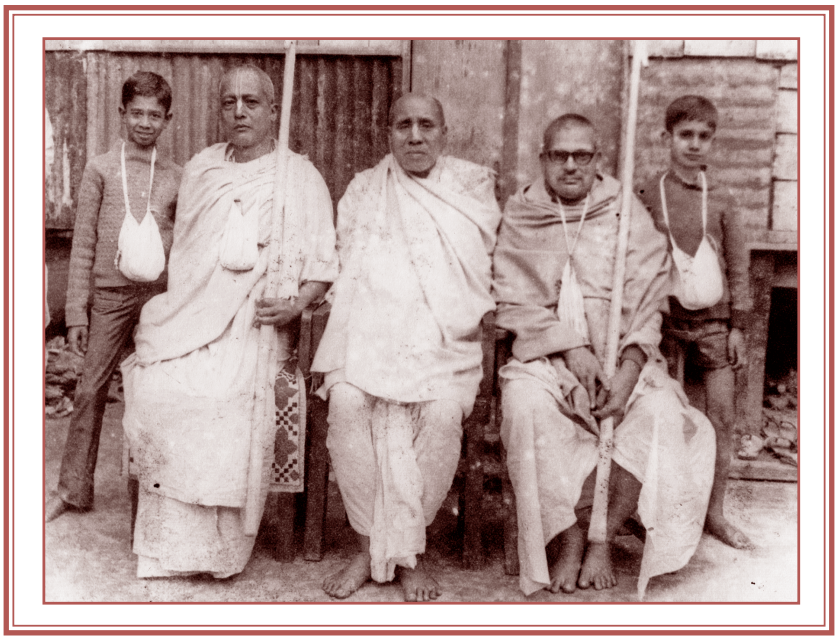
श्रीरूप गोस्वामी, स्तवमाला (१.१२.१४)

[यद्यपि मैं अपराधों की निधि स्वरूप हूँ तथा सही एवं गलत में अन्तर पहचानने के विवेक से भी रहित हूँ, तथापि आपकी कृपा की अपेक्षा करता हूँ। हे माधव! मुझ पर अपनी कृपा वर्षण करें।]

जगाइ माधाइ हैते मुञि से पापिष्ठ।
पुरीषेर कीट हैते मुञि से लघिष्ठ॥

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी,
चै॰च॰ (आदि-लीला ५.२०५)

[मैं जगाइ-माधाइ से भी बड़ा पापी हूँ। विष्ठा के कीड़े से भी अधिक नीच हूँ।]



"इसके अतिरिक्त, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है, 'तुमि त' ठाकुर, तोमार कुकुर, बलिया जानह मोरे अर्थात् आप मेरे स्वामी हैं, कृपया मुझे अपने कुत्ते के रूप में स्वीकार करें'। इसी प्रकार श्रील प्रभुपाद ने भी अपनी दीनता प्रकाशित की है। यद्यपि वह जगद्गुरु हैं तथापि उन्होंने अपने आश्रितजनों को उपलक्ष्य करके उन्हें 'विपद उद्धारक बन्धु अर्थात् विपद से उद्धार करने वाला बन्धु' कहकर सम्बोधित किया।"

श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने अपनी बात को शेष करते हुए कहा, "अतएव मेरा निवेदन है कि तुम अपने सहपाठियों की क्रिया का, उनके विचार का अनुकरण नहीं करके सदैव श्रेष्ठ वैष्णवों का अनुसरण करना। जिस प्रकार आज तुमने मुझसे वार्त्तालाप करके अपने संशय का निवारण करना अच्छा समझा, सदैव ऐसा करना ही पारमार्थिक राज्य में प्रवेश प्राप्त करने की महाजनों के द्वारा अनुमोदित पद्धति है।"

श्रीकृष्णवल्लभ ब्रह्मचारी ने श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी की बात को अत्यधिक आग्रह के साथ ग्रहण किया तथा सदैव उसका पालन किया। कथा-प्रसङ्ग में वे कभी-कभी इस घटना का उल्लेख करते हुए कहते थे, "मैं एकमात्र श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी की कृपा से ही मठ में रह गया, किन्तु जब मैंने अपने दोनों सहपाठियों को उनके विचारों से अवगत कराया, तब यद्यपि वे उससे सहमत तो हुए और बीच-बीच में मठ के उत्सवों में कोलकाता में आकर योगदान भी करते थे किन्तु उन्होंने पुनः मठ में पूर्ण रूप से योगदान नहीं दिया।"

मुझे स्मरण है कि पूज्यपाद तीर्थ महाराज के सहपाठियों में से एक ब्राह्मण शरीर तथा दूसरे श्रीकामाख्या सेन के कनिष्ठ पुत्र

थे। मुझे उन दोनों का नाम तथा परिचय भी ज्ञात था किन्तु अब उनके नाम मुझे स्मरण नहीं हैं।

आनुगत्य में रहने से सन्तुष्टि

जब गुरु महाराज प्रचार सेवा कार्य के लिये जाते थे तब किसी-किसी स्थान पर बहुत से कार्यक्रमों के होने के कारण प्रचार-पार्टी को अनेक भागों में विभाजित करके एक ही समय में सभी कार्यक्रम करने पड़ते थे। मैंने लक्ष्य किया कि श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी केवल गुरु महाराज के आनुगत्य में उनके साथ ही जाते, कभी भी अन्य किसी के साथ नहीं। वे कहते थे, "मैं श्रेष्ठ व्यक्ति के आनुगत्य में सदैव छोटा बनकर जीवन यापन करने को सौभाग्य मानता हूँ, उसी में ही मुझे आनन्द, तृप्ति तथा सन्तुष्टि की प्राप्ति होती है। मैं कभी भी ऐसे किसी स्थान पर नहीं जाना चाहता जहाँ पर मुझे बड़ा बनकर अन्यों को स्वयं से छोटा मानकर व्यवहार करना पड़े।"

श्रवण अर्थात् पालन करना

एक समय श्रीकृष्ण केशव प्रभु अपने ज्येष्ठ संन्यासी गुरुभ्राताओं के साथ किसी एक विश्वविद्यालय में प्रचार-सेवा कार्य हेतु गये। विश्वविद्यालय के सभी अत्यधिक विद्वान् प्रोफेसर तथा छात्र गौड़ीय मठ के प्रचारकों की कथा को श्रवण करने के लिये उपस्थित हुए। एक-एक करके जब संन्यासी लोगों ने कथा का परिवेशन किया, तब प्रोफेसर तथा छात्रों में से अनेक लोग पुनः-पुनः कहने लगे, "आप लोग तो सब प्राचीन बातें दोहरा रहे हैं। इन्हें हमने पूर्व में बहुत बार सुना हुआ है।" उनकी बात सुनकर भिन्न-भिन्न संन्यासियों ने उन्हें बहुत कुछ बतलाने तथा गौड़ीय मठ का वैशिष्ट्य समझाने का प्रयास किया किन्तु तब भी जब वे लोग यही दोहराते रहे, "इनके विचारों में कोई नयापन नहीं है, They are trying to serve old wine in new bottle. वे पुराने विचारों को ही नये रूप में प्रस्तुत मात्र कर रहे हैं।"

तब श्रीपाद कृष्ण केशव प्रभु ने गुरु महाराज से कहा, "मुझे थोड़ा-सा बोलने का अवसर दीजिए।" जब श्रील गुरु महाराज ने उन्हें बोलने का अवसर दिया तब उन्होंने खड़े होकर कहा, "मैं आप लोगों की भाँति कोई बहुत बड़ा विद्वान् नहीं हूँ, मैं जब सप्तम श्रेणी का छात्र था तभी गौड़ीय मठ में आ गया था तथा उसके पश्चात् मैंने लौकिक विद्या अर्जन करने का कोई प्रयास नहीं किया, पारमार्थिक शिक्षकों से मैंने जो सीखा है, मैं आज उसके आधार पर ही आप सबके समक्ष कुछ बोलूँगा, मेरे बोलने की पद्धति में कुछ कमी हो सकती है किन्तु यदि आप शान्तिपूर्वक कुछ सुनने का प्रयास करेंगे तो एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बात को धारण कर पायेंगे।

"मेरे जयेष्ठ गुरुभ्राताओं ने आपके समक्ष जिन विचारों का परिवेशन किया है, आप लोगों ने ही कहा है कि आप सब उन्हें जानते हैं, समझते हैं तथा अधिकांश बातें आपको कण्ठस्थ भी हैं। आप लोगों में से कितने ही लोगों ने हमसे प्रश्न किये हैं किन्तु अब मेरी प्रार्थना है कि आप सभी

लोग स्वयं से प्रश्न कीजिए कि क्या आप उन वचनों के अनुसार अपना जीवन-यापन करते हैं? यदि हाँ तब तो बहुत अच्छा अन्यथा आपको उन्हें जानने, समझने तथा कण्ठस्थ करने पर भी वैसे ही लाभ नहीं होगा जैसे चिकित्सक के द्वारा लिखे गये औषधि सम्बन्धी निर्देश को विद्वान् होने के कारण पढ़ लेने, समझ लेने अथवा कण्ठस्थ कर लेने पर भी रोग दूर नहीं होता, बल्कि निरक्षर होने, पढ़ने-समझने अथवा कण्ठस्थ करने में सम्पूर्णतः असमर्थ होने पर भी यदि किसी अन्य बुद्धिमान, पढ़े-लिखे व्यक्ति को औषधि सम्बन्धी निर्देश दिखाकर औषधि ग्रहण कर ली जाये, तभी रोग दूर हो सकता है। गौड़ीय मठ का यही वैशिष्ट्य है कि वह स्वयं आचरण करते हुए प्रचार करता है कि 'उठो रे, उठो रे भाई, आर त' समय नाइ अर्थात् उठो भाई उठो, अब समय नहीं है' केवल मात्र जानने से नहीं होगा, पालन करना पड़ेगा।"

श्रीपाद कृष्ण केशव प्रभु की बात सुनकर अनेक प्रोफेसरों ने कहा, "आपने सत्य ही कहा है, आजकल के समाज की यही वास्तविक समस्या है कि वह जानता बहुत कुछ है किन्तु पालन बहुत कम करता है।"

साधारण व्याख्या का असाधारण प्रभाव

जब गुरु महाराज गुवाहाटी, आसाम में प्रचार करने के लिए गए तो अन्य अनेक भक्तों के साथ वहाँ की भाषा को जानने वाले, श्रील प्रभुपाद के आश्रित श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी तथा मेरे गुरुभ्राता श्रीचिन्ताहरण पाटगिरी भी उनके साथ थे। श्रीकृष्ण केशव प्रभु तथा श्रीचिन्ताहरण पाटगिरी, गुरु महाराज के निर्देशानुसार आसाम के तत्कालीन मुख्यमन्त्री देशप्रिय श्रीगोपीनाथ बड़दोलोई को गुरु महाराज द्वारा किए जाने वाले श्रीमद्भागवत पाठ के कार्यक्रम में आमन्त्रित करने हेतु गए थे।

उन्हें अपने निकट आया देखकर श्रीबड़दोलोई ने सर्वप्रथम उनका एवं उनकी संस्था का परिचय पूछा और उनके आने का कारण जानने की इच्छा की। तत्पश्चात् उनके समक्ष एक प्रश्न रखते हुए कहा, "आप दोनों ने आसामवासी होने पर भी आसाम में भागवत धर्म के प्रचारक श्रीशङ्कर देव, श्रीदामोदर देव आदि की विचारधारा को नहीं ग्रहण करके बङ्गाल के श्रीचैतन्य देव की धर्मनीति को ही क्यों स्वीकार किया है?"

श्रीचिन्ताहरण पाटगिरी के द्वारा श्रीकृष्ण केशव प्रभु को उत्तर देने हेतु अनुरोध करने पर उन्होंने कहा, "बड़दोलोई साहब, उत्तर देने से पहले क्या मैं एक बात पूछ सकता हूँ? आप भी तो आसाम के होने के साथ-साथ ब्राह्मण की सन्तान हैं, तब भी आपने इंग्लैंड के ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में जाकर उन अँग्रेजों को गुरु के रूप में वरण करके उनसे ही शिक्षा प्राप्त करना क्यों उचित समझा, जिन्हें पैखाना करने के बाद धोना तक भी नहीं आता, जो इसके लिये कागज का उपयोग करते हैं, जिन्हें यहाँ तक भी नहीं पता कि हाथ भी धोना चाहिये? उनके अन्य सदाचार के विषय में तो फिर क्या कहना?

"दूसरी ओर, नवद्वीप को तो भारत का ऑक्सफोर्ड ही कहा जाता है तथा हमारे आसाम के भी अनेक विद्वान् एवं विशिष्ट व्यक्ति वहाँ से शिक्षा प्राप्त करते ही रहे हैं। तो फिर हमने क्या दोष कर दिया?"

श्रीकृष्ण केशव प्रभु की बात सुनकर श्रीगोपीनाथ बड़दोलोई ने कोई भी उत्तर नहीं दिया, मौन रह गए। श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी और श्रीचिन्ताहरण पाटगिरी उनके वासस्थान से चल दिए। आश्चर्य की बात, उनके गुरु महाराज के निकट पहुँचने से पहले ही श्रीगोपीनाथ बड़दोलोई गुरु महाराज के निकट पहुँच गए। कारण, वे अपनी कार से तथा भक्त लोग रिक्शे से आए थे।

इस उपाख्यान से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी की साधारण युक्तियों ने श्रीगोपीनाथ बड़दोलोई को ही नहीं अपितु जगत् के अनेक व्यक्तियों को प्रभावित किया।

उनकी भगिनी की दृढ़ता

एक समय श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी गुरु महाराज को प्रचार पार्टी सहित अपनी भगिनी श्रीसहेश्वरी देवी के घर सारभोग, आसाम में प्रचार के उद्देश्य से लेकर गये। उस समय सारभोग के लोग गौड़ीय मठ के साथ मित्रवत् नहीं थे। कारण, गौड़ीय मठ के किसी नूतन, अनभिज्ञ सेवक ने सारभोग मठ की भूमि दान करने वाले श्रीऐराम पाठक को सिर पर हथोड़ी मारकर मार डाला था।

जब गाँव के लोगों को पता चला कि गौड़ीय मठ के संन्यासी-ब्रह्मचारी यहाँ पर प्रचार करने के लिये आये हैं, तब उन्होंने विरोध करना प्रारम्भ किया तथा कहा, "हम इन लोगों को यहाँ पर प्रचार नहीं करने देंगे, इन्हें सहज रूप में ग्राम में नहीं रहने देंगे।"

जब यह बात श्रीसहेश्वरी देवी को पता चली तब उन्होंने गाँव के लोगों से कहा, "क्या किसी एक अनैतिक सदस्य के गलत कार्य करने पर सम्पूर्ण गौड़ीय मठ के भक्त लोग खराब हो गये? कितने दुर्भाग्य का विषय है कि हम किसी साधु के घर पर आने से उन्हें यहाँ से जाने के लिये कहें? क्या हम लोगों ने अपने माता-पिता से यही सीखा है? आप लोग पहले इन साधुओं का सङ्ग करो, कथा-कीर्त्तन सुनो, वार्त्तालाप करो, तब कुछ कहना हो तो कहना अन्यथा मैं किसी की बात नहीं सुनने वाली। हम लोगों से आप सम्बन्ध रखेंगे तो बहुत अच्छा। यदि नहीं तो भी मैं उसके लिये बहुत अधिक चिन्तित नहीं हूँ।"

उनकी बात सुनकर लोग तो चुप हो गये किन्तु गुरु महाराज ने श्रीसहेश्वरी देवी से कहा, "हम लोग तो पक्षी की भाँति हैं, यहाँ नहीं तो कहीं और घोंसला बना लेंगे किन्तु तुम्हें तो यहीं रहना है अतएव आस-पास के लोगों से बनाकर रखना ही अच्छा है।"

जब श्रीसहेश्वरी देवी ने गुरु महाराज के मुख से इन शब्दों- 'हम आसानी से किसी अन्य स्थान पर चले जायेंगे'- को सुना, वह जोर-जोर से क्रन्दन करने लगी एवं उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा की, "आप यदि यहाँ से जायेंगे तो मैं उपवास करके अपने

प्राण-त्याग दूँगी।"

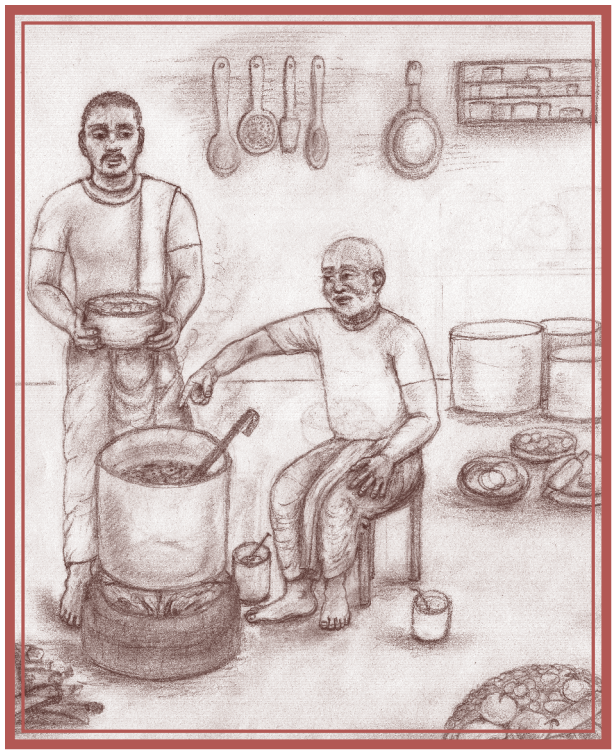
उनकी बात सुनकर श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने गुरु महाराज से कहा, "महाराज, यह केशव की भगिनी तथा उसके पिता की पुत्री है। आपको इसकी दृढ़ता पर विश्वास करके यहीं पर कुछ दिनों के लिये कथा-कीर्त्तन करना ही पड़ेगा।"

गुरु महाराज ने श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी की बात मानकर कुछ दिनों तक वहीं कथा-कीर्त्तन किया। आश्चर्य की बात श्रीकमलाकान्त नामक वह व्यक्ति जिसने सबसे पहले विरोध करना प्रारम्भ किया था वही अपनी दो पत्नियों के साथ गुरु महाराज का शिष्य बना।

श्रील प्रभुपाद की अप्रकट लीला के पश्चात् सारभोग श्रीगौड़ीय मठ की परिचालन-व्यवस्था के परिवर्त्तित होने तथा वहाँ पर रहने की असुविधा के कारण गुरु महाराज बहुत बार श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी के पूर्वाश्रम में ही प्रचार पार्टी के साथ रहा करते थे। श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी की भक्तिमती सेवा-परायणा माता ही सभी भक्तों के लिये अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक प्रसाद की अति सुन्दर व्यवस्था करती थी।

प्रसन्नता एवं पुष्टिवर्धन - सेवा के दो दृष्टिकोण

एक समय मैंने श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी के आनुगत्य में श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा अनुष्ठित कालना स्थित श्रीअनन्त वासुदेव मन्दिर में रन्धन-सेवा कार्य किया था। किसी एक सब्जी में मैंने नमक डाला है अथवा नहीं, इसे भूल



जाने पर मैंने अपनी दुविधा जब श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी को बतलायी तब उन्होंने मुझसे कहा, "मैं सब्जी से उठते हुए धुएँ अर्थात् भाप को देखकर ही बता सकता हूँ कि सब्जी में नमक डाला गया है या नहीं।" सचमुच में ही उन्होंने भाप को दूर से देखकर ही बता दिया, "नहीं, तुमने अभी तक नमक नहीं डाला है।"

साथ-ही-साथ उन्होंने मुझे रन्धन के विषय में बताया, "यदि कभी हल्दी अधिक पड़ जाये तो कुमड़े अथवा लौकी के पत्तों को सब्जी में डालने से वे हल्दी को सोख लेते हैं, नमक के अधिक डल जाने पर आटे की गोली बनाकर उसमें डालने से वह नमक को सोख लेती है।" उन्होंने मुझे रन्धन के विषय में बहुत-सी महत्वपूर्ण

बातें बतायी जैसे कि जब अधिक मात्रा में रन्धन करना हो तो उसे बहुत कम समय में कैसे किया जा सकता है इत्यादि-इत्यादि।

वार्त्तालाप के समय उन्होंने कहा, "वास्तव में रन्धन की सेवा श्रीमती राधारानी की है, वे श्रीकृष्ण के लिये सदैव नित्य-नवीन व्यञ्जन प्रस्तुत करती हैं। यद्यपि उन्हें श्रीदुर्वासा ऋषि ने वर प्रदान किया था कि उनके द्वारा बनायी गयी प्रत्येक वस्तु अमृत तुल्य होगी तब भी वे जब जिस सेवा को करती हैं, उसमें अपने चित्त को सम्पूर्ण रूप से आविष्ट कर देती हैं तथा 'आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम्' अर्थात् केवल वस्तु को स्वादिष्ट बनाने पर नहीं बल्कि कृष्ण के लिये पुष्टिकारक होने का विचार करके ही करती हैं। श्रीराघव पण्डित की भगिनी श्रीदमयन्ती भी इसी विचार से श्रीमन्महाप्रभु के लिये अम्लता अथवा पेट-दर्द आदि हो जाने की आशंका से औषधि आदि अनेक वस्तुएँ बनाकर पुरी में भेजती थीं।

"हमारी बद्ध अवस्था में, हमें तो श्रीकृष्ण अथवा श्रीमन्महाप्रभु के स्वाद तथा उनके लिये क्या पुष्टिकारक है, इसका नहीं पता किन्तु वैष्णवों के मुख से श्रवण किया है कि भगवान् अपने भक्तों के मुख से भोजन सामग्री ग्रहण करते हैं। इसी विचार को मन में रखकर हमें भी उन्हीं का अनुसरण करते हुये भक्तों के लिये क्या और कैसी वस्तु लाभकारी है, उसको ही अत्यन्त सावधानीपूर्वक बनाना चाहिये।"

"भगवान् अपने भक्तों के मुख से भोजन सामग्री ग्रहण करते हैं।"

अन्यों के कल्याण की चिन्ता

एक समय ऐसे एक व्यक्ति जिसे श्रीपाद केशव प्रभु स्वयं मठ में लाये थे, उसने उनके द्वारा कुछ शासन करने पर उनसे कहा, "यदि आपकी वृद्धावस्था न होती तो मैं आपका हाथ पकड़कर आपको मठ से बाहर निकाल देता।" उसकी बात सुनकर श्रीपाद केशव प्रभु ने उसका कोई प्रतिवाद नहीं किया।

जब मैंने उनसे इस विषय में पुनः-पुनः जोर देकर पूछा, तब उन्होंने मुझसे कहा, "पहले के युग और आज के युग में आकाश-पाताल का अन्तर है। पहले किसी का थोड़ा सा उपकार करने पर भी वह सदैव कृतज्ञ रहता था और अब किसी के लिये बहुत कुछ करने पर भी वह लेशमात्र भी कृतज्ञ होने की बात तो दूर, अपनी अन्याभिलाष, प्रतिष्ठाशा की आपूर्त्ति हेतु मिथ्या दोषारोपण करने तथा झगड़ा करने में भी लज्जित अनुभव नहीं करता। पहले मठवासी भक्त अन्य लोगों को मठवासी बनाकर प्रसन्न होते थे और आजकल कितना अधिक परिश्रम तथा कष्ट करके किसी के द्वारा नये व्यक्ति को मठ में लाने पर उसे तो ठीक से रखने की बात ही क्या, प्राचीन वैष्णवों को भी विदायी देना चाहते हैं।

"मुझे अपनी अवस्था देखकर प्राचीन एक कहानी स्मरण आती है,



एक समय एक व्यक्ति ने कुण्ड के जल को परिष्कृत रखने के लिये उसमें कछुए के अण्डे को डाला, क्योंकि कछुआ जल को दूषित करने वाले कई तत्वों को खाकर जल को स्वच्छ रखने में सहायता करता है, किन्तु जब उस अण्डे में से प्राणी निकला तो पता चला कि भूल से कछुए के अण्डे के स्थान पर मगरमच्छ का अण्डा पड़ गया था तथा अब वह अण्डे डालने वाले को ही खाना चाहता है।"

उनकी बात सुनकर मैंने कहा, "प्रभु! आपने श्रील प्रभुपाद की सेवा की है, आपने गुरु महाराज की बहुत सेवा की है, आपको कभी कोई असुविधा हो ही नहीं सकती। जगत् के लोगों को साधारण सरकार की नौकरी करने पर भी अवकाश के समय पेंशन की प्राप्ति होती है तब फिर सबसे बड़ी सरकार भगवान् की सेवा करने वाले को क्या पेंशन की प्राप्ति नहीं होगी? इस जगत् में तो पेंशन लेने के लिये जाना पड़ता है तथा अपने जीवित होने के प्रमाण स्वरूप बैंक में अपना मुख भी दिखलाना पड़ता है किन्तु भगवान् के भक्त को पेंशन बिना किसी स्थान पर गये स्वतः ही प्राप्त हो जाती है। आपने अपने पास आज तक धन का संग्रह नहीं किया, निष्किञ्चन वैष्णव बनकर ही सम्पूर्ण जीवन यापन किया है। देश-विदेश के भक्त लोग, जिन्होंने आपको कभी देखा नहीं, आपके मुख से एक वचन को भी नहीं सुना वे लोग भी 'प्रभुपाद के रसोइया जययुक्त हों' कहते हुए आपका सन्धान प्राप्त करके आपकी सेवा हेतु प्रणामी दे जाते हैं, अतएव किसी के कुछ कहने पर चिन्ता का क्या प्रयोजन?"

तब उन्होंने मुझसे कहा, "यह सब तो मैं भली-भाँति जानता हूँ, अपने विषय में मैं कोई चिन्ता नहीं करता, मेरी चिन्ता तो केवल ऐसे लोगों के लिये है कि यदि ये साधुसङ्ग में रहकर भी उसका वास्तविक लाभ नहीं उठायेंगे, 'अपने द्वारा किये गये कृत्य का फल इन्हें स्वयं ही भोगना पड़ेगा' यदि इस बात पर ध्यान नहीं देंगे तो फिर कब और कहाँ जाने से इनकी चित्तवृत्ति परिवर्त्तित होगी। जो हो, भगवान् सबका मङ्गल करें, श्रील प्रभुपाद हम सब पर शुभ दृष्टि करें, यही प्रार्थना है।"

कपटता से सुदूर रहना

श्रीपाद कृष्ण केशव ब्रह्मचारी से अनेक बार उनके विभिन्न गुरुभ्राता संन्यास धारण करने के लिये कहते, किन्तु वे सदैव शास्त्र की एक बात कहते, "केवल बाह्य रूप से

किसी से दीक्षा-शिक्षा ग्रहण करना अथवा संन्यास-गुरु के रूप में वरण करना कपटता की श्रेणी में आता है। संन्यासी शिष्य को भी अपने संन्यास-गुरु के निर्देश, शासन को अत्यधिक प्रसन्नता, उत्कण्ठा तथा उसे अपना परम सौभाग्य मानते हुए स्वीकार करने के लिये प्रस्तुत रहना चाहिये। दीक्षा-गुरु और शिक्षा-गुरु को एक समान अथवा एक स्तर का नहीं मानने पर अपराध होता है। मेरे दीक्षा-गुरु श्रील प्रभुपाद हैं तथा मैं उनके साथ अपने हृदय रूपी आसन पर अन्य किसी को नहीं बैठा सकता। श्रील प्रभुपाद ने अपने उपदेश में कहा है कि पशु, पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि लक्ष-लक्ष योनियों में रहना अच्छा है, किन्तु कपटता का आश्रय करना उचित नहीं, तो मैं किस प्रकार संन्यास ग्रहण कर लूँ जब कि मैं अपना हृदय श्रील प्रभुपाद के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं दे सकता।

"श्रील प्रभुपाद ने यह शिक्षा भी प्रदान की है कि परमहंस वैष्णवों के दास सरल होते हैं। अतएव मेरी सभी से प्रार्थना है कि मुझे सरल बनकर जीवन यापन करने में उत्साहित करें, सहायता करें, जिससे कि मैं इस जन्म में श्रील प्रभुपाद का वास्तविक शिष्य बनकर सन्तुष्ट हो पाऊँ, यही मेरे लिये यथेष्ठ है, यही आप सभी की मेरे प्रति यथार्थ कृपा का निदर्शन होगा।"

गुरुभ्राता एवं गुरु-भगिनी की जप-मालाओं का संरक्षण

श्रीपाद कृष्ण केशव ब्रह्मचारी अपने किसी निष्ठावान् गुरुभ्राता अथवा गुरु-भगिनी के अप्रकट होने पर श्रील प्रभुपाद द्वारा उन्हें दी गयी जप-माला का संग्रह करके उसे यत्नपूर्वक रखते थे। जब किसी गुरुभ्राता की माला खो जाती तो वे उन्हें रखी हुई जप-मालाओं में से एक माला दे देते। जब श्रील प्रभुपाद की आविर्भाव-स्थली पर बना मन्दिर सम्पूर्ण हो गया तब श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने श्रील प्रभुपाद द्वारा जपी गयी एक माला मन्दिर बनाने में अर्थ का सहयोग करने वाले श्रीबनवारी लाल सिंहानिया को प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद-स्वरूप प्रदान की थी।

भगवान् तथा भक्तों की प्रसन्नता के लिये ग्रन्थ पाठ

श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी बङ्गला भाषा में अनुवादित बहुत से ग्रन्थों का पाठ करते थे। मैंने लक्ष्य किया कि उनकी बङ्गला भाषा में उपलब्ध पुराणों को पढ़ने में अधिक रुचि थी। रात्रि के समय कक्ष में सो रहे अन्य भक्तों को उनके पढ़ने के कारण बल्ब जलाने से कोई असुविधा न हो, इसलिये मोमबत्ती जलाकर ही ग्रन्थ पाठ करते थे।



"मेरे ग्रन्थ पाठ करने का एकमात्र उद्देश्य भगवान् तथा भक्तों की प्रसन्नता है।"



वे कहते थे, "मेरे ग्रन्थ पाठ करने का उद्देश्य भगवान् तथा भक्तों की प्रसन्नता है। यदि मेरे पढ़ने हेतु बल्ब जलाने से भगवान् के किसी भक्त को असुविधा हुयी तो फिर मेरे ग्रन्थ पाठ का क्या लाभ होगा?"

समय नष्ट करना सेवा के सुयोग को नष्ट करना है

एक समय श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी के पास एक व्यक्ति आया तथा कहने लगा, "आज हमारे ग्राम का एक व्यक्ति जो दस वर्ष तक हिमालय में वास करके जल पर चलने की सिद्धि प्राप्त करके आया है, वह जल पर चलकर दिखायेगा। आप भी यदि चलकर उसे देखने की इच्छा करें तो मैं आपके जाने की सब व्यवस्था कर दूँगा।"

श्रीपाद कृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने कहा, "मैं कोई मूर्ख नहीं हूँ जो अपने अमूल्य समय को एक ऐसे पागल व्यक्ति को देखने जाकर लगाऊँ जो अपने दस वर्षों को नष्ट करके केवल उस जल पर चलने में सिद्धि प्राप्त करके आया है, जिसे नौका द्वारा थोड़े से पैसे देकर ही पार किया जा सकता है। आजकल विमान, जल-जहाज आदि जैसे अनेक साधन विकसित हो गये हैं, जिसमें अपने पाँच-दस दिन अथवा अधिक-से-अधिक एक मास की कमाई से दूर-से-दूर देश में भी पहुँचा जा सकता है, तब फिर दस वर्ष व्यर्थ करके केवल इतनी नगण्य वस्तु में सिद्धि प्राप्त करने का लाभ केवल मात्र जड़ीय प्रतिष्ठा ही है अन्य कुछ नहीं। अतएव बुद्धिमान व्यक्ति की भाँति अपने समय की वास्तविक महत्ता को पहचान कर उसे जगत् के किसी धन, सम्पत्ति, विद्या, साधन के द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकने वाली वस्तु को प्राप्त करने में नियुक्त करना ही समय का सदुपयोग है, बुद्धिमान व्यक्ति जड़ीय प्रतिष्ठा के लिये प्रयास कभी नहीं करता।"

आन्तरिक सार का बाह्य क्रियाओं से अधिक मूल्य

एक समय किसी एक भक्त ने श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी से प्रार्थना करते हुए कहा, "प्रभु, मैं बहुत दिनों से गायत्री-मन्त्र आदि का जप नहीं करता हूँ। मैंने सुना है कि यदि तीन दिन से अधिक कोई गायत्री-मन्त्र का जप नहीं करता तो उसके गायत्री मन्त्रों में कोई शक्ति नहीं रहती। मैं अपने दीक्षा-गुरु से पुनः मन्त्र श्रवण करने में असमर्थ हूँ क्योंकि वह भी नित्यलीला में प्रविष्ट हो गये हैं। अतएव आप कृपा करके मुझे गायत्री-मन्त्र प्रदान कर दीजिए।"

तब श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने उनसे पूछा, "क्या आपको आपके गुरुदेव के द्वारा प्रदत्त मन्त्र स्मरण हैं या फिर नहीं?"

उन्होंने उत्तर दिया, "मुझे सभी मन्त्र स्मरण हैं।"

श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने कहा, "तब फिर तुम्हें पुनः किसी से भी मन्त्र को श्रवण करने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि गुरुदेव द्वारा प्रदत्त गायत्री-मन्त्रों को जप नहीं करने से प्रत्यावाय अथवा गुरु अवज्ञा रूपी दोष लगता है तथापि अब आप पुनः पुनः गुरुदेव के चरणकमलों में क्षमा-प्रार्थना करते हुए यथाविधि मन्त्रों का जप करना

प्रारम्भ कर दीजिए। उनकी कृपा से सब ठीक हो जायेगा।"

उस भक्त ने पुनः कहा, "मैंने किसी से श्रवण किया है कि मुझे अन्ततः अपना उपवीत परिवर्त्तित करके मन्त्र का पुनः जप करना प्रारम्भ करना चाहिये। क्या यह सत्य है?"

श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, "यदि ऐसी ही बात है तब फिर स्त्रियाँ जिन्हें कभी उपवीत दिया ही नहीं जाता, उनका क्या कर्त्तव्य निर्धारित होगा। तुम केवल मात्र बाहरी क्रियाओं के प्रति अपनी ऊर्जा को नहीं लगाकर यथार्थ तथ्य में प्रवेश करने का प्रयास करो। किसी एक स्थान हेतु यात्रा करते समय जैसे टिकट को सम्भालकर रखना ही मुख्य बात होती है। अनेक स्टेशनों, अनेक यात्रियों, अनेक टिकट-परीक्षकों के परिवर्त्तित होने पर भी जैसे उस यात्री को कोई असुविधा नहीं होती, उसी प्रकार गोलोक वृन्दावन को जाने वाले टिकट स्वरूप महामन्त्र को तथा कुछ सीमा तक उसकी सहायता करने वाले गायत्री-मन्त्रों को सम्भालकर रखने अर्थात् उनका सम्पूर्ण रूप से आश्रय लेने, उन पर सम्पूर्णतः निर्भर रहने से कभी कोई बाधा नहीं आयेगी।"

अप्राकृत लिपिक

श्रीपाद कृष्ण केशव प्रभु अपने जीवन के लगभग अन्तिम दस वर्ष श्रीजगन्नाथ पुरी में रहे। मैं जब-जब पुरी आता, तब वे अपने सन्दूक को खोलकर मेरे सामने रख देते तथा कहते, "गिनो, कितने पैसे हैं?" मैं जब पैसे गिनकर बताता, तब वे प्रायः मुझसे कहते, "मठवासियों को तो जगन्नाथ-प्रसाद देना ही देना है, उनके अतिरिक्त इस पैसे में जितने अधिक मन्दिर के पण्डों को प्रसाद दिया जा सके, उतने पण्डों को बुलाकर जगन्नाथ-प्रसाद वितरण करने की व्यवस्था करा दो।"

मैं उन्हें प्राप्त प्रणामी के अनुसार जगन्नाथ-प्रसाद तथा पण्डों को निमन्त्रण करके जब उन्हें प्रसाद देता तो श्रीपाद कृष्ण केशव प्रभु देख कर बहुत प्रसन्न होते तथा कहते, "भकत सेवा, परम सिद्धि, प्रेम लतिकार मूल अर्थात् भक्तों की सेवा ही परम सिद्धि है एवं प्रेम लता का मूल है।"

साथ ही बोलते, "जो भक्त लोग मुझे कुछ देकर जाते हैं वे वैष्णव-सेवा के उद्देश्य से देकर जाते हैं, उनके द्वारा प्रदत्त प्रणामी के सेवा में लगने पर मुझे अनुभव होता है कि भगवद् प्रेरणा से मुझ पर जो दायित्व आया था मैं उसे सुष्ठु रूप से निभा पाने से भगवान् की कृपा का पात्र बनूँगा तथा जिन्होंने मुझे कुछ दिया था, इससे उनका भी मङ्गल होगा। मैं बैंक में गणक (teller) का अथवा रेलवे में पूछताछ विभाग में लिपिक (clerk) का कार्य करने वाले व्यक्ति के समान हूँ जो लोगों के धन के साथ व्यवहार तो करता है किन्तु लोगों से प्रत्यक्ष रूप से उसे कुछ नहीं मिलता अपितु उसे बैंक अथवा रेलवे प्रबन्धन की ओर से बैंक में पैसा जमा करने एवं निकालने तथा रेल की समय सारिणी के विषय में लोगों को जानकारी देकर, अपना दायित्व निभाने पर वेतन मिलता है।

अप्रकट लीला के लिये तैयारी

श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी अपनी अप्रकट-लीला से लगभग एक वर्ष पूर्व से पुनः पुनः श्रीमद्भागवतम् के तथा सम्राट कुलशेखर द्वारा रचित मुकुन्द-माला-स्तोत्र के निम्नलिखित श्लोकों का सदैव उच्च स्वर से उच्चारण करते रहते थे-

लब्ध्वा सुदुर्ल्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावत् निःश्रेयसाय
विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥

श्रीमद्भागवतम् (११.९.२९)

[यह मानव जन्म अनेक जन्मों के पश्चात् प्राप्त हुआ है, अतः यह सुदुर्लभ है। यह जन्म अनित्य होने पर भी परमार्थप्रद है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति मृत्यु से पूर्व ही क्षणमात्र का भी विलम्ब किए बिना चरम कल्याण के लिए चेष्टा करें।]

कृष्ण त्वदीय पदपंकज पञ्जरान्तम्
अद्यैव मे विशतु मानस-राजहंस।
प्राण प्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥

मुकुन्दमाला-स्त्रोत (३३)

[हे कृष्ण! मेरा मन रूपी राजहंस आज ही आपके चरणकमलों रूपी पिञ्जरे में आबद्ध हो जाए क्योंकि मृत्यु के समय वात-पित्त-कफ द्वारा अवरुद्ध कण्ठ से मैं आपके पवित्र नाम का उच्चारण अथवा स्मरण किस प्रकार कर पाऊँगा!]

वास्तविक आचार्य

श्रीकृष्ण केशव ब्रह्मचारी का जीवन इतना सरल, निष्किञ्चन था कि जब उन्होंने अप्रकट लीला की तो उनके एकमात्र सन्दूक में से कुछेक ग्रन्थ, दो जोड़ी कपड़े तथा अत्यधिक नगण्य धनराशि प्राप्त हुई थी। यद्यपि उन्होंने बाहरी रूप में मन्त्र दीक्षा आदि प्रदान करने वाले आचार्य का कार्य नहीं किया था तथापि शास्त्र के निम्नलिखित श्लोकानुसार स्वयं आचरण करते हुए अनेकों भक्तों को उसमें प्रतिष्ठित किया था।

आचिनोति यः शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन कीर्त्तितः॥

वायु पुराण

[जो शास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों को उपयुक्त रूप में संग्रहकर स्वयं उसका आचरण करते हैं एवं दूसरों को भी उसमें प्रतिष्ठित कराते हैं- ऐसे आचारवान् एवं तत्वविद् पुरुष 'आचार्य' कहलाते हैं।]

यद्यपि उन्होंने स्वयं अपने लिये कुछ संग्रह नहीं किया तथापि उनकी सेवा के लिये कभी किसी वस्तु का कोई अभाव नहीं हुआ। उनके द्वारा योगिनी एकादशी तिथि में अप्रकट-लीला प्रकाशित करने पर बहुत से भक्तों ने उनके विरह-महोत्सव के लिये मुझे अर्थ प्रदान किया तथा जिस प्रकार वे मठवासी भक्तों तथा पण्डों को जगन्नाथ देव का प्रसाद देकर तृप्त होते थे, उनके विरह-महोत्सव पर भी मैंने श्रीजगन्नाथ पुरी स्थित समस्त गौड़ीय मठ के भक्तों तथा अनेक पण्डों को बुलाकर जगन्नाथ प्रसाद ही वितरण कराया था।

श्रीजगद्–बन्धु भक्तिरञ्जन



न चोर न दाता

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद के चरणाश्रित 'श्रेष्ठआर्य' श्रीजगद्–बन्धु भक्तिरञ्जन ने कोलकाता स्थित श्रीबागबाजार गौड़ीय मठ के निर्माण कार्य का सम्पूर्ण खर्च जिस में समस्त भूखण्ड तथा मन्दिर गर्भगृह, नाट्य–मन्दिर तथा श्रील प्रभुपाद एवं उनके भक्तों के लिये कक्षों का निर्माण सम्मिलित था, वहन किया था। मठ का निर्माण कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् श्रीविग्रहों को श्रील प्रभुपाद के १, उल्टाडाङ्गा रोड स्थित किराये के घर से भव्य शोभायात्रा के साथ रथ पर आरूढ़ कर मठ में लाया गया। मठ–उद्घाटन के उपलक्ष्य में एक मास–व्यापी हरि–कथा एवं कीर्त्तन का उत्सव आयोजित किया गया जिसका सम्पूर्ण व्यय भी श्रीजगद्–बन्धु प्रभु ने ही वहन किया था। प्रत्येक सन्ध्या को होने वाली सभा में विशिष्ट व्यक्तियों को वक्तृता के लिये निमन्त्रित किया जाता था।

एक दिन सभा में वक्तृता प्रदान करते हुए एक न्यायाधीश ने यह उल्लेख किया, "श्रीजगद्–बन्धु एक उदार दाता हैं।" जागतिक दृष्टि से नितान्त अशिक्षित और निरक्षर श्रीजगद्–बन्धु प्रभु ने, जिन्होंने इससे पूर्व किसी भी सभा को सम्बोधित नहीं किया था और जिनका उस दिन ऐसा करने का कोई पूर्व विचार भी नहीं था, सभा के सभापति श्रील प्रभुपाद से कुछ कहने की अनुमति माँगी। श्रील प्रभुपाद की स्वीकृति के उपरान्त, श्रीजगद्–बन्धु प्रभु ने कहा, "माननीय न्यायाधीश महोदय निःसन्देह असत्य बात नहीं कह सकते, तथापि उन्होंने मेरे विषय में जो कहा, वह अनुचित और असङ्गत है। मैं मात्र यही अनुमान कर सकता हूँ कि मेरी प्रशंसा करने का उनका

वास्तविक उद्देश्य मुझे श्रीहरि, गुरु एवं वैष्णवों की सेवा के प्रति उत्साह प्रदान करना है। वास्तव में, मैं कभी दाता हो ही नहीं सकता। दाता वह होता है जो अपनी निजी सम्पत्ति में से किसी दूसरे को कुछ देता है। किन्तु, मेरे पास अपना ऐसा क्या है जो मैं दूसरों को दे सकूँ? वास्तव में, किसी को कुछ देने वाला मैं होता ही कौन हूँ? जब मैं इस जगत् में आया तो मैं अपने साथ कुछ भी लेकर नहीं आया और जगत् से जाते समय भी मैं कुछ साथ लेकर नहीं जा सकता।

"इस जगत् में एकमात्र वास्तविक दाता भगवान् हैं। मेरे पास जो कुछ भी है, केवल मात्र धन-सम्पत्ति ही नहीं बल्कि यह शरीर जिसमें कि चक्षु, कर्ण, नासिका, मुख इत्यादि भी सम्मिलित हैं, सब उनका दिया हुआ ही है। भगवान् जो कुछ भी देते हैं, वह इसलिये कि यह सब उनकी सेवा में उपयोग हो जाये। जो व्यक्ति प्राप्त समस्त वस्तुओं को भगवान् की सेवा में नहीं लगाते बल्कि उन्हें अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए व्यवहार करते हैं, वे चोर हैं।

"अपने लिये मैं यही कह सकता हूँ कि मैं चोर नहीं हूँ, मैं नमक-हरामी नहीं हूँ। किन्तु साथ-ही-साथ, मैं दाता भी नहीं हूँ। मैं मात्र इस सम्पत्ति को उनकी ही सेवा में लगाता हूँ जिन्होंने इसे मुझे प्रदान किया है।"

श्रीजगद्-बन्धु प्रभु ने सर्वथा अशिक्षित होने पर भी, ऐसे उन्नत वैष्णवों के सङ्ग के फलस्वरूप, जिनके स्वभाव में ही सेवा-वृत्ति केन्द्रित थी, ऐसी मति एवं दृढ़ विश्वास प्राप्त किया कि समस्त वस्तुएँ भगवान् की ही सम्पत्ति हैं तथा एकमात्र उनकी सेवा में ही उपयोग होनी चाहिये। मैं आशा करता हूँ कि एक दिन मुझे भी ऐसी सुमति प्राप्त हो।

श्रील प्रभुपाद के महान वैष्णव

श्रील प्रभुपाद श्रीजगद्-बन्धु प्रभु की सेवा से अत्यधिक प्रसन्न थे तथा इसलिए उन्हें 'श्रेष्ठआर्य' नामक उपाधि प्रदानकर उन पर अपनी कृपा वृष्टि की। 'श्रेष्ठ' अर्थात् उत्तम तथा 'आर्य' शब्द का तात्पर्य है एक सरल-हृदय ब्राह्मण जो अपनी सरलता को भगवान् की सेवा में लगाता है। इसलिये 'श्रेष्ठआर्य' एक विशेष उपाधि है जिसका अर्थ है 'भगवान् की सेवा में नियुक्त ब्राह्मणों में सर्वोत्तम'। श्रील प्रभुपाद ने लिखा है, "सरलता ही वैष्णवता है।" क्योंकि एक व्यक्ति तब तक वैष्णव नहीं हो सकता जब तक वह सरल हृदय वाला न हो, इसलिये 'श्रेष्ठआर्य' शब्द अप्रत्यक्ष रूप से एक महान वैष्णव को निर्देशित कर रहा है।

उनकी अप्रकट लीला

श्रीबागबाजार गौड़ीय मठ का उद्घाटन महोत्सव एक मास पर्यन्त चला। इस समय मन्दिर के शिखर पर एक घी का दीपक एक काँच की लालटेन में सम्पूर्ण मास जलता रहा। महोत्सव के समाप्त होने पर, लालटेन टूट गया और दीपक बुझ गया। जब श्रील प्रभुपाद ने यह देखा तो उन्होंने ब्रह्मचारियों को श्रीजगद्-बन्धु प्रभु के घर पर उन्हें देखने के लिए भेजा। जब वे वहाँ

पहुँचे तो उन्होंने पाया कि श्रीजगद्–बन्धु प्रभु ने शरीर त्याग दिया है। वे मठ वापस पहुँचे और श्रील प्रभुपाद को इस घटना की सूचना दी। श्रील प्रभुपाद ने समझाते हुए कहा, "जगद्–बन्धु प्रभु को एक मास पूर्व ही शरीर त्याग करना था, किन्तु मैंने उन्हें उत्सव के समाप्त होने तक यहाँ रोक कर रखा था।"



गृहे वा वनेते थाके, 'हा गौराङ्ग' बले डाके,
नरोत्तम माँगे तार सङ्ग।

प्रार्थना (१५.१.४)

[घर में रहने वाला गृहस्थ आश्रमी हो
अथवा वन में रहने वाला त्यागी, जो
कोई भी श्रीगौरसुन्दर के प्रेमरस के सागर
में निमग्न होकर हा गौराङ्ग! हा गौराङ्ग!
पुकारते हैं, नरोत्तमदास उनके सङ्ग की
कामना करता है।]



श्रीमदनमोहन दासाधिकारी



श्रीगुरु की आज्ञा को आत्मसात् करना

श्रीमदनमोहन दासाधिकारी पश्चिम बङ्गाल के हावड़ा जनपद के अन्तर्गत कानपुर के पेड़ो नामक स्थान के निवासी थे किन्तु वे प्रायः अपने व्यवसाय के उद्देश्य से पूर्वी बङ्गाल के चौबीस परगना जिले में यात्रा करते थे। यहीं पर उन्हें श्रील प्रभुपाद के चरणाश्रित श्रील भक्तिवैभव सागर गोस्वामी महाराज के सङ्ग तथा उनके मुख से श्रील प्रभुपाद की गुणावली को श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस प्रसङ्ग में वे स्वयं कहते थे, "श्रील प्रभुपाद की गुणावली श्रवण करके मेरे हृदय में आनन्द के कारण वैसा ही कंपन हुआ जैसा किसी विद्युत जेनरेटर को प्रारम्भ करने पर पृथ्वी का होता है।"

श्रीमदनमोहन प्रभु ने १९३६ ई॰ में श्रील प्रभुपाद का चरणाश्रय करके उनसे श्रीहरिनाम प्राप्त किया था। श्रीहरिनाम प्रदान करते समय श्रील प्रभुपाद ने उनसे कहा था, "भोजन आदि केवल मात्र हरिनाम-दीक्षा प्राप्त भक्त के हाथ से बना हुआ ही ग्रहण करना। हम समझ पायें अन्यथा नहीं, किन्तु जिस व्यक्ति के द्वारा बना हुआ भोजन हम ग्रहण करते हैं, उसकी चित्तवृति हम पर प्रभाव डालती है। शास्त्र भी इसी सिद्धान्त को पुष्ट करते हैं।

स्वर्गापगा-हेम मृणालिनीनां
नाना-मृणालग्रभुजो भजामः।
अन्नानुरूपां तनुरूपऋद्धिं
कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते॥

चै॰च॰ (अन्त्य-लीला १.९२)

[(राजहंस के द्वारा उक्त वचन) - "हम स्वर्गलोक के निवासी हैं, हमारे धाम में प्रवाहित होने वाली स्वर्ग-गङ्गा

के सुवर्ण कमलों के अग्रभागों को भोजन करके ही हमने उनके (सुवर्ण कमलों) जैसे शरीर के सौन्दर्य को प्राप्त किया है, क्योंकि आदि कारण के अनुरूप ही गुणगण उदित होते हैं।"]

श्रीमदनमोहन प्रभु ने अपने गुरुपादपद्म के वचनों का सम्पूर्ण रूप से पालन किया। उन्होंने लगभग पैंतीस वर्षों तक स्वयं रन्धन करके बनाकर ठाकुर जी को भोग लगाकर ही प्रसाद ग्रहण किया एवं अपनी अदीक्षित पत्नी के हाथ से बना कुछ भी ग्रहण नहीं किया। १९६६ ई॰ में जब उनकी पत्नी ने व्रजमण्डल परिक्रमा के समय मेरे गुरुपादपद्म श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज से हरिनाम-दीक्षा आदि प्राप्त की, तब कहीं जाकर श्रीमदनमोहन प्रभु ने अपनी पत्नी के हाथों से अन्न-जल आदि ग्रहण करना आरम्भ किया। इस प्रकार उन्होंने श्रील नरोत्तम दास ठाकुर द्वारा रचित 'प्रेमभक्ति चन्द्रिका (१.२)' ग्रन्थ में प्रदत्त निर्देशों का दृष्टान्त प्रस्तुत किया-

गुरुमुखपद्म वाक्य, चित्तेते करिया ऐक्य,
आर ना करिह मने आशा।

[अपने चित्त से अन्यान्य पूर्व-पर सञ्चित वचनों को निकालकर एकमात्र श्रीगुरु के मुखकमल से निःसृत वचनों को ही अपने चित्त में स्थान प्रदान करके उन्हीं का पालन करना चाहिये तथा मन में अन्य कोई कामना नहीं रखनी चाहिये।]

श्रील प्रभुपाद के वचनों में सुदृढ़ विश्वास

श्रीमदनमोहन प्रभु को मन्त्र-दीक्षा प्रदान करने से पूर्व ही श्रील प्रभुपाद ने इस जगत् से अप्रकट लीला प्रकाशित कर दी थी, इसी कारण श्रीमदनमोहनप्रभु ने अपने गुरुपादपद्म से मात्र हरिनाम ही प्राप्त किया था। बाद में जब बहुत से भक्त उनसे कहते कि आपको अपने किसी ज्येष्ठ गुरुभ्राता से दीक्षा-मन्त्र ग्रहण करने चाहिये, तब वे कहते, "हरिनाम से ही सर्वसिद्धि होती है। मैं दीक्षा-मन्त्र ग्रहण करने को आवश्यक ही नहीं मानता। अतएव दीक्षा ग्रहण करके किसी नूतन गुरु से सम्बन्ध स्थपित करने का क्या प्रयोजन है, अपने अधिकार के अनुसार श्रील प्रभुपाद से जो प्राप्त कर पाया, मैं उसी में सन्तुष्ट हूँ।

"मेरा ऐसा कहने के पीछे एक कारण है और वह यह कि जब श्रील प्रभुपाद ने मुझे हरिनाम प्रदान किया तब मेरे समक्ष श्रील प्रभुपाद से हरिनाम-प्राप्त एक व्यक्ति ने श्रील प्रभुपाद से कहा, 'आप मुझे यदि दीक्षा-मन्त्र भी साथ ही प्रदान कर देते तो बहुत अच्छा होता।' उनकी बात सुनकर श्रील प्रभुपाद ने कहा, 'मैंने आपको हरिनाम प्रदान करके साक्षात् हरि प्रदान किये हैं, अब क्या शेष रहा?' अपने इन्हीं वचनों के माध्यम से श्रील प्रभुपाद सदैव मुझे अपना सङ्ग प्रदान करते हैं, मुझे कभी नहीं छोड़ते तथा मैं भी कभी श्रील प्रभुपाद के चरणकमलों से स्वयं को एक मुहूर्त्त के लिये भी अलग नहीं कर पाता।"

जागतिक कार्यकलापों से परिहार

श्रीमदनमोहन प्रभु की बहुत सी कन्याएँ थीं किन्तु वह उनके लिए योग्य वर को ढूँढ़ने का कोई भी प्रयास नहीं करते थे। उनकी पत्नी प्रायः उनसे कहा करती, "आप अपनी पुत्रियों के विवाह हेतु कुछ तो चेष्टा करो, अन्यथा काम कैसे चलेगा?"

श्रीमदनमोहन प्रभु उत्तर दिया करते, "मैं संसार के किसी भी कार्य के लिये अपनी शक्ति नियुक्त नहीं करूँगा, श्रील प्रभुपाद तथा भगवान् की इच्छा से जैसा होगा, उसे नतमस्तक होकर सहर्ष स्वीकार करूँगा।"

दैववश जब एक समय एक परिवार श्रीमदनमोहन प्रभु की ज्येष्ठ कन्या को विवाह हेतु देखकर तो गया किन्तु बाद में कोई उत्तर नहीं दिया तब उनकी स्त्री ने पुनः उनसे कहा, "आप स्वयं ही कुछ उनके विषय में पूछ आइये।"

यद्यपि श्रीमदनमोहन प्रभु पहले जाने के लिये प्रस्तुत भी हो गये, उन्होंने अपना बस्ता इत्यादि भी उठा लिया, किन्तु हठात् रुककर उन्होंने अपनी स्त्री से कहा, "प्रभुपाद ने मुझे इस प्रकार किसी के भी निकट जाने के लिये निषेध कर दिया।" इस प्रकार कहकर वे वहीं पर रह गये। कुछ ही समय पश्चात् भगवद् इच्छा से लोग अपने आप ही उनके निकट आने लगे तथा एक-एक करके उनकी सभी कन्याओं का विवाह अपने आप अत्यधिक सहज रूप में सम्पन्न हो गया।

श्रील प्रभुपाद के दिव्य ग्रन्थों के प्रति आकर्षण

श्रीमदनमोहन प्रभु अपनी वृद्धावस्था के कारण जब स्वयं कोई भी शारीरिक कार्य करने में असमर्थ हो गये तब वे सदैव श्रील प्रभुपाद के समय में प्रकाशित साप्ताहिक गौड़ीय तथा दैनिक नदिया प्रकाश आदि पत्रिकाओं को पढ़कर ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करते थे। उन्होंने श्रील प्रभुपाद के समय में प्रकाशित साप्ताहिक गौड़ीय के प्रायः सभी अङ्कों को अत्यधिक उत्साह तथा परिश्रम से दूर-दूर तक अनेकानेक भक्तों के निकट जा-जाकर संग्रह किया था।

इस्कॉन की स्थापना के पश्चात् श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज के द्वारा श्रीमदनमोहन प्रभु से साप्ताहिक गौड़ीय माँगने पर उन्होंने उनकी सेवा तथा प्रसन्नता हेतु उन्हें अनेक अङ्क प्रदान किए थे।

श्रीमदनमोहन प्रभु पुनः-पुनः कहते थे, "जिस ग्रन्थ से श्रील प्रभुपाद का कोई सम्पर्क नहीं है अर्थात् जिस ग्रन्थ को श्रील



"जिस ग्रन्थ को श्रील प्रभुपाद ने प्रकाशित नहीं किया अथवा अनुमोदन प्रदान नहीं किया, मुझे उस ग्रन्थ का अनुशीलन करने की लेशमात्र भी अभिलाषा नहीं है।"

प्रभुपाद ने प्रकाशित नहीं किया अथवा जिस ग्रन्थ का श्रील प्रभुपाद ने अनुमोदन नहीं किया, मुझे उस ग्रन्थ का अनुशीलन करने की लेशमात्र भी अभिलाषा नहीं है।"

सेवा हेतु सामाजिक रीति-रिवाजों की उपेक्षा

श्रीमदनमोहन प्रभु अपने निकट में आने-जाने वाले प्रायः सभी व्यक्तियों से गौड़ीय मठ की सेवा के उद्देश्य से कुछ-न-कुछ माँगते थे। एक समय उनके पुत्रों ने उनसे कहा, "पिताजी, आप अन्य किसी से मठ की सेवा के उद्देश्य से जो भी माँगते हैं, हमें उसमें कोई आपत्ति नहीं है किन्तु हमारी आपसे यह प्रार्थना है कि आप अपने जामाता से कुछ भी मत माँगा कीजिए, कारण, पुत्रियों का घर तो देने का स्थान होता है ना कि कुछ माँगने का।"

अपने पुत्रों की बात सुनकर श्रीमदनमोहन प्रभु ने कहा, "मैंने वैष्णवों के मुखारविन्द से श्रीमद्भागवतम् (१०.२२.३५) के 'एतावत् जन्म-साफल्यं' श्लोक का अत्यधिक गम्भीर, सुन्दर, स्पष्ट तथा विस्तृत अर्थ श्रवण किया है। वे कहते हैं- एक जीव वास्तविक मङ्गल तभी लाभ करता है जब वह श्रेय-आचरण का पालन करने के लिए अपना जीवन समर्पित करता है अर्थात् उस पथ पर चलने के लिए तत्पर होता है जो सम्भवतः प्रारम्भ में सुखद प्रतीत न हो किन्तु अन्ततः उसका परिणाम मङ्गलमय ही होता है। यदि इस प्रकार समर्पण करने में असमर्थ हो तो धन द्वारा सेवा करनी चाहिये। यदि धन का भी अभाव हो तो बुद्धि को सेवा में नियुक्त करना चाहिये। यदि उचित बुद्धि का भी अभाव हो तो वचन के द्वारा अन्यों को श्रेयपथ अर्थात् चरम पारमार्थिक लाभ का अवलम्बन करने के लिये प्रेरित करना चाहिये।

"इसी कारण मेरे मन में आता है कि अपनी इस वृद्धावस्था में मैं प्राण तथा स्वयं द्वारा अर्जित अर्थ के द्वारा तो अधिक सेवा नहीं कर सकता किन्तु धीयः अर्थात् बुद्धि एवं वाचः अर्थात् वचन के द्वारा तो कुछ सेवा कर ही सकता हूँ। और अब आप लोग मेरे वैसा करने में भी कुछ प्रतिबन्ध लगाना चाहते हो? अन्य एक बात, क्या मैं उनसे अपने लिये कुछ माँगता हूँ अथवा प्राप्त हुई वस्तु में से कुछ अपने लिये व्यवहार करता हूँ? भिक्षा द्वारा धन संग्रह करने का मेरा एकमात्र उद्देश्य उस धन द्वारा भगवद् सेवा, वैष्णव-सेवा करने पर उस व्यक्ति का सर्वोच्च मङ्गल साधित करना है। यदि मैं गुरु-वैष्णव-भगवान् की सेवा तथा अपने जामाताओं के मङ्गल का निमित्त बन सकता हूँ तो क्या मुझे इतना भी करने से तुम लोग निषेध करोगे? ऐसा करने पर तो मेरे जामाताओं का अमङ्गल ही होगा, क्योंकि वे अपने धन को उसके वास्तविक गन्तव्य अर्थात् श्रीहरि-गुरु-वैष्णवों की सेवा में अर्पित करने के सुयोग से वञ्चित हो जाएँगे।

"तुम लोग जो भी क्यों न कहो, किन्तु मैं अपना कर्त्तव्य करने से पीछे नहीं होऊँगा। मैं इस जगत् में किसी के साथ भी मात्र शरीर पर आधारित सम्बन्ध नहीं बनाए रखना चाहता। मैं जब अपने सम्पर्क

में आने वाले सभी व्यक्तियों को ही मठ की सेवा के लिये प्रेरित करूँगा तो अपने जामाताओं को कुछ नहीं कहकर उन्हें मङ्गल से वञ्चित क्यों करूँगा?"

मैंने कुछ दिन पूर्व ही अप्रैल २०१७ में हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश में श्रीमदनमोहन प्रभु के नाती श्रीपाद भक्तिविबुध बोधायन महाराज से सुना कि उनके नाना अपने जामाताओं का तो कहना ही क्या, अपने पौत्रों एवं नातियों, यहाँ तक कि उनसे भी, जब वे अपने पूर्वाश्रम में अपने परिवार के साथ रहते थे एवं उनका नाम असीम था, श्रीहरि-गुरु-वैष्णवों की सेवा के उद्देश्य से कुछ-न-कुछ माँग लेते थे।

श्रील प्रभुपाद की प्रसन्नता हेतु पूर्ण समर्पित

श्रीमदनमोहन सेठ यद्यपि गृहस्थ आश्रम में रहते थे तथापि वे अपने गुरुपादपद्म के विचार, आचार, मनोऽभीष्ट आदि से भली-भाँति अवगत थे। कारण, उन्होंने श्रील प्रभुपाद की हरिकथा, उनके द्वारा लिखित लेख, उनके द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ, भाष्य, पत्र-पत्रिकाओं तथा विशेष करके उनके शरणागत प्राणवान् भक्तों का यथार्थ सङ्ग किया था।

श्रीमदनमोहन प्रभु स्वयं निरन्तर हरिनाम, हरि-कथा तथा विशेषतः प्रभुपाद के समय में प्रकाशित साप्ताहिक गौड़ीय का पाठ किया करते थे। अपनी वृद्धावस्था में नेत्रों की ज्योति के कम हो जाने पर अन्य भक्तों के माध्यम से उनका (साप्ताहिक गौड़ीय का) श्रवण करते थे।

श्रील प्रभुपाद की अन्यान्य महत्त्वपूर्ण सेवाओं का तो कहना ही क्या, वे छोटी-से-छोटी सेवा के प्रति भी अत्यधिक सतर्क रहते थे। श्रील प्रभुपाद को भोजन में लुची के अत्यधिक पसन्द होने के कारण श्रीमदनमोहन प्रभु विभिन्न स्थानों यथा श्रीयोगपीठ, श्रीचैतन्य मठ, श्रील प्रभुपाद की आविर्भाव स्थली पुरी स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ तथा वृन्दावनस्थ श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में श्रील प्रभुपाद की प्रसन्नता हेतु प्रतिदिन लुची के भोग के लिये प्रत्येक मास पैसे भेजकर सब व्यवस्था करते थे। इस प्रकार श्रीमदनमोहन प्रभु ने यह दृष्टान्त प्रस्तुत किया कि शरणागत भक्त की प्रत्येक क्रिया ही अपने शरण्य की प्रसन्नता के उद्देश्य से होती है।

सेवा के उपकरणों का दुरुपयोग अस्वीकार्य

श्रील प्रभुपाद के समय में श्रीमदनमोहन प्रभु ने मठ की सेवा के उद्देश्य से एक केले का बगीचा सम्पूर्ण रूप से उत्सर्ग किया था। उन्होंने नियम बनाया था कि घर का कोई सदस्य, सम्बन्धी अथवा काम करने वाले मजदूर आदि कोई भी बगीचे में से एक केला तक लेकर खा नहीं सकते। यदि किसी की भी केले खाने की इच्छा है तो वे श्रीमदनमोहन प्रभु से पैसे ले जाकर खरीदकर केले खा सकते हैं किन्तु अपने बगीचे में से एक भी केला उठाकर नहीं खा सकते। एक समय अपने पुत्र द्वारा बगीचे में से केला खाने का पता लगने पर उन्होंने उसे दण्डित किया था।

निज सम्पत्ति को सेवा में नियुक्त करना

श्रील प्रभुपाद से हरिनाम ग्रहण करने के पश्चात् से ही श्रीमदनमोहन प्रभु अत्यधिक निष्ठापूर्वक स्वयं द्वारा अर्जित अर्थ को हरि-गुरु-वैष्णव की सेवा में नियुक्त करते थे। श्रील प्रभुपाद की अप्रकट लीला के पश्चात् भी वे अपने गुरुभ्राताओं विशेषकर मेरे गुरुपादपद्म श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज की अर्थ के द्वारा प्रचुर सहायता करते थे। गुरु महाराज के अप्रकट होने के पश्चात् वे श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज के मठ-मन्दिर आदि की विभिन्न सेवाओं के उद्देश्य से धन भिजवाते थे तथा बहुत बार स्वयं अपने हाथों से उन्हें जाकर भक्तिपूर्वक सेवा प्रदान करते थे।

श्रीमदनमोहन प्रभु ने स्वयं अपना सम्पूर्ण जीवन मिट्टी के बने एक कमरे में रहकर व्यतीत किया। एक समय उनके पुत्र उनके लिये पक्का घर बनाने के उद्देश्य से ईंट, सीमेंट तथा लोहा इत्यादि लेकर आए, किन्तु उन्होंने स्वयं के लिए कमरा बनाने की आज्ञा नहीं दी तथा अपने पुत्रों को विनम्रतापूर्वक कहा, "यदि तुम मेरे लिये इतना अधिक पैसा व्यय करोगे तो श्रीपुरी गोस्वामी महाराज का मठ कैसे बनेगा?" तथा ईंट, सीमेंट इत्यादि को पुनः दुकानदार के पास भेज दिया।

श्रीमदनमोहन प्रभु बहुत बार मुझे अपने घर पर आने हेतु निमन्त्रण देते थे। मैं श्रील प्रभुपाद के प्रति अत्यधिक निष्ठायुक्त भक्त के पुनः पुनः बुलाने पर एक समय तीन दिन तक उनके घर पर था।

आश्रम विचारातीत

श्रीमदनमोहन प्रभु के उत्कृष्ट-आदर्श एवं विशुद्ध-चरित्र को देखकर मुझे पुनः पुनः यह अनुभव होता था कि जैसे गुरु महाराज और श्रीविनोद विहारी ब्रह्मचारी (श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज) के ब्रह्मचारी वेष में होने पर भी श्रील प्रभुपाद उन्हें प्रकृत संन्यासी कहते थे, उसी प्रकार श्रील प्रभुपाद श्रीमदनमोहन प्रभु के गृहस्थ आश्रम में होने पर भी उन्हें अवश्य ही प्रकृत संन्यासी ही कहते।

शास्त्र वचनानुसार 'वैष्णवानां आश्रमाभावत् अर्थात् वैष्णव किसी आश्रम-विशेष से परिचित नहीं होते।' दूसरे शब्दों में, वैष्णव अपने भजन-साधन के अनुकूल जिस किसी भी आश्रम में क्यों न रहें किन्तु वे अपने आश्रम के आधार पर नहीं बल्कि अपने आचार-विचार के आधार पर ही परिचित होते हैं। इसी कारण श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने लिखा है -

गृहे वा वनेते थाके, 'हा गौराङ्ग' बले डाके,
नरोत्तम माँगे तार सङ्ग।

प्रार्थना (१५.१.४)

[घर में रहने वाला गृहस्थ आश्रमी हो अथवा वन में रहने वाला त्यागी, जो कोई भी श्रीगौरसुन्दर के प्रेमरस के सागर में निमग्न होकर हा गौराङ्ग! हा गौराङ्ग! पुकारते हैं, नरोत्तमदास उनके सङ्ग की कामना करता है।]

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने स्वरचित कल्याणकल्पतरु (उपलब्धि ३.४.५) में इसी विचार का उल्लेख किया है –

यदि सुमङ्गल चाओ, सदा कृष्ण-नाम गाओ
गृहे थाको वने थाको इथे तर्क अकारण।

[यदि सुमङ्गल की कामना है, तो सदैव कृष्ण-नाम का गान करो। घर में रहें या वन में रहें, इस विषय में तर्क करना निरर्थक है]

श्रीगुरु के चरणकमलों को ही एकमात्र सम्पत्ति के रूप में वरण

श्रीमदनमोहन प्रभु ने पेड़ो नामक स्थान पर स्टेट बैंक की प्रथम शाखा खुलने पर किसी व्यक्ति के अत्यधिक जोर करने पर उसमें पाँच रुपये देकर अपना खाता तो खुलवा लिया किन्तु उसके पश्चात् उन्होंने कभी भी बैंक में कुछ भी जमा करने अथवा निकलवाने आदि की कोई भी क्रिया नहीं की, वे सदैव कहते थे, "श्रील प्रभुपाद के चरणकमल ही मेरा बैंक हैं, मेरी एकमात्र सम्पत्ति हैं, मैं उसे प्राप्त करके परम सन्तुष्ट हूँ, मेरी सम्पत्ति नित्य वर्धित होने वाली तथा परम आनन्द प्रदान करने वाली है।"

सांसारिक मनोरञ्जन के लिए समय एवं अर्थ का व्यय निषेध

श्रीमदनमोहन प्रभु ने अपने प्रकट काल तक कभी भी अपने घर में टेलीविजन को रखने की अनुमति प्रदान नहीं की। वे कहते थे, "श्रीमन्महाप्रभु ने श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी को उपलक्ष्य करके 'ग्राम्य-कथा ना शुनिबे अर्थात् सांसारिक कथा कदापि न सुनो' कहकर जो उपदेश दिया था, उसका हमें भी यथासम्भव अपने जीवन में पालन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने किसी प्रबन्ध में भी वर्णन किया है कि दूरदर्शन के लाभ बहुत कम तथा हानियाँ बहुत अधिक हैं।

"ऐसे प्रत्येक सम्वाद जिससे हमें किसी भी प्रकार का पारमार्थिक लाभ नहीं होगा, को देख-सुनकर हमारा चित्त अशान्त ही होता है।"



"ऐसे सभी सम्वाद जिनका हमारे पारमार्थिक जीवन से कुछ लेना-देना नहीं है एवं जिनसे हमें किसी भी प्रकार का पारमार्थिक लाभ नहीं होगा, उन सबके विषय में देख-सुनकर हमारा चित्त अशान्त ही होता है तथा भजन में बाधा ही उत्पन्न होती है। अतएव अशान्त करने वाली किसी वस्तु को क्या कोई बुद्धिमान व्यक्ति अपना अर्थ एवं समय व्यय करके संग्रह करेगा?"

एक अद्भुत प्रतिज्ञा

एक समय श्रीमदनमोहन प्रभु जब मायापुर में बैलगाड़ी पर बैठकर गङ्गा-घाट (मायापुर-घाट) से श्रीचैतन्य मठ पहुँचे, तब श्रील प्रभुपाद के आश्रित श्रीनिशिकान्त सन्याल



भक्ति सुधाकर प्रभु ने उनसे पूछा, "आप किस प्रकार आए?"

श्रीमदनमोहन प्रभु ने उन्हें उत्तर प्रदान किया, "प्रभु, मैंने सियालदह से कृष्णनगर तक रेलगाड़ी द्वारा यात्रा की। वहाँ से स्वरूप-गञ्ज गया, पुनः स्वरूप-गञ्ज से गङ्गा पार कर गङ्गाघाट तथा फिर गङ्गाघाट से बैलगाड़ी में चार पैसे देकर श्रीचैतन्य मठ पहुँचा हूँ।"

श्रीनिशिकान्त सन्याल ने श्रीमदनमोहन प्रभु से कहा, "यदि आप वही चार पैसे महाप्रभु की सेवा के उद्देश्य से लङ्गड़ा आम खरीदने में लगा देते तो कितना अच्छा होता।"

श्रीमदनमोहन सेठ ने उसी दिन प्रतिज्ञा की, "मैं आज के पश्चात् कभी भी बैलगाड़ी में नहीं बैठूँगा तथा जितना हो सकेगा पैसे बचाकर श्रील प्रभुपाद तथा श्रीमन्महाप्रभु की सेवा करूँगा।"

परिवार एवं मित्रों पर उनका अप्राकृत प्रभाव

श्रीमदनमोहन प्रभु जैसे आदर्श भक्त की कृपा से उनके परिवार, मित्र, सगे-

सम्बन्धी, नाती-पोते इत्यादि सभी गौड़ीय-वैष्णव विचारधारा में निष्णात हुए हैं। उनके सम्पर्क में आने वाला कोई भी व्यक्ति उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाया। सभी उनसे सम्बन्धयुक्त होने पर भी उन्हें अप्राकृत तत्त्व ही मानते हैं।

उनकी पुष्प-समाधि श्रीधाम मायापुर में श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ के संस्थापक आचार्य श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज की समाधि के निकट विराजमान है। मुझे श्रीपाद भक्तिविबुध बोधायन महाराज ने बताया कि उनके नाना श्रीमदनमोहन प्रभु मुझे मुक्त-महापुरुष कहकर सम्बोधित करते थे। इसे मैं उनके आशीर्वाद के रूप में स्वीकार करता हूँ तथा उन्हीं से इसमें सिद्धि प्राप्त करने हेतु प्रार्थना करता हूँ-

ओहे! वैष्णव ठाकुर, दयार सागर,
ए दासे करुणा करि'।
दिया पदछाया, शोध हे आमारे,
तोमार चरणे धरि॥

[हे वैष्णव ठाकुर! आप तो दया के सागर हैं। इस दास पर करुणा करके अपने श्रीचरणों में शरण देकर मेरे अनर्थ-ग्रस्त हृदय को निर्मल कीजिए- मैं आपके श्रीचरणों को पकड़कर प्रार्थना करता हूँ।]



श्रीमद्भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराज का संक्षिप्त जीवन चरित्र

श्रीमद्भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराज का आविर्भाव २१ जुलाई, १९२६, शुभ श्रीशयन एकादशी तिथि में पश्चिम बङ्गाल के बांकुड़ा जिले के अन्तर्गत श्रीसीतारामपुर ग्राम में अत्यधिक समृद्ध एवं उच्च ब्राह्मण कुल में हुआ। श्रील महाराज को बाल्यावस्था से ही ब्राह्मणोचित संस्कार प्राप्त हुए।

१९४४ ई॰ में श्रीसीतारामपुर के अति निकट स्थित पाँचरूला नामक ग्राम में जब श्रील महाराज एक अध्यापक के रूप में कार्यरत थे, वहीं श्रीमद्भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज के आश्रितजनों के सम्पर्क से उनका गौड़ीय मठ से परिचय हुआ। उनके सङ्ग के प्रभाव से श्रील महाराज का मेदिनीपुर स्थित श्रीश्यामानन्द गौड़ीय मठ में आना-जाना प्रारम्भ हुआ। वहीं पर सर्वप्रथम उन्हें गौड़ीय मठ के मूल संस्थापकाचार्य श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर श्रील प्रभुपाद के अन्तरङ्ग प्रिय पार्षद, ज्वालामुखीय ऊर्जा (volcanic energy) से सम्पन्न, श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के दर्शन एवं सङ्ग का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिन्होंने १९५५ ई॰ में श्रीशयन एकादशी तिथि में ही श्रील महाराज को हरिनाम एवं दीक्षा मन्त्र प्रदान कर पारमार्थिक जन्म दिया। दीक्षा के उपरान्त श्रील महाराज का नाम श्रीनरोत्तम दास ब्रह्मचारी हुआ एवं तभी से उन्होंने सम्पूर्ण रूप से श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में योगदान दिया।

श्रील महाराज ने एक सद्शिष्य की भूमिका का निर्वाह करते हुए अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक अपने गुरु महाराज के श्रीचरणों में अपनी सम्पूर्ण स्वतन्त्रता को समर्पित कर दिया तथा उनके गुरुदेव ने भी परम करुणा से युक्त होकर अत्यधिक धैर्यपूर्वक

उनके हृदय की समस्त ग्रन्थियों का क्रमशः छेदन किया। अपने गुरु महाराज के आदेश एवं दिशा-निर्देश में श्रील महाराज ने उनके अनेक भुवन-पावन गुरुभ्राताओं की सेवा के सुयोग का सर्वोत्तम लाभ उठाया तथा उन वैष्णवों से कृपा-आशीर्वाद स्वरूप बहुमूल्य शिक्षा रूपी अनेक मन्त्रों की प्राप्ति की।

श्रील महाराज व्यक्त करते थे, "यद्यपि दीक्षा मन्त्र मुझे अपने गुरुपादपद्म के द्वारा प्राप्त हुए, परन्तु श्रील प्रभुपाद के अनेक शिष्यों से मैंने अनेक मन्त्र अर्थात् उनकी शिक्षाओं रूपी अनेक मन्त्र ग्रहण किए। जिस प्रकार एक परिवार में परिवार के सभी सदस्य अपनी शिक्षाओं के द्वारा बालक के व्यक्तित्व को गठित करते हैं, उसी प्रकार मेरे गुरु महाराज की कृपा से श्रील प्रभुपाद के अनेक शिष्यों ने अपनी शिक्षाओं द्वारा मेरे चरित्र का गठन किया है।"

श्रील महाराज के पवित्र चरित्र, उनकी बहुमुखी सेवाओं में सतत यत्नशीलता एवं दक्षता तथा शास्त्र सिद्धान्त सम्मत अति सूक्ष्म दृष्टिकोण से सम्पन्नता को लक्ष्य करके उनके गुरु महाराज ने उन्हें सर्वप्रथम 'उपदेशक', तत्पश्चात् 'सेवा-विग्रह' नामक उपाधि प्रदान की तथा अन्त में १९६९ ई॰ में मुकुन्द सेवन व्रतधारी त्रिदण्डि संन्यासी श्रीभक्तिविज्ञान भारती महाराज के रूप में सुशोभित करके उन्हें सर्वोत्तम उपाधि अथवा अतुलनीय निरुपाधि अर्थात् सब प्रकार की अद्भुत उपाधियों से परे कहकर वैष्णव-समाज में विघोषित किया।

श्रील महाराज की सेवावृत्ति एवं कार्यकुशलता से पूर्ण आश्वस्त, उनके गुरु महाराज ने उन्हें अनेक महत्त्वपूर्ण सेवाओं यथा मठ-मन्दिर हेतु भूमि-संग्रह एवं निर्माण-कार्य, प्रचार-सेवा, गो-सेवा, मासिक-चन्दा-संग्रह, श्रीव्रजमण्डल-श्रीक्षेत्रमण्डल-श्रीनवद्वीप धाम एवं दक्षिण तथा उत्तर भारत आदि की परिक्रमाओं का आयोजन तथा उत्सवों के सञ्चालन कार्य आदि का दायित्व प्रदान किया तथा उन्हें श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के सहायक सचिव के पद पर भी नियुक्त किया। श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के प्रायः समस्त शाखामठों के निर्माण-कार्य में श्रील महाराज ने विशेष योगदान दिया। श्रील प्रभुपाद के समस्त आश्रितजन उन्हें प्रीतिपूर्वक गौड़ीय मठों के Civil Engineer कहकर पुकारते थे। श्रीमद्भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज ने उन्हें 'निर्मत्सर-वैष्णव' तथा श्रील प्रभुपाद आश्रित श्रीमदनमोहन सेठ ने उन्हें 'मुक्त-महापुरुष' नामक उपाधि से विभूषित किया।

अपने आराध्य गुरु महाराज के १९७९ ई॰ में अप्रकट लीला को प्रकाशित करने के पश्चात् श्रील महाराज ने श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के सचिव के पद पर आसीन रहकर लगभग पच्चीस वर्ष तक अपनी सेवाएँ प्रदान की।

अपनी वृद्धावस्था में भी श्रील महाराज ने आलस्य रहित होकर गौड़ीय सम्प्रदाय के दो मूल ग्रन्थों— श्रीचैतन्य भागवत एवं श्रीचैतन्यचरितामृत का टीकाओं सहित बाङ्गला से हिन्दी भाषा में अनुवाद किया तथा अत्यधिक उत्साह एवं आनन्दपूर्वक प्रचार-सेवा कार्य में व्यस्त रहे।

श्रील महाराज गौड़ीय मठ के इतिहास के विषय में अपने विश्वकोश-सदृश ज्ञान

तथा वैष्णव-सेवा में सुदृढ़ विश्वास के लिए सुप्रसिद्ध हैं। अपने परम पावन व्यक्तिगत आचरण के द्वारा श्रील महाराज यह शिक्षा प्रदान करते हैं कि जो व्यक्ति पारमार्थिक जीवन में उन्नति लाभ करने के इच्छुक हैं, उन्हें वैष्णवों की सेवा एवं महिमा कीर्त्तन करने को ही प्रधानतम सम्पद मानना चाहिये। श्रील महाराज के अनुसार वैष्णवों की सेवा एवं महिमा-गान स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा एवं महिमा-गान से भी अधिक गुरुत्वपूर्ण है।

सारस्वत-गौड़ीय-वैष्णव-धारा के गौरव की रक्षा हेतु श्रील महाराज ने २०१५ ई॰ में अपनी आचार्य-लीला को प्रकटित किया तथा २०१६ ई॰ में गुरुवर्ग एवं श्रीमन्महाप्रभु की वाणी के प्रचार हेतु श्रीजगन्नाथ रथ-यात्रा के समय 'विशुद्ध-चैतन्यवाणी-प्रचार-केन्द्र' की स्थापना की। अति अल्प समय में श्रील महाराज ने देश-विदेश के अनेकों श्रद्धालुओं को हरिनाम-दीक्षा एवं संन्यास इत्यादि प्रदान किया। श्रील महाराज की हरि-कथा का सर्वत्र अत्यधिक आदर हुआ एवं उनकी कथाओं का प्रत्येक माध्यम से प्रचार-प्रसार हुआ। दिनाङ्क ५ सितम्बर, २०१७, नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर की निर्याण तिथि (भाद्र शुक्ला चतुर्दशी) को उपलक्ष्य करके श्रीराधामाधव गौड़ीय मठ, फरीदाबाद में दोपहर १२ बजकर २६ मिनट पर श्रील महाराज ने अनेकानेक भक्तों के मुख से उच्चारित महामन्त्र को अत्यधिक भाव-विभोर होकर श्रवण करते-करते श्रीश्रीराधा-माधव की मध्याह्न-लीला में प्रवेश किया एवं ६ सितम्बर को उन्होंने श्रीधाम मायापुर में स्वनिर्वाचित स्थान पर समाधि ग्रहण की।